निरतिशय नानेश

आचार्य श्री नानेश स्मृति-ग्रन्थ

■
सम्पादक
इन्दरचन्द बैद

■
अतिथि सम्पादक
डॉ आदर्श सक्सेना

■
रेखाकन व सज्जा अडिग

■
प्रकाशक
समता शिक्षा सेवा सस्थान, देशनोक 334801 (बीकानेर)

■
प्रकाशन वर्ष 2001

■
मूल्य दो सौ पच्चीस रुपये मात्र

■
मुद्रक
साखला प्रिण्टर्स, सुगन निवास, चन्दनसागर, बीकानेर 334001

संयम, ज्ञान, ध्यान, तप और चारित्र
के अनुपम आदर्श
कर्म-मार्ग के दिव्य पथिक
मानवता के अप्रतिम संरक्षक
आगमों के गंभीर ज्ञाता
समत्व योग के उद्गाता'
समीक्षण ध्यान योगी'
युग प्रबोधक
युग द्रष्टा
युग पुरुष
अतिशय सिद्धियों के भण्डार
निरतिशय नानेश
की
पुण्य स्मृति में
उन्हीं के अलौकिक व्यक्तित्व
को
हृदय की सम्पूर्ण श्रद्धा
एवं भक्ति के साथ
सादर समर्पित।

आभार 'श्री साधुमार्गी जैन संघ, सूरत' के प्रति

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ की *'श्री साधुमार्गी जैन सघ सूरत'* इकाई की स्थापना लगभग आठ वर्ष पूर्व हुई थी। प्रसंग इस प्रकार बना कि आचार्य श्री नानेश ने अपनी सुशिष्या साध्वी निरजनाश्रीजी को दक्षिण गुजरात के नवसारी नगर में चातुर्मास हेतु भेजा। चातुर्मास समाप्त कर साध्वीश्रीजी सिगाड़ा सहित सूरत पधारे। आपके प्रवचनों से प्रभावित होकर सूरत के नवयुवकों में धर्म के प्रति विशेष चेतना जाग्रत हुई। उन्हीं के सद्प्रयासों से इस श्रीसघ का बीजवपन हुआ।

आचार्य श्री नानेश की असीम कृपा के परिणामस्वरूप ही इस नवगठित संघ को प्रथम वर्ष में ही चातुर्मास के आयोजन का सौभाग्य प्राप्त हो गया। इस प्रकार सघबीज के सिचन और प्रस्फुटन का क्रम प्रारभ हुआ और सघ शनै शनै वृक्ष के रूप में विकसित होने लगा। तत्पश्चात् संघ के सान्निध्य में दो चातुर्मास और दो भागवती दीक्षाएँ सम्पन्न हुई तथा नवीन शाखाओं के रूप में *समता महिला मण्डल* और *समता युवा संघ* की स्थापना हुई। आज इस सुविकसित सघ की शाखाएँ राष्ट्रीय स्तर तक पहुँच चुकी है। *श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ* के मत्री और *समता युवा सघ* के राष्ट्रीय अध्यक्ष सूरत से ही मनोनीत हुए है। यह उपलब्धि *सूरत श्री संघ* के लिये निश्चित रूप से गौरव का विषय है।

आचार्य श्री नानेश के महाप्रयाण से पूर्व उनकी अस्वस्थता का समाचार ज्ञात होने पर सूरत श्री सघ के सदस्यों ने उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करने का तत्काल निर्णय लिया जिसके अनुसार पाँच बसों में आचार्यश्री के भक्तों ने उदयपुर पहुँच कर अपने आचार्य के दर्शन किये और उनके प्रति अपनी अटूट निष्ठा का परिचय दिया।

सूरत श्री सघ के सदस्यों की धर्म–प्रभावना की अपनी अनुकरणीय परम्परा रही है। इसी के चलते उन्होंने श्री अ भा साधुमार्गी जैन संघ की अनेक शाखाओं में समता भवनों के लिये अर्थ सहयोग प्रदान किया तथा समता समाज द्वारा प्रकाशित *'सस्कार निर्माण की दिशा में'* पुस्तक के लिये पूर्ण अर्थ सहयोग दिया।

प्रस्तुत *'निरतिशय नानेश'* ग्रथ के प्रकाशन के लिये अपनी समृद्धि के एक अश को निस्पृह भाव से अपने आराध्य की स्मृति को चिरस्थाई बनाने हेतु अर्पित कर *सूरत श्रीसघ* के सदस्यों ने निश्चय ही स्तुत्य कार्य किया है। उनकी इस अपूर्व आचार्य–निष्ठा के लिये हम उन्हें साधुवाद तो देते ही है, उनके प्रति हार्दिक आभार भी व्यक्त करते है।

प्राक्कथन
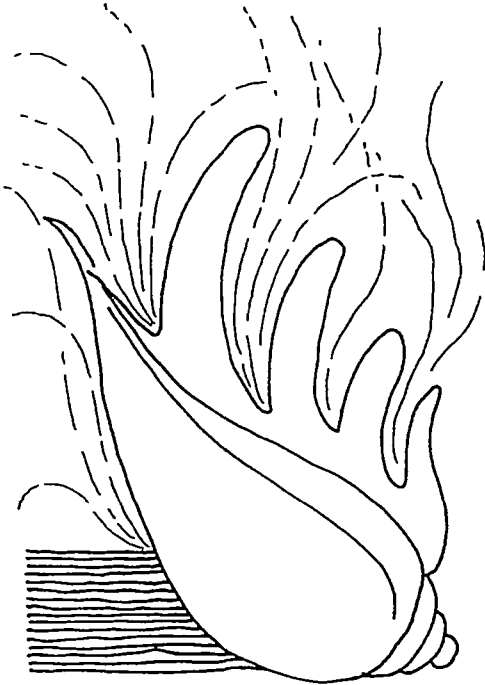
'निरतिशय नानेश' शब्द-युग्म जिस भाव का द्योतक है उसकी पूर्ण विवेचना सभव नहीं है क्योकि जहाँ *'निरतिशयता'* स्वय मे ही अविवेच्य है वहीं *'नानेश'* नाम जिस आचार्यत्व का पर्याय है वह भी व्याख्यातीत है। प्रथम की महिमा उसके शब्दकोशीय अर्थ में निहित है और द्वितीय की उन अतिशयों एव गुणो मे जो आचार्य श्री नानेश की सम्पत्ति थे। *'निरतिशय'* का शब्दकोशीय अर्थ है— *'जिससे बड़ा या बढकर दूसरा न हो, अद्वितीय, परमेश्वर'* (*बृहत् हिन्दी कोश*, ज्ञानमण्डल लि , वाराणसी) और हम जानते हैं कि परमेश्वर की विवेचना सभव नहीं है इसीलिये उपनिषद्कारो ने भी उसे *'नेति-नेति'* कह कर छोड़ दिया है। वैसे भी परमेश्वर के कितने रूप हैं, यह बता पाना सभव नहीं है। गीता कहती है, *'ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्'* अर्थात् मुझे जो जिस रूप मे भजता है, मैं उसे उसी रूप में दीख पड़ता हूँ। जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ है, सर्वसुन्दर है, सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञाता है, वही ईश्वर है इसलिये उसे किसी परिभाषा की सीमा में नहीं बॉधा जा सकता। इसी प्रकार वह आचार्यत्व जिसके आदर्श आचार्य श्री नानेश थे, पच परमेष्ठियों मे मध्य भाग का अधिकारी और पूजित ऐसा पदवाचक शब्द है जो ऐसे दिव्य पुरुष का बोध कराता है जो साधु और उपाध्याय से ऊपर उठकर, सिद्ध और अरिहत बनने की दिशा मे गतिशील हो। सामान्य व्यक्ति से दो पद ऊपर उठे हुए तथा अरिहत अथवा देवत्व से मात्र दो पद दूर, दिव्य गुणों से विभूषित साधु के गुणो की महिमा का बखान कौन कर सकता है! फिर भी ऐसे आचार्य के जिन कतिपय गुणो की विवेचना शास्त्रो मे की गई है, वे उसे दिव्य आत्मा प्रमाणित करने की दृष्टि से पर्याप्त हैं—

> पचिदिय सवरणो तव नवविह बमचेर गुत्तिधरो।
> चउविह कसाय मुक्को इह अठारस्स गुणेहि सजुत्तो।।

पच महव्वय जुत्तो पच विहायार पालण समत्थो।
पच समिओ ति गुत्ती इह छत्तीस गुणो गुरु मज्झ।।

गुरु को छत्तीस गुणों से युक्त होना बताया गया है। वह पाँचो इद्रियो को वश मे रखता है, नव बाड़ों सहित ब्रह्मचर्य की रक्षा करता है, पाँचो प्रकार के महाव्रतो और पाँचो प्रकार के आचारों का पालन करता है, चारो कषायों (क्रोध, माया, मान और लोभ) से मुक्त होता है और पाँचों समितियो और तीनों गुप्तियों का पालन करता है। ऐसे और इतने भव्य गुणो को धारण करने वाला व्यक्ति निश्चय ही अपना मोक्ष तो सुनिश्चित करता ही है, सासारिक प्राणियों के मोह का उन्मूलन कर उनका भी परमहित करता है इसीलिये साधु की वदना करना श्रावक का प्रथम कर्तव्य बताया गया है।

इस सदर्भ में जब हम आचार्य नानेश के आचार्यत्व पर विचार करते हैं तब निश्चित रूप स उनके साधुत्व पर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। साधुमार्गी परम्परा के इस युग के वे विलक्षण सिद्ध पुरुष तो थे ही अपनी चर्या मे वीतराग जीवन की उस पवित्र धरोहर को भी समेटे हुए थे जो अनवरत प्रवह्मान काल के षट आरकों मे से प्रथम तीन कालखण्ड व्यतीत हो जाने के बाद तथा भूमिज-निर्वाह प्रणाली के आरभ होने पर, तीर्थकर महाप्रभु ऋषभदेव के काल से प्रारभ हुई थी। भगवान् ऋषभदेव तो साधुमार्गी परम्परा के उद्‌गाता ही थे, उनके बाद प्रभु महावीर तक सभी तीर्थंकरो ने अपनी-अपनी तरह से उसी परम्परा को पुष्ट किया था। अतिम तीर्थकर भगवान् महावीर तो श्रमण भगवान् के नाम से ही प्रसिद्ध हैं—श्रमण भी और भगवान् भी। श्रमण के भगवान् पद तक पहुँचने के प्रतीक महावीर है। वैसे भी नमस्कार महामत्र के पाँचों पद साधु की महिमा का ही प्रतिपादन करते हैं। पचम पद *'सव्व साहूण'* तो साधु से सीधा सबधित है ही, अन्य पद भी साधुत्व के विकासमान स्तरो के ही परिचायक हैं। साधु ही उपाध्याय पद-योग्य विशेषता अर्जित कर उपाध्याय बनता है, उपाध्याय आचार्यपद-योग्य विशेषता अर्जित कर आचार्य बनता है और इसी क्रम मे आचार्य सिद्ध और सिद्ध घनघाती कर्मो का क्षय कर अरिहत पद पर पहुँचता है। इस प्रकार साधु एक स्थितिवाचक शब्द हुआ जिसका पात्र कोई मनुष्य अपनी तप सिद्धि द्वारा तथा अपनी विशेष आत्मिक शक्तियो के बल पर साधुत्व की चरम उपलब्धियो के बाद बनता है। वर्तमान में इस सत्य का अनुभव हमे आचार्य श्री नानेश का जीवन चरित्र एव उनकी तपोसाधना कराती है। एक सामान्य बालक के रूप में जन्म प्राप्त कर उन्होने साधुत्व की दिशा में यात्रा आरभ की और उस उच्चतम स्थिति तक पहुँच गये जिस तक किसी सासारिक आत्मा के लिये पहुँचना बहुत कठिन है। आचार्य श्री नानेश का जीवन इस दृष्टि से धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व का तो है ही, आत्मा की विकास-यात्रा की दिशाओं को समझने की दृष्टि से भी उपयोगी है। निश्चित रूप से उनके जीवन और प्रदेय पर विविध रूपो मे विस्तृत चर्चाएँ होती रही हैं तथापि उनके जीवन और प्रदेय की इस निरतरता तथा उसकी प्रकृति को समझे बिना उनके आचार्य रूप की उस भगिमा को समझ पाना कठिन है जिसने उन्हे *निरतिशय* बनाया। बाल्यावस्था से निर्वाण के समय तक फैले उनके जीवन के कर्म-प्रवाह की प्रकृति और स्वरूप को इसलिये समझ लेना आवश्यक है।

तब सोचे कि आखिर ऐसा कैसे हुआ कि एक अल्पवय बालक सद्‌भाव, सहयोग, त्याग, तप और आत्मपरिष्कार के उस मार्ग पर चल पड़ा जिस पर चलने की सुध बड़ी वय के जाग्रत, शिक्षित और प्रबुद्ध सामान्य जनो तक को नहीं आ पाती। वृद्धजनो की सेवा, मधुर भाषण, सहयोगी प्रकृति, जिज्ञासु स्वभाव तथा अतर्मुखी प्रवृत्ति के दर्शन उनमे बचपन से ही होने लगे थे। श्रेष्ठ विचारों एव पवित्र चिन्तन मे अनुरक्त यह बालक प्रकृति के उन्मुक्त स्वरूप पर भावविभोर हो जाया करता था। साथ ही पर्वत शृखलाएँ, मेघमालाएँ, वृक्ष-लताएँ आदि उसके चिन्तन को जाग्रत कर देते थे और उसकी कल्पनाओं को जैसे पख लग जाते थे। परन्तु ये कल्पनाएँ अनोखी होती थीं। ऊँचा आकाश अपने विशाल प्रागण मे उसे पक्षियों के समान क्रीड़ाएँ करने के लिये जैसे आमन्त्रित करता लगता था, रेलगाड़ी के इजन की असीम शक्ति को एक ड्राइवर

द्वारा नियन्त्रित किया जाता देख कर उसकी इच्छा होती कि वह भी वैसी ही असीम शक्ति का नियत्रक बने, और ग्रामवासियों के मुख से यह सुन कर कि परमात्मा की ज्योति दीपक की लौ की तरह होती है, वह दीपक की लौ को अपलक निहारा करता, उस परमात्मज्योति की एक झलक पाने के लिये। बाल-प्रेरणाएँ ही बालक के भविष्य का निर्माण करती हैं, इसी को लक्ष्य कर अग्रेजी के महाकवि विलियम वर्ड्सवर्थ ने कभी लिखा था—Child is the father of man परन्तु क्रूर प्रकृति को इन बालसुलभ कल्पनाओं मे बालक का खोया रहना पसद नहीं आया। वह तो उसे कुछ कठोर अनुभव करा कर उसकी प्रज्ञा को झकझोर देने और अनुभव के नवीन क्षेत्र खोलने के लिये जैसे कटिबद्ध थी। अभी वह मात्र आठ वर्ष का था कि पिता का साया उसके सिर से उठ गया। बालक के भावनाशील हृदय को गहरी चोट लगी। अपने पर आ पड़े उत्तरदायित्व का उसे बोध हुआ। माता की भावनाओ के प्रति वह अधिक सवेदनशील हो उठा। माता की भक्ति, अपनी बहिनों के प्रति प्रेमभाव तथा अग्रज के प्रति आज्ञाकारिता एव सहयोग की भावनाओं ने उसके किशोर रूप का परिष्कार करना प्रारम कर दिया। परिणामस्वरूप पाठशाला और अध्ययन का मोह त्याग वह व्यापार मे प्रवृत्त हो गया।

यह थी सरलता, कल्पनाशीलता, भावुकता, अन्तर्मुखी प्रवृत्ति और परमात्मदर्शन की कामना के विकास की वह दृढ़ भूमि जिस पर आचार्यत्व के भव्य प्रासाद का निर्माण होना था। यही थी सीढ़ियो की वह शृखला जिस पर ऊँचा चढते हुए उसे परमपद तक पहुँचना था। युवा नानालाल मे गुरु धारणा ग्रहण करने, वैराग्य भाव उदित होने, भादसोड़ा मे प्रेरणा प्राप्त करने तथा गुरु की खोज में प्रवृत्त होने जैसी बाते छोड़ भी दे तो कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि यह सब उन तीन लक्ष्यों की ओर ले जाने का उपक्रम था जिनकी कामना उसने बाल्यकाल में की थी—पक्षी के समान विस्तीर्ण गगन में ऊँचाई तक चढना, किसी महाशक्ति का नियत्रक बनना और परमात्म दर्शन करना।

जो लोग किसी अलभ्य ऊँचाई तक पहुँचना चाहते हैं उन्हें किसी सुदृढ सीढी की आवश्यकता होती है। युवा नानालाल ने ऐसी सीढी को ढूँढने मे अपार श्रम किया। सीढियाँ तो बहुत उपलब्ध हो रही थीं परन्तु पाये मजबूत न होने के कारण विश्वसनीय नहीं थीं। वे कहीं भी और कभी भी गिरा सकती थीं और ऊँचाई से गिरनेवाले की कैसी दुगर्ति होती है, यह कोई छुपी बात नहीं थी। यह चढ़ना भी न किसी वृक्ष के फल तोड़ने जैसा कार्य था, न किसी ऊँचाई से नीचे घाटियो की सुन्दरता का अवलोकन करने की कामना की पूर्ति का। यह तो खाण्डे की धार पर चलने जैसा कार्य था—*प्रेम को पथ कुठार कै धारा।* कबीर ने भी कहा है—*कबिरा यह घर प्रेम का, खाला का घर नाहि। सीस काटि भुईं पर धरै, सो पैठे इह माहि।।'*

ढूँढते-ढूँढते गुरु मिला भी तो अत्यत विरस, नीरस। उसने साफ कह दिया—'साधु बनना कोई हँसी-खेल नहीं है। पहले साधुता को समझो, ज्ञान-ध्यान सीखो और वैराग्य को स्थायी बनाओ। जिसके पास दीक्षा लेनी है उस गुरु की भी पहले परीक्षा कर लेनी चाहिये।' और सबसे कटु अनुभव तो यह था कि उसने अत्यत रूखे स्वर मे कह दिया—'अगर मेरा कोई शिष्य नहीं बनेगा तो मेरे आत्मकल्याण मे कौनसी बाधा आ जायेगी? मुझे जमात नहीं बढानी है, मुझे तो खरी साधना चाहिये।' यह था असली गुरु का चरित्र जिसके सबध में तुलसी ने स्पष्ट कहा है—*'साधु चरित शुभ चरित कपासू। निरस विरस गुणमय फल जासू।। जो सहि दु ख पर छिद्र दुरावा। वदनीय जेहि जग जस पावा।।'* ऐसा था विरस-निरस परन्तु गुणमय, कपास जैसा उस साधु गुरु गणेशाचार्य का चरित्र। गुरु और भावी शिष्य दोनो ने एक दूसरे को परखा, उनमे सामजस्य बैठा और आत्मोन्नति की दिशा में यात्रा आरभ हो गई। उन्नति की इन सीढ़ियो मे जुड़ी आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के सान्निध्य से प्राप्त प्रेरणा। सादड़ी मे ज्योतिर्धर आचार्य जवाहराचार्य के प्रभावी व्यक्तित्व ने इस पथिक को भावविभोर कर दिया। उनसे इसे अनोखा मनोबल और आत्मबल प्राप्त हुआ जैसे प्रचण्ड ऊर्जा की कोई बैट्री चालू हो गई हो।

जो व्यक्ति ऊँचाइयो पर चढ़ना चाहता है उसे बहुत-सा बोझ नीचे ही छोड़ देना पडता है। जितना हल्का कोई रहता है उतनी ही तीव्रता, तत्परता सुरक्षा और उत्साह मे वह शिखर की ओर अपनी यात्रा जारी रख पाता है। इस यात्री ने भी लोभ, मोह, क्रोध आदि किसी भी परिग्रह का बोझ अपने शरीर पर नहीं रहने दिया, तभी तो फलौदी चातुर्मास मे मुनि श्री रतनलालजी म सा क्रोध को विनययुक्त मुस्कान से जीत लेने की मुनि नानालाल की अनोखी क्षमता की प्रशसा श्री गणेशाचार्यजी से कर दिया करते थे। सेवाभाव ऐसा था कि फलोदी से भीनासर तक ज्वर की अवस्था मे भी यह यात्रा करता रहा, गुरु की सेवा का त्याग कैसे करता? बीकानेर वर्षावास में भी मुनि नानालाल ने वहाँ विराजित वयोवृद्ध, प्रज्ञाचक्षु स्थविर मुनि श्री श्रीचदजी म सा की सेवा कर सेवक-धर्म का ऐसा आदर्श उपस्थित किया कि उनके मुख से प्रशसा मे निकल ही गया, 'यह नवदीक्षित मुनि रुग्ण होते हुए भी जितनी उच्च भावना से मेरी सेवा कर रहा है, उतनी ही तल्लीनता से अध्ययन भी कर रहा है, यह प्रशसनीय है। सभी को इस नवदीक्षित मुनि से प्रेरणा लेनी चाहिये।' महाकवि तुलसीदास ने लिखा है— *'सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।'* इसी सेव्य भाव से इस मुनि ने ब्यावर मे श्री प्यारचदजी म सा , श्री बोथलालजी म सा एव अन्य वृद्ध सतो की सेवा की। अपनी विनयशीलता, सहिष्णुता एव सेवाभावना से इसने उन सभी के हृदयों में अपनी ऐसी जगह बना ली कि उनके मुख से बार-बार शुभाशीर्वाद के ऐसे शब्द निकले—'ऐसा विनीत, कम बोलने वाला और ज्यादा सहने वाला साधु हमने अपनी दीक्षा के इतने दीर्घकाल मे भी नहीं देखा। ऐसा विचक्षण साधु जरूर शासन मे सितारा बन कर चमकेगा।'

ऐसे आशीर्वाद इस साधु के लिये कोई नयी या अनोखी बाते नहीं थीं। पॉचवे पट्टधर आचार्य श्री श्रीलालजी म सा ने इस नानालाल के जन्म से पूर्व ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि आठवें पट्टधर आचार्य इतने पुण्यशाली हागे कि उनके आचार्यत्वकाल में धर्म की महती प्रभावना होगी और यह

त्याग, तप, ज्ञान, अक्रोध और सेवाभाव जैसे गुणो को देखकर ही वि स 2019 की आश्विन शुक्ला द्वितीया को इसे अपना उत्तराधिकारी बनाने की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी थी। भले ही उच्चतर शिखर की ओर इसकी चढ़ाई की सफलता पर लोगो को विश्वास न हो, पर हीरे की पहिचान तो जौहरी ही कर पाता है। और हीरा भी कब अपने मुँह से कहता है— *'लाख हमारो मोल'*। इसीलिय युवाचार्य पद पर अधीष्ठित होने पर इस मुनि ने तो विनम्रतापूर्वक अपनी अक्षमता ही स्वीकारी थी—'इतने विशाल सघ के सचालन का उत्तरदायित्व मुझ अल्पज्ञ बालक के अशक्त कधो पर आरोपित न किया जाय।' पर जौहरी मूल्य की अवमानना कैसे करता? उसने उत्तर दिया, 'तुम्हे बीच मे तर्क-वितर्क करने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हे पूछ कौन रहा है? जो मेरी अतरात्मा को ठीक लगेगा, वह मै करूँगा। तुम्हे बीच मे बोलने का अधिकार नहीं है। यदि सदा की भॉति आज्ञा की अनुपालना करनी है तो जो मै कहूँ उसके अनुसार करना होगा।' यह स्पष्ट सकेत था उस विश्वास का जिसने गुरु गणेशाचार्य को प्रेरित किया था मुनि नानालाल को उस दिशा मे बढाने का जो इस शिष्य की प्रथम कामना को पूरा कराने वाली थी और जिस समर्पित भाव से नानामुनि ने युवाचार्य पद की चादर ओढी, वह अनोखी थी। विनम्रता, सहिष्णुता तथा विचारों और भावनाओ की पवित्रता ही ऊपर उठाती है तिस पर वह समय भी अत्यत विकट था। श्रमण सघ की योजना खण्डित हो चुकी थी, शिथिलाचार-उन्मूलन और ध्वनि-विस्तारक यत्र के उपयोग पर प्रतिबध जैसी आचार्यश्री की अनुशसाऍ निष्फल हो गई थीं तथा अन्य अनेक कारणो से व्यवस्था बिगड़ने लगी थी जिसके कारण श्री गणेशाचार्यजी को उपाचार्य के पद से त्यागपत्र देना पडा था। इस प्रकार बड़ी सीमा तक एक सकटग्रस्त चतुर्विध सघ की जिम्मेवारी उन पर आ गई थी। इसी वर्ष अर्थात् वि स 2018 को माघ कृष्णा द्वितीया को युवाचार्य नानालालजी म सा को आचार्य का पद भी प्राप्त हो गया। इस

प्रकार बालक नानालाल की प्रथम कल्पना—पक्षी के समान गगन मे ऊँचाई पर चढ़ना, साकार हुई। एक गौरवशाली चतुर्विध सघ का वह प्रमुख बन गया था।

आचार्य अथवा गुरु का पद प्राप्त कर पाना जीवन की महनीय उपलब्धि होती है क्योकि यह पद जिस प्रकार की उच्चतर एव अनन्य साधना द्वारा प्राप्त किया जाता है उसके बाद अरिहत पद की प्राप्ति का ही नहीं, मोक्ष का मार्ग भी खुल जाता है। आत्मविकास के जिन पॉच सोपानों की महिमा महामत्र नवकार प्रतिपादित करता है उनमे तृतीय पद आचार्य, साहू समाज का सर्वोच्च पद है। इस पद पर पहुँचने वाला साहू (साधू) सघनायक तो होता ही है, धर्म सघ के कुशल सचालन के लिये जिम्मेवार भी होता है। उसका सबसे बड़ा दायित्व होता है प्रतिबोध, दीक्षा एव शास्त्र-ज्ञान की व्यवस्था करना। वही उस आलोक को विकीर्ण करता है जिसमें आत्माएँ भवसागर से पार उतरने का मार्ग देख पाती है। वह तो एक प्रज्वलित दीपक होता है जो अपनी ज्योति से अगणित आत्मदीपों को प्रज्वलित अथवा ज्ञान-सम्पन्न करता है। ऐसे आचार्य की ही गुरु के रूप में वदना की जाती है—

अज्ञानतिमिरान्धाना ज्ञानाजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलित येन तस्मै श्री गुरुवे नम ।।

जिस पद का अधिकारी साक्षात परब्रह्म माना जाता हो उस पद पर कोई यो ही नहीं पहुँच जाता। साधु नानालाल अपनी तपश्चर्या से उस पद पर पहुँचा था और अपनी योग्यता से उसने उस गौरवशाली पद को अलकृत किया। इस रूप में बालक नानालाल की दूसरी अभिलाषा—रेलगाड़ी के इजन के समान किसी महाशक्ति का नियत्रक बनना—भी पूरी हुई। आचार्य नानालाल इस उपलब्धि के सर्वोत्तम पात्र भी थे इसीलिये वे एक विस्तृत शक्तिशाली चतुर्विध सघ को नियत्रित, निर्देशित एव व्यवस्थित रखने का कार्य सफलतापूर्वक कर सके। यह सब जिस स्थिति में हुआ उसकी सक्षिप्त विवेचना अपेक्षित है।

जिस विशिष्ट सघ के सचालन का उत्तरदायित्व आचार्य श्री नानालालजी म सा को सौंपा गया था वह कोई छोटी-मोटी सामान्य-सी इकाई नहीं था। वह तो तीर्थंकरो द्वारा प्रवर्तित चार तीर्थों, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका का समन्वित रूप, चतुर्विध सघ था, ऐसा चतुर्विध सघ जिसकी स्थापना तीर्थंकरदेव सत्य का साक्षात्कार कर लेने के बाद अर्थात् आत्मा के स्वरूप को केवलालोक से देख लेने के उपरान्त करते हैं। यह स्थापना उनके अपने प्रभुत्व-प्रदर्शन के लिये नहीं अपितु जगत् के सम्पूर्ण प्राणियो के प्रति अपार कल्याण भाव से पूरित होने के फलस्वरूप होती है, जैसा कि *प्रश्न व्याकरण सूत्र* म कहा गया है—*सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए भगवया पावयण सुकहिय*। यह वह सघ था जो विगत ढाई हजार वर्षों से भी अधिक समय से धर्म-व्यवस्था के पुनीत वाहन के रूप में निर्बाध चला आ रहा था। निश्चय ही इतने लम्बे समय में इसे अनेक उतार-चढ़ावो के बीच से गुजरना पड़ा था परन्तु इसकी निरतरता, पवित्रता और प्रभावशीलता कभी नष्ट नहीं हुई थी। इसे आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा ने नयी शक्ति, सामर्थ्य, ऊर्जा और सभावनाओ से सम्पन्न कर अपने उत्तराधिकारियों के लिये एक गौरवशाली सगठन के रूप मे छोड़ा था। इसे ही श्री शिवलालजी म सा , श्री उदयलालजी म सा , श्री चौथमलजी म सा , श्री श्रीलालजी म सा , श्री जवाहरलालजी म सा और श्री गणेशीलालजी म सा ने अपनी दिव्य क्षमताओ से विभूषित कर अष्टमाचार्य श्री नानालालजी म सा तक पहुँचाया था। निश्चय ही श्री गणेशीलालजी म सा के आचार्यत्व काल मे कुछ विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गई थीं परन्तु अपने पुरुषार्थ से श्री गणेशाचार्य उनका सामना करते रहे थे। विभिन्न जैन सम्प्रदायो का विलीनीकरण कर एक सघ-निर्माण की जो योजनाएँ प्रारभ हुई थीं, उनके सार्थक परिणाम के लिये वे पूर्णत समर्पित थे। सघ की एकता के लिये सयम एव सिद्धान्तों के सिवाय वे सभी कुछ उत्सर्ग कर देने के लिये भी तैयार थे। सादड़ी मारवाड़ में 22 सम्प्रदायों के प्रतिनिधियो का सम्मेलन भी हुआ। स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस का अधिवेशन भी इसी समय

यहीं हुआ। सघ-ऐक्य योजना की सफलता के लिये श्री गणेशीलालजी म सा ने समूचे श्रमण सघ के प्रस्तावित आचार्य पद का त्याग कर उपाचार्य का पद ग्रहण करना भी स्वीकार किया तथा विनय, सेवावृत्ति, सौजन्य, सद्भाव, उदारता आदि का परिचय देते हुए समन्वय का वातावरण उत्पन्न किया था तथापि अपेक्षित परिणाम न निकलते देख कर 30-11-1960 को स्वय को नव निर्मित सघ से पृथक् कर लिया था। साधु नानालाल इन सम्पूर्ण गतिविधियो का द्रष्टा ही नहीं रहा था, उनमें पूरी तरह से सम्मिलित भी रहा था। अपने गुरु के आदर्शो तथा वस्तुस्थिति के कठोर सत्यो से उसका निकटता से परिचय हो चुका था और इस अनुभव से उसने जो दृष्टि विकसित की थी वह उसके आचार्यत्व काल मे बड़ी सीमा तक उसकी मार्गदर्शक रही। ये वे परिस्थितियाँ थीं जिनमें साधु नानालाल को हुक्मसघ के अष्टम आचार्य का पद प्राप्त हुआ था।

आचार्य पद प्राप्त कर पाना और इस प्रकार एक शक्तिशाली तत्र का नियत्रक बन जाना, बालक नानालाल की दूसरी कामना की बड़ी सीमा तक पूर्ति थी परन्तु इससे भी बड़ी बात यह थी कि उन्होंने पिछले आचार्यो के अनुभवों, उपलब्धियो, प्रणालियो और आदर्शों को अपनी चिन्तन एव कार्य-शैली म समाहित किया था। इस प्रकार श्री हुक्मीचदजी म सा के आदर्शो, सयम, ज्ञान-साधना एव कर्म कौशल को, श्री शिवलालजी म सा के ज्ञान और क्रिया के आदर्श को, श्री उदयलालजी म सा की सघ सचालन-क्षमता, विनम्रता एव शालीनता को, श्री चौथमलजी म सा एव श्री श्रीलालजी म सा की जीवदया और मानवीय करुणा की वृत्ति को, श्री जवाहरलालजी म सा की सयम-साधना एव वैचारिक क्रान्ति के सिद्धान्तों को तथा श्री गणेशीलालजी म सा की शान्त-क्रान्ति के आदर्श को, आचार्य श्री नानालालजी म सा ने अपनी तरह से नियोजित कर अपने चिन्तन एव कार्य-शैली में समन्वित किया। इस प्रकार उन्होंने सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र्य की उस असीम शक्ति से तो, जो किसी भी इजन की शक्ति से अधिक होती है, स्वय को सम्पन्न किया ही साथ ही अपरिमित शक्ति का स्रोत बन कर अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की गाड़ी को कुशलतापूर्वक सचालित कर नवें पट्टधर आचार्य श्री रामलालजी म सा के गन्तव्य तक पहुँचा भी दिया।

परमात्म दर्शन की बालक नानालाल की तीसरी कल्पना के साकार होने की स्थिति भी अजस्र शक्ति के इस स्रोत की समाहिति में ही निहित थी। दीपक तो आचार्य पद प्राप्त कर वह स्वय बन गया था, ऐसा दीपक जिसमें परमात्मा की ज्योति प्रज्वलित थी परन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं था। दीपक की सार्थकता जितनी स्वय प्रकाश विकीर्ण करने मे होती है उससे कहीं अधिक अन्य दीपकों को अपनी लौ से प्रज्वलित कर अपने प्रकाश को अनतमुखी एव सर्वव्यापी बना देने मे होती है। आचार्य नानेश ने सेवा, साधना और धर्मशास्त्रो के अध्ययन द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया था उसकी तर्कपूर्ण विवेचना के मार्ग पर भी वे आरूढ़ हुए। ज्ञान का प्रकाश अज्ञान और अधविश्वासों के अधकार का विनाश करता है और इस प्रकार लोगो के हृदयो को सत्य ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करता है। आचार्य पद प्राप्त होते ही उन्होने अपने अन्तर्मन के उस ज्ञान से परिपूर्ण होने का प्रमाण प्रस्तुत किया। अवसर था उदयपुर से विहार का। श्रावको का आग्रह था कि उस दिन हाथीपोल दरवाजे से न गुज़रा जाये क्योकि उस ओर दिशाशूल था और वह मुहूर्त भी शुभ नहीं था। इस पर नवाचार्य का आलोकित करने वाला स्पष्ट उत्तर था—'साधक के लिये सभी मुहूर्त और सभी दिशाएँ सदा ही शुभ होती हैं। ग्रह-नक्षत्र सदा साधक के अनुकूल रहते हैं, दिशाशूल उसका कुछ बिगाड़ नहीं सकते।' और वह प्रवास उसी मुहूर्त में उसी दिशा से प्रारम हुआ। हम जानते हैं कि वह विहार कितना शुभ रहा था।

अज्ञान चाहे अधविश्वास के रूप मे हो चाहे ज्ञान के अभाव के रूप मे हो, वह सदा ही आत्मा को दुर्बल और कलुषित करता है और धर्म के प्रतिकूल आचरण को प्रोत्साहित करता है। मनुष्य-मनुष्य के बीच अतर करना, जीव-जीव के बीच अतर करना, ऊँच-नीच, छुआछूत का भाव रखना, शोषण की

प्रवृत्ति को प्रश्रय देना और दीन-दलित के उद्धार के प्रति उदासीन रहना आत्मज्ञानी कभी स्वीकार नहीं कर सकता क्योकि वह जानता है कि *'कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होइ खत्तिओ। वइस्सो कम्मुणो होई, सुद्दो हवइ कम्मुणो।* (उत्तराध्ययन, 25-33) आचार्य श्री नानेश के सम्मुख ऐसी स्थिति मालव प्रदेश के प्रवास के दौरान उपस्थित हुई थी। वे नागदा पधारे और तभी प्रारभ हुआ उस *धर्मपाल प्रवृत्ति* का जिसके तीव्र प्रवाह में छुआछूत, ऊँच-नीच, कुव्यसन और कुसस्कार, सभी के कगार ढह गये। सीतारामजी ने गुहार लगाई—*'तुम बिन कौन उबारै हमको'* और आचार्य भगवन् करुणापूर्ण हृदय से उद्धार की दिशा में चल पड़े। परिणाम था—हजारो परिवार सप्त कुव्यसनों को त्याग कर धर्म के मार्ग पर चल पड़े—रातों-रात अछूत अथवा धर्मभ्रष्ट लोगो से *धर्मपाल* बन गये। हृदय परिवर्तन के मार्ग से आत्मज्योति जाग्रत करने का यह अद्वितीय उदाहरण था। इसके उपरान्त इन्दौर, होशगाबाद, बैतूल, रायपुर, बगोमुडा, केसिगा, राजनादगाँव आदि स्थानो मे अपने प्रवचनो द्वारा आचार्य प्रवर ने धर्म-जागरण और सस्कार-निर्माण के कार्यो को अपूर्व विस्तार दिया। इस शृखला मे प्रथम दीक्षित सत श्री सेवतमुनिजी म सा और प्रथम दीक्षित साध्वी सुशीलाकुमारीजी की दीक्षा के साथ दीक्षाओं का जो क्रम चला उसमें एक के बाद एक सुदृढतर कड़ियाँ जुड़ती चली गई। राजनादगाँव मे एक साथ छ , बड़ी सादड़ी मे सात, ब्यावर मे नौ, बीकानेर मे बारह तथा रतलाम में एक साथ पच्चीस दीक्षाओं का जो भव्य कीर्तिमान बना वह लोकाशाह के बाद का भव्यतम आयोजन था।

दीक्षाऐं अपने आप मे आत्म-सस्कार का अनूठा आयोजन होती हैं और व्यक्ति के मन तथा समाज के परिवेश मे घटित होती आध्यात्मिक क्रान्ति के बढ़ते हुए सोपानो का परिचय कराती हैं। इस प्रकार वे उस सामाजिक उत्क्रान्ति की पृष्ठभूमि से भी परिचित कराती हैं जिसका निर्माण सत समाज करता है। आचार्य नानेश का योग इस दृष्टि से विशिष्ट था कि उन्होने एक अत्यत व्यापक परिप्रेक्ष्य में सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की। धर्मपाल अभियान निश्चय ही इस दृष्टि से एक ऐतिहासिक प्रयास था यद्यपि अन्य प्रयास भी समानान्तर चल रहे थे। इन प्रयासो मे एक अन्य क्रान्तिकारी मोड़ तब आया जब मेवाड़ और मालवा के विविध अचलो मे विहार करते आचार्य श्री सरवानिया ग्राम पहुँचे, जहाँ 17 गाँवो के प्रतिनिधियों के बीच समाज सुधार के 19 नियमों की पालना का विधान किया गया। इन नियमो मे मृत्युभोज न करना, विवाह या तिलक मे लेनदेन की सौदेबाजी नहीं करना, विवाह सबधों मे मर्यादाओं की रक्षा करना, विवाह समारोहो में गदे गीत न गाना तथा अपव्यय न करना, अनमेल विवाह न करना जैसे नियम सम्मिलित थे। यही नहीं, मादक पदार्थों के त्याग, पारिवारिक शाति एव व्यवस्था के लिये सदस्यों में मधुर सबधो की स्थापना तथा नैतिक सदाचरण की दृष्टि से विवाहित युगलो सहित अन्य लोगों द्वारा भी ब्रह्मचर्य व्रत की पालना करने की प्रतिज्ञा ग्रहण करने की दिशा में भी आपने लोगो को प्रेरित किया। ध्वनि-विस्तारक यत्र के प्रयोग के अनौचित्य को उदाहरण द्वारा सिद्ध कर उसके उपयोग को आपने निरुत्साहित करने की प्रेरणा प्रदान की। भोपालगढ़ मे आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा के साथ मिलकर आपने जीवन-व्यवहार की एक पच-सूत्रीय योजना का उपदेश दिया जिसके अनुसार सभी मानवो की समानता मे आस्था, समाज के गुण-कर्म आधारित वर्गीकरण में विश्वास, व्यक्तिगत जीवन शुद्धि का अभ्यास, गरीब-अमीर की भेदजनक सामाजिक कुरीतियों का परित्याग, नियमित रूप से समता भाव की साधना, जनसेवा एव समाज कल्याण की प्रवृत्तियों में सहयोग, ये पाँच सूत्र प्रतिपादित किये गये जो व्यक्ति के आचरण को समता की दिशा मे अग्रगामी बनाने की दृष्टि से उपयोगी हैं।

समता-साधना, सयम, तप और ज्ञानचर्या के साथ जिस आचारचर्या की आपने अनुपालना की वह आपको अपने तृतीय लक्ष्य परमात्मदर्शन अथवा आत्मसाक्षात्कार की ओर ले गई। सभी प्राणियों मे एक ही आत्मा के दर्शन करने वाले तथा जीवमात्र के प्रति करुणा से पूरित आचार्यश्री ने अपने प्रवासो, प्रयासो तथा प्रवचनों द्वारा तो आत्मसाक्षात्कार की दिशा दिखाई ही, राणावास

मे जिन नौ सूत्रो को आधार बनाकर आपने जो प्रवचन दिये वे आत्मा के सत्य स्वरूप की आपकी अनुभूति के प्रमाण प्रस्तुत करते है। चैतन्यदेव को सबोधित ये नौ सूत्र उस आत्मा के दिव्य स्वरूप की प्रतीति भी कराते हैं। यह आत्मा चितन कर जान सकती है कि वह कौन है और कहाँ से आई है, वह सत्, चित् और आनद-घनस्वरूप ज्ञाता एव द्रष्टा है, अपने पुण्योदय से मानव जीवन प्राप्त होता है परन्तु वह व्यर्थ मे भटकने के लिये नहीं है, इस जीवन को प्राप्त कर उसे अपने भविष्य के सही मार्ग का निर्धारण कर लेना चाहिये, इस ज्योतिस्वरूप आत्मा को समभावपूर्वक अपने कृत्यों-अकृत्यो का विवेचन करते रहना चाहिये तथा सासारिकता से उठ कर दुष्प्रवृत्तियों का त्याग कर मिथ्या धारणाओ, भावो, पदार्थो आदि का ज्ञान कर कषायो से स्वय को मुक्त करने का प्रयास करना चाहिये। यह आत्मा ज्ञान, धर्म, दर्शन एव शुद्ध चारित्राचार के विभिन्न गुणो से युक्त है अत अपनी उन्नति मे सक्षम है। इस सिद्ध, बुद्ध, निरजन, सर्वगुण-सम्पन्न आत्मा को अपने स्वरूप को समझ कर सम्यक् विधि से जीवन को समग्र बधनो से मुक्ति का साधन बनाना चाहिये। आचार्यश्री के इस चिन्तन की धारा ही आत्मसमीक्षण साधना के रूप मे विकसित हुई। यही उनके परमात्मदर्शन की वह मजिल थी जो उन्होने अपने जीवन के लक्ष्य के रूप मे निर्धारित की थी। यह उस समता दर्शन की चरम परिणति भी थी जो समाज को उनका प्रमुख प्रदेय है। शरीर से आत्मा की उन्नति तक का यह सफर इस साधना-पद्धति की दिशा की सिद्धि मे ही था।

आत्मा और परमात्मा का क्या सबध है, यह गूढ आध्यात्मिक विषय है जिस पर विविध रूपो में सदा से चर्चा होती रही है। इस प्रकार बात चाहे आत्मा और परमात्मा की एकता की हो अथवा जीव और ब्रह्म की एकता की, इसे समझने और समझाने के प्रयास आगमो, उपनिषदो, सतो, ज्ञानियो ने अपनी तरह से किये हैं। कबीर ने कहा है— *'जल मे कुभ कुभ मे जल है, बाहर-भीतर पानी। फूटा कुभ जल जलहि समाना, यह तथ कितो गियानी॥'* आत्मा सभी मे

'विद्याविनय सम्पन्नो ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डित समदर्शिन ॥' अर्थात् ज्ञानी, महापुरुष, विद्या विनय युक्त ब्राह्मण मे और चाण्डाल मे तथा गाय, हाथी एव कुत्ते मे समरूप परमात्मा को देखने वाले होते हैं। यही समता दर्शन हे और जिनका मन समता मे स्थित हो जाता है वे जीते जी ही ससार पर विजय प्राप्त कर लेते हैं और परब्रह्म की अनुभूति भी कर लेते हैं— *इहैव तैर्जित सर्गो येषा साम्ये स्थित मन। निर्दोष हि सम ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता* (गीता 5/19) आचार्य श्री नानेश ने अपने एक प्रवचन *'समतादर्शन'* मे कहा था—

'विभिन्न रूपों के भीतर तथा विभिन्न आकृतियों के पीछे एक तत्त्व जो भीतर ही भीतर अगड़ाई ले रहा है और बाहर की समग्र परिस्थितियो का जो सचालक है उस तत्त्व को यथावत रूप में देखने की क्षमता समता दर्शन देता है। शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार वह तत्त्व आत्मा है जिस की सज्ञा है आत्मिक चेतना और जिसका व्यक्तित्व ज्ञानस्वरूप होकर दिव्य तेज से आलोकित है। ऐसे आत्मस्वरूप को यथावत देखना समता दर्शन की दृष्टि से ही बन पड़ता है। इस चैतन्य तत्त्व आत्मा को ऐसी ही आतरिक दृष्टि से देखने की कोशिश करे। इसके स्वरूप पर वर्तमान में जितने आवरण चढे हुए हैं, आच्छादन लगे हुए हैं, उनको भी यह दृष्टि देखे तथा आच्छादनो की परतों मे जो आलोकमय आत्मस्वरूप रहा हुआ हे उसकी झलक भी यह दृष्टि ले आत्म तत्त्व के ये दोनों पक्ष ज्ञेय हैं। यदि समता को अपने विचार एव व्यवहार मे समाविष्ट कर ले तो कर्मो के बधन स्वत ही टूट पड़ेंगे और अतर्मन मे ईश्वरत्व का आलोक प्रकाशित हो जायेगा।'

इस परमात्म तत्त्व को देखने से सबधित एक दृष्टात है। एक वैरागी बाबा के पास सोने की बनी एक गणेशजी की और एक चूहे की मूर्ति थी। बाबाजी की तीर्थयात्रा पर जाने की इच्छा हुई, खर्चे की आवश्यकता थी सो दोनों मूर्तियों लेकर एक सुनार के पास पहुँचे और कहा कि इन्हें ले लो और इनकी कीमत दे दो। सुनार

ने दोनो मूर्तियाँ तौलीं। दोनो वजन मे बराबर थीं इसलिये उसने दोनों की बराबर कीमत कर दी। बाबाजी बिगड़ गये, 'जितनी कीमत गणेशजी की उतनी ही कीमत चूहे की! ऐसा कैसे हो सकता है ? चूहा तो सवारी है और गणेशजी उस पर सवार होने वाले हैं, मालिक है।' सुनार ने विनम्रता से कहा, 'बाबाजी हम गणेशजी और चूहे की कीमत नहीं करते, हम तो सोने की कीमत करते हैं।' सुनार मूर्तियों को नहीं देखता वह तो सोने को देखता है। ऐसे ही परमात्म तत्त्व को चाहने वाला साधक प्राणियों को समभाव से देखकर उनमे रहने वाले परमात्म तत्त्व को देखता है, उनके शरीर के आकारो-प्रकारो को नहीं।

प्रश्न यह है कि इस परमात्म तत्त्व के दर्शन की स्थिति कैसे बने? सीधा रास्ता शास्त्रो ने बताया है—अपने जीवन को पूर्णत सयमित कर लो, तुम्हे आत्मदर्शन की अवस्था प्राप्त हो जायेगी। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की जो सर्व प्रकार से सयमित होकर पालना करता है, वह आत्मदर्शन प्राप्त कर लेता है। जब आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है तब परमात्मा का साक्षात्कार भी हो जाता है। जैन धर्म परमात्मा को कोई अलग तत्त्व नहीं मानता। वह मानता है कि आत्मा ही विरक्त होकर, सर्वागीण रूप से कर्मजाल को हटा कर, गुणस्थानों की अतिम श्रेणी केवली की अवस्था जब प्राप्त कर लेती है तब वह तुरन्त ही निरोग, निरुपम, स्वाभाविक, अबाधित, निरजन, निराकार, अर्हन्त से परमात्म पद की प्राप्ति कर लेती है। अर्थात् परमात्मा की स्थिति एक पद है जिस पर आत्मा की पदोन्नति होती है। आत्मा विनष्ट नहीं होती, न ही वह कोई नया रूप लेती है। उसकी तो उच्चतर (यहाँ उच्चतम) पद पर पदोन्नति हो जाती है। इस पदोन्नति की अपनी अर्हताएँ है—

कर्मणश्च विनाशेन सप्राप्यायोगिजीवन।
ससारे लभते प्राणी परमात्मपदकलम्।।

यह आत्मा जो चैतन्य प्रकाश से दीप्त होती है और उच्चतम स्थान प्राप्त करती है, तिर्यच, मनुष्य, पशु, पक्षी, देव, भूत, भविष्य, वर्तमान, सभी मे एक समान रहती है, यद्यपि कर्मो की विचित्रता के कारण विभिन्न आच्छादनों से आवेष्टित हो जाती है। कर्मो का क्षयोपशम होते ही पुन सूर्य की-सी तेजस्विता से प्रकट हो जाती है, यही जैन धर्म की मान्यता है—

प्रमाणसिद्ध चैतन्य कर्ता भोक्ता फलाश्रिता।
निजदेह प्रमाणेय स आत्मा जिन शासने।।

आत्मा अपनी अनश्वरता तथा गतिशीलता के कारण यदि इतनी महत्त्वपूर्ण वस्तु है अथवा इस दृश्य जगत् का एकमात्र सत्य है तो उसके स्वरूप एव शक्तियो की पहचान कितनी आवश्यक है, आचार्य नानेश ने यह समझाने का प्रयास किया, क्योकि यह सत्य अथवा यह ज्ञान उदित होने पर ही प्राणी अपने उद्धार अथवा अपनी मुक्ति की स्थितियों को प्राप्त करने की दिशा मे गतिमान हो सकता है। समता दर्शन की विवेचना द्वारा यही कार्य सम्पन्न किया गया। उन्होने भगवान् महावीर के वचन—*'एगे आया'* (स्थानाग सूत्र) सूत्र की व्याख्या करते हुए कर्मावरण के हल्के अथवा घनीभूत होने की बात कही। जो आत्मा हाथी के विशाल शरीर में निवास कर सकती है वही पिपीलिका के अत्यल्प शरीर मे भी निवास कर सकती है, यह उसका समभाव है। इसी को समझाने के लिये आचार्य श्री नानेश ने समता के चार सूत्रों की व्याख्या की—सिद्धान्त-दर्शन, जीवन दर्शन, आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन। आचार्य नानेश ने इन्हे ही अपने जीवन में उतारा, आत्मदर्शन किया, परमात्मदर्शन भी किया और उस लक्ष्य तक पहुँचे जिसकी कामना उन्होने बाल्यावस्था मे की थी—दीप की ज्योति में परमात्म दर्शन करने की। इस प्रकार अपने आत्मदीप मे उन्होने परमात्मदीप का साक्षात्कार कर लिया। परन्तु यह उनके लक्ष्य का अत नहीं था। वे तीर्थकरो के लक्ष्य के अनुगामी थे। तीर्थकर तीर्थवत होता है—तीर्थ वह जिसके सहारे *'तिरा'* जाय अथवा जो *'तिराने'* में सहायता करे। आचार्य नानेश को यह भी करना था और वे ही यह कर सकते थे क्योंकि उन्होने आत्मतत्त्व की उसकी सम्पूर्णता मे समीक्षा कर ली थी और आत्मा के

समतामय विकास-सूत्र को ढूँढ लिया था। वे जानते थे कि *आत्मसमीक्षण* के बल पर ही आत्मा स्वय को ऊर्ध्वगामी बनाती है। यह आत्मसमीक्षण आवश्यक है क्योकि इसी के माध्यम से चिन्तन और आचरण की वह प्रक्रिया प्रारभ होती है जो आत्मा को उन्नति के पथ पर ले जाती है, उसे विभाव मे भटकाव से बचा कर स्वभाव मे रमण करने की प्रेरणा देती है। इस हेतु ही उन्होने उन नौ सूत्रो का प्रतिपादन किया था जिन्हे सीढियॉ बना कर आत्मा उस परम रूप तक पहुँचती है जो परमात्मरूप है। यह था ज्ञान का वह प्रकाश जिसे आचार्य श्री नानेश ने अपनी साधना द्वारा अनावृत कर दूसरो के लिये मार्गदर्शन का साधन बनाया। इस प्रकार अपने आलोक से उन्होने ससार को आलोकित किया—दीप से दीप जले और आलोकधारा बह चली। यह ऐसा कार्य था जो कोई सिद्धि प्राप्त अतिशयधारी सत ही कर सकता था। यों तो आचार्य नानेश के अनेक अतिशयो के विवरण साधको की स्मृतियों में बसे हुए हैं परन्तु वे ही सब कुछ नहीं हैं। चमत्कार कोई बहुत बड़ी वस्तु नहीं होते—बड़ी वस्तु होती है वह विश्वास जो लोगों को किसी की चमत्कारी शक्ति मे उत्पन्न हो जाता है और फल का कारण बनता है—श्रद्धावान लभते ज्ञान विश्वास फलदायक। किसी परमशक्ति में आस्था अथवा परमात्मा मे विश्वास अपनी स्वय की आत्मा मे विश्वास का ही फल होता है यही आस्तिक भाव है क्योकि नास्तिक वह नहीं होता जो ईश्वर मे विश्वास नहीं करता, वह होता है जो अपने में विश्वास नहीं करता। क्योकि अत मे कर्ता तो आत्मशक्ति ही होती है। इस प्रकार अपनी आत्मा मे विश्वास ही परमात्मा में विश्वास है। आचार्य श्री नानेश ने लोगो मे यह विश्वास जाग्रत किया। *आत्मा सो परमात्मा* की उक्ति के अनुसार यही परमात्मदर्शन है, यही परमात्मा की प्राप्ति है और यही जीवन के लक्ष्य की पूर्ति है। आचार्य नानेश इस प्रदेय की प्रेरणा बने, शक्ति बने, विश्वास बने और पथ-प्रदर्शक बने।

जैन धर्म परमात्मा को कर्ता नहीं मानता, कर्म की महिमा स्वीकार करता है। महाभारतकार महर्षि व्यास भी यही कहते है—*न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत। यस्य ते हितमिच्छन्ति बुद्धयासयोजयन्ति तम्।।* (महाभारत उद्योग पर्व 35/44) अर्थात् देवता चरवाहे की भाँति डडा लेकर हमारी रक्षा थोड़े ही करते हैं, वे तो जिसका भला चाहते हैं उसे उत्तम बुद्धि दे देते हैं। इस प्रकार बुद्धि, समझ अथवा सुमति की प्राप्ति प्रमुख है, जो भी शक्ति यह प्रदान करती है वह ईश्वरीय हुई और उसका धारक ईश्वर हुआ—*निरतिशय हुआ*। जीवन, जगत्, आत्मा, परमात्मा, धर्म, कर्म आदि के ऐसे ही ज्ञान के धारक थे आचार्य श्री नानेश। उन्होंने सासारिक प्राणियों को उनकी आत्मा की रक्षा की बुद्धि, अपनी तपोसाधना द्वारा प्रदान की। सम्पूर्ण नानेश-दर्शन, चाहे वह किसी भी रूप में हो, इसी का प्रतिफलन है और उसके प्रणेता होने के कारण आचार्य श्री नानेश *निरतिशय* हैं। ◆

प्रकाशकीय

'श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ' के अष्टम आचार्य 1008 पूज्य श्री नानालालजी म सा की पावन स्मृति में प्रकाशित यह *'निरतिशय नानेश'* ग्रथ अपने आप में उपलब्धि है। उपलब्धि भी यह तीन रूपो में है। प्रथम, इसके प्रकाशन का एक गौरवशाली इतिहास है, द्वितीय, इसके माध्यम से आचार्य श्री नानेश के जीवन और प्रदेय के विविध पक्षो को उनकी सम्पूर्णता में उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है, और अतिम, यह एक सकल्प की पूर्ति है।

पहली उपलब्धि की बात वर्ष 1993 से जुड़ती है जब आचार्य श्री नानेश का चातुर्मास देशनोक मे आयोजित था। धर्म, ध्यान, तपस्याओं और प्रवचनों की अनोखी प्रवृत्तियों के चलते पुण्यधरा देशनोक साक्षात् तीर्थ बन गई थी जिसके केन्द्र में आराध्य के रूप मे आचार्य श्री नानेश एव युवाचार्य श्री रामलालजी म सा विराजित थे। आचार्य प्रवर के उस 54वे चातुर्मास को एक स्मरणीय चातुर्मास बनाने की भावना से सम्पूर्ण श्रावक समाज अनुप्रेरित था। धर्म-प्रभावना एव सामाजिक चेतना के विविध कार्यक्रमो पर चर्चाएँ आरम हो गई थीं। तभी कतिपय उत्साही श्रावको के मन मे देशनोक को धर्म-ध्यान एव समाज-सेवा के एक विशिष्ट केन्द्र के रूप मे विकसित करने की प्रेरणा जाग्रत हुई और उस हेतु वहाँ एक सस्थान की स्थापना की योजना बनी जिसे गतिशील करने के केन्द्र बने सूरत के एक उद्योगशील श्रावक श्री इन्दरचद बैद जिन्होंने एक आदर्श सस्थान की रूप-रेखा प्रस्तुत की। आचार्य नानेश के चितन तथा आदर्शो को पूरित करने का लक्ष्य होने के कारण सस्थान का नाम *'समता शिक्षा सेवा सस्थान'* प्रस्तावित किया गया। इसमे धार्मिक एव आध्यात्मिक विषयो के अध्ययन आदि की विशिष्ट सुविधाएँ उपलब्ध कराना तो लक्ष्य था ही, इस हेतु एक समृद्ध पुस्तकालय की स्थापना तथा ज्ञान के विनिमय के लिये एक मासिक पत्रिका के प्रकाशन की योजना भी प्रस्तावित थी। श्री इन्दरचद बैद को ही
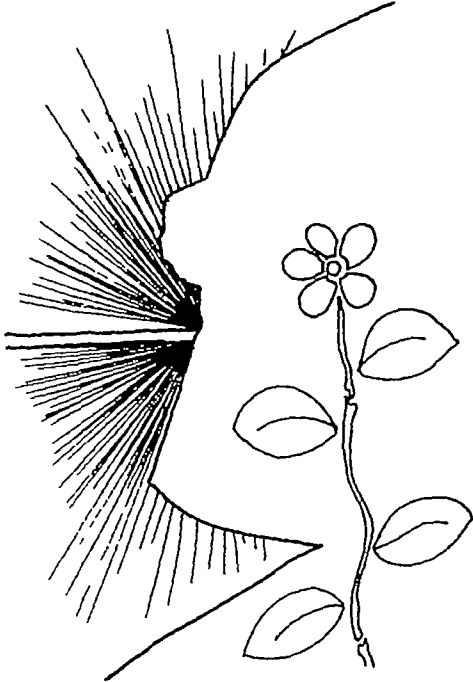
सर्व सम्मति से सस्थान के सचालन का कार्य सौपा गया जिनके निर्देशन मे विविध योजनाओ पर तुरत कार्य आरभ भी हो गया।

अगस्त 1993 मे देशनोक मे *'समता शिक्षा सेवा सस्थान'* की विधिवत स्थापना कर दी गई। इसी माह इस सस्थान को *श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर* द्वारा मान्यता भी प्रदान कर दी गई। इसके उपरान्त पुस्तकालय की स्थापना का कार्य आरभ किया गया और शीघ्र ही एक पुस्तकालय भी अस्तित्व मे आ गया।

पत्रिका के प्रकाशन की योजना अक्टूबर 1993 मे पूर्ण हुई जब श्री इन्दरचद बैद के सम्पादकत्व में *'समता'* शीर्षक के अतर्गत पत्रिका का प्रथम अक प्रकाशित हुआ। अक की सामग्री, प्रस्तुति तथा रीति-नीति से प्रभावित होकर ख्यातनामा लेखक एव धर्मशास्त्र के विद्वान इससे जुड़े और इसके मासिक अक नियमित रूप से प्रकाशित होने लगे। *'समता'* शीर्षक के अतर्गत कुछ अक प्रकाशित होने के बाद भारत सरकार के समाचार पत्रो के पजीयन विभाग के नियमो की पालना के कारण पत्रिका का नाम बदल कर *'समता सौरभ'* करना पड़ा साथ ही इसकी प्रकाशन अवधि मे परिवर्तन को अपेक्षित मानकर इसे त्रैमासिक पत्रिका के रूप में परिवर्तित कर दिया गया। त्रैमासिक पत्रिका के रूप में इसका जो सतत प्रकाशन प्रारभ हुआ था वह जारी है और यह विश्वास करने का पर्याप्त आधार है कि यह पत्रिका लगातार प्रगति की ओर अग्रसर रहेगी।

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के उच्चस्तरीय होने के कारण उसकी छवि एक शोध-पत्रिका के रूप मे उभरी है और पाठक एव विद्वान इसे इसी रूप म पहचानने लगे है। समय और अवसर की उपयुक्तता के अनुसार *समता सौरभ* पत्रिका के विशेषाक भी प्रकाशित किये गये जो अपनी गभीर सामग्री के कारण चर्चित भी हुए और सग्रहणीय भी बने। ऐसे कतिपय विशेषाक थे—*सस्कार क्रान्ति एव व्यसन मुक्ति विशेषाक* (1997), *समाज निर्माण विशेषाक* (1998), *शताब्दी विशेषाक* (1999) और आचार्य श्री नानेश के निर्वाण पर *'आचार्य श्री नानेश स्मृति निरतिशय नानेश विशेषाक'* (2000)। देश के प्रवुद्ध एव धार्मिक-दार्शनिक रुचि-सम्पन्न वर्ग मे पत्रिका की जो छवि बनी है वह इसके सम्पादकीय विभाग के गहन प्रयासा का ही परिणाम है जिस सुरक्षित रखने का प्रयास *समता शिक्षा सेवा सस्थान* सतत रूप से करता रहा है। सस्थान ने व्यसनमुक्ति, सस्कार निर्माण एव स्वय चिकित्सा से सबधित कुछ लघु पुस्तके भी प्रकाशित की है जो अपनी सामग्री के कारण पाठक वर्ग मे लोकप्रिय हुई हैं।

प्रस्तुत *'निरतिशय नानेश'* ग्रथ इसी *समता शिक्षा सेवा सस्थान* का एक महत्त्वाकाक्षी प्रकाशन है। यह इस दृष्टि से विशिष्ट है कि इसमे आचार्य श्री नानेश के जीवन एव प्रदेय के विविध पक्षों से सबधित ऐसी गहन सामग्री सकलित की गई है जिसे इसी ग्रथ हेतु विद्वान लेखकों को विशिष्ट विषय देकर तैयार कराया गया था। हमारे प्रकाशन विभाग ने आचार्य श्री नानेश के जीवन एव प्रदेय के विविध पक्षो से सबधित विषयों की जो विस्तृत सूची तैयार की थी उसके अनुरूप हमे पर्याप्त सामग्री प्राप्त भी हुई, तथापि विद्वानों ने अपनी रुचि के विषयो के अनुसार भी हमे लेख भेजे जिनका समुचित उपयोग किया गया है। इस प्रकार हमारा प्रयास युग की एक अनुपम विभूति के प्रदेय को उसकी सम्पूर्णता में सकलित कर प्रस्तुत कर देना था। हम अपने प्रयासों में कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका निर्णय तो प्रबुद्ध पाठक ही करेगे तथापि हम अपने प्रयासो से पूर्ण सतुष्ट हैं।

ग्रथ की सामग्री तथा उसके समायोजन से सबधित कतिपय तथ्य द्रष्टव्य हैं। सम्पूर्ण सामग्री का विभाजन पॉच खण्डो मे किया गया है। ये खण्ड हैं—*पावन स्तवन, नानेश निधि, नानेश नवनीत, नानेश निर्झर और नित्य नानेश।* इन खण्डों की सामग्री और उसकी प्रकृति पर किचित विस्तार से चर्चा अपेक्षित है।

'पावन स्तवन' खण्ड मे तीर्थकरो सहित आचार्य नानेश की वदना से सबधित काव्य रचनाओ को सकलित किया गया है। शास्त्रों के अनुसार पच परमेष्ठियों मे तृतीय पद पर विराजित आचार्य वदना का अधिकारी होता है। सघनायक होने के साथ वह प्रतिबोध, दीक्षा एव शास्त्र ज्ञान का प्रमुख प्रदाता भी

होता है। आठ सम्पदाओ से सम्पन्न, चार अनुयोगो के ज्ञाता तथा छत्तीस गुणो के धारक आचार्य की वन्दना को श्रावको का प्रथम कर्तव्य बताया गया है। आचार्य श्री नानेश ऐसे ही सिद्ध आचार्य थे अत यह स्वाभाविक ही था कि उनके स्तवन एव वदन हेतु विशाल श्रावक वर्ग अत्यत उत्साहपूर्वक सहयोग करता। ऐसा हुआ भी और हमने व्यापक समाज के विविध वर्गो से प्राप्त प्रभूत वन्दनाओ मे से चुन कर प्रतिनिधि रचनाओ को इस खण्ड मे स्थान दिया है। *नानेश निधि* खण्ड में नवम् आचार्य श्री रामलालजी म सा द्वारा अष्टम आचार्य श्री नानेश के प्रदेय से सबधित गभीर चिन्तन प्रधान सामग्री युग सत का युग प्रदेय शीर्षक के अतर्गत प्रस्तुत की गई है तथा *नानेश नवनीत* खण्ड में *एक सत अविचल अविकारी नाना नाम सुधारी* के अतर्गत आचार्य श्री नानेश की स्थविर प्रमुख मुनिज्ञान द्वारा विरचित जीवनगाथा को सम्मिलित किया गया है।

आचार्य नानेश ने अपने जीवन के 60 वर्ष साधुचर्या में व्यतीत किये थे। इस अवधि मे चतुर्विध सघ के ही नहीं अन्य समाजों के भी लाखो लोग उनके सम्पर्क मे आये। सभी के हृदय आचार्यश्री के प्रति असीम श्रद्धा एव समर्पण भाव से स्पदित थे तथा आचार्यश्री से सबधित मधुर स्मृतियाँ उनके मानस पटल पर अमिट रूप मे अकित हुई थीं। इन लोगो में से अनेक इन स्मृतियों को अभिव्यक्ति देने के लिए उत्सुक थे। ऐसे नानेश-भक्तों से प्राप्त सस्मरणो में से प्रतिनिधि सस्मरण सम्पादित कर *'नानेश निर्झर'* खण्ड म सग्रहित किये गये है।

ग्रथ का प्रमुख भाग है *'नित्य नानेश'* खण्ड जिसका प्रारभ एक भूमिकात्मक लेख *'साधुमार्ग आचार्य परम्परा और आचार्य नानेश'* से हुआ है। यह लेख साधुमार्ग की आचार्य परम्परा को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। अन्य लेखो मे आचार्य श्री नानेश के जीवन और प्रदेय से सबधित विस्तृत जानकारी विविध शीर्षकों के अतर्गत उपलब्ध कराई गई है और चूँकि इस खण्ड के लेखो के लिये विद्वानो को चुन कर विषय दिये गये थे, अत यह स्वाभाविक ही था कि आचार्यश्री के जीवन और प्रदेय से सबधित सभी विषयो का इनमें समावेश हो जाता। इस खण्ड से सबधित दो अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य भी हैं जिनकी ओर सकेत कर देना अपेक्षित है। प्रथम है *समाधि-मरण* से सबधित विशेष सामग्री का और द्वितीय है आचार्य श्री रामलालजी म सा के साथ एक विस्तृत साक्षात्कार का। इन दोनो के समावेश की आवश्यकता के कारणों पर विचार कर लेना भी उचित होगा।

आचार्य श्री नानेश ने जीवन के अतिम गौरवशाली लक्ष्य *समाधिमरण* को पूर्ण निष्ठा एव साधनापूर्वक प्राप्त किया था। यह एक ऐसी उपलब्धि थी जो विरल होती है यद्यपि जैन दर्शन इस अतिम पुरुषार्थ को बहुत महत्त्व देता है। आचार्य श्री नानेश ने पादोपगमन विधि का पालन करते हुए साधना की सिद्धि के जिस मार्ग का अनुगमन किया था वह शास्त्रो के अनुसार दह-त्याग की सर्वोत्तम विधि भी है। *समवयाग सूत्र* मे जिन 17 प्रकार की मरण विधियो का उल्लेख मिलता है उनमें पादोपगमन विधि सर्वोत्कृष्ट प्रकार की बताई गई है। इस विधि के अनुसार मृत्यु का वरण करने वाला अपने आपको पूर्णत अशरीरी समझ कर, अर्थात् शरीर के मोह से पूर्णत मुक्त होकर जिस स्थान और जिस आसन से यह विधि स्वीकार करता है उसे किसी भी स्थिति में नहीं छोड़ता है, न विचलित होता है और न ही चलायमान होता है। वह तो विषमतर पीड़ा एव कष्ट सहन करते हुए मृत्यु का वरण करता है। आचार्य श्री नानेश ने इसी विधि का पालन करते हुए मोक्ष मार्ग का अनुसरण किया। आचार्य श्री नानेश की इस परम उपलब्धि की महिमा को शास्त्रीय सदर्भ मे स्पष्ट करने की दृष्टि से ही समाधिमरण पर विशेष सामग्री अधिकारी विद्वानो से प्राप्त कर इस खण्ड मे सम्मिलित की गई है जो धर्मप्रेमी पाठको के लिये विशेष रूप से ज्ञानवर्द्धक होगी।

आचार्य श्री रामलालजी म सा के साथ साक्षात्कार का अपनी तरह से विशेष महत्त्व है। हमे ज्ञात है कि आचार्य श्री नानेश के जीवन और दर्शन से सबधित बहुत से ऐसे पक्ष हैं जो जिज्ञासुओ के चिन्तन का विषय रहे हैं और जिन से सबधित अधिकृत जानकारी अपेक्षित थी। ऐसी जानकारी के सर्वोत्तम स्रोत आचार्य श्री रामेश ही हो सकते थे क्योंकि साधु और युवाचार्य के रूपो मे वे ही आचार्य श्री नानेश के निकटतम रहे थे और इसलिये जितनी सम्पूर्णता में उन्होने आचार्यश्रीजी को समझा था, उतना और किसी के लिये सभव नहीं था। इसीलिये

अपने प्रतिनिधि के माध्यम से विविध स्थानो एव अवसरो पर आचार्य श्री रामलालजी म सा की उपलब्धता के अनुसार, विशिष्ट प्रश्नो द्वारा अपेक्षित जानकारी प्राप्त करन का प्रयास किया गया। उस प्राप्त जानकारी को सग्रहित एव सम्पादित कर *'साक्षात्कार'* शीर्षक के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है। हमे विश्वास है कि आचार्य श्री रामलालजी म सा के समाधान सभी पाठको के लिये समान रूप से लाभकारी हागे तथा आचार्य श्री नानेश क व्यक्तित्व एव चिन्तन को अधिक गहनता से समझने म सहायक हागे। इस साक्षात्कार का महत्त्व इसलिये भी है कि यह सम्पूर्ण चर्चा मे आचार्य श्री नानेश को ही केन्द्र म रखता है।

ग्रथ के अत मे ग्यारह परिशिष्टो के एक परिशिष्ट-खण्ड का भी समावेश किया गया है। इन परिशिष्टो की सामग्री आचार्य श्री नानेश के जीवन, व्यक्तित्व कृतित्व से सबधित तो है ही, उसमे उनके आचार्यत्व एव आचार्यत्वकाल से सबधित कतिपय ऐसे विशिष्ट तथ्यों का सकलन भी है जिनकी चर्चा केवल सदर्भो के रूप में ही ग्रथ मे हो सकी थी। हमे विश्वास है कि परिशिष्टों की यह योजना ग्रथ की उपयोगिता की वृद्धि मे सहायक होगी।

इस ग्रथ को हमने इसलिये भी एक उपलब्धि माना है क्योंकि इसका प्रकाशन एक सकल्प की पूर्ति भी है। *समता शिक्षा सेवा सस्थान* की स्थापना तत्कालीन आचार्य श्री नानेश के कतिपय आदर्शो की पूर्ति हेतु की गई थी। अत यह स्वाभाविक ही था कि आचार्य श्री नानेश का व्यक्तित्व एव चिन्तन इसकी गतिविधियो के केन्द्र में रहता। इसीलिये इसकी साहित्यिक गतिविधियो मे आचार्य श्री नानेश पर विशिष्ट सामग्री प्रकाशित करना इसकी नीति रही है। निश्चय ही उनके निर्वाण ने उनक भक्तो की भावनाओं को भीषण रूप से उद्वेलित किया। चितन-मनन के उन क्षणों म ही *समता सौरभ* के सम्पादक श्री इन्दरचद बैद को अव्यक्त रूप से प्रेरणा प्राप्त हुई और उन्हाने आचार्य श्री नानेश की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने हेतु एक महत्त्वाकाक्षी ग्रथ प्रकाशित करने का सकल्प ले लिया। इस सकल्प की पूर्ति हेतु प्रयास भी तुरत आरभ हो गये और इस प्रकार जो योजना बनी उसी की पूर्ति प्रस्तुत ग्रथ के रूप मे हुई है जो प्रकारान्तर से उस पावन सकल्प की पूर्ति भी है।

इस सकल्पपूर्ति में हमे जिन अनेक लोगो का आत्मीय सहयोग प्राप्त हुआ उनके हम हृदय से आभारी हैं। हम आभारी हैं उन विद्वान लेखको के जिन्होंने ग्रथ हेतु सुविचारित गभीर सामग्री भेज कर हमें उपकृत किया। इस प्रकार इस ग्रथ की जो कुछ भी अच्छाई है वह उनके सहयोग का ही परिणाम है, हमने तो उस सामग्री को सयोजित करने का ही कार्य किया है। इस सयोजन में साखला प्रिण्टर्स, बीकानेर के कलामर्मज्ञ स्वत्त्वाधिकारी श्री दीपचद साखला एव उनके कर्मचारियो का जो स्नेहपूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ उसके लिये हम उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते है। ऐसी ही कृतज्ञता हम कलाकार श्री रामकिशन 'अडिग' के प्रति भी व्यक्त करते है जिन्होने इस ग्रन्थ को नयनाभिराम सज्जा प्रदान करने का गुरुतर कार्य किया। हम उन सभी सुहृद जनो के प्रति भी आभार प्रकट करते है जिनका व्यक्त अथवा अव्यक्त सहयोग हमे किसी भी रूप मे प्राप्त हुआ जिसक परिणामस्वरूप आचार्य श्री नानेश की यशोगाथा हम प्रस्तुत कर सके। जहाँ तक हमारा सबध है, हमे भी *'बाटनवारे'* का सुख और श्रेय प्राप्त हो गया है जिसके सबध में कविवर रहीम ने कहा है—*'रहिमन यों सुख होत है उपकारी क सग। बाटनवारे के लगे ज्यो मेहदी को रग।'* यही हमारा सतोष है और यही हमारा अभीप्सित भी था।

समता शिक्षा सेवा सस्थान,
देशनोक (बीकानेर)

अनुक्रम

नानेश निधि

नानेश नवनीत

निर्झर नानेश

नित्य नानेश

परिशिष्ट

॥ पावन स्तवन ॥

तीर्थकर वंदना

कल्लाण-कद पढम जिणिद,
सति तओ नेमिजिण मुणिद।
पास पयास सुगुणिक्क-ठाण,
भत्तीइ वदे सिरि वद्धमाण।।

कल्याण के कारणरूप प्रथम तीर्थकर श्री ऋषभदेव को, श्री शातिनाथ को, तदनन्तर मुनियो मे श्रेष्ठ ऐसे श्री नेमिनाथ को, प्रकाशस्वरूप एव सर्वगुणो के स्थानरूप श्री पार्श्वनाथ को तथा श्री महावीर स्वामी को मै भक्तिपूर्वक वन्दन करता हूँ।
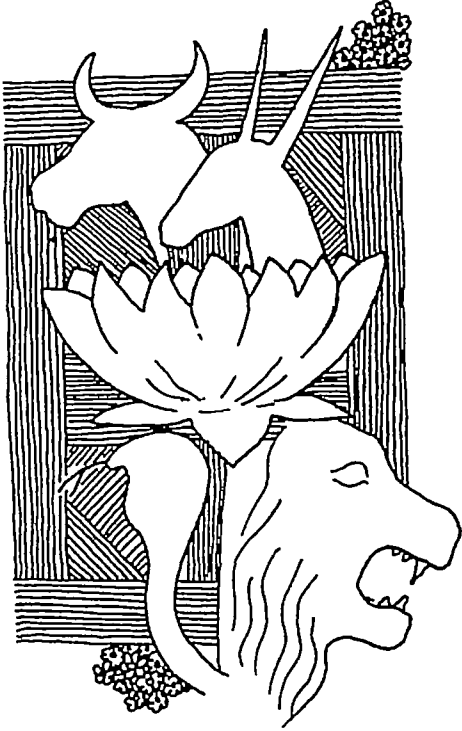
प ज्ञानदत्त पाण्डेय

नवगुरुवन्दना

(शार्दूलविक्रीड़ितम्)

सौधर्मागुरुमार्गपथनिरते हुक्मो हि चाद्यो गुरु.।
द्वैतीय शिवविश्रुत स मुनि वै तार्तीयनाम्नोदय ।।

तुर्य चौथमलस्तदा मुनिषु श्री लालो गुरु पचम।
आचार्यश्च जवाहर स खलु वैख्यातो हि षष्ठो गुरु ।।

आचार्य स च सप्तमो हि मुनिषु ख्यातो गणेशो गुरु ।
नानालाल गुरु सदा विजयते नानेश नामापर ।।

विख्यात समताविभूतिनृवर ख्यातोऽष्टमोवैगुरु ।
रामेश शिरसा नुमश्च नवम ह्याचार्यवर्य गुरुम् ।।

प ज्ञानदत्त पाण्डेय

। नानेश स्तवनम्

प्रान्ते विशाल ललिते च धुरीण पूज्ये,
धीरै गभीरबलशालिजनप्रदे च।
यस्मिन् सदा भुवनपालविराजमाना ,
गर्जन्ति सिहमिव साहसिका प्रवीणा ।।1।।

जो प्रान्त विशाल, सुन्दर तथा अग्रणी और आदरणीय है, जहाँ धीर-गम्भीर और बलशाली लोग उत्पन्न होते हैं तथा जहाँ राजा लोग साहसी, प्रवीण तथा सिह के समान निर्भीक रहते हैं।।1।।

राणाप्रतापमिव यत्र परतपाना,
सत्साहसेन जनरक्षणतत्पराणाम्।
आजीवन हि दधता ब्रतपालकाना,
नित्य जयोऽस्तु करुणार्द्र सुचेतनानाम्।।2।।

जहाँ राणा प्रताप जैसे शत्रुओं को मार भगाने वाले तथा सच्चे साहस से जनता की रक्षा करने वाले और आजीवन प्रजापालक के व्रत को धारण करने वाले एव करुणा से भरे हुए सुन्दर मन (अन्त करण) वाले जनों की निरन्तर जय-जयकार (विजय) होवे।।2।।

रम्या सुरम्यनगरी मनुजाधिपस्य,
नाम्ना पुरेण स तु चोदयराजधानी।
तत्राभवन्नरवरो हि गुरुर्गणेश ,
आचार्यवर्य जनता सकलस्य मान्य ।।3।।

सुन्दर, मनोहर नगरी जो मेवाड़ नरेश की राजधानी है, जिसका नाम उदयपुर है, वहाँ मनुष्यो मे श्रेष्ठ गुरु गणेश हुए, जो जैनाचार्य बनकर सम्पूर्ण जनता के परम आदरणीय हुए।।3।।
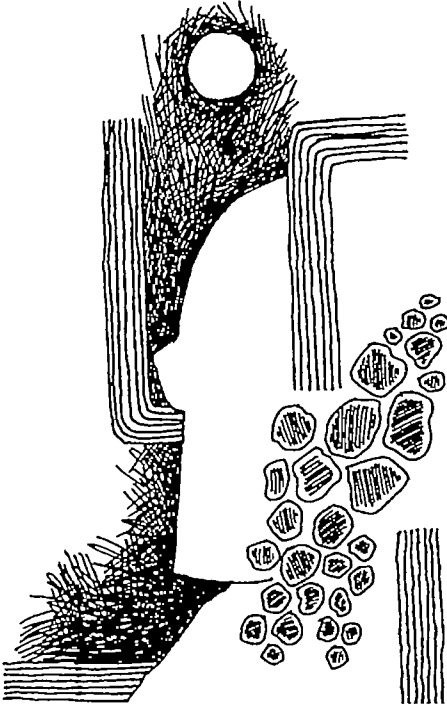
तस्या धराभुविमनोरमग्रामदाता,
आस्ते हि यत्र सुषमा प्रकृतेर्सुरम्या।
शृगारमातृ तनयो जनिरत्नतुल्य,
नाना क्रिया हि बहु तस्य जनस्य नाम्न ।।4।।

उसी (मेवाड़ की पवित्र) धरती पर अत्यन्त ही मनोहर 'दाता' नाम द... है जिसकी प्राकृतिक सुषमा विलक्षण है। वहाँ शृगार नाम की एक माता ने रत्न के समान एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम भी 'नाना' (लाल) था और वह सभी क्रियाओ मे निपुण था।।4।।

सौन्दर्यतेजवपुषाऽपि गभीरधीर,
आस्ते जितेन्द्रिय वपु न विकारभाज।
सप्राप्य य नरतनु गमयन्ति मूढा,
नाह भजामि खलु नश्वरता विकारम्।।5।।

सौन्दर्य और तेज से युक्त होने पर भी गभीर और धीर थे तथा जितेन्द्रिय और विकार रहित थे। उनका मानना था कि जो लोग मनुष्य-शरीर प्राप्त करके उसे व्यर्थ बिताते है वे मूर्ख हैं। मैं ससार की नश्वरता (सुख) को कभी नहीं अपनाऊँगा।।5।।

श्रुत्वा वचासि ननु षष्ठगतो कुचार,
दु खाय वै स भविता ह्यनगार वाण्या।
विशाब्दमात्रभवजीवनमानवस्य,
हस्तप्रमाण भविता पशु दु खभाज ।।6।।

एक अनगार से छठे आरे का सब वृत्तान्त सुनकर दु खमय ससार से मुझे शान्ति कैसे मिलेगी, इस पर विचार करने लगे, क्योकि छठे आरे में मनुष्य की आयु बीस वर्ष तथा शरीर एक हाथ का और जीवन पशुतुल्य होगा।।6।।

सप्राप्य जीवननरस्य महर्घताया,
आत्मोन्नति न कुरुते य भवाब्धिबद्ध।
तान्प्रेरयामि ननु चात्मसुखाय भव्यान्,
मुक्तौ ममापि गमन ह्यनवद्यकार्यम्।।7।।

बहुमूल्य मानव जीवन को प्राप्त करके भी जो ससार मे ही बँधा रहता है और अपनी आत्मा की उन्नति (विकास) नहीं करता है ऐसे भव्यजनो को आत्म-सुख प्राप्त करने के लिए प्रेरित करूँगा तथा स्वय भी मुक्ति प्राप्त करने के मार्ग पर गमन करूँगा, क्योंकि यही निर्दोष मार्ग है।।7।।

ससारवासरहितस्य न चास्त्यसाध्य,
निर्लेप तिष्ठति जलेरुहवन्सधीर।
'नाना' विचारमनस परिवर्तन च,
विद्या सुपात्रमिव रागहत मनोऽभूत।।8।।

सासारिकता से अनासक्त जन के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है क्योकि ऐसा पुरुष धीर और कमल पत्र के समान निर्लेप होता है, 'नाना' के भी मानसिक विचारों में परिवर्तन आ गया तथा सुपात्र को दी हुई विद्या के समान उनका मन भी राग रहित हो गया।।8।।

राग विमुच्य स विरागमय वभौ च,
दु खार्तिह हि सतत ह्यनगारवान्स।
आत्मोन्नतिर्हि शुचिभावविना न शक्या,
ध्यान विना न भवितेति विकास बुद्धि ।।9।।

वे राग त्यागकर विरागी तथा अनगारी होकर निरन्तर दूसरों क दु ख को दूर करने में लग गये क्योकि आत्मा की उन्नति शुद्धभाव के बिना नहीं होती और ध्यान के बिना बुद्धि का भी विकास नहीं होता है।।9।।

पादौ हि यस्य गमनाय पुरस्कृता स्यु,
तस्यात्मचिन्तनसुखेऽमृतधारवर्ष ।
स्वस्मिन् रमेऽपि खलु सयमसाधकाना,
बाछा भवन्ति सतत गुरुमेलनाय।।10।।

जिसके पैर जीवन की उन्नति के मार्ग पर चलने को तत्पर हो, ऐसे व्यक्ति के आत्मचिन्तन में अमृत की धारा बरसती है। इस प्रकार के सयम और साधना मे लीन जन अपनी आत्मा में निरन्तर रमण करते हैं तथा उनमें सद्गुरु प्राप्त करने की उत्कठा हमेशा बनी रहती है।।10।।

अन्वेष्यमाण पुरुषस्य सदेप्सिताप्ति,
साध्य हि साधनविहीनजनस्य लक्ष्यम्।
गुर्वर्थव्याकुलमति स जगाम कोटा,
शास्त्रज्ञ वन्दनयुताय गणेशनाम्ने।।11।।

खोजी व्यक्ति को अभिलषित मिल ही जाता है क्योकि साधनविहीन जन का साध्य (अभिलषित) ही लक्ष्य होता है, अत गुरु दर्शनों के लिए व्याकुल मन वाले 'नाना' (नानेश) कोटा गये, जहाँ सकल शास्त्रों के मर्मज्ञ, ज्ञाता एव वन्दनीय गणेश नाम के गुरुश्रेष्ठ विराजमान थे।।11।।

दृष्ट्वागणेशमुनिराजवपु सतेज,
नि ष्यन्दमानवपुष सतत हि तेज ।
शान्तिप्रद नियमसयमवान्स तेज
यश्चाद्वितीयमहिमा न तु कोऽपि तुल्य ।।12।।

मुनिराज गणेश ने तेजस्वी शरीर वाले 'नाना' को देखा, जिनके शरीर से निरन्तर तेज निकल रहा था। वह तेज नियम और सयम का था तथा शान्ति प्रदान करने वाला था, जिसकी महिमा अद्वितीय थी। उसके तुल्य दूसरा कोई भी तेज नहीं था।।12।।

शिष्योस्म्यह गुरुवरस्य च तारकस्य,
दत्वाशिष जिनगुरो दद ध्यान शिक्षाम्।
शिष्य न वाछति गुरु खलु नि स्पृहो य,
लग्ना च ते हि सतत खलु साधनायाम्।।13।।

भव को पार कराने वाले गुरुश्रेष्ठ का मैं शिष्य हूँ। हे जिनेन्द्र, मुझे आशीष देकर ध्यान की शिक्षा (विधि) दो। नि स्पृह (वीतराग) गुरु शिष्यो की मडली तैयार करने मे अभिलाषा नहीं रखता है, वह तो निरन्तर अपनी साधना मे ही लगा रहता है।।13।।

योगीश्वरेण ननु नाम गणेश्वरेण,
सम्यग्वचो निगदित ह्यनगारहेतो ।
धारासितीक्ष्णमिव साधुपथो न सह्य,
ध्यानस्य चात्र महिमा गुरुगम्यबोध ।।14।।

अनगार बनने की भावना से कही हुई 'नाना' की बात को ठीक से सुनकर योगिराज गुरु गणेश ने कहा कि साधुजीवन का मार्ग कृपाण की तीक्ष्णधार के समान है तथा उसके परिषह अत्यन्त कठिन और असह्य हैं तथा ध्यान के महत्त्व को बिना गुरु के नहीं जाना जा सकता है।।14।।

श्रुत्वाविचार गणपस्य पुनर्विचिन्त,
आत्मावबोधजनन न गुरुर्विना वै।
नात्रास्ति शिष्यजनलोभगुरुर्वरिण्ये,
सत्य स साधकवर विदुषा वरेण्य ।।15।।

श्री गणेशाचार्य के विचार को सुनकर 'नाना' चिन्ता मे पड़ गये, क्योकि आत्मज्ञान गुरु के बिना नहीं हो सकता। इस गुरु में शिष्य करने का थोड़ा भी लोभ नहीं है क्योंकि ये विद्वानो में श्रेष्ठ तथा महान् साधक हैं।।15।।

योग्य गुरु समभिप्राप्य मुदा जहर्ष,
ज्ञानेन ध्यानरमण कुरु चात्मशुद्धिम्।
कार्य विशुद्धिकरण खलु जीवनस्य,
ससारतारकगुरुर्हि गणेशवर्य ।।16।।

याग्य गुरु को प्राप्त करके 'नाना' बहुत प्रसन्न हुए तथा अपने मन को ज्ञान प्राप्त करते हुए ध्यान में रमण करके आत्मशुद्धि की प्रेरणा दी, क्योंकि जीवन को शुद्ध करना तथा निखारना प्रमुख कार्य है। ससार से तारनहार गुरु गणेश अब मुझे मिल गये हैं।।16।।

कार्षापणेव निकषोपलशुद्धचित्त ,
स्वर्णप्रभामिव विभाति गुरोर्हि तेज ।
सवीक्षयन्ति पुरुषा अपि श्रावकाख्या,
जाम्बूनद खलु विभाति तथाहि 'नाना'।।17।।

श्री गुरुगणेश रूपी कसौटी पर खरे उतर कर सोने के समान शुद्ध (निष्कलक), दोषरहित चित्त वाले 'नाना' सुवर्ण की कान्ति के समान चमकने लगे, मानो उनमें उनके गुरु का ही तेज चमक रहा हो। श्रावक लोगो की दृष्टि इन पर पड़ने लगी, क्योंकि दिनोदिन 'नाना' खरे सोने जैसे दीखने लगे।।17।।

आज्ञा विना न शुशुभे स्वजने विरक्त ,
आज्ञा यदा मिलितवान् शुशुभे कुमार ।
मेवाड़प्रान्तरुरुचे हि कपासनश्च,
दीक्षा हि यत्र समभूज्जिन चाष्टमस्य।।18।।

दीक्षा की आज्ञा न मिलने पर खिन्न (दु खी) हो गये, किन्तु आज्ञा मिलते ही कामना से रहित 'नाना' पुन चमक उठे तथा पूरा मेवाड़ प्रान्त और कपासन गॉव खिल उठा जहाँ आठवें जैनाचार्य 'नाना' की दीक्षा हुई।।18।।

शिष्य तदा हि गुरवे मिलित सुयोग्य,
साध्य च साधन सुसाधकसारवस्तु,
सलोडन च कृतवान् हि जिनागमस्य।।19।।

गुरु को योग्य शिष्य मिल गया क्योकि वास्तव मे श्रेष्ठ साधन और साधक ही साध्य होता है। योग्य स्थान प्राप्त करके तथा शकारहित होकर 'नाना' ने समस्त आगमो का ज्ञान किया।।19।।

न्यायादिभाष्यसहित खलु चूर्णिकाख्य,
सम्यक् प्रपठ्य जिनशासनगूढ़ तत्वम्।
शब्दागमेऽपि कृतवान् बहुतत्वबोध,
भाषासु देवरसनासु च गूढ ज्ञानम्।।20।।

न्याय भाष्य तथा चूर्णिका टीकाओ एव जैनागम ग्रन्थो के गूढ तत्वो का सम्यक् रूप से अध्ययन किया। साथ ही व्याकरण शास्त्र को पढ़ा और अन्य भाषाओ का भी पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया।।20।।

दृष्ट्वा हि शिष्यविनय गुरवो हि तुष्टा ,
योग्य विचारयति योग्यतम हि प्राप्य।
आराधने हि खलु रत्नमयत्रयस्य,
सम्यग्विहस्य स तु वै सहते च कष्टान्।।21।।

योग्य शिष्य को पाकर गुरुदेव सतुष्ट हो गये, क्योकि योग्य को प्राप्त कर के योग्य ही विचार किया जाता है। गुरु के निर्देश में 'नाना' हँसते-हँसते सभी कष्टो को सह करके रत्नत्रय की आराधना मे लग गये।।21।।

भूत्वाकुलालमिव सर्जनमृत्तिकाख्य,
निर्मापणे स खलु जीवनभव्यताया ।
सम्यक् सुशोभ ननु ज्ञान विचिन्तनेन,
बाधा विमोच्य स हि चात्मसुख चकार।।22।।

जिस प्रकार कुलाल (कुम्हार) मिट्टी को जो चाहे आकार दे देता है उसी प्रकार 'नाना' ने भी अपने जीवन को भव्य बनाने के लिए अपने को मिट्टी के समान (अकिचन, मुलायम, अभिमानरहित) बना लिया तथा दिन-रात ज्ञान चिन्तन से अपनी शोभा को बढा लिया और सभी बाधाओं को दूर करके आत्मसुख प्राप्त किया।।22।।

कृत्वा प्रशसितगुरो खलु वै सपर्या,
तस्मिन्नुवास स हि चोदयनाम पुर्याम्।
यत्रास्ति वै गुरुगणेश गुरुर्निवास ,
दर्शार्थिभि सुललित हि भुव तदीयम्।।23।।

प्रशसनीय गुरु की सेवा करके 'नाना' ने उदयपुर में निवास किया, जहाँ गुरु गणेश ने स्थिरवास (निवास) कर रखा था। वहाँ की धरती दर्शनार्थियो से अति सुन्दर लग रही थी।।23।।

भाव्य भविष्यति हि कि खलु सघचिन्ता,
दृष्ट्वा गणेशगुरुवर्य तदीय शकाम्।
नानेश शिष्यसुधिय खलु सदिदेश,
सघस्य चोन्नतिरय बहु सकरिष्यति।।24।।

भविष्य में क्या होगा, इस तरह की सघ की चिन्ता को देख कर, उनकी शका को मिटाने के लिए गुरु गणेश ने योग्य शिष्य और विद्वान् तथा बुद्धिमान् दयालु 'नाना' की तरफ सकेत किया तथा कहा कि यह सघ की बहुत उन्नति करेगा।।24।।

एकोनविशतिगते हि सहस्रनेत्रे,
मासे हि चाश्विन सिते द्वितीये च तिथ्याम्।
गर्जन्ति मेघ निवहा जगती सुरम्या,
नानेशवर्य गुरुप्राप्य चमत्कृताभूत।।25।।

दो हजार उन्नीस सम्वत् मे तथा आश्विन शुक्ल मे द्वितीया तिथि को मेघो से घिरे हुए आसमान के कारण सुन्दर लगने वाली धरती दीक्षा सम्पन्न 'नाना' को पाकर धन्य हो गई।।25।।

पश्चाद्यथा च जगती शुशुभे च यूना,
कृष्णे च माघतिथि युग्ममये सुपुण्ये।
आचार्यवर्यपदवीं समवाप्य 'नाना',
स्वीय प्रभाभिरिव यस्तिमिर जहास।।26।।

दीक्षा सम्पन्न 'नाना' को पाकर यह धरती बहुत ही सुशोभित हुई। यही 'नाना' आगे चलकर माघ मास के कृष्ण पक्ष की द्वितीया तिथि को आचार्य पद को प्राप्त करके अपने तेज से भगवान् सूर्य के समान ससार के पाप रूपी अन्धकार को नष्ट करने लगे।।26।।

विश्वस्यशान्तकरण हि कथ समत्व,
वैषम्य दूरकरण च कथ भवेयु ।
भाव हि तस्य मनस खलु सतुतोद,
भाव्य विना न समता जगत प्रतिष्ठा।।27।।

विश्व को शान्ति कैसे मिलेगी तथा सभी में समता भाव कैसे आयेगा एव विषमता को दूर कैसे किया जा सकेगा, यह सब मन के भाव दु खी करने लगे, क्योंकि समता के बिना कभी भी इस जगत् की स्थिति सभव नहीं होगी।।27।।

सिद्धान्त एव समता खलु विश्व पुष्ट्यै,
अन्तर्भवस्तु परमार्गविदा मनीषा।
सिद्धान्तदर्शनमिद खलु जीवनाख्य,
आत्माख्यदर्शनमिद परमात्मसाध्यम्।।28।।

समता का सिद्धान्त ही विश्व का पोषण करेगा, अन्य विद्वानो का मत इसी मे समाया हुआ है। सिद्धान्तदर्शन और जीवनदर्शन ही जीवन के आधार हैं तथा आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन ही मुक्ति (परमात्मसाधन) के आधार हैं।।28।।

शका न वे किमपि तत्र दुरूहमार्गे,
दृष्टौ मन वपुषि चैव समत्वबुद्धि।
सभावयन् सुरगर्वी सफलश्रमेण,
सस्कार सस्करण सस्कृतिमापनोति।।29।।

'नाना' को इस दुरूह मार्ग पर चलने में तनिक भी शका नहीं हुई क्योकि उनके मन, दृष्टि और शरीर म भी समता भाव भर गया था। इसलिए 'नाना' देवभाषा और देवसस्कृति का अपने सफलपरिश्रम से अपनाते हुए लोगो के भी सस्कार का सस्करण (मार्जन-सशोधन) करते हुए सत्सस्कृति का निरन्तर विस्तार करने लगे।।29।।

उद्धारयन् हि खलु भव्यजनाननेकान्,
दीक्षा दिदेश खलु सार्धशतत्रय वै।
आचार्यवर्षपदवीं खलु त्रिशषट्क,
शान्त्यै गृहस्थजनमार्गप्रदो बभूव।।30।।

अनेक भव्य जनो का उद्धार करते हुए साढ़े तीन सौ से भी अधिक जनो को शुभ भागवती दीक्षा प्रदान की तथा छत्तीस (36) वर्ष तक आचार्य पद को सुशोभित किया और गृहस्थो को शान्ति'का मार्ग दिखाया।।30।।

सस्कार कार्यकरणाय हि मालवाना,
गत्वा हि तत्र मुनिपुगव ता जगाम।
तत्र स्थितान् हि पतितान् च समुद्धरिष्यन्,
तान् धर्मपाल करणेन बभौ स्वय स।।31।।

मालववासियो को सुसस्कारित करने के लिए मुनिश्रेष्ठ आचार्य 'नाना' वहाँ गये और वहाँ उन पतित जनों का उद्धार किया एव उनको धर्मपाल बनाया और स्वय भी धर्मपाल प्रतिबोधक बन गये।।31।।

कि जीवन हि विषये परिपृच्छमाणे,
सम्यग् ददर्शसमता खलु मार्गश्रेष्ठम्।
'नाना' हि बोधवचनेन समानवापु,
सन्दर्शयन् स अतुला ननु चात्मभावम्।।32।।

जीवन क्या है यह प्रश्न पूछने पर, इसका उत्तर आचार्य 'नाना' ने समता के श्रेष्ठ मार्ग मे ही देखा। इस प्रकार 'नाना' ने ज्ञानमय (बोध) वचनों से सबको प्राप्त कर लिया अर्थात् सबके प्रिय हो गये और 'नाना' ने सबके सामने अपने अतुलनीय आत्मा के भाव को प्रस्तुत किया।।32।।

अन्त प्रवेशसुखयन् स च योगिराज,
नव्यान् रहस्यमय बाधसुखान् ददर्श।
ध्यानस्य चापि स परा च विधा जगाम,
प्राप्नोति चात्मशमन हि समीक्षणेन।।33।।

योगियो मे श्रेष्ठ 'नाना' ने विलक्षण आत्मसुख का अनुभव करते हुए नये नये रहस्यमय बोध सुखों (आत्मा की अनुभूतियों) को देखा (अनुभव किया)। ध्यान की भी एक नई विलक्षण विधा का आविष्कार किया तथा उस विलक्षण समीक्षण ध्यान से आत्मशान्ति को प्राप्त किया।।33।।

मेवाड़ मालव तथा खलु मारवाड़े,
सौराष्ट्र गुर्जर गते च कृत प्रचारे।
विस्तारयन् हि गुरु गौरवता दिगन्ते,
मोहस्य बन्धनगतो न कदापि 'नाना'।।34।।

मेवाड़, मालवा, मारवाड़, सौराष्ट्र तथा गुजरात मे 'नाना' ने गुरु के यश का प्रसार किया। वह यश दिशाओं के अन्त तक फैल गया किन्तु इतना यश बढ़ने पर भी 'नाना' कभी भी मोह (सासारिक) बन्धन मे नहीं पड़े।।34।।

सदीप्यमान जिनशासनखेचरेषु,
सदीप्यते हि सुषमा खलु चेतनानाम्।
वाच प्रमाणयति य जिन पचमस्य,
जैनाष्टमो बहु तनिष्यति साधुमार्गम्।।35।।

जिनशासन का प्रभाव आकाश में तथा पशु-पक्षियो में भी हुआ, इससे जीवो की शोभा और भी अधिक होने लगी। वास्तव मे 'नाना' ने पॉचवें आचार्य की यह भविष्यवाणी सफल बना दी कि आठवॉं आचार्य साधुमार्ग का बहुत विस्तार करेगा।।35।।

पाटे जिनेन्द्रपदवीगतचाष्टमोऽय,
सम्यग् विभावयति यो ह्यनिश जिनेशम्।
शास्तापि शासिततनुश्च बबर्ध सघ,
ज्ञानेन सेवित गुरुर्हि दिव जगाम।।36।।

जैनाचार्य के आठवे आचार्य पद (पाट) को अलकृत करते हुए 'नाना' निरन्तर प्रभु के ध्यान में लगे रहते थे। वे जिनशासक होते हुए भी स्वय पर भी शासन करते थे। इस प्रकार आचार्य 'नाना' गुरु ने 'साधुमार्गी जैन सघ' का प्रभूत विस्तार किया और (अन्त मे) ज्ञान (मुनि) के द्वारा सेवित होकर स्वर्गलोक को प्रस्थान कर गये।।36।।

डॉ उदयचन्द्र जैन
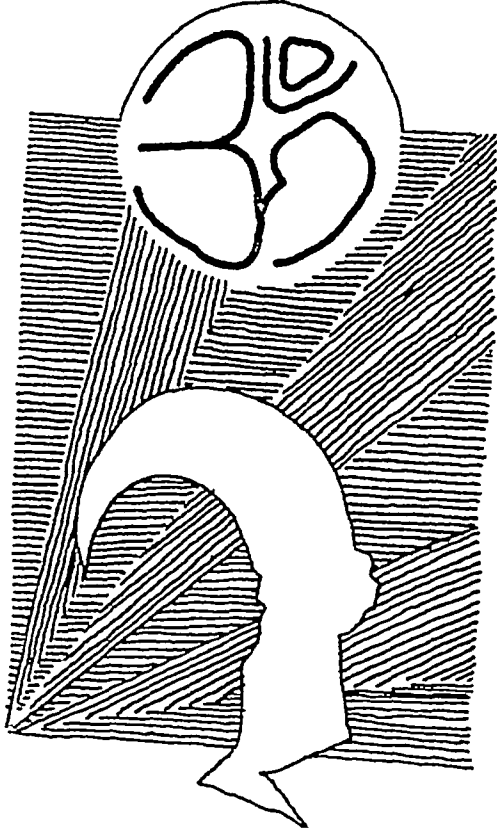
णाणेस तुज्झं किं दामि

भो समत्तजोगी विमुत्तराजरोगी
भव्वकल्लाणण तुम
सव्वहिय हियकर
जोग रूप धारिणो
समिया विहूइ आइरियो
णाणेस,
तुज्झ कि दामि
राग अणुगामि, दोस कुणमामि
ममत्त-मोह जुत्तमणो मे
वीरपह अणुगामिणो
इच्छेमि सुय इच्छमो
धम्म-दसण-मग्गणो
णाणसिधु गहीरण
धीरधम्म-सम्मणो
वदेमि सोगमक्त, मुत्तो
छेमि णदणदणो।
मोहधकार णासण
गमि मे गच्छामि
स,
ुज्झ कि दामि।
ससार-रण्णाहिगहि
विसयासक्त सव्वदा
सरेमि कि सरेमि कि
समत्तधीर-अप्पणो
देसण लहिऊण ह
करेमि सम्म-कम्मण
णमेमि भो णमामि
णाणेस,
तुज्झ कि दामि।

साध्वी विद्यावती

आचार्य श्री नानेश को प्रणामाञ्जलि

(लय-नाराच-छन्दमय)

श्री हुक्मसघ शिष्टक, गुरु गणेश शिष्यक,
सुशोभ पाट अष्टक, प्रणौमि राम इष्टक।।1।।

शृगार-मोडी नन्दन, सुग्राम दाता मण्डन,
मेवाड़ भूमि चन्दन, करोमि नित्य वन्दन।।2।।

महाव्रतानुयायिण, महापथानुयायिण,
क्षमा सुधानुपायिण, प्रणौमि नाना नायिण।।3।।

सुशास्त्र ज्ञान वायक, सुदिव्य दीक्षा दायक,
जिनेन्द्रता प्रदायक, प्रणौमि सघ नायक।।4।।

सुसाम्य भाव शोधक, समीक्षण प्रबोधक,
सरागता निरोधक, प्रणौमि वीर जोधक।।5।।

सुशान्ति सर्वकारक, कुभ्रान्ति सर्वहारक,
सुधर्म सर्वधारक, प्रणौमि पूज्य तारक।।6।।

पवित्र पुण्य सर्जक, पवित्र पुण्य अर्जक,
पवित्र पुण्य भ्राजक, प्रणौमि नाना राजक।।7।।

समत्व भाव सारक, सुभव्य प्राणी तारक,
सुसम्पदाष्ट धारक, प्रणौमि सुविचारिक।।8।।

महेन्द्र वृन्द वन्दित, महागुणे सुमण्डित,
महासुधा निष्यन्दित, प्रणौमि भव्य नन्दित।।9।।

श्रीधर्मपालन कृत, अधर्म पालन दृतम्
सुशिष्य वृन्दनायुत, प्रणौमि पुण्यता भृतम्।।10।।

रटामि त्व सदैवहि, भजामि त्व सदैवहि
नमामि त्व सदैवहि, प्रणौमि त्व सदैवहि।।11।।

प्रणौमि नाना मत्र मे, प्रणौमि नाना तत्र मे
प्रणौमि नाना यन्त्र मे, प्रणौमि नाना जत्र मे।।12।।

प्रदेहि देव बुद्धि मा, प्रदेही देव शुद्धि मा
प्रदेहि देव ऋद्धि मा, प्रदहि देव सिद्धि मा।।13।।

।।दोहा।।

उपकारी षटकाय के, तीन लोक के नाथ।
विद्या वर दीजे विमल, रखिये हम पर हाथ।।

मुनि वीरेन्द्र ❑ मुनि विनय

आदर्श भाव भरणे मधुमास दिव्यम्

(छद–वसत तिलकम्)

प्रज्ञाविशिष्ट विनयादिक रूप भव्य,
आदर्श भाव भरणे मधुमास दिव्य,
निर्मुक्ति धाम धनदायक पूज्यराज,
नित्य नमामि गुरुवर्य सुपाद पद्मम्।।1।।

सबोध भव्य समतामय युक्तिपूर्ण,
सध्यान शुक्ल भृत साधन साध्य रूप,
वात्सल्य दायक विशिष्ट तपो प्रधान,
नित्य नमामि गुरुवर्य सुपाद पद्मम्।।2।।

नैर्मल्य रूप वपुषा, गुणशील साधु,
हुक्मादि गच्छ शिवदायक शान्त दान्त,
ससाधना प्रखर रूप गुणज्ञ विज्ञम्,
नित्य नमामि गुरुवर्य सुपाद पद्मम्।।3।।

पीयूष विशेष सुवर्षण रूप देव,
द्वन्द्वादि भाव परिहारक बोध नाथ,
कारुण्यपूर्ण धृतिधारक कान्ति देह,
नित्य नमामि गुरुवर्य सुपाद पद्मम्।।4।।

सम्यक् बोध प्रणेतार
हुक्म गच्छ सुनायकम्,
द्वन्द्व रूप विजेतार
नानेश वन्दते मुदा

इन्दरचद बेद
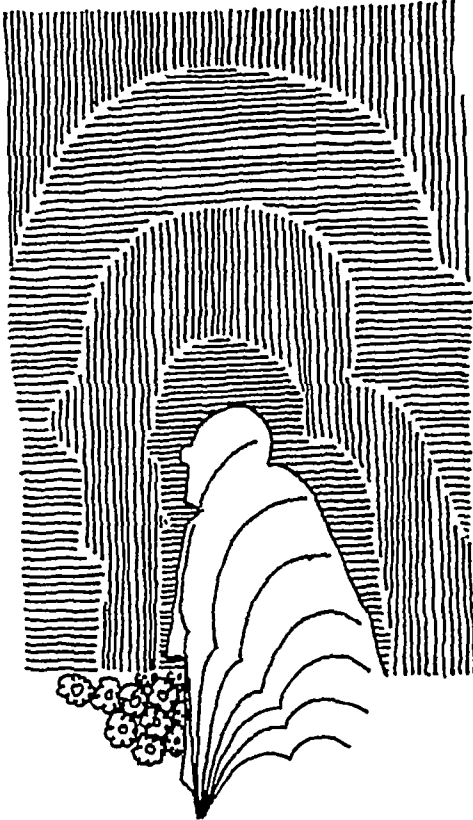
श्री नानेश स्तवन

ओ मेरे आराध्यदेव!
मेरे आत्मधन!
जिनकी रही कृपा अशेष
ऐसे मेरे प्रभु नानेश!
तुम्हारे चरणो मे
श्रद्धायुक्त नमन।

कैसे माने मृत्यु को अतिम सत्य?
तुमने बताया
वह तो प्रारभ है
उस अनत जीवन का
जो शाश्वत है।
तभी तो दीपक का अवसान
बनता है सूर्योदय का आह्वान।
एक सीमित प्रकाश का
अनत प्रकाश मे समाहार।
ससीम का असीम में विस्तार।
यही तो तुमने सिखाया था।

अकिचन मुमुक्षु बना,
मुमुक्षु बना धर्माचार्य
और धर्माचार्य बना सिद्ध
निर्मल बुद्धि का धाम।
तीन मुक्ति से बना अगरक्षक,
दर्शन, ज्ञान, चरित्र के
पहन आभूषण,
अट्ठारह हजार शील का कर असन
समता के रथ पर हो आरूढ़,
सयम के अश्वों की वल्गा थाम
किया जिस दिशा मे प्रयाण
वह थी वीतरागता की दिशा,
'महाजनो येन गत स पथा',
तीर्थकरों की राह,
दिव्य जीवन की चाह,
जिस पथ पर ले गई
उस पर छोड़े

समीक्षण साधना के वे पदचिह्न
जो समय की सिकता पर
अमिट रूप से अकित हैं,
अब पथ है आलोकित
दिशा निर्देशित,
तुम्हारी दिव्य देशना से प्रेरित
शिष्य समुदाय,
कैसे भूलेगा तुम्हारा प्रदेय ?
कलिमल-हारी,
मगलकारी,
जन सुखकारी,
सच्चिदानद रूप
सतो के सत
श्री नानेश!

कैसे कहूँ तुम क्या थे—
पतितपावनी गग-धारा थे,
जो अवगाहा,
पावन हुआ,
दूर हुई अशुचि
कट गये पाप,

तुम स्पर्शमणि थे,
जो सम्पर्क मे आया,
बन गया कचन,
मिट गया कल्मष,
चमका तन, मन और जीवन।

तुम कल्पतरु थे,
तुम्हारी दिव्य छाँह में बैठ कर,
जो चाहा, सो पाया,
निज को सफल बनाया।

तुम थे अवढर दानी,
निस्सग भाव से दिया,
उसे भी, जो पात्र था,
उसे भी, जो नहीं था।

गगा, पारस और कल्पतरु,
कब करते हैं अतर,
लुटाते है निधियाँ, सहज भाव से।
इसीलिये बने महाकाल,
अमृत बाँटा,
विष कण्ठ मे उतारा,
बाँटा अभय,
बिखेरी असीम करुणा।
हे जाज्वल्यमान मार्तण्ड!
तुमने कब देखा
कुसुमित, प्रमुदित, प्रफुल्लित वीथी
और दुर्गन्धयुक्त
मलिन प्रवाह की अशुचिता को
भिन्न भाव से ?
दोनों को आलोकित किया
समभाव से।

पीड़ित मानवता के आधार!
तुम में धर्म साक्षात् हुआ,
पच महाव्रतों ने
तुम में अपनी पहिचान पाई,
सम्यक् ज्ञान, चरित्र और दर्शन
के त्रिरत्न, तुम्हीं में साकार हुए।
धर्म के मूर्तिमत रूप!
अध्यात्म की प्रखर ज्योति!
त्याग-तपस्या की दिव्य मूर्ति!
स्वीकारो यह निवेश,
दाता के सत
श्री नानेश!

एक जुलाहे ने बुनी चदरिया
एक धोबिया ने धोय सुखाई,
उजरी भई, भरम सब छूटै,
मिली सुमति, सुगति सुखदाई।

ओ असीम दया के सागर!
यह तुम्हारा परम उपकार,
कैसे भूलेंगे कृतज्ञ जन,
और चतुर्विध सघ
जिन्हे तुमने अपने तप-त्याग से,
सजाया, सवारा,
गौरव गरिमा से मण्डित किया,
साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका,
के चारों तीर्थ सवारे,
भक्तो के भगवान्,
नाना गुरु महान्।
हम नतमस्तक है
श्रद्धा और भक्ति सहित
तेरे पावन चरणो में।
ऐसी सद्बुद्धि उपजे
माया, मोह, लोभ, ममता
के बधन कटें,
निवृत्ति मार्ग प्रशस्त हो,
अपवर्ग पथ पर
तेरे समान ही
हम अग्रसर हों,
देना ऐसी आशिष,
साधना-सुमेरु
भक्त वत्सल,
समीक्षण ध्यान योगी,
चरित्र-चूड़ामणि,
समता दिनेश,
परम प्रभु नानेश!

डॉ सजीव प्रचडिया 'सोमेन्द्र'

समता विभूति आचार्य श्री नानेश के प्रति

घनघोर अधेरा,
दूर-दूर तक नहीं दिखता सवेरा,
हिसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह
जगल मे फैले झाड़ की तरह,
पसर गए चारों ओर,
और मचने लगा
शोर ही शोर।
पीड़ाएँ।
जन्म-जन्मान्तर के अक्षय कोष को
टटोलने लगीं
जिसे देख हमारी आत्माएँ
हमें अपने आप से जकड़ने लगीं।
धर्म।
मानो चुक गया
जीवन के हाशिये पर आकर
और हम बीतने लगे
भोग और केवल भोग के योग पर,
तभी अचानक
दीखा एक तेज प्रकाश
जो उगा और छा गया समूचे ससार पर,
सयम, साधना, तपाराधना, चितन, योग
समीक्षण ध्यान, आत्म समीक्षण,
व्यसन-मुक्ति के जीवित सस्कार,
हमारे घट-घट में
अग-जग मे
दीक्षित हो गए।
और धर्म का ध्येय फैल गया
यत्र, तत्र, सर्वत्र।
ऐसे अलौकिक अप्रतिम प्रकाशपुञ्ज
समता विभूति
आचार्य श्री नानेश
इस धरा पर प्रकट हुए और दे गए
एक नहीं, अनेक दिशाएँ—
उत्तम, सयमित जीवन की नित नई आशाएँ
सुदीर्घ प्रवास,
लम्बी पदयात्राएँ,
चातुर्मास
और अगणित दीक्षाएँ,
ढेर सारा साहित्य,
और सुसगठित सघकुल
उस ऐसे महान व्यक्तित्व
आचार्यप्रवर
गुरुवर श्री नानेश का।
सुधर्मा स्वामी की पाट परम्परा के
इक्यासीवें पाट और
सघनायक
आचार्य श्री हुक्मीचदजी महाराज साहब
के अष्टम पट्टधर को
मेरा, हमारा, जन-जन का
श्रद्धाभरा भाव
सादर समर्पित है।
अभ्यर्थित है।

शीलचन्द्र जैन

युगों-युगों तक हो जयवंत
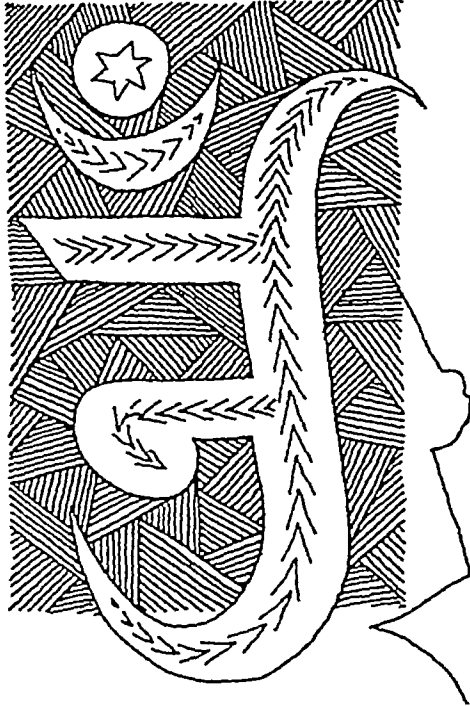
दाता ग्राम सुविख्यात है, जिला चित्तौड़गढ राजस्थान।
आचार्यप्रवर नानेशजी, थे जिन आगम क उद्‌भट विद्वान।।
स्वाध्याय अरु अध्यवसाय से, किया उत्तरोत्तर अति उत्थान।
युगो-युगो तक याद रहेगा, आचार्यश्री का अद्‌भुत अवदान।।1।।

मृदुल-कठ से प्रवचनो म, करते थे जिनवाणी अभिव्यक्त।
सयम साधक परम तपस्वी, जिन-पद-पकज मे थे अनुरक्त।।
सेवा-भावी अरु सदाशयी, जैन समाज को किया सशक्त।
ज्ञानवान थे अरु सद्‌गुणी, मोह-माया से सदा रहे विरक्त।।2।।

सयम-साधक साधर्मी जन को, सौम्य-साम्य अरु शाति सुधाकर।
एक सहस्र अरु आठ गुणा से, थे गहन ज्ञान-गुण-रत्नाकर।।
प्रवचन प्रवीण अरु पारखी, प्रख्यात श्रमण-सत ज्ञान-दिवाकर।
जिन आगम में निष्णात थे, प्रभावशील प्रवचन-प्रभाकर।।3।।

धर्मपाल आन्दोलन से किया, जन मानस का अतिशय कल्याण।
सत्ताइस अक्टूबर निन्यानवै, सल्लेखनापूर्वक किया प्रयाण।।
सदुपदशों व सद्‌भावों से किया समता समाज निर्माण।
सयमपथ पर अविचल चलकर, समाधिपूर्वक पाया निर्वाण।।4।।

परमपूज्य आचार्यप्रवर के, सुयश की फैली कीर्ति दिगन्त।
गुणी जना का यही कथन है, आचार्यप्रवर थे अतिगुणवन्त।।
मगलमय आशीषित किया, जनमानस को जीवनपर्यन्त।
यही भावना यही कामना, युगों-युगों तक हो जयवन्त।।5।।

साध्वी ज्योतिप्रभा

करुणा के सागर गुरुवर

ह अनत-अनत गुणों के सागर,
करुणा-रस स भरी तेरी गागर,
तरा जो है अनत उपकार धरा पर,
उसको कैसे जिह्वा करे उजागर?

अतर पथ के राही भगवन्, ये दुनिया तुम को याद करे,
दर्शन की प्यासी ये अँखियाँ, निशि-दिन झर-झर नीर झरे,
तुमने दु ख की घड़ियाँ काटीं, तुमने ही सारे कष्ट हरे,
करुणा के सागर हे गुरुवर, तुमसे ही जग अरदास कर।
तुम्हरे बिन अब किसे पुकारें, जीवन नैया बिना सहारे,
भवसागर के कुशल खिवैये, कैसे अब ये नाव तर?
कुशल पारखी नाना तुमने 'राम' परख कर सौंप दिया,
ज्योति तुम्हारी रहे प्रकाशित, तुमने यह उपकार किया।
सघर्षो की झझा में भी, हमने अद्‌भुत बल पाया,
पतितो को भी तुमन तारा, धर्मपाल पथ दिखलाया।
अब है यही कामना मेरी, तेरा पथ जगमग चमके,
तेरा नाम गगनमण्डल मे, रवि की आभा-सा दमके।

साध्वी स्थितप्रज्ञा

समता के सागर नाना

ओ अध्यात्म शिखर पर शोि
साधक-शिरोमणि नाना।
ओ ज्ञान मे दीप्तिमत
जगमगाते दीपक, नाना।
अलख जगाकर आत्मज्ञान की
क्यो छोड़ चले
ओ समता के रखवाले, नाना ?

अहिमा के थे आप पुजारी,
सत्य के थे आप प्रचारी,
समता-साधना के बेजोड़ योगी,
त्याग वैराग्य के अनुपम साधक।
तुझे देख कर भूल जाते थे लोग
दुनिया के मायावी रिश्ते,
तेरी पावन सन्निधि मे
पाते थे असीम शाति
तेरे चरणों में थी दिव्य शरण
और सामीप्य में थी परम तृप्ति।

जीवन क्या है यह भेद
सरल शब्दो में बताया तुमने,
सहजता, सरलता, सहनशीलता
सबका पाठ पढाया तुमने,
सुख मे न फूलना
दु ख में न घबराना
समभाव रखना
यह सूत्र बताया तुमने।

न जाने क्या भूल हुई
ओ क्रूर काल, हमसे
जो नयनो की ज्योति
मन के मोती
छीन लिये हमसे
पर अतर मे जो पैठा है
वह निकलेगा कैसे ?
साँसो का जो आधार है,
वो छूटेगा कैसे ?

ओ महायोगेश्वर,
तेरे अनत उपकार हैं हम पर
हमे राह दिखाई
जीवन सवारा हमारा,
कैसे भूलेंगे ये उपकार
ओ समता के सागर, नाना।
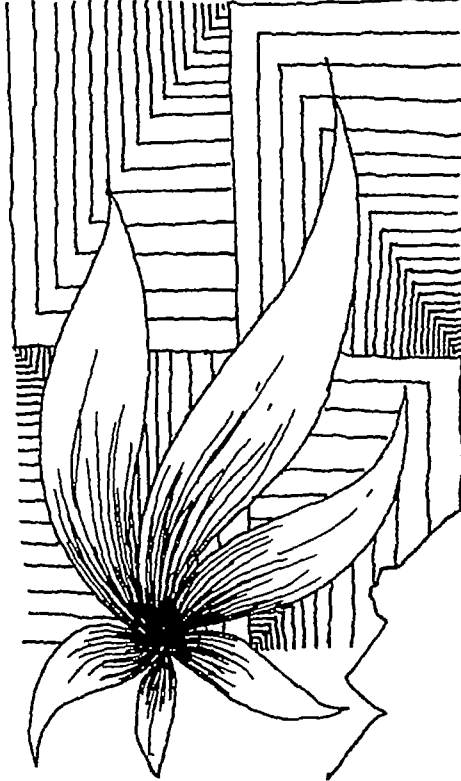
भक्तो के भगवान्

तेरी चेतना मे समा जाऊँ,
तेरे ध्यान मे ही खोई रहूँ,
इस दुनिया की रीते भूल कर,
नाना, बस तुझे ही याद करूँ।

तेरी कृपा-दृष्टि हर पल बनी रहे,
मनमदिर में तेरी मूरत सजी रहे,
दिल-दर्पण में तेरी सूरत बसी रहे,
और कण-कण मे दर्शन तेरा बना रहे।

सदा होठो पर तेरा ही नाम रहे,
तेरे चरणों मे शीश झुका ही रहे,
मेरे अतर में तेरी छवि बसी ही रहे,
सपनो में भी तेरा ही ध्यान आता रहे।

जग बगिया का रखवाला था तू,
इस दुनिया का उजियाला था तू,
जीवन नैया की पतवार था, नाना!
हम भक्तो का निराला भगवान् था तू।

साध्वी प्रमिला (पुण्य रेखा)
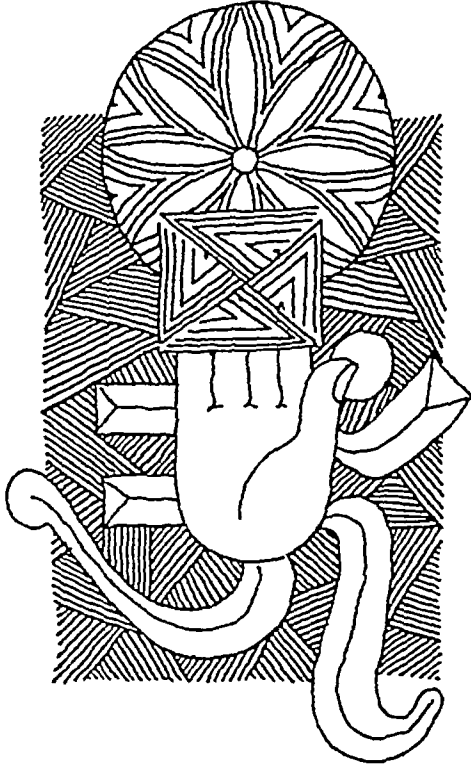
मानव में भगवान् मिला

विषमता के घोर तिमिर मे, समता का दिनमान मिला।
जिसने तुमको देखा उसको, मानव मे भगवान् मिला।।टेर।।

जो कुछ कहा स्वय पर पहले सिद्ध किया फिर समझाया।
समता मे जी कर ही तुमने, हमको वह पथ दिखलाया।।
महामनस्वी रोज तुम्हीं से, जन-जन को सद्ज्ञान मिला।
जिसने तुमको देखा उसका, मानव म भगवान् मिला।।1।।

तुमने जो ये ज्ञान दिया, लाखो का जीवन सवरेगा।
तुमने जो ये ज्योति दिखाई, अधकार कब ठहरेगा?।
लाखो पतितो को तुमसे ही, जीवन मे उत्थान मिला।
जिसने तुमको देखा उसको, मानव मे भगवान मिला।।2।।

रहो कहीं भी तुम गुरुवर, सतत प्रेरणा देते रहना।
सयम में सुदृढ रहे, यह ध्यान हमारा तुम रखना।।
आत्म चेतना रहे सुरक्षित, ऐसा समीक्षण ध्यान मिला।
जिसने तुमका देखा उसका, मानव म भगवान् मिला।।3।।

तुमने जो खींची रेखा वह, कभी नहीं मिट पायेगी।
ध्रुवतारे ज्या अविचल रहकर, भव्यों को पथ दिखलाएगी।।
'पुण्य' चरण पर बढे निरतर, मानव को अनुमान मिला।
जिसने तुमको देखा उसको, मानव मे भगवान् मिला।।4।।

॥ लालेश लिखि ॥
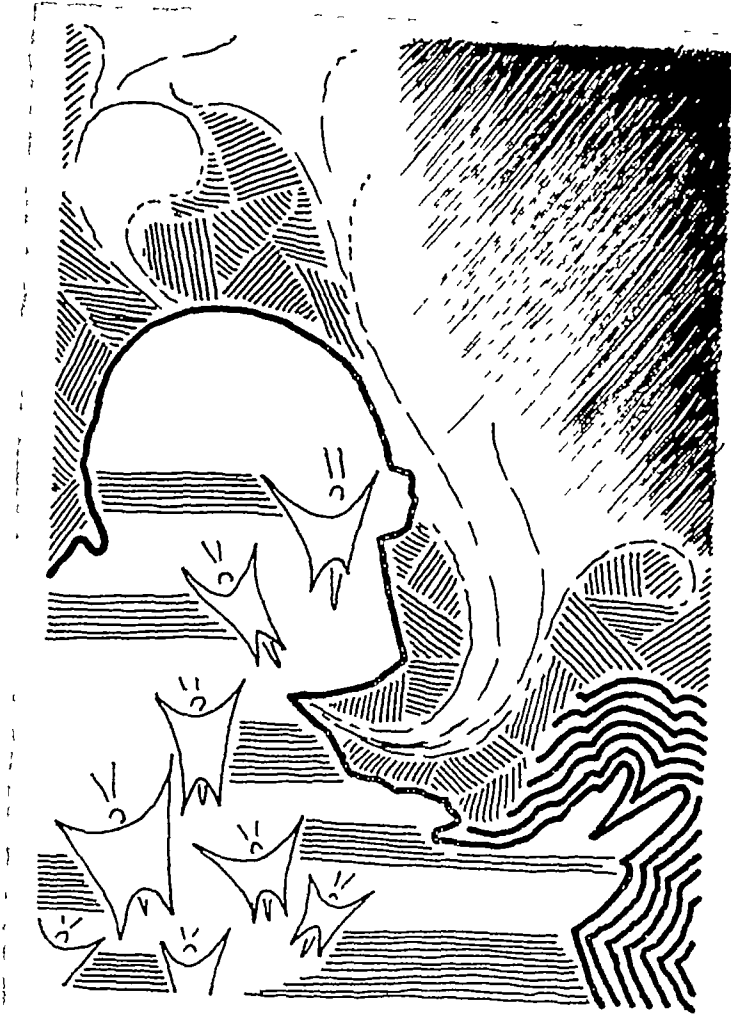
आचार्य श्री रामेश

युग-संत का प्रदेय

आचार्य श्री नानेश एक सत थे जिन्होने आगमों का तलस्पर्शी ज्ञान तो प्राप्त किया ही था, जीवन और जगत् के सत्य की भी अनदेखी नहीं की थी। उन्होंने देखा था कि जीवन विषम समस्याओं से ग्रस्त था और उनसे छुटकारा पाने की लालसा मनुष्य को उपभोक्तावाद के रास्ते पर ढकेल रही थी। भौतिकवादी चिन्तन से आक्रान्त मनुष्य यह भूला हुआ था कि वह मात्र भौतिक इकाई नहीं है और न बौद्धिकता उसकी एकमात्र शक्ति है, उसके अन्दर एक सवेदनशील हृदय धड़कता है जिसम भावनाओं का सागर हिलोरें लेता है और उसके अतस मे आत्मा की लौ टिमटिमाती रहती है। उन्होने यह भी समझ लिया था कि ये भौतिकवादी आग्रह ही दु ख, अशाति और असतोष की स्थितियों के लिये उत्तरदायी हैं। यदि उसे इन स्थितियों से उबरना है तो इन आग्रहों का आध्यात्मिक आधार पर परिष्कार करना होगा। उन्होने इन स्थितियों को विकसित होते हुए देखा था और उनके बनते-बदलते रूपों से वे भलीभाँति परिचित थे परन्तु इनसे छुटकारे का कोई क्रान्तिकारी उपाय उन्होंने नहीं बताया क्योकि क्रान्ति के मार्ग से परिवर्तन मे वे विश्वास नहीं करते थे और न ऐसे परिवर्तनों को कल्याणकारी ही मानते थे। ससार में हुई विभिन्न क्रान्तियो और उनके परिणामो ने उनकी इस धारणा को पुष्ट किया था कि क्रान्ति सदैव अपने पीछे विनाश, घावों, पीड़ाओ और पश्चात्ताप का इतिहास छोड जाती है।

आचार्य श्री नानेश सत थे। सत का मार्ग भिन्न होता है। तुलसी ने लिखा है—'सत हृदय नवनीत समाना'। नवनीत की यह प्रकृति होती है कि जहाँ अपने स्पर्श से वह कोमलता, शीतलता और स्निग्धता का अहसास कराता है वहीं बाहर का तनिक-सा ताप पाते ही वह द्रवित हो जाता है। ऐसा ही नवनीत-सम हृदय आचार्य श्री नानेश को प्राप्त हुआ था जो प्रवचनो मे बहा शीतल और स्निग्ध लेप बनकर कोमलतापूर्वक जन-जन के मन, आत्मा और हृदय के घावो पर औषध की तरह आलेपित हो गया। उनके चरित्र, ज्ञान और साधना ने उनके प्रति जो आस्था उत्पन्न की थी उसने उन्हे जन-जन

का आराध्य भी बना दिया। एक कुशल भिषग् की भाँति उन्होंने भव रोगों की पहचान की और अपने ज्ञान ओर अनुभव के आधार पर उपचार की विधियाँ बताई। निश्चय ही ये विधियाँ आध्यात्मिक थीं परन्तु अधिक कारगर भी थीं क्योंकि बुद्धि से प्रेरित मनुष्य के कदम उसे वासना, भोग और विनाश के कगार की ओर ले जाते हैं। आचार्य नानेश के उपचार की विधि इस प्रकार बड़ी सीमा तक मनोवैज्ञानिक भी थी। उन्हें ज्ञात था कि भौतिकवादी और उपभोक्तावादी आकर्षणों में फँसे व्यक्ति को हृदय-परिवर्तन द्वारा ही सन्मार्ग पर लाया जा सकता है। परन्तु इसके लिये उन्हें उन स्थितियों को समझने की आवश्यकता थी जिनकी प्रतिक्रिया मनुष्य में इस रूप में हुई थी। इस दृष्टि से परिस्थितियाँ उनके अनुकूल ही रही थीं क्योंकि वे भी इसी युग में उत्पन्न हुए थे और इसलिये परिस्थितियों के परिवर्तनों को उन्हें निकट से देखने और समझने का मौका मिला था। परिस्थितियों के इस परिवर्तन पर ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दृष्टिपात करना उपयुक्त होगा।

आचार्य नानेश के जन्म का वर्ष भारतीय इतिहास में अत्यंत उथल-पुथल का वर्ष था। एक वर्ष पूर्व जलियांवाला हत्याकाण्ड हो चुका था जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप तथा प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप उत्पन्न आर्थिक असंतुलन, अकाल, महामारी और सरकारी तंत्र के दमनचक्र के विरोध में इसी वर्ष गांधीजी ने असहयोग आंदोलन की घोषणा की थी और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की मृत्यु के बाद गांधी युग का प्रारंभ हुआ था। यही वह समय था जब सुभाषचन्द्र बोस सरदार पटेल और पण्डित जवाहरलाल नेहरू राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भूमिका निभाने लगे थे। पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप प्रारंभ हुए समाज-सुधार और धर्म-सुधार आन्दोलनों का प्रभाव प्रकट रूप में सामने आने लगा था और इस प्रकार धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का युग प्रारंभ हो गया था।

> आचार्य नानेश एक संत अवश्य थे परन्तु उन्होंने स्वयं को संतई की चहारदीवारी में कैद नहीं कर रखा था बल्कि संत के सामाजिक दायित्व के प्रति भी वे पूर्ण सजग थे। इस प्रकार सांसारिकता में आसक्त लोगों को आत्मविकास के पथ पर गतिमान कर समाज के पुनर्निर्माण की आवश्यकता का भी उन्हें पूरा ध्यान था। धर्म, दर्शन, अध्यात्म, मानवता, राजनीति, समाज व्यवस्था, सुसंस्कार आदि से संबंधित उनका चिंतन इसका प्रमाण है।

जिन दिनों बालक नानालाल किशोरावस्था की ओर कदम बढ़ा रहा था वे भी घोर अशांति के दिन थे। 1928 में भारतीय संविधान की रूपरेखा तैयार की गई थी। इसके बाद पूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा के साथ भगतसिंह और चन्द्रशेखर आजाद के नेतृत्व में क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारंभ हो गया था। जिस समय द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारंभ हुआ वही समय नानालाल के दीक्षा लेने का था। इस प्रकार दीक्षित नानालाल को विस्तृत होती हुई सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्रान्ति से निकट का परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला था। उनके युवाचार्य पद तक पहुँचने अर्थात् 1962 तक देश में उन सभी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्रांतियों का सूत्रपात हो चुका था जो उनके आचार्यत्व काल में अपनी पूर्णता को पहुँचीं। इस प्रकार शिक्षा, आर्थिक विकास, कृषि, उद्योग, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, जन-जातियों एवं पिछड़े वर्ग में चेतना जागरण, स्त्री-शिक्षा, समाज-सुधार, गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास, आर्थिक एवं कृषि विकास आदि के कार्यक्रम लागू हो चुके थे, साथ ही जातिवाद, साम्प्रदायिकता, भ्रष्टाचार, उग्रवाद, आतंकवाद, राजनीति का अपराधीकरण जैसी विकृतियाँ भी जन्म ले चुकी थीं। इस प्रकार यदि देश एक ओर परमाणु शक्ति सम्पन्नता तथा कम्प्यूटर क्रान्ति एवं रॉकेट युग में प्रवेश कर चुका था तो दूसरी ओर राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पतन की उस सीमा तक पहुँच चुका था जिससे निस्तार पाने का मार्ग केवल अध्यात्म और धर्म ही दिखा सकते थे और अपने 36 वर्षों के आचार्यत्व काल में आचार्य नानेश ने इसी मार्ग को आलोकित कर अनुसरणीय बनाने का अथक प्रयास किया।

यह ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जो एक बात तीव्रता से स्पष्ट कर रही थी और जिसे देश का सत्ता-सम्पन्न वर्ग ही नहीं प्रबुद्ध वर्ग भी अनदेखा कर रहा था, वह थी एक ऐसी आध्यात्मिक-सांस्कृतिक क्रान्ति की आवश्यकता, जो संकुचित

आर्थिक, सामाजिक, जातीय अथवा सासारिक हिता से ऊपर उठ कर समता, स्वाध्याय एव नैतिकता के स्तर पर मानवता के विकास का मार्ग प्रशस्त करे जिससे सर्वकल्याण, विश्वकल्याण और मानवकल्याण का स्वप्न साकार हो सके। कितने आश्चर्य की बात है कि आत्मवत् सर्वभूतेषु की बात कहने वाली भारतीय सस्कृति के उपासक आतकवाद, भ्रष्टाचार व्यसन, भ्रूणहत्या, कत्लखानों के विस्तार, यौन अपराध, चरित्रहीनता, फेशनपरस्ती और पाश्चात्य भौतिकवादी चिन्तन के फेर मे पड़ कर हिसा, परिग्रह, अब्रह्मचर्य, असत्य आदि के पोषक बन गये थे। वे धर्मनिरपेक्षता, प्रजातत्र, समाजवाद व्यक्ति स्वातत्र्य आदि के थोथे नारे उछाल रहे थे परन्तु इनके पीछे छिपे उस चिन्तन को भूल गये थे जो इनकी आत्मा था अर्थात् समता चिन्तन, दृष्टि और व्यवहार। आचार्य नानेश एक सत अवश्य थे परन्तु उन्होने स्वय को साधुत्व की चहारदीवारी मे कैद नहीं कर रखा था बल्कि साधु के सामाजिक दायित्व के प्रति भी वे पूर्ण सजग थे। इस प्रकार सासारिकता मे आसक्त लोगो को आत्मविकास के पथ पर गतिमान कर समाज के पुनर्निर्माण की आवश्यकता का भी उन्हे पूरा ध्यान था। धर्म, दर्शन, अध्यात्म, मानवता, राजनीति, समाज व्यवस्था, सुसस्कार आदि से सबधित उनका चिन्तन इसका प्रमाण है जिसके उदाहरण उनके वे दैनिक प्रवचन है जिनमें वे व्यक्ति और समाज के जीवन से सबधित प्रत्येक पहलू पर अपने विचार प्रकट करते थे और समस्याओं के समाधान का मार्ग दिखाते थे। इस रूप में उन्होने जीवन के सभी पक्षों से सबधित समस्याओ को अपने चिन्तन का विषय बनाया था और सार्थक टिप्पणियाँ की थीं। ये टिप्पणियाँ शास्त्र-सम्मत ता होती ही थीं मानवतावादी चिन्तन से सम्पृक्त भी होती थीं। परहित की चिन्ता से प्रेरित उनकी इस चिन्तन धारा के विविध पक्षों को समझना आवश्यक है क्योंकि इसी रूप में उनके सत-हृदय का नवनीत जन-जीवन की समस्याओं की ऊष्मा पाकर बहा था।

पहले बात करते हैं उस आध्यात्मिक सकट की जिसकी प्रकृति को समझकर पूज्य आचार्यप्रवर ने आत्मा और हृदय के परिष्कार की बात कही थी क्योंकि इस जीवन में मनुष्य की सबसे बड़ी कामना भगवान के दर्शन की होती है। वह समझता है कि उनके दर्शन कर वह जीवन के अतिम लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त कर सकेगा। इस हेतु वह विविध मार्ग अपनाता है और उत्कट भक्ति से लेकर हठयोग तक की क्रियाओं का सहारा लेता है। परन्तु क्या उसे परमात्मा के दर्शन होते हैं? 1977 के गगाशहर-भीनासर चातुर्मास के एक प्रवचन मे उन्होंने स्पष्ट किया था कि मनुष्य-लोक में रहते हुए इन चर्मचक्षुओ से भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते, क्योकि मनुष्य अपने शरीर वाले व्यक्ति को ही देख सकता है परन्तु परमात्मा मानवशरीरी नहीं है वह मानवातीत है, आत्मस्वरूपी है इसलिये परमात्मदर्शन के रूप में उसे आत्मदर्शन का लक्ष्य रखना चाहिये। आत्मदर्शन ज्ञानचक्षुओं से ही सभव है परन्तु ज्ञानचक्षु खुले इसके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य आठ प्रकार के कर्मो का क्षय करे। इनमे भी ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय, ये चार कर्म सर्वाधिक भयानक होते हैं और घनघाती कर्म कहलाते हैं। इनके नष्ट हो जाने पर अरिहन्त की पदवी प्राप्त हो जाती है। साधु और श्रावक अपने कर्मो का यथोचित पालन करके इन कर्मों का क्षय कर सकते हैं। इस प्रकार आत्मा जब अपने कर्म-शत्रुओ का हनन कर अरिहत बनती है तभी आत्मस्वरूप के दर्शन होते हैं। भगवान् महावीर ने, जब वे अरिहत पद पर थे, अपने लब्धि-सिद्ध शिष्य गौतम स्वामी से स्पष्ट कहा था—

'नहु जिणे अज्ज दिस्सई, बहुमए दिस्सई मग्गदेसिये।
सपई ने पाउए पहे, समय गोयम मा पमायए।'

'हे गौतम! आज तुम्हे जिन भगवान् के दर्शन नहीं हो रहे हैं', जबकि वे साक्षात् रूप में गौतम स्वामी के सामने विराजमान थे। उनका अभिप्राय यह था कि तुम मेरी आत्मा के शुद्ध रूप को नहीं देख सकते क्योंकि वह आत्मस्वरूप शरीर से ऊपर और शरीर से परे है। जिस दिन चारों घनघाती कर्मो को नष्ट कर तुम स्वय जिन बनोगे उस दिन तुम मेरे स्वरूप को देख पाओगे। इस प्रकार परमात्मदर्शन आत्मदर्शन ही होता है। अपनी आन्तरिकता का दर्शन करने का अभ्यास करते रहने से इस आत्मदर्शन तक पहुँचा जा सकता है। इस आत्मदर्शन के बारे मे भगवान् महावीर ने कहा था—

'ना इन्दिय गज्झ अमुत्त भावा।
अमुत्त भावा वि य हो ई निच्च।।'

उनका आशय यह था कि इन इन्द्रियो के माध्यम से आत्मा को नहीं जान जा सकता क्योकि इन इन्द्रियों की गति स्थूल होती है। अत अमूर्त भाव क साक्षात्कार वे नहीं कर सकतीं। आत्मा का ऐसा ही अमूर्त भाव होता है।

आचार्यप्रवर ने इस सदर्भ मे एक उदाहरण दिया था—जैसे मक्खन दही मे समाया रहता है परन्तु दिखाई नहीं देता, दही को मथने पर ही उससे अलग होकर प्रकट हाता है उसी प्रकार आत्मतत्त्व इसी आत्मा में समाया होता है और जेसे विलोड़ित होने पर ही दही मे से मक्खन प्रकट होता है उसी प्रकार आत्मा के विलोड़न से आत्मशक्तियॉ फेन के रूप मे उभर कर ऊपर आ जाती है। ये शक्तियॉं ही जव परम उज्ज्वल रूप ल लेती हैं तभी आत्मस्वरूप निखर आता है। यही परमात्म तत्त्व का प्रकाशित हाना है।

सन् 1975 क अपने देशनोक वर्षावास के दौरान आचार्यश्री ने यह तथ्य भी स्पष्ट किया था कि आत्मा अपने मूल रूप म स्फटिक मणि के समान निर्मल है किन्तु वाह्य विकारो को लेकर वह विकारी भावों से मलिन हो रही है, उस पर अनादि काल से कर्मो की पर्ते चढ़ी हुई हैं विकारी भावों के कारण उसकी पवित्रता कलकित हुई है उसका चैतन्य अवरुद्ध हुआ है, माया के बधनो म वह केद हुई है और विकारी भावा के कारण उसकी ज्योति मद हुई है, 'स्व' तत्त्व को छोडकर 'पर' तत्त्व में रमण करने लगी हे और शरीर, शरीर की सामग्री और सुविधाआ को अपना मानने लगी हे। यह मोह है, इसकी मदिरा का नशा उसे वेभान कर दता है। यदि आत्मा को इस दशा से छुटकारा पाना है तो उसे अपने घर आना होगा पुद्‌गला के सम्माहन को भगाना होगा। उन्हाने इस वात पर भी अफसास प्रकट किया था कि मनुष्य इस आत्मा को शुद्ध करने के लिये ऊपर से उपचार करता है, जड को नहीं काटता है।

आत्मा शुद्धि क मार्ग पर अग्रसर कैसे हो? इसके लिये आचार्यदव ने आध्यात्मिकता की ओर लौटने की वात कही थी। देशनोक क अपन एक अन्य प्रवचन म उन्होने आध्यात्मिकता के विपरीत भौतिकता के प्रति झुकाव पर विस्तार से टिप्पणी की थी। उन्होने कहा था कि विश्व मे वैज्ञानिक क्षेत्र मे वहुत प्रगति हुई है नित्य नये अनुसधानो ने विश्व को चकित कर दिया है परन्तु इन अनुसधानो का लक्ष्य भौतिक मात्र होने के कारण जो सुख-शाति परिलक्षित होनी चाहिये थी वह नहीं हो रही है वल्कि अशाति का वातावरण वढा हे। भौतिकवादी वैज्ञानिक इस सत्य को समझ गये हैं और आध्यात्मिकता की ओर लौटने लगे हैं जवकि अध्यात्मप्रधान देश भारत के लाग भौतिकता की ओर कदम वढा रहे हैं। इस स्थिति पर चिन्ता व्यक्त करत हुए आचार्यप्रवर ने कहा था कि यह उल्टी गगा वह रही हे। भारतीय जनता का मानस इतना गुलाम वन गया है कि विदेशो की नकल करना ही उसका एकमात्र लक्ष्य रह गया है। इस स्थिति के निराकरण का मार्ग भी उन्होने सुझाया था। उन्होने कहा था कि अभी भी कुछ नहीं विगडा है, अव भी सभलने का अवसर हे। यदि सुख-शाति चाहते हो तो चरित्र की प्रतिष्ठा करो, चरित्र ही धर्म है। यदि सच्चरित्रता को महत्त्व दिया जाय, उसका वास्तविक मूल्याकन किया जाय, उसको जीवन का मापदण्ड वनाया जाय, उसस व्यक्तियों को तौला जाय, तो भारत का नक्शा ही वदल सकता है। आवश्यकता है इस चारित्रिक गुण को जीवन क हर क्षत्र में पुन प्रतिष्ठित करने की। चरित्रनिष्ठा के सवध में उन्होने जम्बू स्वामी और गाधीजी के उदाहरण भी दिये थे।

पूज्य गुरुदेव चरित्र का सस्कारा से सीधा सवध मानते थे इसलिये सस्कारों को सुधारने की आवश्यकता को प्रमुख महत्त्व देते थे। स 2034 के अपन गगाशहर-भीनासर चातुर्मास के एक प्रवचन मे सुसस्कारा की महती आवश्यकता पर वल देते हुए उन्होन कहा था कि सुन्दर सस्कारों का वल जीवन का सही दिशा मे आगे वढाने की दृष्टि से वहुत सहायक होता है। एक सस्कारित आत्मा ही अपना सुन्दर विकास सम्पादित कर सकती है और उसे आध्यात्मिक साधना म अग्रगामी वनाती है। इन सस्कारा क विकास का क्रम शेशवावस्था स चलता है जिसम माता-पिता की प्रमुख भूमिका हानी है। सस्कार निर्माण में सामाजिक वातावरण का भी वडा महत्त्व होता है। सगी-साथी, पास-पड़ास तथा सामाजिक-सास्कृतिक गतिविधियों की भूमिका को स्वीकार करते हुए उन्होंने इस

बात पर खेद प्रकट किया था कि आज की शिक्षा पद्धति तथा पश्चिम का प्रभा
सस्कृति को बड़ी सीमा तक प्रदूषित किये हुए है। स 2032 के अपने देशनो
चातुर्मास के दौरान एक प्रवचन मे उन्होने कहा था—

'अग्रेजो ने जिस शिक्षा पद्धति का निर्माण किया था, स्वतत्रता-प्राप्ति
इतने वर्षों बाद भी उसमें वाछित परिवर्तन नहीं किये जा सके हैं। उस शिक्षा
पद्धति की छाया में पलकर गुण-सम्पन्नता की उपलब्धि ता दूर छात्र प्रारभ से
दुर्गुणों को चुन-चुन कर अपनाने लगे है। आज का विद्यार्थी जीवन कितना
विपथगामी बना हुआ है!

आज जिस प्रकार की शिक्षा पद्धति प्रचलित है वह बालक को किसी भी
अर्थ में समर्थ नहीं बनाती, न ही उसके जीवन मे स्वतत्रता एव स्वावलम्बन की
प्रेरणा देती है वह अनुशासन एव विनय से रहित दिखाई देती है। सच्चा
विद्यार्थी ही जब जीवन की जिम्मेदारियो का ग्रहण करता है तो वह नागरिक के नाते
अपने कर्तव्य का निर्वाह पूरी निष्ठा के साथ करता है शिक्षा पद्धति ऐसी न हो जो
शिक्षित बेकारों की फौज़ खड़ी करती रहे शिक्षा का नियोजन क्रम इस प्रकार का
होना चाहिये कि बेकार भी अपने स्तर पर किसी न किसी उपयोगी काम मे लग
जाय।'

भारतीय सस्कृति पर पाश्चात्य प्रभाव किस बुरी तरह हावी है, इस पर
टिप्पणी करते हुए सन् 1972 के जयपुर चातुर्मास के एक प्रवचन मे पूज्य गुरुदेव
ने कहा था—

'भारत में अधिकाशत आज भारतीय सस्कृति को भूलकर विवेकहीनता के
रूप मे पश्चिमी सस्कृति में रगे जा रहे है। यह अधी नकल का ही परिणाम
है साधारण रूप से वातावरण ऐसा दिखाई देता है जैसे विवेकहीनता कुएँ मे भाग
की तरह चारो ओर फैल गई है तथा फैलती ही जा रही है भारतीय मस्तिष्क
भोग- प्रधान पाश्चात्य सस्कृति की ओर झुकता जा रहा है रहन-सहन मे
नकल खान-पान मे नकल विषय-सेवन मे नकल, वाहन उपयोग मे नकल
गृह-निर्माण मे नकल, रीति-रिवाजों मे नकल ऐसी बिना अकल की नकल न तो
देश की सभ्यता और सस्कृति के अनुकूल है न ही भारतीय जलवायु के अनुकूल।
आश्चर्य है कि फिर भी नकल बेहिसाब चल रही है।'

उन्नत भारतीय समाज का यह विकृतीकरण अग्रेजी शासन का परिणाम था
जिसके चलते सभी ओर से भारतीय सस्कृति को काटना शुरू कर दिया गया,
फैशन का प्रचार किया गया और शुद्ध चरित्र पर निरतर प्रहार करने वाले सिनेमा
जैसे कई साधन खड़े कर दिये गये। भारतीय-जन का व्यक्तिगत और राष्ट्रीय
चरित्र निरतर गिरता चला गया और सहयोग तथा सद्भाव के आधार पर सदियो
से सचित उसकी नैतिक परम्परा टूक-टूक हो गई।

व्यक्ति और समाज को आचार्यदेव अन्योन्याश्रित रूप से सबद्ध मानते थे,
यद्यपि व्यक्ति को केन्द्र में रख कर ही समाज सभी क्रियाएँ सचालित करता है।
आचार्यदेव ने अपने जयपुर वर्षावास मे इस स्थिति पर टिप्पणी करते हुए कहा
था—

'व्यक्ति और समाज अलग-अलग नहीं हैं, एक ही डोरी के दो छोर हैं अपनी
शक्ति की दृष्टि से। व्यक्ति की शक्ति एक ओर से चलती है तो सामाजिकता को
पुष्ट बनाती है और सामाजिक शक्ति भी दूसरी ओर से चल कर व्यक्ति के सद्गुणो
को प्रभावित करती है। व्यक्ति और समाज के बीच ऐसी ही स्वस्थ परिपाटी होनी
चाहिए व्यक्ति और समाज इन दोनों का पारस्परिक सबध अपने आप मे अलग
ही मूल्य रखता है। मूल रूप में देखें तो व्यक्ति को छोड़ देने पर समाज के नाम का
कोई अस्तित्व ही नहीं हो सकता। व्यक्ति से समाज बनता है। अगर कोई बीज
की रक्षा करे तो फसल भी तैयार हो सकती है किन्तु बीज का भूलकर या ठुकरा
कर फसल कैसे प्राप्त की जा सकेगी?'

स 2033 के अपने नोखा वर्षावास के दौरान आचार्यदेव ने अपने प्रवचन
'सुसस्कारो के निर्माण का पथ' में यह भी स्पष्ट किया था कि विचारों के साथ
सस्कारा मे जो परिवर्तन किया जाता है वही परिवर्तन स्थायी रहता है, जैसे मालव

प्रदेश मे बलाई जाति के लोगो को *धर्मपाल* बना कर किया गया। इस प्रकार वश परम्परा से चले आने वाले सस्कार भी बदले जा सकते है। इस दृष्टि से जैन धर्म के आचार्य चमत्कारी कार्य कर रहे हैं। इस रूप मे आध्यात्मिक सस्कारों की फुलवारी खिल रही है, जिसके निर्माण और विकास मे हाथ बटाना प्रत्येक विचारशील व्यक्ति का कर्तव्य होना चाहिये।

सस्कार निर्माण की बात धर्म के सही रूप को समझने से जुड़ती है। आखिर बलाई जाति के लोगों को धर्मपाल बनाना कोई धर्मपरिवर्तन का कार्य नहीं था वह तो हिसा, व्यसनोन्मुखता, अज्ञान, अधविश्वास जैसे अधर्म के मार्ग से अहिसा, सत्य, अस्तेय, पवित्रता जैसे धर्म के कार्यों की दिशा मे मुड़ना था। अपने 1986 के जलगॉव चातुर्मास मे *'धर्म का चिन्तन'* विषय पर अपने प्रवचन मे स्वभाव और विभाव की विवेचना करते हुए पू गुरुदेव ने बताया था कि धर्म क्या है। भगवान् महावीर ने धर्म की व्याख्या करते हुए कहा था, 'वत्थु सहावो धम्मो', *अर्थात् वस्तु का मूल स्वभाव ही धर्म है।* पू गुरुदेव ने *लकड़ी के टुकड़े* और लोहे के डिब्बे का उदाहरण देकर स्पष्ट किया था कि लकड़ी का टुकड़ा अपने स्वभाव के विरुद्ध लोहे की सगति करने के कारण पानी में डूब गया। यह विभाव की स्थिति थी। मानव धर्म का विवेचन करते हुए उन्होंने स्वभाव और विभाव के मूलाधार पर चिन्तन करने वालो के चिन्तन का जो सार बताया वह था—*मानव धर्म* अर्थात् सम्पूर्ण मानवीय मूल्यो के अनुसार मानव-मानव के बीच किये जाने वाले व्यवहार के स्तर तथा व्यष्टि और समष्टि के प्रगतिशील सबधों का विवेचन। उन्होंने मानव धर्म की एक अन्य सरल परिभाषा एक अन्य शब्द में भी दी—मानवीय कर्तव्य।

यद्यपि पू गुरुदेव ने धर्म की गूढ बात को अत्यत सरल बनाकर प्रस्तुत कर दिया परन्तु भौतिकवादी चिन्तन से ग्रस्त मनुष्य 'मानवीय कर्तव्य' जैसी सरल बात को भी नहीं समझता और अपने निहित स्वार्थो की पूर्ति हेतु मानवीय कर्तव्यो की भीषण रूप से उपेक्षा करता है। यही उन सभी समस्याओ का कारण है जिनसे वह आज भीषण रूप से त्रस्त है। आचार्यदेव ने इन समस्याओं के मूल में जाकर उनकी प्रकृति और उनके स्वरूप का विश्लेषण किया और समुचित समाधान प्रस्तुत किये। स 2043 के जयपुर के चातुर्मास के दौरान अपने एक प्रवचन *पर्याप्ति और प्राण* मे इस सबध मे उन्होने कहा था—

'आज के युग में लोग अपनी समस्याओं का समाधान पाने के लिये बाहर ही बाहर देख रहे है और बाहर ही बाहर दोड़ रहे हैं, उस कस्तूरी मृग की तरह जा कस्तूरी की गध से कस्तूरी को खोजने के लिये वन प्रान्तर में भागता है जबकि कस्तूरी स्वय उसी की नाभि में होती है। आप भी कस्तूरी को नाभि में खोजिये और बाहर से अपनी दृष्टि और भागदौड़ को हटा कर अपने भीतर झाँकिये तथा वहाँ अपनी अनत शक्तियों के भण्डार को खोजिये।'

अपने देशनोक चातुर्मास में 'स्वकीय शक्ति की पहिचान' प्रवचन मे भी उन्होंने *आत्मशक्ति की खोज की बात कही थी*—

'विराट् विश्व में फैली हुई जितनी भी विराट् शक्तियाँ हैं उन शक्तियों से आत्मा का सबध जुड़ा हुआ है किन्तु उस सबध को सक्रिय बनाने के लिये भावना के विद्युत् प्रवाह की आवश्यकता है। जैसे बिजलीघर से आपके घर की बिजली की फिटिंग का सबध तो जुड़ा हुआ है लेकिन करट नहीं है तो प्रकाश कैसे होगा? यह *करट ही भावना है।* भावना का प्रवाह ज्यों ही सही दिशा में बहने लगेगा, त्यों ही आत्मा की शक्तियो के साथ अपना सबध सजीव हो उठेगा।'

इस सदर्भ में सुख और दु ख के सबध मे भी उनकी दृष्टि को समझ लेना आवश्यक है क्योकि इन्हीं की अनुभूतियाँ उससे कृत्य-अकृत्य करवाती हैं। गगाशहर-मीनासर चातुर्मास के अपने एक प्रवचन में उन्होने कहा था।

'वास्तव म सुख और दु ख की *अनुभूतियाँ अपन ही मन की अवस्थाएँ* होती हैं। ये अवस्थाएँ किन्हीं बाहरी तत्त्वों पर आधारित नहीं होतीं।'

'जब एक व्यक्ति के पास वस्तु है, वह उसे देता है तो प्राप्त करने वाले को लाभ मिलना चाहिये लेकिन वह वस्तु देने पर भी लाभ नहीं मिलता, उसका दु ख नहीं मिटता है तो उसके दु ख का कोई अन्य कारण अवश्य होना

चाहिये। लेकिन सुख ऐसी वस्तु नहीं है जो बाहर से दी जा सके अथवा ली जा सके। सच पूछे तो दु ख और सुख की अवस्थाएँ मनुष्य के मन मे जमी होती हैं और इन अवस्थाओ ने एक प्रकार से स्थायी भाव ले लिया होता है इसलिए मन पल-पल और क्षण-क्षण मे दु ख और सुख की कल्पना करता रहता है।'

इस सदर्भ मे भगवान् महावीर का उदाहरण देकर उन्होंने बताया कि यदि, 'आप भी सोचे कि दु ख देने वाला व्यक्ति आपके आत्मस्वरूप पर जमे हुए मैल को साफ कर रहा है, मेरे आत्महित की दृष्टि से अच्छा ही कर रहा है,' तो आपको भी दु ख न हो।

दु ख और सुख की स्थितियों को अवाछित सीमा तक पहुँचा देने मे वर्तमान सभ्यता के उस योग की भी 1984 के बोरीवली चातुर्मास के दौरान उन्होंने विवेचना की थी कि जिसने भौतिक आविष्कारो द्वारा सुख-सुविधाओ का अम्बार तो लगा दिया है परन्तु इस प्रकार विषमताएँ ही उत्पन्न कर अपने मानसिक असतुलन को बढ़ाया है, वह परमुखापेक्षी बना है। प्रत्येक वस्तु के लिए उसे दूसरो की तरफ दृष्टिपात करना पड़ता है। चलना है तो साइकिल, स्कूटर, कार आदि की जरूरत पड़ती है यह गति की परतत्रता है। गणित के लिये कम्प्यूटर चाहिए, बोलना है तो माइक चाहिए रोशनी के लिए बिजली और पानी के लिए नल चाहिए। इस प्रकार वैज्ञानिक खोजो ने चैतन्य की स्वतत्रता समाप्त कर दी है।

परमुखापेक्षी दृष्टि और आत्मचिन्तन के प्रति उदासीनता का परिणाम सदा घातक होता है क्योंकि इस प्रकार जहाँ चारित्रिक गुणों की हानि होती है वहीं मन मे विकृतियो का जन्म भी हो जाता है। परिणामस्वरूप सामाजिक जीवन की सारी व्यवस्था के बिगड़ जाने की स्थिति बन जाती है। उन्होंने अनुभव किया था कि जब अराजकता की ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है तब कर्तव्यबोध की हानि तो होती ही है, भ्रष्टाचार भी अपने विकरालतर रूप मे पनपने लगता है। आज विभिन्न क्षेत्रो मे पनपे ऐसे भ्रष्टाचार के विकृत रूप से वे बहुत क्षुब्ध थे तथा अपने प्रवचनो में इसके स्वरूप एव प्रकृति पर अर्थपूर्ण टिप्पणियाँ करके लोगो को सचेत करते रहते थे। प्रजातत्र धर्मनिरपेक्षता समाजवाद राष्ट्रवाद आदि से सबधित

उनकी टिप्पणियों जहाँ इन विचारों से सबधित पाखण्ड पर चोट करती थीं वहीं उनके शुद्ध रूप की व्याख्या भी करती थीं। उन्होने देख लिया था कि वास्तविकताओं के प्रति आँखे मूद कर देश थोथी नारेबाजी के आकर्षण में खोया हुआ था। परिणामस्वरूप बुद्धिजीवियों और नेताओ की घोषणाएँ खोखली सिद्ध हो रही थीं। जयपुर चातुर्मास के दौरान 'आध्यात्मिक स्वतत्रता' विषय पर बोलते हुए अपने प्रवचन में उन्होने कहा था—

'गरीबी हटाओ का नारा आज हमारे देश के नेताओं का एक सूत्र बन गया है किन्तु यदि अपने जीवन मे समता दर्शन की दृष्टि रहेगी तभी हम गरीबी का प्रश्न सहज ही हल कर लेगे कभी-कभी देश के नेता अपने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए जनता का आह्वान करते हैं। उनके ये आह्वान तभी सफल होगे जब उनकी भावना मे यह चिन्तन आयेगा कि मैं भूखा बैठा हुआ हूँ इससे मुझे जो कष्ट हो रहा है ऐसा ही कष्ट मेरे समस्त साथियों को होता होगा। इसलिए मेरे पास जितनी चीज है उसे उन मे विभक्त करके अपने साथियों की क्षुधा का निवारण करू इस प्रकार अपनी दृष्टि को विशाल बना लें और यह सोचें कि मेरे पास जो कुछ भी साधन है उनको अपनी आवश्यकता के अनुरूप अपने पास रखूँगा और शेष जो आवश्यकता के अतिरिक्त है उनका वितरण कर दूँगा।'

1987 के अपने इन्दौर चातुर्मास म उन्होंने मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओ और उनकी पूर्ति के तरीकों के सबध में जो विचार व्यक्त किये थे वे समाजवाद और साम्यवाद जैसी राजनीतिक-सामाजिक विचारधाराओं के उस सिद्धान्त के मूल का दिग्दर्शन कराते हैं जिसकी समझ का ढिंढोरा तो आज के बुद्धिवादी अथवा तथाकथित प्रगतिशील कहलाने वाले लोग जोर-जोर से पीटते हैं परन्तु औपचारिकताओ में खोये उसकी पूरी तरह अनदेखी कर देते हैं। आचार्य भगवन् ने इस सदर्भ में 'मानवीय मूल्यों के प्रतीक सविभाग एव सदुपयोग' की बात करते हुए कहा था—

'अन्न, जल और वायु—ये तीन तत्त्व जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं के रूप में बताये गये है। ये तीनो तत्त्व प्रकृति की देन होते हैं किन्तु तीनो की

परिस्थितियाँ भिन्न रहती है। सम्पूर्ण वायु मनुष्य के सीधे अधिकार मे स्वतत्र होती है। उसका सचरण प्रकृति के राज मे चलता है परन्तु जल प्रत्यक्ष पदार्थ होता है, अत मनुष्य के अधिकार योग्य भी। तब भी जल सबको सुलभ हो—ऐसी प्रकृति की व्यवस्था होती है। किन्तु अन्न के उत्पादन का कार्य पूरी तरह मनुष्य के अधिकार मे होता है। फिर भी जीवन के इन तीनो मूलभूत आवश्यक पदार्थो को किसी रूप मे मनुष्य ने अपने नियत्रण में किया है। नियत्रण का उद्देश्य तो यह रहा कि तीनों मूलभूत आवश्यकताएँ समान रूप से न हो सके तब भी यथोचित रूप से सबकी पूरी हो। परन्तु नियत्रण के व्यावहारिक रूप ने यह दिखा दिया है कि उससे भी सर्वहित की अपेक्षा स्वार्थपूर्ति अधिक की गई।

'अन्न वै प्राण जल वै प्राणा ' जैसा कहा गया है। अन्न ही प्राण है, जल ही प्राण है, इसलिए अन्न और जल का सदुपयोग करना हमारा पुनीत कर्तव्य समझा जाता है। उनको बर्बाद करना अथवा उनका दुरुपयोग करना धार्मिक एव नैतिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। इनके दुरुपयोग से बचना और बचाना प्रत्येक इन्सान का प्राथमिक धर्म है वस्तुत अन्न-जल है, तभी तो जीवन है और जीवन है तो धर्म साधना भी है तथा आत्मा के चरम लक्ष्य की पूर्ति की अभिलाषा भी। तो ऐसे अन्न-जल को प्राण क्यो न कहे?

'किन्तु केवल प्राण कह देने से आशय पूरा नहीं होता, उन प्राणो के सदुपयोग की समस्या आज सर्वाधिक विचारणीय है। जो अपनी धन आदि की शक्तियों के कारण अन्न और जल इच्छित मात्रा में सुलभ कर सकते हैं, क्या उनका इस बात की पूरी सावधानी है कि वे अन्न और जल का कितना सदुपयोग करते हैं, या कितना दुरुपयोग ? यदि यह हकीकत मन में भली-भाति उतर जाती है तो क्या कभी ऐसा हो सकता है कि प्राणों का दुरुपयोग करने की वृत्ति तक पैदा हो ? अन्न व जल को प्राण कहते हैं किन्तु यथार्थ मे वैसा मानते नहीं हैं तभी तो उनका दुरुपयोग करने की असावधानी बरती जाती है। अन्न-जल के सदुपयोग के साथ उनके सविभाग की ज्वलत समस्या भी जुड़ी हुई है अन्न-जल का वितरण धनी-गरीब सबका किया जाय किन्तु ऐसे वितरण मे सफलता तभी मिल सकती है जब अपनी धन-सत्ता की शक्ति से इच्छित मात्रा में अन्न-जल को सुलभ कर सकने वाले लोग उनका कतई दुरुपयोग न करे तथा सदुपयोग की पूरी सावधानी रखे सबको अन्न-जल का विभाग मिले किन्तु वह सम यानी बराबर भी हो। इसी का नाम सविभाग है। विभाग के बाद सविभाग की समस्या का समाधान भी आवश्यक है।'

आचार्य भगवन् ने प्रभु महावीर की देशना पर गभीरतापूर्वक विचार करते हुए इस दिशा मे उनके क्रान्तिकारी चितन का भी हवाला दिया था। प्रश्न व्याकरण सूत्र का उद्धरण देते हुए उन्होने बताया था कि भगवान् महावीर ने तो सबसे आगे बढ़ कर अन्नादि सामग्री का ही नहीं, सपूर्ण अर्जन के सविभाग का निर्देश दिया है—

असविभागी, असगहरुई अप्पमाण

भोंई सो तारिसए नाराहए वयामिण।

अर्थात् जो असविभागी है, प्राप्त सामग्री आदि का ठीक से वितरण नहीं करता, असग्रह रुचि है—साथियो के लिए समय पर उचित सामग्री का सग्रह कर रखने में रुचि नहीं रखता, अप्रमाणभोजी है—मर्यादा से अधिक भोजन करने वाला पेटू है, वह अस्तेय व्रत की सम्यक् आराधना नहीं कर सकता। उन्होने तो यहाँ तक कह दिया है—*'असविभागी नहु तस्स मोक्खो'*, अर्थात् जो सविभागी नहीं है और प्राप्त सामग्री का सम वितरण नहीं करता है, उसको मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।'

आचार्यदेव ने तो इस सदर्भ में वर्तमान स्थिति की सम्यक् विवेचना करते हुए खेद प्रकट किया था—

'सम की बात छाड़ें, क्या वितरण या विभाग का सद्विचार भी अधिक अर्जन करने वाले लोगो के मन में है ? अन्य सामग्री को भी छाड़ें क्या अपने पास आवश्यकता से अधिक सगृहीत अन्न आदि का भी जरूरतमद लोगो मे वितरण करने की भावना भी बनती है ? फिर प्रभु की आज्ञा का पालन कैसे किया जाता है ? यदि फिर भी असविभागी बने रहते हैं तो व्रत की पालना भी सम्यक् नहीं मानी गई है तब मोक्ष का द्वार भी बन्द रहेगा।'

यदि हम गभीरता से विचार करें तो सविभाग की इस रूप मे अवधारणा ही मानव का सर्वहित कर सत्य, शिव और सुन्दर की स्थापना मे सहायक हो सकती है। यह उस समाजवादी चितन का मूल है जिसकी इस युग के सामाजिक विचारकों ने घोर उपेक्षा की है। उन्होने केवल अर्थ को समाज-व्यवस्था का आधार और समाज की शक्ति के रूप मे देखा है। इसके दुष्परिणामों की चर्चा करते हुए गगाशहर-भीनासर चातुर्मास में एक प्रवचन मे उन्होने कहा था, 'अर्थ का अनर्थ जब तक व्यक्ति के लिए और व्यक्ति के नियत्रण में रहेगा तब तक वह अनर्थ का मूल भी बना रहेगा क्योंकि वह उसे त्याग की ओर बढने से रोकेगा इसलिए अर्थ का अर्थ समाज से जुड़ जाए और उसमे व्यक्ति की आकाक्षाओ को खुल कर खेलने का अवसर न हो, तो सभव है कि अर्थ के अनर्थ को मिटाया जा सके।'

मैं समझता हूँ कि समाजवाद और समाजवादी चिन्तन के सबध मे इससे अच्छी बात नहीं कही जा सकती। यह व्यावहारिक समाजवाद है जबकि तथाकथित समाजवादी केवल औपचारिकता की कोरी बातें करते हैं, उनके अतर म समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने की कोई सच्ची भावना नहीं होती। ऐसे पाखण्डवाद ने ही अच्छे-अच्छे सिद्धान्तों की गरिमा समाप्त की है।

इस वर्षावास मे उन्होंने समता दर्शन और व्यवहार पर खुल कर बातें की थीं इसलिए इस चातुर्मास के प्रवचन राजनीति, धर्म, समाजवाद, अध्यात्म आदि की समता दर्शन के आधार पर विवेचना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

राजनीतिक अवसरवादिता तथा भ्रष्टाचार की जितनी सटीक आलोचना उन्होंने इन प्रवचनों में की वह देश की राजनीतिक स्थिति को भली प्रकार स्पष्ट कर देती है। उन्होने बिना किसी सकोच के कहा था—

'राजनीति के क्षेत्र मे नजर फैलायें तो लगता है कि सैकड़ो वर्षो के कठिन सघर्ष के बाद मनुष्य ने लोकतत्र के रूप मे समानता के कुछ सूत्र बटोरे किन्तु विषमता के पुजारियो ने मत जैसे समान अधिकार के प्रतीक को भी ऐसे कुटिल व्यवसाय का साधक बना दिया है कि प्राप्त राजनीतिक समानता भी जैसे निरर्थक होती जा रही है विषमता के पक मे से राजनीति का उद्धार तो नहीं हुआ सो न सही किन्तु वह तो जब इस दल-दल में गहरी डूबती जा रही है तब आर्थिक क्षेत्र मे समता लाने के प्रयास किये जा सके—यह और भी अधिक कठिन हो गया है।'

इस दृष्टि से राष्ट्रधर्म की रक्षा की बात उन्हे बहुत आवश्यक लगी थी। 10 अगस्त, 1969 को मदसौर चातुर्मास के दौरान अपने एक प्रवचन मे उन्होने राष्ट्रधर्म की महत्ता की गभीर विवेचना की थी। उन्होंने कहा था—

'राष्ट्रधर्म का स्वरूप और राष्ट्रीयता की भावना आसमान से नहीं टपकती बल्कि एक-एक नागरिक के हृदय मे जाग्रत होकर फलती-फूलती है तथा एक समृद्ध शक्ति के रूप में ढलती है।' राष्ट्रधर्म की महत्ता न समझने वालों से उन्होने स्पष्ट प्रश्न किया था—

'क्या दिल्ली मे बैठकर कुछ कानून मात्र बना देने से देश मे परिवर्तन आ जायेगा तथा राष्ट्रधर्म का सर्वत्र पालन होने लगेगा?' उन्होने राष्ट्र के कर्णधार नेताओं की ईमानदारी की बात भी कही थी—

'बुराई को दबाने वाले और अच्छाई को पनपाने वाले कानून बनें—यह अच्छी बात है किन्तु कानून का पालन करवाना आसान नहीं होता स्वय कानून के निर्माता एव शासको के अपने चरित्र और आचरण का प्रश्न भी आता है यदि वे ही कानून के प्रति निष्ठावान नहीं होंगे तो सामान्य जन पर उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा, फिर सत्तास्थित लोगो के स्वार्थो को पूरा करने के लिये कानून में बार-बार सशोधन या परिवर्तन उचित नहीं। जहाँ सत्ता को सेवा का साधन न बना कर स्वार्थो को पूरा करने का साधन बना दिया जाता है वहाँ क्या राष्ट्रधर्म टिक सकता है? स्वतत्रता के चौबीस वर्षो मे भी यदि यहाँ राष्ट्रधर्म की स्थापना नहीं की जा सकी है तो यह स्थिति किसी भी वर्ग के लिये शोभाजनक नहीं है। देश मे व्यक्तियो मे हो या दलों मे—इस अर्से मे सत्ता की लिप्सा ने ऐसा ताण्डव दिखाया है कि सिर्फ राजनीति ही सबके सिरों पर हावी होती चली जा रही है। सत्ता भोग हो

गई है और व्यवसाय बना दी गई है। सेवा लोप हो गई है और भुला दी गई है। इसका प्रभाव यह हुआ है कि सभी जगह सच्चे और खरे लोगों की उपेक्षा हो रही है तथा अवसरवादियों की बन आई है।'

इस सदर्भ मे उन्होंने श्री ठाणाग सूत्र का हवाला देते हुए दस धर्मो के निष्ठापूर्वक पालन की जो बात कही है वह महत्त्व की है—

'दस विहेधम्मे पण्णते तजहा—गामधम्मे, नगरधम्मे, रट्ठधम्मे, पाखण्डधम्मे, कुलधम्मे, गणधम्मे, सघधम्मे, सुत्तधम्मे, चरित्तधम्मे, अत्थिकायधम्मे एव।'

राष्ट्रधर्म की महत्ता को विस्तार से समझाते हुए पूज्य गुरुदेव ने राजकन्या चदनबाला के उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट किया कि राष्ट्र की रक्षा हर स्थिति मे होनी चाहिए तभी तो बन्दी की अवस्था में भी माता ने रथ में बैठे-बैठे चदनबाला को समझाया था कि जिस देश मे तुमने जन्म लिया है, जिस धरती पर तुम पली-पोसी हो उसको पल के लिये भी मत भूलना और जहाँ भी और जैसे भी अवसर मिले उसे पुन स्वतत्र कराने के लिये कितना भी बलिदान करना पड़े उससे कभी पीछे मत हटना। उन्होने कहा था—

'समत्व, समता या साम्य की भावना राष्ट्रधर्म की मूल आत्मा है और जब तक उस मूल को ठुकराया जाता रहेगा तब तक शाखाओ और उपशाखाओ को सींचने से फल कभी नहीं आयेगा।'

यहाँ आकर हम उस बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जो पूज्य आचार्यदेव की साधना का प्रस्थान बिन्दु भी था और लक्ष्य-सिद्धि का शिखर भी। यह बिन्दु था—समता चिन्तन, और शिखर था—समता दर्शन की प्रतिष्ठा। जब हम इन दोनो बिन्दुओ (प्रस्थान बिन्दु और शिखर) के मध्य फैले विस्तार पर दृष्टिपात करते हैं तब आत्मा से परमात्मा तक और व्यक्ति से राष्ट्र तक उनके उस चिन्तन के सूत्र फैले दिखाई देते हैं जो इस युग को उनकी सबसे बड़ी देन है। आचाराग सूत्र भी कहता है—'समियाये धम्मे,' समता ही धर्म है, और आचार्य श्री नानेश ने इस धर्म की विशद व्याख्या करते हुए स्थापित किया कि समता-धर्म तत्त्व के रूप मे बिन्दु से सिधु तक और कण से सुमेरु तक व्याप्त है। आखिर *समता योगी* का सम्बोधन उन्हे यों ही नहीं मिल गया था, उन्होने जीवन भर समता की साधना की थी, उसकी व्याख्या की थी और उसके दर्शन को स्थापित एव लोकप्रिय तथा अनुकरणीय बनाने के लिये अथक प्रयास किये थे। इस समता के उन्होने जो चार सिद्धान्त बताये हैं (सिद्धान्तदर्शन, जीवनदर्शन, आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन) वे वास्तव मे वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को यथार्थ मे परिणत करने के सिद्धान्त हैं। सूत्रकृताग सूत्र में भगवान् का वचन है—

'सव्व जग तू समयाणु पेही
पियमप्पियं कस्स वि नो करेज्जा।'

इसीलिये आचार्य हरिभद्र सूरी ने भी कहा था—'समभाव भाविअप्पा लाहइ मुक्ख न सदहो।'

तब यदि मोक्ष पाना है तो समभाव को अथवा समता भाव को मन, वचन और कर्म में प्रकट करना होगा। यही बात अपने जीवन, चरित्र, आचरण और दर्शन द्वारा आचार्य श्री नानेश ने भली प्रकार स्थापित कर दी। जीवन-जगत्, चितन-व्यवहार, आत्मा-परमात्मा, शरीर-मन, प्रवृत्ति और प्रकृति तथा कर्म और इन्द्रियों को प्रेरित, निर्देशित और नियत्रित करने का एक ही उपचार उन्होने निर्धारित किया था। यही ज्ञान-दर्शन तथा अनुभव-चिन्तन का वह नवनीत था जो उन्हाने अपने मानस क्षीरसिधु को मथकर निकाला था, जो जीवन और जगत् की पीड़ाओं से ऊष्मा प्राप्त कर द्रवित हुआ था और जन-जन के क्षोभ-विक्षाभ तापित हृदय पर शीतल-स्निग्ध लेप बनकर आलेपित हो गया। युगसत के इस अनुपम प्रदेय के लिये मानव समाज उनका सदा ऋणी रहेगा।

◆
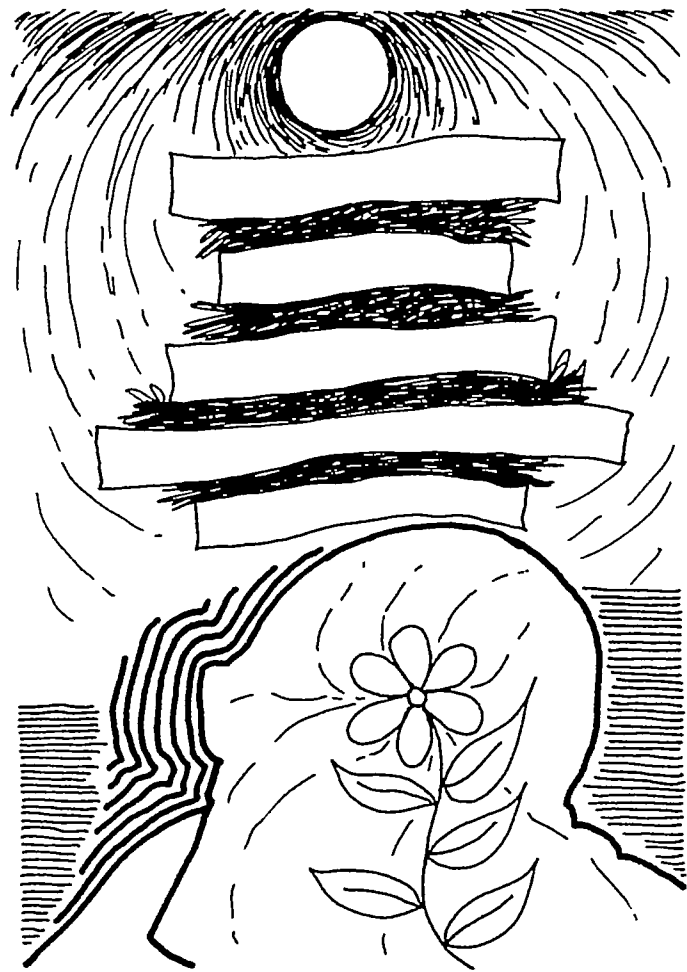
॥ नरेश नवनीत ॥

स्थविर प्रमुख मुनि ज्ञान

एक संत अविचल अविकारी 'नाना' नाम सु धारी
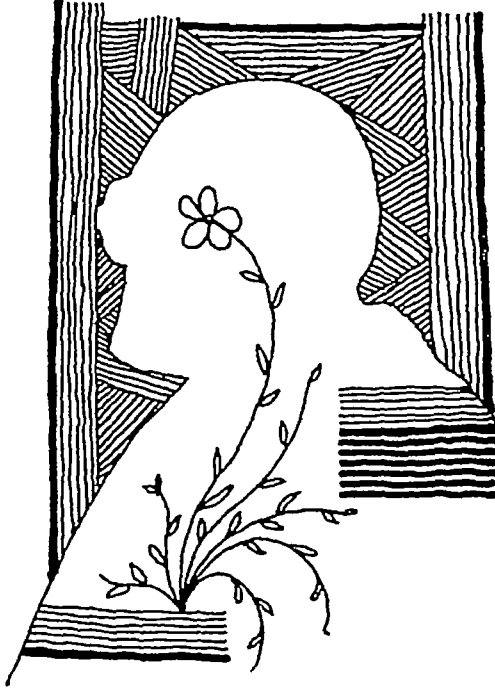
आचार्य श्री नानेश विशिष्ट जीवन-तिथियाँ

जन्मस्थान

दाता, जिला चित्तौड़गढ (राजस्थान)

जन्मतिथि

वि स 1977, ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया

पिता

श्री मोडीलालजी पोखरना

माता

श्रीमती शृगारावाई पोखरना

दीक्षा तिथि

वि स 1996

दीक्षा स्थान

कपासन (राजस्थान)

युवाचार्य पद तिथि

वि स 2019, आश्विन शुक्ला द्वितीया

युवाचार्य पद स्थान

उदयपुर (राज)

आचार्य पद तिथि

वि स 2019, माघ कृष्णा द्वितीया

आचार्य पद स्थान

उदयपुर (राज)

निर्वाण तिथि

वि स 2056, कार्तिक कृष्णा तृतीया
(27 अक्टूवर, 1999 रात्रि 10 41)

निर्वाण स्थान

उदयपुर (राज)

आचार्य श्री नानेश के चातुर्मास-स्थल

सवत्	स्थान	सवत्	स्थान
1997	फलौदी	2019	उदयपुर
1998	बीकानेर	2020	(आ पद) रतलाम
1999	ब्यावर	2021	इन्दौर
2000	बीकानर	2022	रायपुर
2001	सरदारशहर	2023	राजनादगाव
2002	बगड़ी	2024	दुर्ग
2003	ब्यावर	2025	अमरावती
2004	बडी सादड़ी	2026	मन्दसौर
2005	रतलाम	2027	बड़ी सादड़ी
2006	जयपुर	2028	ब्यावर
2007	दिल्ली	2029	जयपुर
2008	दिल्ली	2030	बीकानेर
2009	उदयपुर	2031	सरदारशहर
2010	जोधपुर	2032	देशनोक
2011	कुचेरा	2033	नोखामण्डी
2012	बीकानेर	2034	गगाशहर-भीनासर
2013	गोगोलाव	2035	जोधपुर
2014	कानाड़	2036	अजमेर
2015	जावरा	2037	राणावास
2016	उदयपुर	2038	उदयपुर
2017	उदयपुर	2039	अहमदाबाद
2018	उदयपुर	2040	भावनगर

सवत्	स्थान	सवत्	स्थान
2041	बोरीवली (बम्बई)	2049	उदयरामसर
2042	घाटकोपर (बम्बई)	2050	देशनोक
2043	जलगाँव	2051	नोखामडी
2044	इन्दौर	2052	बीकानेर
2045	रतलाम	2053	भीनासर
2046	कानोड़	2054	ब्यावर
2047	चित्तौड़	2055	उदयपुर
2048	पिपलिया कला	2056	उदयपुर

भूमिका

सभ्यता एव सस्कृति की भूमि भारतवर्ष के राजस्थान प्रान्त का मेवाड़ प्रदेश वीरभूमि के रूप में जगप्रसिद्ध है। एसी वीरभूमि मेवाड़ मे दो प्रकार के वीर जन्म धारण करते रहे है—कर्मवीर और धर्मवीर। कर्मवीरो मे जिस प्रकार राणा साँगा और महाराणा प्रताप प्रसिद्ध है उसी प्रकार धर्मवीरो मे गणेशाचार्य और नानेशाचार्य के नाम प्रमुख रूप से परिगणित हैं।

जहाँ कर्मवीर सुरक्षा के लिए कवच पहनकर, ढाल लेकर, अस्त्र-शस्त्रादि से सज्जित होकर तथा घोड़े पर सवार होकर युद्ध-क्षेत्र मे आ डटते हैं वहाँ धर्मवीर आत्मा की सुरक्षा करन के लिए सयम का कवच, तपश्चर्या की ढाल लेकर महाव्रतो रूपी अस्त्र-शस्त्र से सुशोभित होकर मन रूपी अश्व पर आरोहित हा काम-क्रोधादि शत्रुओ को परास्त करने के लिए विश्व क विलक्षण युद्ध-क्षेत्र में आ डटते है।

ऐसी वीरभूमि मेवाड़ के प्रमुख नगर उदयपुर मे धर्मवीर गणेशाचार्य ने जन्म लिया था। ज्योतिर्धर आचार्यप्रवर श्री जवाहर के सान्निध्य म भागवती दीक्षा

अगीकार की थी, सतत साधना में तन्मय होकर सयम-पथ पर आगे बढते ही चले गये थे। आपश्री को घाणेराव सादड़ी मे हुए स्थानकवासी साधु सम्मेलन मे सर्वानुमति से सर्वसत्तासम्पन्न उपाचार्य बनाया गया था। इस प्रकार आप 1100 से अधिक साधु-साध्वियों के नायक बन गये थे, लेकिन कुछ साधु-साध्वियों की सयमीय शिथिलता निवारणार्थ आपने आचार्यपद त्याग दिया। आपके उत्तराधिकारी बने दाँता के दाता—आचार्य श्री नानेश।

जन्म

दाँता इसी भूमि मेवाड़ का एक छोटा-सा गाँव है जिसकी प्राकृतिक सुषमा विलक्षण है। पर्वतीय अचल मे बसा दाँता रमणीक, प्राकृतिक शोभा मे लिपटा हुआ है। जिस प्रकार अणु में भी विभु की सत्ता होती है, उसी प्रकार इस छोटे-से गाँव मे भी एक विराट व्यक्तित्व का उदय हुआ था। एक लघु शिशु को माता शृगारा ने आज से 64 वर्ष पूर्व जन्म दिया था। किसे मालूम था कि यह नन्हा-सा पौधा भविष्य में विराट् वृक्ष का रूप ले लेगा? कौन जानता था कि उस लघु-सी देह में कितनी तेजस्वी आत्मा विद्यमान थी? यद्यपि शिशु का जन्मगत नाम 'गोवर्धन' रखा गया था, तथापि जिस आत्मा मे अखिल विश्व की रक्षा का भाव भरा हो, उसका नाम 'गोवर्धन' कैसे रहता? सयोग ही समझिये कि सभी से छोटे हाने के कारण यह बालक अपर नाम 'नाना' से सम्बोधित किया जाने लगा। यह नाम ही प्रकारान्तर से इस बालक के भविष्य की प्रवृत्तियों एव गुणो का प्रतीक बना।

वैराग्य की दिशा मे

बाल्यावस्था और किशोरावस्था को पार कर इस बालक ने युवावस्था में प्रवेश किया। यौवन का आवेग और उत्साह अतुलित रूप से उसमे प्रवाहित हो रहा था परन्तु आश्चर्य का विषय था कि उस समय भी उसकी उन्मुक्त चिन्तनधारा निष्काम-साधना की ओर गतिमान थी। उसकी एक ही चिन्ता थी—इस अमूल्य मानव जीवन को किस प्रकार आत्म-विकास के मार्ग पर अग्रसर किया जाए।

यह अनन्त आकाश अविरल उन्नति के लिए उसे जैसे प्रेरित कर रहा था और सपाट मैदान जैसे जीवन मे भी सम रमणीयता को प्राप्त करने की ओर इगित कर रहा था। उसने निश्चय कर लिया कि उसे जीवन का वास्तविक लक्ष्य ओर सत्य प्राप्त करना था। उसकी सारी ऊर्जा जीवन की अनन्त गहराइयो मे प्रवाहित होने लगी। मस्तिष्क के सुषुप्त ततु सक्रिय होने लगे और विचारो का तीव्र प्रवाह अन्तर्मन में चल पड़ा।

एकदा एक अणगार से श्रवण करन का अवसर मिला—पाचवें आरे की पूर्णता पर छठा आरा प्रारम्भ होगा, उस समय का मानव धृति, बल, आयुष्य और काति से अत्यधिक हीन होगा, मानव की आयु घटते-घटते 20 वर्ष ही रह जायेगी, देहमान एक हाथ प्रमाण रहेगा, अतृप्त आहार की इच्छा रहेगी, जो कितना भी कुछ खा लेने पर भी तृप्त नहीं हो सकेगी, खान-पान मासाहार होगा, लोग मनुष्य की खोपड़ी मे पानी लेकर पियेंगे, उस समय के मानव दीन, हीन, दुर्बल, रोगी, नग्न, आचार-विचार हीन, माता-पिता, बहिन, पुत्री का भी विचार नहीं करने वाले होगे, छ वर्ष की स्त्री माता बन जायेगी तथा लोगों का निवास गुफाओ मे पशुतुल्य होगा। यह स्थिति 21000 वर्ष तक चलती रहेगी।

यह वर्णन सुनने के अनन्तर जब यह युवा अश्वारोहित हो अपने गाँव की ओर प्रयाण कर रहा था तब मध्य में विचारो की प्रखरता बढने लगी—'मैंने चार गति, चौरासी लाख योनियो मे दुर्लभ यह मानव तन पाया है, आत्मिक ज्योति को जाग्रत करने के लिए अब मुझे अविराम प्रगति के पथ पर बढते जाना है, आत्मशाति को पाना ही अब मेरा उद्देश्य हो, सभी बन्धनों से मुक्त होकर मुक्ति का विराट् सुख प्राप्त करना ही मेरा अब लक्ष्य बने।'

विचारों की पवित्र धारा मन के शुभ पात्र मे प्रवाहित होने लगी। अनागत मे आने वाले षष्ठ आरे का चित्र मस्तिष्क पर उभरने लगा। अहो! कितनी दयनीय स्थिति होगी मानव की उस समय! कितना पतन हो जायेगा मानवीय सस्कृति का? क्या होगा मेरा उस समय? क्या मुझे भी ना ना ऐसा कभी नहीं हो सकता,

मं कभी भी अपन जीवन को उस दु ख द्वार पर जाने नहीं दूँगा, मुझे अपन सत्पुरुपार्थ स भव पार उतारन वाला सवल, शक्ति प्राप्त करनी है, जो शक्ति वाह्य तत्त्वा स प्राप्त नहीं हो सकती। शक्ति का प्रयोग अतर म करना हागा। विचारा की गति ससार से विराग की ओर वढने लगी। कीचड में जिस प्रकार कमल की निर्लिप्तता बनी रहती है, वैसे ही इनके जीवन की पवित्रता वृद्धिगत हाती चली गई। ससार से वैराग्य का वीज-वपन उसी अरण्य क बीच पीपल वृक्ष के नीचे हुआ था। यहाँ स जीवन की धारा में एक विलक्षण प्रकार का मोड़ आ गया।

अनगार दिशा की खोज मे

आगार से अनगार वनने का, रोगी से विरोगी वनने का, गृहस्थी से सन्यासी वनने का निर्णय भी इसी अरण्य के वीच हुआ था। युवा नाना ने विचारा—दु ख-विमुक्ति और शाश्वत सुख की अवाप्ति क लिए राग से विराग की ओर बढ़ना है। आगारी से अनगारी वनना है। साधना रूप सलिल मे स्नान करने पर ही आत्मशुद्धि हा सकती है। सम्यक् ध्यान द्वारा ही मेरी वृद्धि का सम्यक् विकास हो सकेगा। उसने विचार किया कि आत्मशुद्धि द्वारा मुक्ति पथ पर अग्रसर होने के लिए सही पथ-प्रदर्शक की आवश्यकता होती है। ऐसे पथ-प्रदर्शक ही 'गुरु' पद के अधिकारी होते हैं। सच्चे गुरु के विना यथार्थ ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। अत विचारा की ऊर्जस्वल धारा, पवित्र चिन्तन और दृढ सकल्प के साथ सच्चे गुरु की खाज में घर से निकल पड़े। परन्तु यह खोज इतनी सरल नहीं थी।

गुरु की खोज म यह युवा इधर-उधर भटकने लगा। जहाँ-तहाँ तलाश की। सन्त मुनिराजों की ओर से सुनहले प्रलोभन मिलने लगे। परन्तु उन प्रलोभनों में पडन क लिए इसकी आत्मा कतई तैयार नहीं थी। इसे तो ऐसे सच्चे गुरु की खोज थी जो निस्पृह भाव से सच्चा पथ-प्रदर्शक वन सके। इस खोज में घूमते-घूमते यह राजस्थान के एक प्रमुख नगर कोटा पहुँच गया। वहाँ पर विराजमान शासन के जाज्वल्यमान नक्षत्र, हुक्मगच्छ क सप्तम युवाचार्य शास्त्रज्ञ श्री गणशीलालजी म सा की सोम्य मुखमुद्रा ने आपको गहनता से आकर्पित किया।

युवाचार्यश्रीजी के मुखमण्डल पर अमिताभ तेज था और वह ब्रह्मचर्य की अनुपम शोभा से मण्डित था। ऐसे सौम्य मुखमण्डल को देखकर युवा नाना अभिभूत हा गया और उनके प्रति आकर्षित हो गया। मन में विचार उठने लगे, वास्तव मे उनकी देह ही बताती है कि ये सच्चे साधक है और आचार तथा विचार के धनी हैं। इन्हीं से सही मार्गदर्शन प्राप्त हो सकता है।

ऐसा तेजस्वी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तित्व अन्यत्र मिलना सभव नहीं है। बस, सेवा में उपस्थित होकर निवेदन प्रस्तुत कर दिया—

'हे प्रभो ! मैं आपका शिष्य हूँ। मुझे स्वीकार कर मेरी डूबती हुई इस नैया को भवसागर से पार लगा दीजिए। ज्ञान, ध्यान देकर मुझे इस ससार की कीच से उबार लीजिये।' लेकिन जो निस्पृह साधक होते है, उन्हें शिष्य-लोभ नहीं होता। वे तो अपनी साधना में ही तन्मय रह कर प्रसन्न रहते है। शिष्यत्व का प्रार्थी चाहे एक हो या अनेक, शहर में हो या अरण्य मे हो, उसकी साधना तो आत्म-शुद्धि के लिए ही प्रवाहित होती रहती है।

इस प्रभावशाली युवा के विचारों को सुनकर महायोगी गणेशाचार्य ने सक्षेप मे किन्तु सारगर्भित उत्तर दिया—'देखो भाई, अभी साधु जीवन की वात जाने दो। पहले गृहस्थ जीवन मे ही रहकर अभ्यास करो। सागार से अनगार वनने का निर्णय आवेश मे करना अच्छा नहीं है। साधु जीवन कोई साधारण वात नहीं हे, जा ऐसे ही अपनाया जा सके। कभी-कभी तो साधु जीवन तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलने से भी अधिक कठिन बन जाता है। पाँच महाव्रतो का पालन, परिषह-जय, इन्द्रिय-दमन जैसी क्षमताएँ प्राप्त करना कोई साधारण वात नहीं है।'

गणशाचार्य के निस्पृह किन्तु सटीक विचारों ने मनोमथन को जन्म दिया। उसन अनुभव किया कि सच्चे गुरु तो ये ही हैं। सच्चा वोध तो इनसे ही प्राप्त हागा। ऐसे गुरु ही तारणहार होते हैं। इनके मन म न तो किसी प्रकार का आकर्पण है और न ही शिष्य-लोभ। सभी ओर से निस्पृह होकर जो सदा आत्मसाधना में लीन रहते है, जिसमे किसी प्रकार की स्पृहा या लोभ नहीं होता वह ही अन्य भव्य-पुरुपो का सही पथ-प्रदर्शक वन सकता है। निस्सदेह इनकी साधना सच्ची

है। युवा को विश्वास हो गया कि इनके ज्ञान-दीपक से ही मेरा ज्ञान-दीपक प्रज्वलित हो सकेगा। बस, उसे आधार मिल गया।

विरक्ति के पथ पर

गणेशाचार्य के सुखद सान्निध्य की प्राप्ति अत्यत शातिदायिनी थी और उनके सरक्षण में इस मुमुक्षु की विरक्तानुगामी साधना निरन्तर वृद्धिगत होती चली गई। चित्त ज्ञान-ध्यान की आराधना मे सदा तन्मय रहने लगा। 'मुझे लक्ष्यानुरूप गति करने के लिए पथ प्रशस्त करना है। एसा पथ, जिस पर चलकर मैं अपनी आत्मा का शुद्धिकरण कर सकू। मन-वचन-काय की शुद्धि के साथ आत्मीय विशुद्धि करने वाला सयमीय जीवन ही सारभूत जीवन है।' ऐसे विचार दृढतर होते चले गये।

नव मुमुक्षु की वैराग्य भावना निरन्तर प्रबल से प्रबलतर होती चली जा रही थी। सभी कार्यो में विवेक और सयम के दर्शन होते थे। गणेशाचार्य स्वय भी इसके वैराग्यमय जीवन का परीक्षण करते रहते थे। अनेक सुज्ञ श्रावको ने भी इसकी अनेक बार परीक्षा ली थी। यह सदा परीक्षा म उत्तीर्ण ही रहा था। कई श्रावको ने गणेशाचार्य से कहा—'आपके पास जो वैरागी है, वह वास्तव में हीरा है। भविष्य में यह बड़ा महापुरुष बनेगा। हमने परीक्षा करने के लिए इनको अनेक प्रलोभन दिये, किन्तु यह सभी ओर से निस्पृह है।' वास्तव मे सच्चे स्वर्ण के लिए कसौटी क्या कर सकती है, कुछ नहीं। सच्चे स्वर्ण को कसौटी पर कितना भी कसा जाय, उससे कोई फरक पड़ने वाला नहीं है हर बार शुद्धता की पुष्टि ही होगी।

लक्ष्य-सिद्धि दीक्षा-प्राप्ति

विरक्तानुगामी साधना मे जब इस मुमुक्षु ने परिपक्वता प्राप्त कर ली तब सयमी जीवन प्रान्त करने के लिये उसके प्रयास भी तीव्रतर होने लगे परन्तु इसके लिए पारिवारिक सदस्यो की आज्ञा होनी आवश्यक थी। मुमुक्षु मातुश्री एव भाइयो से आज्ञा पत्र लेने के लिए दाँता गाँव पहुँचा। बहुत प्रयत्न करने पर भी जब इसे आज्ञापत्र प्राप्त नहीं हुआ तब यह अट्टम (तेले) तप की आराधना में तल्लीन हो गया। प्रण था—जब तक आज्ञा नहीं मिलेगी पारणा नहीं करूगा। इस भीष्म प्रतिज्ञा के सामने सब नतमस्तक हो गये और उन्होने आज्ञापत्र प्रदान कर दिया। दीक्षा-स्थान दाँता गॉव के पास ही कपासन रखा गया जहाँ गॉव के बाहर आम्र वृक्षों की शीतल छाया मे श्री गणेशाचार्य ने दीक्षा के प्रत्याख्यान करवाये। हजारो व्यक्ति इस नव साधु के चरणों मे नतमस्तक होते हुए जय-जयकार कर उठे। यह आचार्य एव नवदीक्षित साधु दोनो के लिए परम सौभाग्य का अवसर था क्योकि सुयोग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य मिलना मुश्किल होता है। कहीं सुयोग्य गुरु होता है तो शिष्य योग्य नहीं होता और कहीं योग्य शिष्य होता है तो गुरु योग्य नहीं मिलता, किन्तु यहाँ तो सुयोग्य गुरु को सुयोग्य शिष्य प्राप्त हुआ था।

आदर्श साधुचर्या

सुयोग्य गुरु गणेशाचार्य, सुयोग्य शिष्य नानालाल, सुयोग्य साध्य मुक्ति और सुयोग्य साधन मन-वचन-कर्म की साधना का यह विरल सगम अत्यत मगलकारी सिद्ध हुआ। नवदीक्षित साधु विशेष सतर्क रहता था कि साधुचर्या मे कोई दोष न लगे और जीवनक्रम पूर्णत निर्मल रहे। अप्रमत्त भाव से काया, मन और वाणी का सयम साधता हुआ यह भावी आचार्य स्वय को गुरु के गरिमामय गभीर दायित्व के निर्वाह के योग्य बनाने मे सलग्न हो गया। इस प्रकार तप-साधना के साथ ज्ञान-साधना का जो क्रम आरम हुआ उसमे आगमो का तलस्पर्शी ज्ञान साधु नानालाल का प्रथम लक्ष्य बना। तीव्र मेधा, प्रखर बुद्धि और सतत प्रयासो से उसने शीघ्र ही स्वय को शास्त्रों के ज्ञान में पारगत कर लिया। धर्म, दर्शन और अध्यात्म के अध्ययन के साथ ही न्याय, भाष्य, टीका, चूर्णि आदि का भी गम्भीर अध्ययन चलता रहा। षड्दर्शनो का भी आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया था। वेदान्त, गीता, महाभारत, कुरान जैसे धार्मिक ग्रथो के साथ आपने अनेक भाषाओ पर भी अधिकार प्राप्त कर लिया। सक्षेप म कहा जाये तो आपने सभी प्रकार के शास्त्रीय ग्रन्थो का गभीर अध्ययन किया था। यही कारण था कि आप दर्शन के गूढ रहस्यो को जानने म समर्थ हो गये थे।

सयमी जीवन के साथ आप मे विनम्रता का भी विशेष गुण उपस्थित था। आप गुरुदेव के इगितानुसार आचरण करने वाले तो थे ही, अपने सभी ज्येष्ठ

गुरु-भ्राताओ के प्रति भी समान रूप से विनम्र और उदार थे। रत्नत्रय-सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति तथा सम्यग्दर्शन एव सम्यक्चारित्र की सुरक्षा में आप सदा तन्मय रहते थे। परीषह एव उपसर्गो का समभाव-पूर्वक सहन करने की विशिष्ट क्षमता भी आपने प्राप्त कर ली थी। श्री गणेशाचार्य के सरक्षण मे आप तप और ताप के मार्ग से विशिप रूप से निखरने लगे। जब मिट्टी कुम्मकार के हाथों में अपना समर्पण कर देती है तब कुम्भकार उस म पानी मिलाकर उसे रौंद डालता है और लौंदा बनाकर चाक पर चढा कर उसे घट का रूप दे पाता है। तदुपरान्त आग म पका कर उसे परिपक्व बना देता है। इतने परीषह सहन करने के बाद ही वह घट बनिताओं के सिर पर चढ कर पिपासुओ की प्यास बुझाने मे सक्षम बनता है। ठीक इसी प्रकार आप ने भी अपना जीवन सर्वतोभावेन गुरु के चरणो मे समर्पित कर दिया था। आपकी समर्पणा भी विलक्षण प्रकार की थी। दीक्षा अगीकार करने के बाद स्वास्थ्य को लकर आपने एक-दो चातुर्मास अलग किये, बाकी सभी वर्षावास गुरुदेव की सवा मे ही किय। गणेशाचार्य ने आप के समर्पित जीवन का अत्यत तन्मयता के साथ नवनिर्माण किया। परिणामस्वरूप वे आचार्य नानेश के रूप मे लाखों लोगों की श्रद्धा-भक्ति के पात्र बने। इस रूप में उनके सिरो पर सुशोभित हुए।

युवाचार्य पद की दिशा मे

स्वर्गीय गुरुदेव गणेशाचार्य जब उदयपुर मे स्थिरवास करते विराजे हुए थे, तब आप भी वहीं रहकर गुरुदेव की तन्मयता के साथ सेवा करते थे। गणेशाचार्य की साधना से सारा जैन समाज अच्छी तरह परिचित था तथा शिष्य नानालाल की सयमनिष्ठा एव सिद्धान्तों से विशेष रूप से प्रभावित जनता ने जब गणेशाचार्य के स्थिरवास के विषय में सुना तो वह उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ी। दर्शनार्थियों का प्राय ताता-सा लगा रहता था। उनके स्वास्थ्य में लगातार गिरावट देख कर श्रावक लोग चितन करने लगे—भविष्य में सघ को सभालन वाला कौन सुयोग्य शासक होगा? उस समय सामान्य श्रावक आपकी प्रतिभा से पूर्णत परिचित नहीं थे क्योंकि आपकी साधना अन्तर्मुखी ही अधिक थी। यही कारण था कि सघ के अनुयायी आपकी योग्यता का समुचित मूल्याकन नहीं कर पाये थे, इसलिए वे एक दिन गणेशाचार्य की सेवा मे पहुँच ही गये और अपनी अन्त वेदना अभिव्यक्त कर डाली। गणेशाचार्य ने स्मित के साथ कहा—'आप लोगो को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, मैं ऐसा गुदड़ी का लाल दूगा, जिसे देखकर आप आश्चर्य करेंगे। उसके द्वारा शासन प्रभावना देखकर तो आप लोग मुझे भी भूल जाएँगे।' आपकी तप साधना से गुरुवर कितने प्रभावित थे उसका यह कथन प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इसके बाद वह शुभ दिवस भी आया जब साधु नानालाल की युवाचार्यत्व की दिशा मे यात्रा पूरी हुई। वह शुभ दिवस था सवत् 2019 आसोज सुदी दूज। उदयपुर के राजमहलों मे लगभग 30-35 हजार लोगो के बीच आप को गणेशाचार्य ने चादर प्रदान की। चादर प्रदान करने से पूर्व तक सूर्य घटाटोप बादलों से आच्छादित था, किन्तु जिस क्षण आपको युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाई गई उसी क्षण सूर्य बादलों को चीरता हुआ बाहर आ गया, जैसे वह इसी बात का प्रतीक था कि जिस प्रकार बादलों को हटाकर मैं प्रकाशमान हो रहा हूँ, उसी प्रकार यह सत भी सभी आपदाओं एव विपत्तियों को हटा कर भू-मण्डल को अपनी आभा से आलोकित कर देगा। उस विलक्षण सयोग को देखकर सघ के अधिकारियो को यह विश्वास हो गया कि युवाचार्य नानालाल वास्तव में सघ के जाज्वल्यमान नक्षत्र होंगे।

आचार्य पद की मजिल

माघ कृष्णा दूज को गणेशाचार्य जब सथारापूर्वक पडितमरण को प्राप्त हो गये तब आपश्री आचार्य पद पर आसीन हुए। उस समय सघ एक विकट मोड़ पर खड़ा था। श्रमण सघ से गणेशाचार्य के विलग हो जाने के कारण श्रमणसघ इस साधुमार्गी सघ से लगभग विपरीत-सा हो गया था। स्थान-स्थान पर ऐसा प्रचार-प्रसार किया जाने लगा था कि नव आचार्य को ठहरने के लिए स्थान नहीं दिया जाये, आहार-पानी नहीं बहराया जाये, व्याख्यान सुनने नहीं जाये, आदि। लेकिन सूर्य की प्रचण्ड रश्मियों के सामने अन्धकार कितने समय तक रुक सकता है? आखिर उसे भागना ही पड़ता है। इसी प्रकार आपश्री के विशुद्ध सयम, प्रखर

प्रतिभा, विलक्षण विद्वत्ता एव अपरिमेय पुण्य के समक्ष कुप्रचारकों का अन्धकार हटता चला गया। प्रचण्ड सूर्य के प्रकाश की भाँति आपका निष्कलक गौरव बढ़ता ही चला गया।

आचार्यत्व का गौरवशाली इतिहास

समता की अमृतधारा—जब आप आचार्य पद पर आसीन हुए तब आप को यह विचार आया कि मैं तो अपनी साधना कर ही रहा हूँ, किन्तु मानव समाज के लिए कौन-सी ऐसी व्यवस्था दी जाये जिससे वह भी शाति के वातावरण मे जी सके। इस कठिन प्रश्न का समाधान पाने के लिए आप विचारो की गहराइयो मे उतरे और अत में आपने समाधान खोज ही लिया। यह समाधान था आपके चिन्तन का परिणाम समता का दर्शन, जिसे आपने समझा, व्याख्यायित किया और जिसक व्यवहार का मार्ग दिखाया। आपकी स्थापना थी कि यदि समता के धरातल पर व्यक्ति से लेकर विश्व तक की व्यवस्था की जाय तो शाति का सुखद वातावरण निर्मित हो सकता है और विषमता की धू-धू करती आग शात हो सकती है।

यों तो अनेक दार्शनिकों ने विश्व की समस्याओ पर गभीर चिन्तन किया था और कई दार्शनिको ने कतिपय समाधान भी जनता के समक्ष रखे थे किन्तु विविध समस्याओं के समाधान क्या हो सकत हैं, इसके सबध म उनकी दृष्टि अस्पष्ट एव अव्यावहारिक भी थी। पर आचार्यप्रवर ने विश्व की विविध विषम समस्याओ के निवारणार्थ समता के चिन्तन और व्यवहार का राजमार्ग दिखा दिया। समता-सिद्धान्त के द्वारा विश्व की विषम समस्याआ का किस प्रकार समाधान किया जा सकता है इसकी जो गहन एव व्यापक विवेचना प्रस्तुत की, उसमे उन अन्य सभी उपायो का भी समावेश हो जाता है जिनकी विवेचना किसी भी रूप मे अन्य विचारको ने की थी। समता सिद्धान्त एक ऐसा प्रभावी आदर्श सिद्धान्त है जिसके धरातल पर यदि व्यक्ति परिवार, समाज, गाँव, नगर, प्रान्त, राष्ट्र एव विश्व स्तर पर व्यवस्था की जाय तो सर्वत्र शाति, सुख, सतोष और स्नेह भाव की स्थापना हो सकती है। आचार्यप्रवर ने समता-दर्शन को मुख्यतया चार विभागों मे विभक्त केया है—(1) समता सिद्धान्त-दर्शन, (2) समता जीवन-दर्शन, (3) समता आत्म-दर्शन, (4) समता परमात्म-दर्शन।

पहले के दो दर्शन तो जीवन की शुद्धि के मूल हेतु हैं। सिद्धान्त दर्शन द्वारा व्यक्तियो के विचार शुद्ध और परिष्कृत किये जाते हैं, जीवन-दर्शन उनके आचरण मे शुद्धि लाता है। आत्मदर्शन और परमात्मदर्शन शाश्वत शाति की दिशा मे अग्रसर करते हैं।

इस प्रकार विषमता की विश्वव्यापी समस्या का निराकरण समतादर्शन के द्वारा अच्छी तरह से किया जा सकता है। दार्शनिक जगत् को आचार्यप्रवर की यह एक अपूर्व देन है जिसके कारण आपको समतादर्शन-प्रणेता की सार्थक उपाधि से विभूषित किया गया है।

भागवती दीक्षाएँ—आपके आचार्यत्व काल में धर्म एव शासन की अत्यधिक प्रभावना हुई। लगभग ढाई सौ मुमुक्षु आत्माओं ने आपकी नेश्राय मे आगार से अनगार धर्म मे प्रवेश किया। एक साथ 7, 2, 2, 5, 21, 25 दीक्षाएँ भी आचार्यप्रवर ने प्रदान कीं जो गत सैकड़ो वर्षो मे स्थानकवासी समाज में किसी एक आचार्य द्वारा एक साथ प्रदान की गई दीक्षाओ का अनोखा कीर्तिमान है। आज आपश्री के आज्ञानुवर्ती सैकड़ों साधु-साध्वी अनेकानेक क्षेत्रो मे जिनशासन का तुमुल शखानाद कर रहे हैं तथा दिग्-दिगन्त तक आपश्री की गौरव-गरिमा का प्रसार कर रहे है। आपश्री के सयमी जीवन से प्रभावित होकर आपके चरणों में सभी वर्गो एव समाजों के लोग शरण पाकर कृतकृत्य हुए।

पतितोद्धार का ऐतिहासिक कार्य—आपश्री का जब मालव प्रान्त के छोटे-छोटे गाँवों में विचरण हो रहा था, तब आप को ज्ञात हुआ कि कई हिन्दू गोरक्षक मुसलमान एव ईसाई बनने जा रहे हैं। इस जानकारी से आप की अहिसक भावना उद्वेलित हो उठी और आप ने गाँव-गाँव मे जाकर उन लोगों के मध्य अहिसा की मार्मिक विवेचना की तथा मानव-जीवन की दुर्लभता का ज्ञान कराया। आप के विद्वत्तापूर्ण प्रवचनों से प्रभावित होकर हजारा व्यक्तियो न सप्त कुव्यसनों का

त्याग कर सदाचारपूर्ण जीवन स्वीकार किया। ऐसे लोगो को 'धर्मपाल' की सज्ञा से सम्बोधित किया गया। आज उनकी सख्या 80 हजार से एक लाख तक है। इस ऐतिहासिक कार्य के कारण आपश्री को जनता ने 'धर्मपाल प्रतिबोधक' की उपाधि स विभूषित किया।

ध्याता-विधाता समीक्षण ध्यान के—आज के युग मे ध्यान की बहुत चर्चा है। जनता क सामन विविध प्रकार की ध्यान प्रक्रियाएँ आ रही थीं लेकिन उन ध्यान-प्रक्रियाआ स जनता को पर्याप्त सन्तोष नहीं मिल पा रहा था। आपश्री तो स्वय महान् ध्यानयागी थे तथा आप की ध्यान-साधना गहराइयो मे उतरने वाली होती थी। आपके समक्ष कई वर्गो के प्रबुद्धजनो न ध्यान के सबध मे जिज्ञासाएँ रखीं ता आप ने तनावमुक्ति क साथ आत्मशाति देने वाले 'समीक्षण ध्यान' की अभिनव विवेचना प्रस्तुत की। समीक्षण अर्थात् सम्यग्+ईक्षण—सम्यक् दृष्टि से देखना। सम्यक्—समतापूर्वक, अखिल जगत् का ईक्षण—देखना। जब यथार्थता के परिप्रेक्ष्य में देखने की हमारी स्थिति बनेगी तभी तनावमुक्ति एव आत्मशान्ति हम मिल सकेगी। इस प्रकार आप की वृत्ति अध्यात्म के नये-नये रहस्यो को खोजने की रही थी।

साहित्य-प्रणयन का क्षेत्र—आचार्यदेव का व्यक्तित्व जितना विशुद्ध रूप में निखरा हुआ था आपका कृतित्व भी उतने ही विशुद्ध रूप मे निखरा था। विश्व की विषमतम समस्या का विनिवारण करने के लिए *'समतादर्शन और व्यवहार'* नामक पुस्तक मे आचार्यदेव का मौलिक चिन्तन अन्तस्तल की गहराइयों से प्रादुर्भूत हुआ, साथ ही मानसिक तनाव को समाप्त कर शान्ति देने वाला समीक्षण ध्यान भी आचार्यदेव की अन्तश्चेतना का ही स्फुल्लिग है। इसके अतिरिक्त आचार्यप्रवर के तत्वावधान मे *'कर्मप्रकृति'* जैसे गहन ग्रन्थ का सम्पादन-अनुवादन हुआ। स्वय आचार्यप्रवर ने *आचाराग सूत्र, भगवती सूत्र, अन्तद्दशाग सूत्र, कल्प सूत्र* आदि अनक शास्त्रो की आगम-सम्मत हृदयस्पर्शी अभिनव विवेचना प्रस्तुत की। *'गहरी पर्त के हस्ताक्षर'* आपश्री के चिन्तन की मौलिक कृति है। *समीक्षण धारा, पर्दे के पीछे, क्रोध समीक्षण, मानसमीक्षण, मायासमीक्षण, लोभसमीक्षण, आत्मसमीक्षण, ऐसे जीये,* आदि ध्यान और समीक्षण सबधी महत्त्वपूर्ण साहित्य है। इसके अतिरिक्त सिद्धान्त दक्षता को उजागर करने वाला आप का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—*जिण धम्मो*, जो मानव मात्र के विचारो को परिष्कृत करने वाली अनुपम रचना है। आप के द्वारा परिष्कृत एव आपके सत्सान्निध्य मे रचित *'जवाहराचार्य यशोविजय महाकाव्यम्'* सस्कृत के महाकाव्यों में परिगणित होने योग्य एक महत्त्वपूर्ण कृति है। कथाओ के रूप मे आपश्री क प्रवचनो के कतिपय महत्त्वपूर्ण सकलन हैं—*नल-दमयन्ती, लक्ष्यवेध और कुकुम के पगलिये।* आपका प्रवचन साहित्य भी विविध रूपों में प्रकाशित हो चुका है। आचार्यप्रवर के कृतित्व की यह अनुपम देन मानव मात्र के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

सैद्धान्तिक एकता के हिमायती

आचार्यप्रवर को मचस्थ एकता कभी नहीं भाई, अर्थात् एक मच पर एक साथ बैठकर भाषण तो दे देना परन्तु बाद म परस्पर एक दूसरे की निदा करना। वे सदा सैद्धान्तिक एकता के पक्षधर रहे थे।

इस दृष्टि से जैन *धर्म के सर्वाधिक महान् पर्व सवत्सरी को एक ही दिन* मनाये जाने के लिए भी आचार्यप्रवर ने स्पष्ट प्रस्ताव रखा था। उन्होने कहा था कि सम्पूर्ण जैन समाज या श्वेताम्बर समाज एक होकर जो भी तिथि निश्चित करेगा, मैं उस दिन सवत्सरी मनाने के लिए तैयार हूँ। इस प्रकार का उदार दृष्टिकोण अन्य जैन सम्प्रदायो द्वारा नहीं बन पाने के कारण अभी तक सवत्सरी एक नहीं हो पाई है।

युवाचार्य की नियुक्ति

आपश्री ने आज से 8 वर्ष पूर्व साधुमार्गी सघ का उत्तरदायित्व, तरुण तपस्वी, सेवाभावी शास्त्रज्ञ श्री रामलालजी म सा को सौंप दिया था। इस प्रकार उन्हे सघ का युवाचार्य बना दिया था। इसक लगभग 4 वर्ष बाद कुछ मतभेद को लेकर सघ से कतिपय साधु-साध्वियों का निष्कासन/बहिर्गमन हुआ। उस समय सघ में भारी ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न होना स्वाभाविक था। महापुरुषों का

जीवन सघर्षपूर्ण होता ही है। स्वय भगवान् महावीर को अपने समय में अपने ससार पक्षीय सबधियों का प्रबल विरोध सहना पड़ा था परन्तु उन्होंने उस स्थिति का दृढता एव साहसपूर्वक सामना किया था। आचार्य श्री नानेश ने भी ऐसी ही विकट स्थिति मे तथा अपनी वृद्धावस्था के बावजूद अपूर्व साहस एव विशिष्ट समता-दृष्टि का परिचय देकर सघ को सुस्थिरता प्रदान की। शरीर के रुग्ण होने पर भी बीकानेर से उदयपुर तक विहार करके सघ-सगठन एव जनजागरण का शखनाद कर समाज मे चेतना जगाई। किडनी तथा ब्लडप्रेशर से सबधित अनेक व्याधियो के होते हुए भी आपने सहनशीलता और साहस कभी नहीं छोड़ा। जीवैषणा-लोकैषणा से आपकी चेतना ऊपर उठ चुकी थी। अब दवा आदि बाह्य उपचारो से भी आप परे हट गये तथा डाइलेसिस करने से स्पष्टत इन्कार कर दिया। यहाँ तक कह दिया, जब भी ऐसा समय आएगा मैं सथारा ग्रहण कर लूगा। इस प्रकार वे भौतिक देह में रहकर भी अभौतिक साधना मे लगे रहे। आत्मशक्ति के जागरण की यह अपूर्व साधना थी।

महाप्रयाण की तैयारी और मुक्ति

कभी साहस न छोड़ने वाला यह आत्मबली रोग और वृद्धावस्था जैसे भौतिक शत्रुओ से सतत सघर्षशील रहकर अपनी मुक्ति के मार्ग की साधना करता रहा। यद्यपि उन्होने कह दिया था कि रोगो के विकटतर होने की स्थिति मे औषध लेने अथवा किसी चिकित्सा-पद्धति की शरण मे जाने की अपेक्षा वे सथारा लेना पसद करेंगे, परन्तु सथारे की प्रक्रिया तो वे किसी रूप में प्रारभ कर ही चुके थे। आहार-पानी का अनुपात लगातार घटाते जा रहे थे। अब उन्होने औषध-सेवन, रोग-परीक्षण और चिकित्सको के परामर्श से भी पूर्णत इन्कार कर दिया था। लगभग 5-6 माह तक ऐसी स्थिति चलती रही। इस बीच उन्हें जैसे आभास सा होने लगा था कि उनके महाप्रयाण की वेला निकटतर आ रही थी इसलिए अपनी जीवनचर्या तथा साधना के प्रति वे विशेष रूप से सतर्क हो गये थे। अपनी सेवा-परिचर्या मे सलग्न स्थविर प्रमुख श्री ज्ञानमुनिजी से उन्होंने अनेक बार कहा था कि ध्यान रखना कि कहीं मैं खाली हाथ न चला जाऊँ। युवाचार्यप्रवर को भी सकेत दे दिया था कि जीवन की अतिम साधना सथारे का लाभ उन्हे अवश्य दिला दे जिससे वे खाली न चले जायें। उनकी अस्वस्थता शनै शनै बढ़ती जा रही थी, रोग प्रबलतर होते जा रहे थे तथा जराग्रस्त शरीर भी क्षीणतर होता जा रहा था। इस स्थिति मे सभी सासारिक आकर्षणो से स्वय को मुक्त करते हुए वे आत्मलीन होने की स्थिति मे पहुँचते जा रहे थे। एक प्रकार से समाधि जैसी अवस्था उन्होने प्राप्त कर ली थी यद्यपि आत्मचेतना मे कोई कमी नहीं आई थी। उनकी इस गिरती हुई स्थिति के अहसास ने सभी को चिंतित कर दिया था। वे महासमाधि जैसी अवस्था मे पहुँचते जा रहे थे। श्री ज्ञानमुनिजी ने इस विषम स्थिति का सकेत सभी श्रावको को दे दिया था।

25 अक्टूबर, 1999 को स्थिति और बिगड़ गई। 26 अक्टूबर को जब चिकित्सक उनके स्वास्थ्य-परीक्षण के लिए आये तब उन्होने किसी भी प्रकार के परीक्षण से स्पष्टत मना कर दिया। मध्यरात्रि तक ऐसी ही स्थिति चलती रही। तब युवाचार्य श्री रामलालजी ने उनसे पूछा—'भगवन् तबियत कैसी है ?' इस पर आचार्यश्री ने सत-सतियो आदि से खम्मत-खामणा की बात कही। बुधवार 27 अक्टूबर को प्रात काल श्री ज्ञानमुनिजी ने विभिन्न रूपो मे दूध अथवा पानी ग्रहण करने का आचार्यश्री से निवेदन किया परन्तु उन्होने कोई आग्रह स्वीकार नहीं किया। विगत दो-तीन दिनो से आचार्यप्रवर दूध या पानी कुछ नहीं ले रहे थे। उस दिन भी प्रात काल से कुछ नहीं लिया था। उनके विचारो को जानने के लिए स्थ प्रमुख श्री ज्ञानमुनिजी ने पूछा—'भगवन् क्या सथारा करना है ?' इस पर गुरुदेव ने आँखों और चेहरे से अपनी सहमति दर्शा दी। स्थिति की गभीरता को समझते हुए उन्होंने सत-सतियो एव श्रावको की उपस्थिति मे पुन सथारे के सबध मे पूछा तब आचार्यदेव ने स्पष्ट रूप से अपनी स्वीकृति दे दी। उनकी भावना की पुष्टि के लिये स्थ प्रमुख ज्ञानमुनिजी ने कहा—'भगवन् सथारा करना है तो हाथ जोड़ दीजिये।' इस पर उन्होने सबके सामने हाथ जोड़ दिये। अब यह स्पष्ट हो गया था कि आचार्यप्रवर पूर्ण जागरूकता के साथ सथारे के लिए तत्पर थे परन्तु किसी को सथारा पच्चक्खाने का साहस नहीं हो रहा था। स्थविर प्रमुख ने एक बार पुन निवेदन किया, 'दूध पी ले, पानी ले ले' इस पर आचार्यश्री ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब स्थविर प्रमुख ने स्पष्ट पूछा—'क्या सथारा करा दूँ?' इस पर

आचार्यश्री ने मुख से बोल कर स्पष्ट शब्दो मे कहा—'पच्चक्खा दो।' आचार्यश्री के दृढ निश्चय का यह अतिम सकेत था। विलम्ब का अब अवकाश नहीं था अत युवाचार्य श्री रामलालजी न स्थविरप्रमुख श्री ज्ञानमुनिजी से सथारा पच्चक्खाने के लिये फरमाया तब साधु-साध्वियो एव श्रावक-श्राविकाआ की उपस्थिति एव साक्षी मे 9 45 पर सथारा करा दिया गया जिसे आचार्यप्रवर ने पूरी चेतना मे ग्रहण किया। इसके उपरात साय 5 35 बज युवाचार्यश्रीजी ने चौविहार सथारा भी करा दिया।

आचार्यप्रवर अब पूर्ण शाति की अवस्था में प्रशान्त भाव से आत्म-समाधि म लीन हा गये। अव न अवयवा मे कोई गति थी, न शरीर म किसी प्रकार की हलचल। समाधि गहनतर होती चली गई और जिस अवस्था म उन्होंने सथारा लिया था बिलकुल उसी अवस्था मे रात्रि मे 10 बजकर 41 मिनट पर पूर्ण समाधि के साथ उनकी आत्मा ने शरीर का त्याग कर दिया। एक दिव्य प्रकाश दिखाई दिया और विलुप्त हो गया। इस अलोकिक घटनाक्रम पर सभी उपस्थित जन आश्चर्यचकित थे। परम समाधि के इस रूप मे रमण करते हुए उनका इस प्रकार शरीर त्यागना इस बात का स्पष्ट प्रमाण था कि सभी कर्मबधनो से मुक्त हो आत्मा अपना उज्ज्वलतम रूप प्राप्त कर परमात्मा मे विलीन हा गई थी। इस पकार एक तेजस्वी सूर्य इस लोक की अपनी यात्रा पूर्ण कर दिव्यलोक मे उदित हाने क लिए अस्ताचलगामी हुआ।

आचार्यप्रवर का भौतिक रूप से निर्वाण हो गया परन्तु श्रावक-श्राविकाओ और साधु-साध्वियो के हृदय एव चिन्तन म दृढ सकल्पो के रूप मे वे अभी भी विद्यमान हैं अत यह सभी का पावन दायित्व है कि उनकी आशाओ और अपेक्षाओं क अनुरूप धर्मसघ एव चतुर्विध सघ की गतिविधियो का सचालन पूर्ण सजगता एव समर्पणा भाव से करते रहें। सघ के सभी घटका में पूर्ण एकता एव सामजस्य की स्थिति वनी रहे, यह भी आवश्यक है क्योंकि आचार्यश्री के आदर्शो के अनुरूप व्यसनमुक्त सुसस्कारित समता समाज की स्थापना का लक्ष्य तभी पूरा करना सभव होगा।

आचार्यश्री वर्तमान जीवन की विभीषिकाआ, सामान्य व्यक्ति की समस्याओं तथा जीवन मे व्याप्त कुण्ठा एव तनाव की स्थितियों से चितित थे। उनकी कामना एक ऐसे समाज की स्थापना की थी जिसमे सभी जन समानता के स्तर पर मनोवेगो, मनोविकारो, व्यसनों तथा विभिन्न तनावो से मुक्त रह कर आत्मविकास की दिशा मे अग्रसर होते रहे और इस हेतु समीक्षण ध्यान तथा आत्मसमीक्षण का मार्ग अपनायें। उनकी इस अभिलाषा की पूर्ति के लिए व्यापक स्तर पर प्रयास करने होगे जिससे समाज से छुआछूत और ऊँच-नीच का भेद तो मिटे ही 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की कल्पना भी साकार हो सके। जीवदया और आत्मकल्याण के जा कार्य विविध क्षेत्रों मे चल रह हैं, उन्हें और अधिक वैविध्यपूर्ण बनाना होगा तथा उनका अन्य क्षेत्रा में विस्तार भी करना होगा।

आचार्य श्री नानेश दया, प्रेम, क्षमा, करुणा, त्याग, तपस्या जैसे गुणों की साक्षात् मूर्ति थे। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सिद्धान्त उनकी जीवनचर्या मे समाये हुए थे। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र का उनका जीवन अनुपम उदाहरण था। धर्म जैसे उनके शरीर म मूर्तिमत हुआ था, उनकी वाणी में बोलता था ओर उनके आचरण में गति करता था। कर्म, ज्ञान और चितन की त्रयी का उन्हाने अपने जीवन मे सिद्ध कर लिया था और लाखा लोगो के लिए प्रेरणा क दिव्य स्रोत बने थे। भले ही वे भगवान न हो परन्तु अपने गुणा, ज्ञान-गरिमा, चरित्र-वैभव, कर्म-प्रवाह और चमत्कारी गुणो के कारण, समाज के लिए ता भगवान के ही रूप थे। उनके दर्शन, स्मरण और सान्निध्य के कारण चमत्कारो की जो घटनाएँ सब कहीं घटित हुईं वे उनकी आत्मशक्ति की प्रवलता तथा उनके भक्तो की दृढ आस्था क प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। धर्म की स्थापना के लिए उन्होंने जो भगीरथ प्रयास किये, वे उन्हें निश्चय ही धर्म सस्थापक के रूप मे स्थापित करते हैं। समाज और व्यक्तियो क उद्धार के लिए उन्हाने जिन मार्गो की खोज की तथा आत्मोद्धार की जो दिशा दिखाई वह उन्हे एक एसे युग-त्राता के रूप में प्रतिष्ठित करती है जैसे मानवता क कल्याण क लिए सदिया म अवतरित हाते हैं और अपने युग को कृतार्थ कर जाते है। ◆

॥ निर्झर नागेश ॥
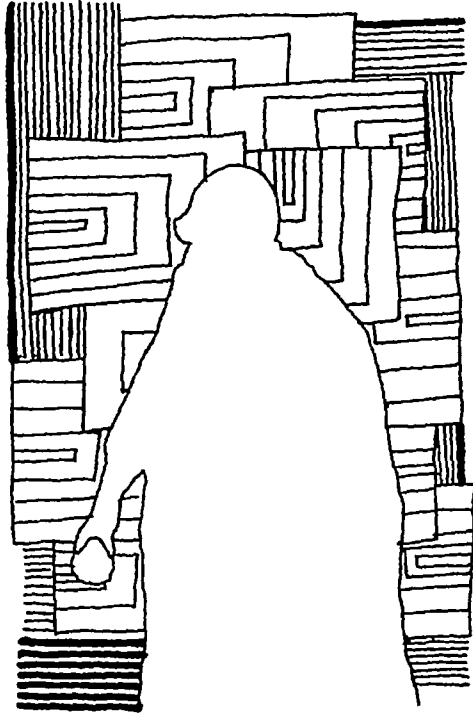
संस्मरण

साधना जगत् का दिव्य पथिक

समता विभूति, समीक्षण ध्यान योगी, परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म सा का जीवन समता, सेवा, सहिष्णुता, वात्सल्य, दूरदर्शिता आदि गुणा से ओत-प्रोत था। आकृति-प्रकृति एव मनोवृत्ति से वे उच्चकोटि के आदर्श आचार्य थे। उनके चिन्तन मे मौलिकता, विचारो मे एकरूपता, करनी व कथनी में समानता तथा हृदय मे विशालता का असीम सागर हिलोरें लेता था। उनके महान् व्यक्तित्व को शब्दो की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। अपार प्रज्ञा के धनी, विद्वद्वर्य शिरोमणि स्वर्गीय गुरुदेव के जीवन में हिमालय की उच्चता, सागर की गहराई तथा अध्यात्म की गहनता के जो गुण थे वे सभी के लिये सदैव प्रेरणा का स्रोत रहेंगे। गुरुदेव की प्रवचन शैली बेजोड़ थी। उनकी वाणी में ओज तथा व्यक्तित्व मे अद्वितीय गाभीर्य था।

पूज्य गुरुदेव की इन्हीं विशिष्टताओ के कारण वे जैन-अजैन सभी के हृदयहार थे। उनके सारगर्भित प्रवचनों में सभी धर्मों के सदर्भो का समावेश रहता था। गुरुदेव के महान् व्यक्तित्व की उपमा अगूर से दी जा सकती है जिसमे सरसता एव मिठास का अखड भण्डार होता है। आपने धर्म की पावन ज्योति हर गाँव, हर शहर तथा हर घर मे ही नहीं हर व्यक्ति के हृदय मे भी जगाई थी, अपनी अखण्ड साधना से जिनशासन की बगिया को सरसब्ज बनाया था तथा अपना सर्वस्व जन-मगलकारी कार्यो पर न्योछावर कर दिया था।

आचार्यश्री को अप्रतिम समतादर्शी तथा अनुपम धर्म-अनुष्ठाता के रूप में जाना जाता है। साधुमार्गी जैन सघ तो विशेष रूप से आचार्यश्री के महान् उपकारों का चिर ऋणी रहेगा। वे विश्व के एक ऐसे महान् आध्यात्मिक चिकित्सक थे जिन्होने मन व आत्मा के रोगो की चिकित्सा का अनूठा कार्य

किया। गुरुदेव की अमोघ वाणी के प्रभाव से एक लाख से भी अधिक बलाई जाति के लोग धर्मपाल बने जिन्हे 'धर्मपाल जैन' के सम्माननीय नाम से जाना जाता है तथा जो व्यसनमुक्त एव सुसस्कारित जीवन जी रहे हैं। रतलाम म एक साथ 25 दीक्षाआ तथा अन्यत्र हुई (15-15-12-21) दीक्षाओं के कीर्तिमान आचार्यश्री की गोरवशाली व्यक्तित्व श्रेष्ठता के परिचायक हैं। पूज्य गुरुदेव प्रत्येक कार्य अन्तरात्मा की साक्षी से करते थे। आप आचार-सम्पदा को सर्वाधिक महत्त्व देते थे इसी कारण आपने योग्यतम सत महापुरुष आचार्यप्रवर श्री रामलालजी म सा को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

गुरु की आज्ञा के प्रति तर्क-वितर्क तथा शका-सशय के भाव एव वाद-विवाद की अविनयशील स्थितियाँ उत्पन्न ही नहीं होने देनी चाहिए। 'आज्ञा गुरुणा-विचारणीया' शिष्य को पूर्ण विश्वास होना चाहिये कि धर्म के तत्त्वों को समझने में गुरु के सिवाय दूसरा कोई भी समर्थ नहीं होता। गुरु के प्रति अश्रद्धा रखने वाला तथा गुरु की आलोचना करने वाला व्यक्ति पाप कर्मो का बध करके भव-भवातर वढ़ाता है। गुरु से विमुख होकर भगवान् का भजन करना भी फलप्रद नहीं होता, गुरु की कृपा होने पर ही मनुष्य भगवान् को पा सकता है अन्यथा भव समुद्र से पार होकर मुक्ति पाना असम्भव है।

श्रद्धेय गुरुदेव का व्यक्तित्व कितना महान् था इसका निरूपण नहीं किया जा सकता। क्षीरसागर के जल का स्वाद पूरा समुद्र पीकर नहीं, बल्कि अजलि भर जल पीकर भी जाना जा सकता है वैसे ही गुरुदेव का व्यक्तित्व कितना विराट् था इसका अनुमान उनके कतिपय गुणो से ही लगाया जा सकता है। गुरुदेव के अनेकानेक गुणों में एक महत्त्वपूर्ण गुण था 'सरलता व सहजता' का। साधक जीवन की विशेपता व महानता का मापदण्ड ही यह है कि वह कितना सहज व सरल है। जिसका अत एव बाह्य दोनों प्रकार का जीवन जितना सहज व सरल होता है वह उतना ही प्रेरणादायी होता है। हमारे गुरुदेव इतने महान् होते हुए भी सदेव हर व्यक्ति के साथ सरलता का ही व्यवहार करते थे, कभी कोई दुराव नहीं दभाव नहीं, जो था वह सब खुली किताब की तरह था। विनम्रता भी हमारे गुरुदेव

के व्यक्तित्व की एक अन्य विशेषता थी। ज्ञानवत साधक स्वत ही विनम्र होता है और वही मोक्ष-मार्ग का पथिक बनता है। विनयवान साधक अपने मधुर व्यवहार से क्रोधी से क्राधी व्यक्ति को अपने वश में कर लेता है तथा सबका प्रिय पात्र बन जाता है। मुझे गुरुदेव से सबधित सुना हुआ एक सस्मरण याद आ रहा है। जब पूज्य गुरुदेव मुनि अवस्था में थे तब की घटना है। एक बार तेज प्रकृति के सत मुनिश्री रतनलालजी म सा स्वर्गीय गुरुदेव श्री गणेशीलालजी म सा के पास आये और कहने लगे—'गुरुदेव, ये छोटे सत नानालालजी म सा कैसे हैं? दूसरे सारे सतो पर मुझे क्रोध आता है पर इन पर चाहते हुए भी क्रोध नहीं आता, मै कारण नहीं समझ पा रहा हूँ।' गुरुदेव ने कारण समझाते हुए कहा, 'मुनिराज! ये मुनिश्री अत्यत विनम्र एव मधुरभाषी है। इनके मधुर व्यवहार के सामने आपकी क्रोधरूपी आग शात हो जाती है।' मुनिश्री को कारण समझ मे आ गया और व आपश्री के विनम्र एव मधुर व्यवहार से इतने प्रभावित हुए कि उन्होने अपने जीवन का परिवर्तन कर लिया। वे भी क्षमा के अवतार बन गये। ऐसे चमत्कारी व्यक्तित्व वाले थे हमारे आचार्यदेव।

आचार्य श्री नानेश युगप्रणेता महापुरुष थे। तप, सयम एव साधना की गहराइयो मे उतर कर आपने युग को अभिनव रूप से मोडा था। आपश्री को वचन-सिद्धि भी प्राप्त थी। जो भी श्रीमुख से सहज रूप मे निकल जाता था वह होकर रहता था। यही नहीं आपकी सयमपूर्ण साधना की विशुद्धता से शरीर का कण-कण अनुवासित रहता था। जहाँ भी आपके चरण पड़ते वह रजकण भी चमत्कारिक शक्ति देने वाला बन जाता था। जब आप ध्यान साधना में निमग्न हो जाते थे तव आपका भव्य मुखमण्डल विशेष आभामय दन जाता था। आपके नेत्रों से समता, मैत्री, करुणा की दिव्य किरणें निकलती रहती थीं जो सामने वाले व्यक्ति के कालुष्य को समाप्त करके एक विशिष्ट प्रकार की शाति की अनुभूति करा जाती थीं। जिस प्रकार भयकर गर्मी से सतप्त व्यक्ति को यदि वातानुकूलित कमरे मे बिठा दिया जाये तो उस शीतलता महसूस होने लगती है वैसे ही कपाय और रोग-सतप्त व्यक्ति को गुरुदेव क सान्निध्य मे शाति महसूस होने लगती

थी। प्रत्यक्ष देखी हुई घटना है—स 2037 का पावस प्रवास गुरुदेव के साथ राणावास विद्यानगरी मे था। एक दिन का प्रसग है। वैयावच्च सेवा के कार्य से निवृत्त होकर मैं शयन की तैयारी कर रहा था तभी यह भव्य दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हुआ कि स्वर्गीय गुरुदेव के पैरों को कोई दबा रहा था अर्थात् वैयावच्च कर रहा था। दिव्य प्रकाश हो रहा था। सभी सन्त महापुरुष विश्राम कर रहे थे। मैंने विचार किया कि गुरुदेव की सेवा करने वाला यह कौन है? निकट पहुँचा तब तक वह शक्ति अदृश्य हो गयी थी। गुरुदेव के चरण स्पर्श किये तो वे गुलाब जैसी सुवास से सुगधित हा रहे थे। ठीक ही कहा है शास्त्रकारो ने—

धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिसा सजमो तवो।
देषा वित नभसति जस्स धम्मे सया मणो।।1।।

धर्म उत्कृष्ट मगल है। उस धर्म का लक्षण है—अहिसा, सयम और तप। जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है उसे देव भी नमस्कार करते हैं। हमारे आचार्यदेव भी देवो के लिये पूजनीय तथा वन्दनीय थे।

गुरुदेव का जीवन प्रतिकूल अवस्थाओं, विषमताओ एव विघटन की घड़ियों मे भी सदैव निर्विकार रहता था। उनके मुखारविन्द पर समता व शीतलता की स्मित फुहार हमे भी आत्माभिमुख एव समतामय होने की प्रेरणा देती थी। समता, सहिष्णुता व आत्मानुसधान की त्रिवेणी-रूप आपका जीवन खुली किताब के समान था।

गुरुदेव का व्यक्तित्व महान्, अनुपम एव बहुआयामी था जिसे शब्दों की परिधि मे सजोया नहीं जा सकता। श्रद्धा और उपासना के भाव ही उसकी पहिचान कराते है। मेरे जीवन का कण-कण इन पावन चरणो का ऋणी है जिनक रजकणो ने मुझ जैसे लोहे को स्वर्ण बनाने मे, पत्थर से प्रतिमा बनाने में, मिट्टी को सुन्दर कुम्भ का रूप देने में और मेरे अधकारमय जीवन में प्रकाश लाने के लिए प्रयास किया था। भौतिक ससार की मृग-मरीचिका से अलिप्त रहकर आपने अमरता के पथ का प्रदर्शन किया। समीक्षण ध्यान के इस महान् साधक के समतानुरजित जीवन से समता का दिव्य सदेश मिला। जिन्होंने अहिसा, सयम तप की त्रिवेणी मे स्नान करवाया ऐसे दिव्य सत के विराट् व्यक्तित्व, कृतित्व तथा सयममूलक साधना का लेखा-जोखा प्रस्तुत करना बिन्दु मे सिधु के विस्तार एव अणु मे सुमेरु की विशालता को समेटने के समान कठिन है।

गुरुदेव के गुण-रत्नो के आलोकबिम्बो से हम सभी का जीवन प्रतिबिम्बित होता रहे यही मेरी मगल कामना है। शास्त्रज्ञ, तरुण तपस्वी, प्रशान्तमना हुक्मगच्छ के उदीयमान नक्षत्र, आचार्यप्रवर पूज्यश्री 1008 श्री रामलालजी म सा को चतुर्विध सघ का सम्पूर्ण एव समर्पित सहयोग प्रदान कर हम गुरुदेव की आकाक्षाओं को पूर्ण करे, यही कामना है। सघ का प्रत्येक सदस्य आत्मनिष्ठ, सघनिष्ठ और गुरुनिष्ठ होकर चले जिससे हुक्मसघ का गौरव निरन्तर प्रवर्धमान हो और शासनदेव की कृपा रहे, यही अभ्यर्थना है। ◆

—मुनि विनय

मेरे प्रेरणा-पुज

प्रेरणा की महिमा अपार है। वह यदि मनुष्य को देवत्व के पथ पर अग्रसर कर सकती है तो दानवता के गर्त में गिरा भी सकती है। परिणाम क्या होगा, यह प्रेरक शक्ति पर निर्भर करता है। इसीलिये सद्प्रेरणा प्राप्त करने के लिये मनुष्य ऋषियों, मुनियों, सतो और ज्ञानियो की शरण ढूँढ़ता रहता है और उनकी वदना-अर्चना में सलग्न रहता है। महामत्र नवकार ऐसी ही दिव्य विभूतियो के स्मरण का मत्र है जिनकी प्रेरणा कल्याणकारी सिद्ध होती है। इस मत्र के तृतीय पद के अधिकारी आचार्य श्री नानेश दिव्य प्रेरणा के ऐसे ही पुज थे जिन्होंने केवल उपदेशो के माध्यम से ही प्रेरणा नहीं दी थी बल्कि जिनके व्यक्तित्व और कृतित्व का हर कोण, हर प्रसग ऐसा प्रेरणादायी रहा था कि उनके आभामडल मे आने वाला प्रत्येक व्यक्ति सहज प्रेरित हो उठता था चाहे वह विरोधी से विरोधी व विषमवृत्ति वाला ही क्यों न हो।

ग्रामीणाचल दाता के एक साधारण परिवार में जन्म लेने वाली इस दिव्य विभूति क बाल्य-जीवन के प्रसगों पर जब दृष्टि जाती है तो आश्चर्य होता है कि उस अवस्था में भी वे बच्चो स लेकर वृद्धा तक के लिए सहज प्रेरणा-पुज बने हुए थे। उनकी मधुर व शिष्ट भाषा बच्चो को सहज प्रेरित करती जिससे बचपन में ही बच्चे उनको अपना नेता मानकर उनका पूर्ण आदर सत्कार करते थ। उनके करुणार्द्र हृदय की पर-दु ख कातर सेवावृत्ति से ग्रामवासी इतने प्रभावित थे कि बड़े बुजुर्ग भी छोटे बड़े कार्यो में उनसे विचार-विमर्श करते रहते।

मुनिधर्म मे प्रवेश करने के बाद भी उनकी अल्पभाषिता एव मधुर व्यवहार बडे साधुओ के लिए भी कितना प्रेरणादायी था इसका प्रमाण श्रीचदजी म सा जैसे महापुरुषा का यह कथन है—भाई हमारी बोली तो फूटी झालर की तरह है पर मुनि नाना के शब्द तो घडी के टकोरे हैं जो समय पर बोलते हैं, जब भी बोलते हैं सहज भाव स बोलते हैं और सब ध्यानपूर्वक श्रवण करते हैं।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के बाद लगभग 300 मुमुक्षु आत्माएँ प्रव्रजित हुई पर आपने कभी किसी को अपने शब्दो के प्रलोभन से अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयास नहीं किया बल्कि आपके व्यक्तित्व की सहज झलक से ही प्रेरणा पाकर वे चरणों में समर्पित हो गये। शिष्य-शिष्याओ के प्रति आपका ऐसा समत्वपूर्ण व्यवहार था कि साधारण से साधारण तथा विद्वान से विद्वान यही सोचता था कि मेरे पर गुरुदेव की सबसे ज्यादा कृपा है। ऐसा ही श्रावक-श्राविकाआ का हाल था। आचार्यश्री भले उपदेश न देते, पाटे पर मौन विराजकर दृष्टि की झलक अथवा आशीर्वाद की मुद्रा में हाथ भी ऊपर उठा देते तो हजारों मीलों से आया हुआ दर्शनार्थी कृतकृत्य हो जाता था।

आज जगह-जगह पर समता भवन, चिकित्सालय, विद्यालय, छात्रावास, वाचनालय, साहित्य प्रकाशन, शोध सस्थान, स्वधर्मी सहयोग जैसी प्रवृत्तियों के जो राष्ट्रव्यापी कार्य चल रहे हैं उनके सचालक व सस्थापक स्वय जानते हैं कि उनके लिये आचार्यश्री ने कभी उनको अपने वचनो से प्रेरणा नहीं दी, सिर्फ उनकी मूकप्रेरणा शक्ति ही काम कर रही होती थी।

आचार्यश्री के व्यक्तित्व मे ही ऐसी प्रेरणादायी शक्ति निहित थी कि उन्हे किसी को किसी कार्य के लिए दबाव देकर प्रेरित नहीं करना पड़ता था चाहे सत-सती वर्ग के अध्ययन की बात हो, चाहे लेखन, प्रवचन, विचरण आदि की ही बात क्यों न हो, सिर्फ आपके मामूली से कर्तव्य-बोध मात्र से ही सभी प्रेरित होकर तत्पर बन जाते थे।

आपने कभी गरीब-अमीर की भेद-रेखा मे भक्तों को नहीं बाटा। चाहे वह करोड़पति हो अथवा साधारण व्यक्ति, बड़ा राजनेता हो या ग्रामीण, सब के प्रति आपकी दृष्टि समान रहती थी। आपकी प्रवचन शैली मे ऐसा सहज प्रभाव होता था कि सभी अपने कर्तव्यबोध की प्रेरणा पाकर कर्तव्य पथ पर अपने आप जुट जाते थे। धार्मिक अनुष्ठान हेतु भी आप कभी किसी के पीछे नहीं पड़े। आपकी कर्तव्य दृष्टि से हित-मित वचन जो उच्चरित होते वही उनके लिए महान् प्रेरणा पुज बन जाते थे और वे अपने आप ही त्याग तप में सलग्न हो जाते।

ज्यादा क्या कहूँ—मेरे जीवन को सवारने मे उस महापुरुष की प्रेरणा ही प्रबल रही है। जहाँ सधिवात (गठिया) की व्याधि से तन जकड़ा हुआ था, पडित रत्न, आदर्श त्यागी श्री धर्मेशमुनिजी म सा की कृपा से पूज्यश्री के दर्शन मात्र से मेरी व्याधि का शमन हुआ और सयमित होकर कुछ शासन सेवा करने के लिये उद्यत हुआ हूँ। ऐसे थे मेरे प्रेरणा-पुज आचार्य श्री नानेश। ◆

—मुनि प्रशम

सफेद कपडे वाले बाबा ने रचा इतिहास

'मेरा बल तो सयम साधना है, मुझे सयम, त्याग, साधना पर नाज।
सदा शीश पर चमकता रहे समीक्षण, समता का ताज।।'

अद्‌भुत घटना। थादला से रावटी की तरफ का आदिवासी क्षेत्र। पहाड़ी इलाका। आचार्यश्री ऊँचे-नीचे पहाडों मे मुनि-मडली के साथ विहार कर रहे थे।

पूरा क्षेत्र आदिवासियों का था। आचार्यश्री जी को सफेद वस्त्रो मे मुख पर मुखवस्त्रिका बाँधे देख झोपड़ियो से बाहर आकर बोले, 'सफेद कपड़ा वाला बाबा जाईरियो है।' सब देखने को आ गये तब आचार्यश्री जी भी खड़े हो गये। भीलो ने कहा, 'बाबा हमारी झोपड़ी मे सब चालो मक्का की रोटी-दूध खाई लो।' मैंने उन्हें समझाया, 'मामा (आदिवासियों को मामा कहते हैं) ये थारा घेर रोटी नथी खावेगा। ये थे जैन आचार्य है। तमे शराब पीओ, शिकार करो, माँस खाओ, पानी छान कर नथी पीओ इणी वास्ते तमारा घेर को पानी भी नहीं ले। तमो शराब, माँस, शिकार करनो छोड़ दो तो तमारा मनख जनम सुधर जावेगा तमोने आशीर्वाद देवेगा तो तमे सुखी थई जाओगा।' पटेल मुखिया को तड़वी कहते हैं। तड़वी ने सबसे कहा, 'चोखी बात छे या तो आपणे भला नी बात छे।' आदिवासी भाइयो ने सफेद वस्त्रधारी बाबा के चरण छुए व सौगध ली हाथ जोड़ कर। आचार्यश्री जी ने कहा, 'तुम सब राम के भक्त हो तमारा पास तीर कामणी है जो राम की सेना के पास था। राम की मर्यादा मे चालोगा तो सुखी हो जावोगे। बुराई छोड़ो।' आदिवासी महिलाए थीं। सब बाते सुन रही थीं। बाबा की बात सबके गले उतर गई व सबों ने हाथ जोड़ कर सौगध ली। बाबा ने कहा 'सूरज के सामने सौगध लिया है तो पालन करना है।' बाबा के कदम आगे बढ़ गये। आदिवासी महिला बच्चे कुछ दूर साथ चले, वापिस अपनी-अपनी झोपड़ियो मे चले गये। एक चमत्कार हो गया।

धर्मपाल समाज का पचीसवाँ तीर्थंकर

रतलाम चातुर्मास के बाद खाचरोद-नागदा की तरफ विहार किया तब नागदा से 12 कि मी दूर ग्राम गुराड़िया में बलाई जाति मे जातिगत कार्यक्रम था। तब श्री सीताराम धर्मपाल ने प्रार्थना की। मामाजी चपालालजी पीरोदिया साथ थे। ग्राम गुराडिया गये। रात्रि विश्राम एक परिवार के घर के बाहर के आँगन के टीन के चबूतरे पर किया। प्रात काल सब बलाई जाति के हरिजन इकट्ठा होकर व्याख्यान सुनने आये। आचार्यप्रवर ने कहा मनुष्य से घृणा कोई नहीं करना, बुराइयो से घृणा करनी है। आधे घटा का प्रभावशाली व्याख्यान-धर्मोपदेश सुनकर उनका जीवन बदल गया। सबो ने हाथ जोड़ कर कुव्यसनो, शराब, मॉस आदि का त्याग किया व वादा किया कि धर्म के पथ पर चलेगे। धर्मनाथ भगवान् की प्रार्थना की थी तो धर्मपाल नाम से उनका गौरव बढाया। तभी से धर्मपाल प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। धर्मपाल समाज का उद्धार किया इसलिये वे आचार्यश्री जी को अपना पचीसवाँ तीर्थंकर मानने लगे।

बलाई धर्मपाल जैन हो गये। अ भा साधुमार्गी जैन सघ की एक क्रान्तिकारी प्रवृत्ति धर्मपाल आन्दोलन हो गई।

महात्मा गाधी ने अस्पृश्यता निवारण तथा छुआछूत मिटाने का आदोलन चलाया था, उसके बाद आचार्यश्री जी ने धर्मोपदेश देकर वही कार्य किया। हजारों धर्मपाल परिवार आचार्य भगवन् के अनुयायी बन गये। यह मानव-कल्याण का ऐसा क्रान्तिकारी कार्य था जिसने नया इतिहास रचा। ◆

—मानव मुनि

अपनी जीवन-निधि को कहाँ खोजूँ?

तनहा से हम,
मगर तनहा तो नहीं,
आपकी यादें तो है साथ,
बस, आप ही तो नहीं।

महान् सगीतकारों के कण्ठ से निकली रागिनियाँ बन्द हो जाती हैं फिर भी उनके मधुर स्वर कानों मे वर्षों तक गूँजते रहते हैं। स्वप्न प्रभात वेला मे तिरोहित हो जाते हैं किन्तु उनकी स्मृतियाँ वर्षो तक मानस को बेचैन किये रहती है। हाथ मे लगी हुई मेहदी थोड़े समय बाद सूख जाती है लेकिन उसके माण्डने कई दिनों तक सुन्दरता बनाये रखते हैं। गुलाब का फूल थोड़े समय बाद ही कुम्हलाने लगता है परन्तु उसकी सुवास उसकी पँखुड़ियों मे स्थायी रूप से बसी रह जाती है।

ठीक ऐसा ही धर्म-धारणा क सजग प्रहरी आचार्य श्री नानेश के सबध में सत्य है। वे चाहे हम लोगो की दृष्टि से आझल हाकर अनत मे विलीन हा चुके हो तथापि उनका आदर्श जीवन ओर प्रेरणादायी सदेश सदा हमारा मार्गदर्शन करता रहेगा।

आचार्यप्रवर के अनन्त गरिमा मण्डित जीवन का हर क्षण मानव-कल्याण हतु समर्पित था। उनस सबधित स्मृतियाँ मेरे मानसपटल पर स्थायी रूप से अकित हो गई हैं। किस प्रसग को उजागर करूँ किसे नहीं, मैं समझ नहीं पाती हूँ।

रेडियम का एक कण भी वहुमूल्य होता है। उसकी एक कनी भी असाध्य रागा का दूर कर सकती है। एसी अमूल्य वस्तु का यदि पूरा पहाड ही मिल जाये तो जो स्थिति प्राप्तकर्ता की होगी, ठीक वैसी ही मनोदशा मेरी भी हो रही है। जिस किसी ने उनका अमूल्य सान्निध्य एक पल को भी पाया, वह निहाल हो गया। विषम भव रोगो से मुक्ति की उस जैसे औषध ही मिल गई।

जव मैं छोटी थी तव मैंने सुना था कि कामधेनु, कल्पवृक्ष और चितामणि कतिपय ऐसी वस्तुएँ हैं जा सभी मनोकामनाएँ पूर्ण कर देती हैं। मैं सोचती थी कि इन तीना मे स एक भी वस्तु यदि किसी को प्राप्त हो जाये तो वह कितना भाग्यशाली होगा' 'काश' इनमे से एक वस्तु भी मुझे मिलती तो यह माँग लेती वह माँग लेती।' मैंने जब आचार्यश्री के दर्शन किये तो मुझे अनायास ही वह खजाना मिल गया जिसकी मैंने कामना की थी। एक अकिचन को जैसे कामधेनु कल्पवृक्ष और चितामणि तीनों ही मिल गये थे।

आचार्यश्री के महान् व्यक्तित्व का नैकट्य प्राप्त कर मेरी कल्पनाएँ कल्पनाएँ न रह कर अनुपम उपलब्धियो मे वदल गई। वे तीनो पदार्थ तो केवल इहलोक को ही सुखी करने वाले हो सकते थ परन्तु आचार्यश्री का सान्निध्य तो इहलोक और परलोक दाना को ही सुधारने वाला बना। आपश्री के चरणो में वैठ कर मैंने जो चाहा, वह पाया। मुझ जैसी चरण-शरण जिन अन्य आत्माओं को प्राप्त हुई उनका जीवन भी धन्य हो गया।

शासन प्रभावना के लिये देश के विभिन्न अचलो में हजारो मील की पदयात्राएँ करते हुए मार्ग मे समागत लाखो लोगो को आपने सत्य, अहिसा, प्रेम और भाईचार का पाठ पढ़ाकर उन्हाने मानवीय आदर्शो पर चलने का पुनीत सदेश दिया। शिष्यमण्डली के साथ आपके श्रीचरण जिन गली-कूचों, मार्ग-चौराहों पर पड़े उनकी धूल भी चरणो के स्पर्श से पावन बन गई। जहाँ-जहाँ यह चलता-फिरता तीर्थ पहुँचा वहाँ-वहाँ जैसे कोई समवसरण ही लग गया।

आपश्री का सम्पूर्ण जीवन सद्आदर्शो और सद्गुणो का अक्षय भण्डार था। उस भण्डार के एक अश की भी व्याख्या कर पाना मुझ जैसी अबोध के सामर्थ्य से परे है।

सुन्दर कमल की जडे कर्दम में जमी होती है, गुलाब के फूल की जीवनदायिनी टहनियाँ काँटो से भरी होती हैं और शीतल चदन का वृक्ष सर्पो से आवेष्ठित रहता है फिर भी ये अपनी प्रकृति का त्याग नहीं करते। ठीक इसी प्रकार सघर्षो और समस्याओं से घिरे रहने के उपरान्त भी सदा प्रसन्नचित्त एव शान्त बने रहकर आप मानवमात्र के अनत उपकार हेतु सक्रिय रहते थे। वेदना चाहे शारीरिक हो या मानसिक, आपश्री को कभी विचलित नहीं कर पाई। न लाखों लोगो का समर्पण एव सम्मान भाव आपको पथ-च्युत कर सका। सभी स्थितियो में पूर्ण तटस्थ तथा सभी विषमताओं मे समभाव सुरक्षित रखने वाले, ऐसे समता-विभूति आचार्य श्री नानेश के पावन चरणों में मैं अपनी भावाजलि समर्पित करती हूँ। ◆

—साध्वी रश्मि

समता की प्रयोगशाला आचार्य श्री नानेश

असाधारण व्यक्तित्व, विशिप्ट गुण-पुज, चेतना के स्वरूप का शब्दाकन दु साध्य है। व्यक्ति में एकाध गुण वैशिप्ट्य तो फिर भी सुलभ है कितु भव्य

आत्मगुणों का सर्वांगीण विकास विरल चेतना मे ही उपलब्ध होता है। ऐ आत्मगुणों क वैभव स समृद्ध व्यक्तित्व के धनी थे आचार्य श्री नानेश।

आपके जीवन का कौनसा पृष्ठ खोलूँ? जीवन-पृष्ठ का प्रत्येक शब्द इत भव्य है कि जहाँ भी दृष्टिपात करती हूँ, वहीं दृष्टि अटक कर रह जाती है। आप उच्चकोटि की साधना से स्वय को साध लिया था। साधना का प्रारम्भिक चर आदर्श बिन्दुओ पर आधृत होकर उठा और निरतर लक्ष्यो की सपूर्ति में बढ़ता गया। श्रीचरणों की प्रत्यक्ष सेवा का समय यद्यपि स्वल्प रहा तथापि जब भी देखा, क्षमा व समता की सरिता मे स्वय को अवगाहित ही पाया। शासन व्यवस्थाओ के सुदर सचालन के साथ-साथ आत्म साधना के प्रति आप मे अपूर्व सजगता थी। शासनोत्कर्ष के प्रति आपका प्रगाढ़ अनुराग हमारे लिये प्रेरणा का विषय है। उदात्त चितन की उर्वर धरा से निष्पन्न समता-दर्शन तथा समीक्षण-ध्यान आपके द्वारा प्रदत्त विश्व की अनुपम निधि है। विज्ञान क इस युग में जहॉ बुद्धिजीवी वर्ग प्रयोगशाला म सिद्ध तथ्यो पर ही विश्वास व्यक्त करता है वहीं आचार्य श्री नानेश ने अपने जीवन से समता का प्रायोगिक स्वरूप मुखरकर अनोखा तथ्य सिद्ध किया। आगमिक सदर्भो में प्रभु महावीर, गजसुकुमाल आदि के आदर्श चरित्र पढे जाते हैं किन्तु आचार्यश्री के जीवन म चरित्र का वैसा आदर्श रूप प्रत्यक्ष दखा जाता था, समता की उज्ज्वल धारा के रूप मे जिसकी अलग पहचान बनी है और यह धारा सतत गतिशील रही है। क्रूर, नृशस, पाशविक वृत्तियुक्त बजरहृदय को भी जिसने उर्वर बनाकर उसमे धर्म बीज का वपन कर दिया, ऐसे समताधीश के परीक्षण भी कम नहीं हुए। कसौटी स्वर्ण क लिये होती है। विरोधों ने उनके जीवन को और अधिक निखारा ही था। जिस उच्च स्तर पर उनकी साधना पहुँच चुकी थी उसकी यथार्थ अनुभूति उस स्तर तक पहुँचने वाले ही कर सकते हैं। विश्वव्यापी गुत्थियो को सुलझाने की दृष्टि से उनका यह चितन महत्त्वपूर्ण है बशर्ते कि उस पर दृष्टिपात हो। समता की यह अजस्रधारा जो आपके आचरणमय जीवन से प्रस्फुटित हुई है विश्व को आपकी अमूल्य देन है।

एकनिष्ठ, अनुशासित सघ-वाटिका का सौंदर्य आपने बखूबी सवारा था। इस वाटिका मे हर साधक अपनी साधना की सुवास निर्बाध ले सकता है। अब हमारा दायित्व है कि इस वाटिका के उन्नयन मे अपना यथाशक्य यागदान दे। जिन हाथों मे उन्होने अपना उत्तरदायित्व सौपा है, वे हाथ सशक्त हैं। कुशल है। प्रणवीर आचार्य श्री रामेश के कर्मठ साहसपूर्ण-नेतृत्व मे शासन का भव्य अभ्युदय सन्निहित है। चतुर्विध सघ का प्रत्येक सदस्य उनके निर्देशो की अनुपालना मे वफादार बने, यही मेरा आह्वान है, यही आराध्य के प्रति हमारी सच्ची आस्था की अभिव्यक्ति होगी। आस्था जीवन का प्राण है। सप्राण जीवन की महत्ता को समझ सके, ऐसी निर्मल बुद्धि का उद्‌भव हो। ◆

—महाश्रमणी इद्रकवर

यादो के गुलाब

तीर्थंकर की पाट परम्परा मे आचार्य चतुर्विध सघ के चहुँमुखी विकास मे विशिष्ट योगदान प्रदान करते है। आचार्यो का आचार, विचार एव व्यवहार सर्वथा आदर्श एव अनुकरणीय हाता है। परमात्मा और आत्मा के बीच की कड़ी, महात्मा रूप आचार्य भगवन् ही होते हैं। महामत्र क पाच पदा मे आचार्य पद तीसरा पद है। साधुपद के गुणो से ओतप्रोत व्यक्ति को आचार्य पद प्रदान किया जाता है। चादर चारित्र की महिमा की दर बढती है इसलिए उसे आचार्य पद की चादर प्रदान की जाती है।

नीतिकार ने कहा है—

सहस्रेषु मिथ्यादृष्टि वरमएको अणुवती,
सहस्रेषु अणुव्रती वरमएको महाव्रती,
सहस्रेषु महाव्रती वरमएको तात्विक,
तात्विक सम पात्र न भूतो न भविष्यति।

अर्थात् हजारो मिथ्या दृष्टियो म एक अणुव्रती महान् होता है, हजारो अणुव्रतियो म एक महाव्रती श्रेष्ठ होता है, हजारो महाव्रतियो मे एक तत्वज्ञानी श्रेष्ठ होता है, ऐस तत्वज्ञानी आचार्य न भूत काल मे हुए न भविष्य मे होंगे ?

इस श्लोक पर चिन्तन करती हूँ तो मुझे लगता है कि वास्तव में आचार्य नानेश भी प्रभु महावीर की पाट परम्परा के ज्योतिर्धर आचार्यो की शृखला मे सर्वगुण-सपन्न आचार्य थे। आचार्य भगवन् का बचपन विनय गुण-सपन्न था। आपश्री का अपनी मातुश्री, गुरुजन अध्यापक वर्ग, रत्नाधिक सता एव आराध्य देव शातक्राति क अग्रदूत आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के प्रति विशेष भक्तिभाव एव समर्पण भाव था। उन्होने हमेशा श्रेष्ठ बनने का लक्ष्य रखा ज्येष्ठ नहीं, उसी का परिणाम था कि आपश्री सर्वतोमुखी व्यक्तित्व के धनी आचार्य नानेश के रूप म चतुर्विध सघ, समाज एव राष्ट्र के बीच परम श्रद्धा के पात्र बन कर पूजित हुए। व आचार्य के 88 गुणा से सम्पन्न थे और इस कारण आचार्यो की पाट परम्परा का सुशोभित करने के सर्वथा अधिकारी थे। परम विदुषी, अनासक्त योगिनी मनोहर कवर जी म सा फरमाते थे कि आचार्य नानेश सर्वगुण सपन्न है। एस आचार्य स सबधित कतिपय स्मृतियाँ उनक उल्लेख हेतु मुझे विवश कर रही हैं।

अनाथो के नाथ, अत्राणो के त्राण

एक एकाकिनी साध्वी महाराष्ट्र से विहार कर मालव क्षेत्र मे पहुँची। गाँव-गाँव में श्रावक उस उपेक्षा की नजरो से देखते। साध्वी अपमान का घूँट पीकर चुप रह जाती। अमर नगरी पिपल्या मण्डी पहुँचते ही उसके धैर्य का बाँध टूट गया। जोर-जोर से आर्त्तनाद करने लगी। पूछा गया—क्या कारण है रोने का? उत्तर मिला—'मैं अकेली रह गई, एक सती का स्वर्गवास हो गया, दूसरी सती सयम छोडकर चली गई मैं अकेली रही गई। मुझ अकेली को देख श्रावक पूछते है कि और सतियाँ कहाँ हैं ? सतीजी का अकेला नहीं कल्पता ? मैं अकेली हूँ, अब क्या करूं मुझ अनाथ को सुयोग्य गुरु की शरण चाहिये।'

पिपल्या मण्डी के श्रावक घोर तपस्वी श्री बलभद्र मुनिजी म सा , घोर तपस्वी श्री अमरचन्दजी म सा के बड़े भ्राता श्री जमनालालजी पामेचा ने आचार्य भगवन् नानेश के चरणों में सती श्री श्रेयास कवरजी की व्यथा लिखी। लौटती डाक से आचार्य श्री नानेश द्वारा लिखवाया पत्र मिला—'फिलहाल सतीजी की व्यवस्था आपके निकटवर्ती गाँव जावरा मे विराजित वयोवृद्ध महासती तेजकवरजी म सा की सेवा में एक भाई, एक बाई की व्यवस्था करके जावरा पहुँचा दे। प्रत्यक्ष मिलने पर दण्ड, प्रायश्चित्त, नवीन दीक्षा देकर शासन मे सम्मिलित किया ।'

वह साध्वी जब तक आचार्य भगवन् के पास से पत्र नहीं आया था 15 दिन मे 5 फुलके भी न खा सकी, 5 घण्टे भी चैन से नींद न ले सकी, दिनरात सुयोग्य अनुशास्ता के अभाव मे रुदन करती रही थी। पर व्यथा के क्षणो मे व्यवस्था की बात सुनते ही सतीजी आश्वस्त हो गई। बहुत शाति की अनुभूति हुई उन्हें। कुछ महीनों जावरा रहकर आचार्य भगवन् के श्रीचरणो म बीकानेर पहुँची। आचार्य भगवन् ने नवीन दीक्षा देकर उन्हे श्रीचरणों में आश्रय प्रदान किया। तत्पश्चात् रत्नाश्री गुलाब कवरजी म सा की सन्निधि मे उन्होंने लगभग 25 वर्ष तक शाति से सयमी जीवन का आनद से पालन किया। ऐसे थे अनाथों के नाथ, अत्राणा के त्राण आचार्य श्री नानेश।

कुशल अनुशास्ता

राणावास चातुर्मास के बाद आचार्य भगवन् गाव-नगर में धर्म-ध्यान का अपूर्व ठाठ लगाते हुए देवगढ पधारे। अनेक महासतियाँ आसपास के क्षेत्रो से चातुर्मास सपन्न कर आचार्यश्री जी के दर्शन करने पहुँची। प्रवचन के बाद दोपहर की सेवा मे जब सती मण्डल प्रश्नोत्तर का लाभ ले रहा था तब आचार्य भगवन् ने पूछा कि वयोवृद्ध वल्लभकवरजी अभी नहीं आई। सतीजी बोलीं, 'नहीं पधारे'। तब गुरुदेव ने पूछा 'उनकी सेवा मे कौन सतियाँजी रुकी हैं ?' तब सतीजी बोलीं 'भगवन् दिन का समय है। आसपास अपने घर हैं, ऐसी कोई बात नहीं।' पर कुशल अनुशास्ता को ऐसे उत्तर से सन्तुष्टि नहीं हुई।

गुरुदेव ने फरमाया, 'साध्वी को अकेली नहीं रहना चाहिये। मेरी सेवा से बढ़कर उनकी सेवा मे पहुँचना जरूरी है।' उसी समय आचार्यश्री की आज्ञा से सतियाँ गुरुदेव की सेवा छोड़कर महासतीजी की सेवा मे पहुँच गई। यदि अनुशास्ता कठोर है तो सत जीवन में ऐसी घटनाएँ सुनने को नहीं मिलेगी। आचार्य की आचार-सहिता कितनी विशिष्ट होती है—वृद्धसती भी ठिकाने पर अकेली न रहे। उन महासतीजी ने जीवन की साध्यवेला मे 72 दिन के सथारे के साथ अपना जीवन परमात्मा के चरणो मे समर्पित किया। आचार्य नानेश का, चाहे विद्यार्थी सती हो चाहे वृद्धा, सभी के प्रति अनन्य आत्मीय भाव रहता था। प्रत्येक आचार्य यदि चतुर्विध सघ के प्रति अनुशासन मे बीकानेरी मिश्री की तरह कठोर एव आत्मीयता मे दाखवत् मुलायम हो तो प्रभु महावीर के शासन मे शिथिलता एव स्वच्छन्दता को स्थान नहीं मिल सकता।

कर्तव्यनिष्ठा के प्रति जागरूक

बड़ी सादड़ी से आचार्य भगवन् डुगला न रुक कर सीधे कानोड़ पधारे। कानोड़ मे वयोवृद्धा महासतीश्री भूराकवरजी म सा जीवन की अन्तिम वेला में सलेखना सथारे मे रमण कर रहे थे। महासतीजी की आचार्य नानेश के दर्शन करने की प्रबल भावना थी। समाचार आचार्य भगवन् के श्रीचरणों मे पहुँचे और आचार्य भगवन् उग्र विहार करके पधारे। सतों ने रास्ते के गॉव डुगला में आहार पानी ग्रहण किया परन्तु आचार्य भगवन् शीघ्रता से आगे बढते रहे। 'महासतीजी, भूराजी' मैं आ गया हूँ।' वयोवृद्धा भूराजी म सा ने सथारे मे सोये-सोये दोनो हाथ जाड़े, 'मागलिक सुना दीजिए।' आचार्यश्री ने मागलिक सुनाई, सथारा सीझ गया। यदि गुरुदेव डुगला में आहारादि लेकर कानोड़ पधारते तो महासती दर्शन एव मागलिक से वचित रह जातीं।

शिष्य से नही सयम से अनुराग

गुरुदेव का उदयपुर चातुर्मास के बाद उपनगरो में विचरण हो रहा था। हम कपासन चातुर्मास सपन्न कर एव सेवाभावी श्री धीरजकवरजी म सा मोरवन चातुर्मास सपन्न कर उदयपुर गुरुसेवा में पहुँचे। आचार्य भगवन् का यूनिवर्सिटी में प्रवचन होने वाला था। वे आयड़ विराज रहे थे। हम भोपालपुरा मोहनज्ञान मदिर में ठहरे हुए थे। मैंने सोचा प्रात काल दूध आदि लकर चलेगे तो प्रवचन में विलम्ब हो जाएगा। अत मैने कहा—'आज अपन सभी पोरसी करले।' एव सेवाभावी श्री धीरजकवरजी म सा से कहा, 'आप प्रतिलेखन करके सतीजी को लेकर आगे बढो, तब तक हम आपकी एव हमारी नेश्राय का शेष प्रतिलेखन करके जल्दी चलकर आप से रास्ते मे मिल जाएगे।' हम प्रात काल जल्दी आचार्यश्री के पास जा रहे थे, बीच रास्ते मे गुरुदेव के दर्शन हो गये। हमने बहुत प्रसन्नता से वन्दन किया, पर हमारे आराध्य देव हमे देख कर रूठ गये। उन्होने हमसे सुख-शाति भी नहीं पूछी। 'इतना जल्दी', इतना सा फरमाकर आगे पधार गये। हम आठो सतियाँ आचार्य भगवन् द्वारा अपनी उपेक्षा सहन न कर पाई। सभी के दिल भर आये। वात्सल्य एव करुणा के पुज इष्टदेव को आज हमारा आना अच्छा क्यो नहीं लगा? हमने सतो के ठिकाने पहुँच कर वन्दन किया। सतो ने पूछा—'क्या बात है उदास क्यो हो?' हमने कहा—'गुरुदेव हमसे बोले नहीं।' सतों ने फरमाया—'बस गुरुदेव बोले नहीं, इसमे इतने निराश हो गये!' हम सभी सतियाँ निराश होकर पुन भोपालपुरा की ओर चलने लगीं।

हम लगभग एक किलोमीटर पहुँचे ही थे कि आचार्यश्री को ध्यान आया, सतियाँ आई थीं कहाँ हैं? सतों ने कहा—'भगवन्, सतियाँ तो खिन्न होकर पुन जहाँ ठहरी थीं वहीं चली गईं।' गुरुदेव ने श्रावको पर दृष्टि दौड़ाई। सेवाभावी श्री चुन्नीलालजी कठलिया को सकेत किया—'सतियो को बोलना गुरुदेव याद कर रहे हैं।' तब तक हम लगभग एक किलोमीटर और चले गये थे। चुन्नीलालजी ने कहा—'मत्थेणवदामि। गुरुदेव ने याद फरमाया है।' हम किकर्तव्यविमूढ हो गये। आराध्य देव बुला रहे हैं। अब तो श्रीचरणों की ओर बढना ही था। सभी सतियो के दिल गद्गद् हो गये थे। परम विदुषी अनासक्त योगिनी श्री मनोहरकवरजी म सा एव बाल ब्रह्मचारिणी पानकवरजी म सा उभय गुरणी प्रवर के क्षेत्रीय दूरी पर विराजमान होने से हमे ऐसे क्षणों मे गुरणीप्रवर की भी गहरी यादे सताने लगीं, कि अपन इधर भी सेवा का लाभ नहीं ले पा रहे हैं एव परमश्रद्धेया महाश्रमणी रत्ना

गुरणीप्रवर की सवा से भी वचित हैं। हम पुन एक कि मी पीछे लौटे। आचार्य भगवन् सत समूह के पीछे-पीछे यूनिवर्सिटी प्रवचन स्थल की ओर पहुँचे। आचार्य भगवन् न पहुँचकर ध्यान करत ही मुझे नजदीक बुलाकर कहा—'मै समझा आपन प्रतिलेखन नहीं किया, प्रवचन सुनने के उत्साह मे जल्दी आ गये।' मैंने रुध गले स कहा—'भगवन् आठ सतियो मे से अधिकाश के कबल के त्याग हैं। ठड का मौसम है तो भी सतियो क पास लगभग 65-70 हाथ से अधिक कपड़ा नहीं है, फिर हम सभी ने पोरसी क प्रत्याख्यान ग्रहण कर रखे हैं। अत हम जल्दी आ गये। श्रद्धेया श्री धीरजकवरजी म सा धीरे चलते हैं इसलिए हमने इनकी नश्राय का प्रतिलेखन किया एव इनको एक सती के साथ जल्दी आगे बढ़ने को विवश किया।' गुरुदेव ने फरमाया—'मं आपको खमाता हूँ। मुझे नहीं पता था कि आप सतियो क पास इतनी ठड म मर्यादित वस्त्र से भी इतना कम कपड़ा है। आप प्रवचन सुनकर, इसी कॉलोनी से आहार-पानी लाकर फिर भोपालपुरा जाना।' आज भी मुझे वो घटना याद आती है ता मेरा दिल श्रद्धा से गुरुचरणो मे नत-मस्तक हो जाता है। भगवती सूत्र म कहा है कि आचार्य तीसरे भव मे मोक्ष जाते हैं पर ऐस आचार्य के समय जो शिष्य श्रीचरणो मे समर्पित हाता है तो सयम के सजग प्रहरी आचार्य, शिष्य को भी ससार से शीघ्र मुक्ति दिलाते हैं। चाहे कितना ही प्रिय शिष्य हो पर आचार्य नानेश को सयम स अनुराग था, न कि सत सती के विशाल समूह से। इस युग म हम जन्मे जिस युग म गुरुवर जन्मे। ऐसे क्रियावान आचारनिष्ठ आचार्य ही प्रभु महावीर के शासन की निर्ग्रन्थ परपरा को अक्षुण्ण बनाये रख सकते हैं।

कठोर अनुशासन

भावनगर चातुर्मास की घटना है। हम प्रवचन सुनकर ऊपर सतों के दर्शनार्थ पहुचे। सत सुमतिमुनिजी हमसे स्वर्गीय परम विदुषी महाश्रमणी रत्ना मनोहरकवरजी म सा के अन्तिम समय कैसी क्या स्थिति हुई, सथारे आदि के विषय में पूछने लगे। हम सभी सतियाँ वहीं खडी रह गई बातचीत करन लगीं। आचार्यश्री भी दूसरे चढाव से ऊपर पधार गये। देखा कि प्रवचन सम्पूर्ण हुए लगभग 15-20 मिनट हो गए हैं परन्तु सतियाँ अभी तक यहाँ खडी क्यो हैं? आचार्यश्री दूर कमरे क द्वार से, वहाँ खडे हुए प्रश्नवाचक निगाह स हम सतियो की ओर देख रहे थे, सोच रहे थे सतियाँ इतनी देर वहाँ खड़ी न रहें ता अच्छा। हम भी नये-नये थे, उनकी प्रश्नवाचक दृष्टि को पहचान न पाए। फिर गुरुदेव की तरफ गए तो गुरुदेव ने आदेशात्मक स्वर में फरमाया—'प्रवचन क बाद यहाँ ठहरने की जरूरत नहीं।' मैंने कहा—भगवन् हम तो प्रवचन सपूर्ण हाते ही चले जाते है, आज सत पूछने लगे तो म सा क विषय में बात करने लगे।' आचार्यश्री ने फरमाया—'सता से बात करना मुझे पसद नहीं।' आचार्यश्री का बदला हुआ रुख मुझे बहुत अटपटा लगा। मैं अपने ठिकाने आने पर गहन विचारों मे उलझ गई कि इतनी सतियों के साथ 15-20 मिनट सत से बात की, पर गुरुदेव नाराज क्यों हुए? गुरुदेव ने हमे क्या समझा है? तीन वर्ष तक लड़कों के साथ स्कूल मे पढी, कॉलेज में गई। 6 वर्ष मे कभी कोई बात न हुई एव यहाँ सत से थोड़ी-सी देर बात करने पर गुरुदेद ने हमे उपालभ दे दिया। तीन दिन तक मुझे खेद रहा, आर्त्तध्यान भी हुआ। मै दोपहर शास्त्र वाचनी में जाने मे सकोच कर बैठी। आचार्यश्री ने सतियो से पूछा 'विचक्षणाजी क्यो नहीं आ रही हैं?' आदर्शत्यागी भवरकवरजी म सा ने कहा—'भगवन् विचक्षणा जी को बहुत खद हो रहा है कि तीन वर्ष लड़को के स्कूल में पढ़ी, कभी कुछ नहीं हुआ, आज आचार्यश्री ने इतनी-सी बात का हमें उपालभ दे दिया।' आचार्यश्री ने फरमाया—'विचक्षणा जी को बोलना गुरुदेव ने दोपहर में बुलाया है।' मै दिन में गई। गुरु उपालभ से मेरा दिल भारी बना हुआ था। गुरुदेव नीचे हाल मे पाटे पर विराजमान थे। गुरुदेव का देखा, मेरा धैर्य टूट गया, मैं अपने आप को सयत न कर पाई। एक थभे की ओट मे आसू पोछन लगी। गुरुदेव की करुणा चिकित्सकवत् थी। ऊपर से कठोर अनुशासन, भीतर से दाख से भी मुलायम।

गुरुदेव स्वय पाटे से उठ मेरी ओर आये। गुरुदेव को देख मे भी 5-7 कदम आगे बढी। 7-8 कदम गुरुदेव पधारे। बहुत वात्सल्य-प्रम एव करुणा-रस बरसाते हुए गुरुदेव ने फरमाया, 'सतीजी, आप तो समझदार है, इतने विचार की

बात नहीं है। छोटे-छोटे सत यदि सतियो से अधिक बातें करने लगें तो उनका जीवन आगे जाकर स्वच्छन्द एव अनुशासनहीन बन सकता है। अत मुझे अनुशास्ता के नाते सतो का भी ध्यान रखना पड़ता है। आप विचार न करे, मैंने तो भावी के लिए विवेक दिलवाया। आपके दिल में ठेस पहुँची उसके लिए क्षमायाचना।' भावनगर मे दो आचार्यो का साथ मे चातुर्मास, बरवाला सप्रदाय के सरदार मुनि भी वहाँ थे पर करुणा-सागर आचार्य भगवन् की अनुशासन की कठोरता एव वात्सल्य भाव तरलता। एक आचार्य की महानता—पाट से उतर कर स्वय 7-8 कदम आकर आत्मीयता से मुझे समझाने का प्रयास किया।

घट-घट के अन्तर्यामी कहूँ तो भी अतिशयोक्ति न होगी। ताल चातुर्मास की घटना। एक सतीजी तीन माह से अस्वस्थ थी, उपचार नहीं लग रहा था। स्वप्न मे आचार्यश्री के दर्शन हुए, वार्तालाप हुआ, उसी दिन से उपचार लगा, सती स्वस्थ हो गई। अन्यथा श्रावक चितित थे अब क्या होगा? ताल-आचार्यश्री पधारे, एक श्रद्धानिष्ठ बालक यशवत ने 10-11 वर्ष की उम्र में अपनी नगरी को दुल्हनवत सजाने का प्रयास किया। स्थानक के आसपास का पूरा बाजार, चौराहा एव सुदूरवर्ती गलियों को शृगारा। रात के दो बजे तक बच्चो के साथ कार्य किया। प्रात गुरुदेव का पदार्पण । 'ये सब क्यों? अभी के अभी उतारो तो यहाँ ठहरूँ नहीं तो अभी विहार करूँ।' छोटे से बच्चे को बहुत दु ख हुआ, सारी सजावट उतारी गयी। उसकी छोटी बहन ने पूछा—'भगवन् इसमें वायुकाय के जीव मरते तो फिर आप व्याख्यान में हाथ ऊपर नीचे करते हैं उसमें नहीं मरते क्या?' आचार्य भगवन् ने आत्मीयता से समझाया।

छोटी सी बालिका शिखा आयुष्मान ने मन्दसौर में गुरुदेव से प्रश्न किया—'भगवन् लाईट बन्द कर दी तो आप ने आहार क्यों न लिया।' छोटे भाई वाली घटना। 'तुम अपने छोटे भाई के साथ कहीं भोजन करने गई, किसी ने तुम्हारे छोटे भाई के चाटा मार दिया तो क्या तुम वहाँ भोजन करना पसद करोगी? नहीं। वैसे ही हमने 6 काय के जीवों को छोटे भाई की तरह माना है अत हम लाईट चलाने पर दिन भर उस घर से कुछ लेना पसद नहीं करते हैं।

आचार्य भगवन् ने महामत्र नवकार के तीसरे पद को सुशोभित किया। नव करोति इति नवकार, समत्व भाव में पूर्व से भी विशेष रूप से रमण किया। ऐसे समभावो की रमणता से आगे बढते रहे। ऐसे महान् समत्व योगी के जीवन के एक नहीं अनेक सस्मरण हमे प्रतिपल-प्रतिक्षण प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं। ऐसे प्रेरणा पुज आचार्य भगवन् का मुझ पर तथा चतुर्विध सघ पर अनन्त-अनन्त उपकार रहा है, यह सब मैं कैसे भूलूँ? ◇

साध्वी विचक्षणाश्री

जीवन के शिल्पी को नमन

जप, तप, साधना और सयम से जो पुरुषार्थ करके ज्ञान प्राप्त करते है, वे ही गुरु है। गुरु ही ससार सागर से सकुशल पार हो जाने का रास्ता दिखाते हैं। भारत एक ऐसा सौभाग्यशाली देश है जिसमे विषय-वासनाओं को जीत कर तथा आत्मशक्ति जाग्रत कर तपस्वी त्यागीजन गुरु पद प्राप्त करते रहे हैं। ऐसे गुरुओं की महिमा अपरपार है क्योकि वे जाग्रत-जीवित शक्ति होते हैं। ऐसी जाग्रत-जीवित शक्ति जिस देश व समाज को प्राप्त हो जाती है वह गुरु-कृपा से आत्मोद्धार कर कृतकृत्य होता है। सद्गुणो को जाग्रत करने तथा विकसित करने का सशक्त माध्यम गुरु ही है। गुरु का हृदय दूसरों के परिताप से द्रवित होता है और दूसरों का हृदय उनके दर्शन मात्र से शीतल।

ऐसे ही आदर्श सतगुरु थे मेरे हृदय-सम्राट् आचार्य श्री नानेश। जिस किसी ने भी आपको निकट से देखा उसके मन मे आपके प्रति गहन श्रद्धाभाव जाग्रत हुआ और समर्पित भाव से वह आपके चरणों मे नतमस्तक हो गया। उनकी वाणी मे अनोखा जादू था और उनकी वाग्मिता से देश के चोटी के विद्वान और नेता प्रभावित हुए थे।

जन-जन के एसे आराध्य आज हमारे बीच नहीं हैं, यह सोच कर हृदय पीड़ा से विकल हो उठता है परन्तु सत्य को स्वीकार करना ही पडता है। अपार थी उनकी करुणा और अथाह थी उनकी सहनशीलता। वेदना के क्षणों मे भी वे पूर्ण शान्त-प्रशान्त रहते थे। चिकित्सका को ता उनका एक ही उत्तर होता था— तुम्हारी दवा मेरे क्या काम आयेगी ? मेरी दवा मेरे पास है।' समभाव से शारीरिक वेदना सहन करते हुए स्वय को सतुलित एव सयमित रखते हुए इस भव की यात्रा वे पूर्ण करते रहे। उनके निर्वाण से कुछ महीनो पूर्व से निर्वाण के समय तक की उनके स्वास्थ्य की जानकारी उनकी सहनशीलता की सीमा के प्रमाण प्रस्तुत करती है। पूर्णत अविचलित तथा अन-उद्वेलित हुए उन्होने भीषण शारीरिक पीड़ा निस्सग भाव से सहन की, आखों से अपार करुणा बरसाते रहे और अपने भवता पर सद्‌भाव और स्नेह छलकाते रहे।

ऐसे उपकारी गुरु के जीवन, त्याग और साधना का स्मरण ही हृदय को भावविह्वल कर देता है। हमार जीवन को जिन्होने सुसस्कारो से सवार कर उसे मोक्ष के मार्ग पर अग्रसर किया तथा आत्मा का कलुष दूर कर उसे निर्मल बनाया उनके प्रति अपनी कृतज्ञता किन शब्दो में व्यक्त करूँ, में समझ नहीं पाती। उनकी हम पर जितनी कृपा थी उसका स्मरण मात्र ही हमारे लिय प्रेरणा का स्रोत बन गया है, उसी के माध्यम से हम उनकी अर्चना और वन्दना करते हैं। हमे विश्वास है कि जब भी हम भटकगे, वे हमे राह दिखायेगे, जब भी हम हताश होंगे वे हमें उत्साहित करेगे और हमारे हृदयो के आस्था के समुद्र सूखने नहीं देंगे। हम अनगढ शिलाखण्ड थे, आपने अपनी पैनी छेनी से हम मनोहारी मूर्ति का आकार दिया, हमारा हृदय कोरा कागज था जिस पर आपने आस्था के नयनाभिराम चित्र लिखे, हम अकिचन थे आपने हमे सुसस्कारो की बहुमूल्य निधि प्रदान की। आचार्य नानश देव, हमें शक्ति व साहस दना जिससे हम आपके दिखाये पथ पर निशक भाव से चलते रहें और वह लक्ष्य प्राप्त करे जो आपने हमारे लिये निर्धारित किया था। हम आपके योग्य शिष्य बन रहें, ऐसा आशीर्वाद देना। ◆

—साध्वी मनोरमा

एक चमत्कारी व्यक्तित्व

'हज़ारो हज़ार चिराग सूर्य की बराबरी नहीं कर सकते,
हजारो हज़ार सितारे चन्द्र की बराबरी नहीं कर सकते,
बराबरी की होड़ करने वाले इस वैज्ञानिक युग में और तो क्या,
लाखो व्यक्ति मिलकर आचार्य श्री नानेश की बराबरी नहीं कर सकते।

धन्य हो गया मेवाड़ का कण-कण, जहाँ दाँता जैसे छोटे-से ग्राम मे हमारे आराध्य देव ने जन्म पाया। खेले-कूदे, शिक्षण प्राप्त किया और अरावली की उपत्यकाओ से गुजरते हुए भावी जीवन को भव्य बनाने हेतु जीवन्त लक्ष्य का निर्धारण किया।

प्रकृति नहीं चाहती थी कि यह प्रकाशपुज महामानव सीमित दायरे में ही अपना प्रकाश विकीर्ण करे। उसको अपने लाल पर विश्वास था— 'मेरा यह लाल सभी मे अद्वितीय है, विशिष्ट ऊर्जाआ का अखूट भण्डार है, इसकी ऊर्जाओं का सम्बल पाकर अनन्त जीव शान्ति के सोपान चढ़ेंगे।'

उक्त्यानुसार बहुरत्ना वसुन्धरा की यह गुदड़ी का लाल प्रकृति की पाठशाला से धर्मराज युधिष्ठिर जैसा अध्ययन कर आगार-धर्म की पगडडी को छोड़कर अणगारधर्म के राजमार्ग पर अग्रसर हुआ, कपासन ग्राम मे।

गुरु की पावन निश्रा मे पूर्णरूपेण समर्पित हो अन्तर मे छुपी अनन्त ऊर्जाओ को एक-एक करक उद्घाटित करने लगे—विनय रो, सेवा से, एकाग्रता स, मौन-साधना से और ज्ञानाभ्यास की तीव्र ललक से। सम्बल, प्रबल प्रेरणा एव सुन्दर सहयोग मिला कुशल अनुशास्ता शान्त क्रान्ति के अग्रदूत पूज्य श्री गणेशीलालजी म सा का। सपुष्ट बीज को यदि खाद, पानी, प्रकाश एव उचित सरक्षण मिल जाए तो उसकी वृद्धि, समृद्धि में सशय नहीं रहता। उसी प्रकार हमारे आराध्य देव भी साधना की ऊँचाईयों को छूने लगे पर लोकैषणा से सर्वथा अछूत रहकर।

झीलो की नगरी उदयपुर में जब गणभार के सवाहक पद पर आपका नाम श्रुतिगोचर हुआ तब प्रबुद्ध चेतन वर्ग भी विचारों के चक्रव्यूह में उलझने लगा, तब एक भविष्यवाणी कर्णगोचर हुई हुकम सघ के सप्तम् सूर्य पूज्य श्री गणेश के दिव्य मुख पद्म से—'आप क्यों विचार कर रहे हो, मैंने जो गुदड़ी का लाल दिया है उसकी भव्य शासन-प्रभावना का नजारा देखकर मुझे भी भूल जाओगे ।'

समयानुसार जब हुक्म शासन की प्राची दिशा मे चरित्रनायक रूप भव्य भास्कर उदित हुआ तब ऊषा की सिन्दूरी सुषमा बनी बलाई जाति के मानवों के लिए अज्ञानतम को चीरने वाली ज्ञान-किरण। फलस्वरूप पहले जिन हाथों मे रहते थे चाकू, छुरे, तलवार आदि शस्त्र, अब वे ही हाथ हैं 'नमस्कार मन्त्र' एव 'जय गुरु नाना' शब्दों से सचालित मुक्ता माला और जिनोपदिष्ट शास्त्र से सुशोभित। ऐसे अनक अजूबो का एक लम्बा इतिहास बनाया आगम पुरुष आचार्य देव ने, पौने चार दशकों के आचार्यत्व काल में।

इस सहस्र-रश्मि सूर्य की एक-एक अर्चि मे इतना ओज, तेज व सामर्थ्य समाहित था कि असम्भव कार्य सम्भव ही नहीं, चुटकियों में सम्पन्न भी हो जात थे। ढेरों उदाहरण उपलब्ध हैं इसके प्रमाण में, पर सभी का बयान करना सभव नहीं है।

'जहाँ टिके पारस की नजर तो लोहा, सोना बन जाये,
लकड़ी पर टिके बार्ध की नजर तो रम्य खिलौना बन जाये,
साधारण और विशेष में यही तो फर्क होता है,
जहाँ टिके गुरु नाना की नजर तो अनहोना, होना बन जाये।'

एक प्रसग—सन् 1992 का चातुर्मास इलकल कर्नाटक में 4 ठाणा से था और करीब 35-40 किलोमीटर दूर गजेन्द्रगढ में 5 ठाणा थे। चातुर्मास सम्पूर्णता की ओर था कि सिन्धनूर से मीना बाई के मार्फत समाचार मिले कि गजेन्द्रगढ से स्नेहलता जी म सा को शीघ्र इलकल लाना है क्योकि कुछ महीनों से उनकी तबियत अस्वस्थ चल रही थी तथा साधन के अभाव मे उचित उपचार नहीं हो पा रहा था। मन मे विचार आने लगे कि कुल 9 ठाणा हैं उनमें से कुछ का स्वास्थ्य भी अनुकूल नहीं लग रहा है, कैसे क्या होगा ?

'नानेश का नाम जगा गये, दिल मे हजारो अरमान
दुर्लभ साधन सुलभ हुए, पलभर में आसान।'

पूज्य गुरुदेव का नाम स्मृति पटल पर आते ही मन को सम्बल मिला और जिह्वा गीत की पक्तियाँ गुनगुनाने को बेचैन हो गई—नाना के नाम में है चमत्कार ।

फिर क्या था, पावर हाउस के पावर से बैटरी चार्ज हो गई—दो दिन में गजेन्द्रगढ पहुँचे और दो दिन मे उन्हें सकुशल इलकल लाकर डाक्टरी जाँच के साथ अस्पताल में भर्ती भी कर दिया। और जब हम यथा-स्थान पहुँच गये तब शुरू हो गई मूसलाधार बारिश जैसे हमारे कार्य की पूर्णता का ही प्रकृति इन्तजार कर रही थी। अगर एक दिन का विलम्ब कर देते तो न मालूम हमारी कैसी स्थिति बनती। पर यह तो उन करुणासिन्धु की कृपा का करिश्मा ही था कि 'जय गुरु नाना पार लगाना' कहते-कहते आगे बढ गये और उद्देश्य पूर्ण हो गया, अन्यथा हमारा क्या सामर्थ्य था?

जिस पथ से हम उनको लेकर आए थे उसी रास्ते से जब महाश्रमणी रत्नाश्री नानुकवरजी म सा पधारे तो उन्होंने फरमाया कि ऐसे कठिन एव कच्चे, उबड़-खाबड़ मार्ग से तुम डोली उठाकर इतने अल्प समय में कैसे पहुँच गये ? तत्क्षण हृदय की तत्री झनझनाने लगी कि—जगल में भी मगल करे नाना गुरु का नाम रे ।

यह था पूज्य गुरुदेव के व्यक्तित्व का चमत्कार, वरदहस्त का माहात्म्य। उनका शिष्य-शिष्या वर्ग चाहे हजारो किलोमीटर दूर हो फिर भी उनके अन्तर ज्ञान को उनकी हर समस्या का आभास पहले ही हो जाता था और वह कटिबद्ध हो जाता था परदु ख-कातर उनके कष्ट दूर करने के लिए।

वास्तविकता तो यही है कि उनका वरदहस्त शिष्यों के लिए ढाल के समान सुरक्षा-कवच बन जाता था।

अनन्त गुणों के आगार आराध्य देव की गरिमा का आख्यान हम जैसे अल्पज्ञो द्वारा करना मात्र बालचेष्टा ही सिद्ध होगी, जैसे बालक समुद्र की विशालता अपन दोनों हाथ फैलाकर बताता है कि समुद्र इतना बड़ा है, पर बुद्धिजीवी जानते हैं कि समुद्र की विशालता अपार है। मै तो एक कवि की कविता की कतिपय पक्तियाँ ही प्रस्तुत कर सकती हूँ—

'कोटि-कोटि हिमगिरि सुमेरु, तेरे सम्मुख बौने हैं सब,
तेरी अनन्त ऊँचाई को, नाप सका है कौन अब।
तुझसा अनुपम सुन्दर कोई, कहीं नहीं धरती-नभ पर,
तू है वह अभिनव दिव्य सुमन जो खिलकर कभी न मुरझाता है।

भगवन्! आप जहाँ पर भी हों वहाँ से हमें ऐसी शक्ति प्रदान करे कि हम आपके बताय सिद्धातानुसार तथा आगम-मर्मज्ञ आस्था के धाम आचार्य प्रवर श्री रामलालजी म सा के आदेश-निर्देश के अनुसार कदम बढाते हुए लक्ष्य की ओर गतिशील रहे—

'प्रभो! आप जहाँ भी हों, रखना सदा सघ पर दृष्टि,
उस दृष्टि से ही होती थी, सदा हम पर अमृत वृष्टि।
विरह-वेदना से व्यथित अन्तर की यह है पुकार,
आप जहाँ भी हो वहाँ रहे, शाश्वत सुखों की सृष्टि।' ◆

—साध्वी द्वय चमेली एव कल्याणकुवर

अपरिमित गुणो के स्वामी

अपरिमित गुणो के स्वामी गुरुवर,
तुम्हे भूल हम नहीं पायेंगे।
सद्शिक्षाओं से ही तुम्हारी गुरुवर,
जीवन सत्त्व को हम पायेगे।।

स्थानाग सूत्र के चौथे ठाणे मे चार प्रकार के पुष्प बताये गये हैं—

एक पुष्प रूपवान है किन्तु सुगन्धवान नहीं होता है—जैसे रोहेड़ा का पुष्प।

एक पुष्प रूपवान तो नहीं होता किन्तु सुगन्धवान होता है—जैसे मोरसली का पुष्प।

एक पुष्प रूपवान भी होता है व सुगन्धवान भी होता है—जैसे गुलाब का पुष्प।

एक पुष्प रूपवान भी नहीं होता है और सुगन्धवान भी नहीं होता है—जैसे धतूरे का पुष्प।

आचार्य भगवन् का जीवन तो खिलते गुलाब के फूल की तरह था। उनका बाहरी व्यक्तित्व तो अत्यत आकर्षक था ही आन्तरिक तेजस्विता भी महान् साधना से सुवासित थी।

पुष्पवत् खिलता था जिनका जीवन,
हर क्षण, हर पल, लगते थे सभी को मनभावन।
जब भी आते, तेरे द्वार पे गुरुवर नाना!
कृपा पूरित बरसता था तव सावन।।

आचार्य भगवन् जैसा समता का उपदेश फरमाते थे, वैसा ही उनका आचरण भी समता से ओतप्रोत था। जीवन का कण-कण समता की सुगन्ध से सुवासित था।

मुझे अपने सयमी जीवन के पचीस वर्षो में आचार्यश्री के सान्निध्य मे चार चातुर्मास करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। चातुर्मासों के अलावा समय-समय पर दर्शन, सवन, प्रवचन, वचन-श्रवण, प्रश्न पृच्छा आदि का अलभ्य लाभ भी प्राप्त होता रहा। इन सभी अवसरो पर मैने आचार्यश्री को सदा वात्सल्यमय ही पाया।

गुलाब के फूल को कोई देखे या न देखे, वह हर क्षण अपनी मधुर सुवास बिखेरता ही रहता है चाहे जगल मे खिल रहा हा चाहे नगर क उपवन में। उसी

प्रकार आचार्य भगवन् को जब भी देखा, जहाँ भी देखा, जिसके साथ भी देखा हर स्थान पर समता के आसन पर विराजकर समतामय मृदुभाषा की सुवास बिखेरते ही देखा। आपश्री के चरणों मे जो भी दर्शनार्थी पहुँचता वह भी आपश्री के रोम-रोम से अनवरत निसृत समता के परिमल से आप्लावित हुए बिना नहीं रहता—

'जो भी आता तव चरणो में, सच्ची शान्ति पाता था।

अटूट श्रद्धा लिये वो, झोली भर ले जाता था।।

भावनगर (सौराष्ट्र) मे जब आपश्री का चातुर्मास था उस समय बरवाला सप्रदाय के आचार्य श्री सरदार मुनिजी म सा भी अपने गुरु आचार्य श्री चपकलालजी म सा के साथ मुनि अवस्था मे वहाँ विराजमान थे। चातुर्मास के अन्त में कार्तिक सुदी पूर्णिमा को श्री सरदार मुनिजी म सा ने धर्म सभा में उपस्थित जन समुदाय के समक्ष फरमाया कि मैं बड़े-बड़े सत महापुरुषो के सान्निध्य मे गया, समता का उपदेश देने वाले तो बहुत हो सकते हैं लेकिन कथनी-करनी की एकता जैसी मैंने आचार्य भगवन् श्री नानालाल जी म सा में देखी वैसी और कहीं देखने को नहीं मिली। आचार्य भगवन् समता की जीवन्त प्रतिमूर्ति है। जैसा ये समता का उपदेश फरमाते हैं वैसा ही इनका जीवन है। ऐसे थे समताविभूति आचार्य श्री नानेश।

आचार्य भगवन् ज्ञान के देदीप्यमान सूर्य थे। सूर्य का प्रकाश तो फिर भी बादलों से आच्छादित हो जाता है किन्तु आचार्य भगवन् के ज्ञान रूपी सूर्य की रश्मियाँ सदा-सदा अनावृत ही रहती थीं। कभी भी, किसी भी समय, कोई भी ज्ञानपिपासु श्रीचरणो मे पहुँच कर आपश्री के मुखारविन्द से निर्झरित ज्ञान-रस का आस्वादन कर सकता था। आपश्री के सान्निध्य में पहुँचने वाले का अज्ञान-अन्धकार दूर हुए बिना नहीं रह सकता था।

आपश्री को वचनसिद्धि भी प्राप्त थी। वैसे तो इस विषयक कई सस्मरण सुने व देखे किन्तु पिछले वर्ष ही उदयपुर मे चातुर्मास व सेखेकाल मे आचार्य भगवन् की सेवा का लाभ प्राप्त हुआ। एक बार मुझे अहिसापुरी-उदयपुर के स्थानक के आगे वाले कमरे मे आचार्य भगवन् की सेवा का सुअवसर प्राप्त हुआ।

उस दिन आचार्य भगवन् ने स्थविर प्रमुख श्री ज्ञान मुनिजी म सा के विषय मे बताते हुए फरमाया था—'यह मेरा प्राण है।' महासतीजी, आप कहो तो मैं लिख कर दे सकता हूँ। इसक कारण ही यह मेरा शरीर टिका है। एक माँ भी अपने पुत्र की जितनी सेवा नहीं कर सकती वैसी सेवा इसने मेरी की है। मैं अनत सिद्धो की साक्षी से कहता हूँ कि मेरे हृदय मे इसका जैसा स्थान है वह मैं अपना कलेजा चीरकर नहीं बता सकता और अतिम दम तक यही मेरी सेवा करेगा' शब्द आज भी मेरे कान मे यथावत् गूँज रहे हैं। यद्यपि वर्तमान आचार्य भगवन् एव स्थविर प्रमुख म सा दोनो ही निरन्तर सेवा मे लगे हुए थे तथापि आचार्य भगवन् के मुखारविन्द से समुच्चरित शब्द कैसे फलित नहीं होते! एक शिष्य के लिये जीवन की सर्वोत्कृष्ट सेवा यही होती है कि वह अन्तिम समय पूर्ण रूप से, आत्मिक जागृति के साथ सथारा करवाये। यह सुअवसर स्थविर प्रमुख श्री ज्ञान मुनिजी म सा को ही प्राप्त हुआ। यह थी आचार्य भगवन् की वचनसिद्धि, उनकी वाणी की फलिति कि 'अन्तिम दम तक यही (ज्ञान मुनिजी) मेरी सेवा करेगा'।

आचार्य भगवन् अद्भुत पुण्य के पुज थे। जहाँ एक पिता अपनी दो सन्तानों तक को समान रूप से नहीं सभाल पाता वहाँ आचार्यश्री अपने साढ़े तीन सौ शिष्य-शिष्याओ के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नयन का समान रूप से पूरा-पूरा खयाल रखते रहे। शिष्य-शिष्याएँ भी हर पल समर्पित भाव से आचार्य भगवन् की आज्ञा की राह देखते रहते, जैसी आज्ञा आयेगी वैसा ही हमें करना है। यह सब कुछ पुण्यवानी के बिना नहीं हो सकता।

गजब पुण्यवानी थी तुम्हारी,
यह आँखों देखा नजारा था।
लाखों भक्त तत्पर रहते,
जब होता तुम्हारा एक इशारा था।।

दिल्ली महानगर में रोहिणी सेक्टर-तीन के चातुर्मास में कार्तिक सुदी पूनम को प्रवचन सभा मे रोहिणी सघ के भूतपूर्व मत्री श्रीमान सुरेन्द्रकुमार जी जैन ने

कहा था, 'मैं 'अष्टाचार्य गौरव गगा' नामक पुस्तक को पढ़कर बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ कि—यदि किसी को मत्र की आवश्यकता है तो 'ॐ ह्रीं श्रीं हु शि उ चौ श्री ज ग नाना नम ' इस मत्र को जपे। यह सर्वसिद्धि दायक मत्र है। इसे जो भी जपेगा वह हर तरह से सफलीभूत हुए बिना नहीं रहेगा।'

सोनीपत–हरियाणा के तत्कालीन मत्रीजी ने प्रवचन सभा के मध्य में कहा, 'आचार्य श्री नानालालजी म सा जिनकी सयम की धाक पूरे भारतवर्ष मे है उनकी आज्ञानुवर्तिनी महासतियाँजी म सा पधारे हुए है। इनके दर्शन, प्रवचन व मागलिक श्रवण मात्र से ही मालामाल हो जाओगे।' इस प्रकार देश के कोने-कोने तक आचार्यश्री के जीवन की गुणमय सुवास विकीर्ण थी।

आपश्री भवाटवी में भटक रहे जीवों के लिए प्रकाश स्तभ के रूप थे। लाखो भक्तों ने आपश्री से ज्ञान-प्रकाश पाया है। लाखों मानव अपथ-कुपथ-विपथ से सुपथ की ओर अग्रसर हुए। यह था आचार्य भगवन् का गुलाब के फूल से भी बढ़कर प्रेरणा सुवास-दायक व्यक्तित्व। उनके अनत गुणों को लेखनी के माध्यम से लिपिबद्ध कर पाना सभव नहीं है।

विशद् विज्ञान भरा था तेरा जीवन,
मिलता सभी को सदा सुख सजीवन।
अकुलाए प्राण आज भी खोज रहे,
कैसे पाएँ गुरु नाना तव दर्शन?।।

सतत जागरूक रहे जीवन की सन्ध्या वेला तक,
अप्रमत साधना में रमण करते रहे, जिन्दगी के अन्तिम दम तक।
तेरी साधना को हैं हृदय से हम नतमस्तक।
भूल न पायेंगे तुझे हम जीवन के अन्तिम क्षण तक।। ◆

—साध्वी ललिता

स्मृतियों की निधि

युग सत आचार्य श्री नानेश इस युग की एक विरल विभूति थे। जो तनिक भी उनके सम्पर्क में आया, वह कृतकृत्य हो गया। अपनी उदार करुणा को उन्होने अजस्र रूप से प्रवाहित किया और बिना किसी भेदभाव के सभी वर्गो और सम्प्रदाय के लोगों को उसमें अवगाहन का पुण्य प्रदान किया। मैं सौभाग्यशाली था कि मुझे उनके निकटतर सम्पर्क में आने के सुअवसर प्राप्त हुए। इन सम्पर्को के दौरान मैंने न केवल उनकी दिव्य शक्तियो की झलक पाई वरन् उनके दैवी प्रभाव से भी परिचित हुआ। आज जब वे हमारे बीच नहीं हैं तब उनके सान्निध्य का अनुभव मुझे रोमाचित कर देता है और मैं उन स्मृतियो में खो जाता हूँ जो मेरी निधि हैं।

आज से लगभग 50 वर्ष पूर्व आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा का चातुर्मास गोगोलाव में हुआ था। उस समय श्रमण सघ का गठन हो चुका था। श्रमण सघ के मत्री श्री मदनलालजी म सा ने पद से निवृत्ति ले ली थी। श्रमण सघ का पत्राचार सबधी सारा दायित्व आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा पर आ गया था। इस चातुर्मास के अन्तर्गत आचार्यश्री जी के पास लेखन कार्य हेतु अलग से किसी व्यक्ति की व्यवस्था न होने की वजह से मैं प्रतिदिन 2-3 घटे लेखन कार्य करता था। आचार्यश्री जी मुनिश्री नानालालजी म सा को पत्र एव पत्रोत्तर-लेखन हेतु निर्देश देते तदनुसार श्री नानालालजी म सा पत्र लिखाते जिससे मुझे आपके निकटतम रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

श्री नानालालजी म सा का व्यक्तित्व बहुत तेजस्वी था। वे ऋजुता, सहजता, करुणा और समता की प्रतिमूर्ति थे। उनकी कथनी-करनी में असाधारण सामन्जस्य था। ब्रह्मचर्य का तेज आपके मुखमण्डल पर चमकता था। आपका जीवन त्याग, तपस्या और मानव-चेतनाहित समर्पित था। मैं तभी से आपके जीवन से प्रभावित रहा हूँ। महान् आत्माएँ अलौकिक गुण-सम्पन्न होती हैं। उनके प्रथम दर्शन मे ही हृदय प्रणत हो जाता है, श्रद्धा समर्पित हो जाती है, और मुझे तो उनका नैकट्य प्राप्त हुआ था।

आपके आचार्य पद पर आसीन होने के बाद आपके तेज-तप के प्रभाव से अनेक अविस्मरणीय घटनाएँ घटित हुई। अजमेर चातुर्मास सम्पन्न कर आप जयनगर पधारे, वहाँ दो दिन विराजना हुआ। आप जिस दिन जयनगर पधारे उसी रात गाँव मे केसर की वर्षा हुई जिसने गाँव वालों को चमत्कृत कर दिया।

जयनगर छोटा गाँव है। रविवार को बाहर के सघो के लगभग तीन हजार श्रद्धालुओं की उपस्थिति थी। गाँव वालो की गणना के अनुसार उन्होने पन्द्रह सौ आदमियों का भोजन तैयार कराया था। सख्या लगभग दुगुनी हो गयी थी। सघ में सभी लोग चिन्तित थे। छोटे गाव में अतिरिक्त व्यवस्था होना भी मुश्किल था लेकिन उस भोजन में सभी तीन हजार व्यक्तियो ने भोजन कर लिया और भोजन शेष भी रह गया। यह देखकर लोग गुरुदेव के अतिशयो से चकित रह गये।

देशनोक चातुर्मास का एक प्रसग है। देशनोक नगरपालिका के अध्यक्ष श्री हरिराम जी मूधड़ा आचार्यश्री के दर्शन करने पधारे और गुरुदेव से अर्ज की कि बीकानेर के जिलाधीश महोदय आपके दर्शन व प्रवचन सुनने को उत्सुक हैं। गर्मी अधिक है पखा लगाये बगैर वे बैठ नहीं सकेगे। आचार्यश्री ने फरमाया—'पखा लगाने का तो प्रश्न ही नहीं है', फिर भी आपने सहजभाव से फरमाया कि 'देखें उस समय तक क्या स्थिति बनती है? शायद पखा लगाने की आवश्यकता ही न पड़े।' आपके वचन खाली नहीं जाते थे। जिलाधीश महोदय के आने के एक दिन पूर्व ऐसी वर्षा हुई कि मौसम ही बदल गया।

गगानगर मे एक अजैन भाई के मस्तिष्क मे काफी समय से भयकर दर्द हो रहा था। सभी तरह के उपचार करवाने के पश्चात् भी लाभ नहीं हुआ था। देशनोक निवासी श्री तोलाराम आचलिया ने उस भाई से कहा—'आचार्य श्री नानालालजी म सा अभी भीनासर विराज रहे हैं। वे बड़े प्रतापी एव उच्चकोटि के आचार्य हैं। हालाकि मै तेरापथ को मानता हूँ लेकिन मेरी आचार्यश्री जी के प्रति पूर्ण श्रद्धा व आस्था है। तुम उनके चरणो की रज लेकर अपने मस्तक पर रगड़ लेना।' उसने ऐसा ही किया और वह अजैन भाई अतिशीघ्र स्वस्थ हो गया।

ब्यावर चातुर्मास हेतु आचार्यश्री भीम से विहार यात्रा पर थे। प्रवास में एक युवा सत बीमार थे फिर भी वे प्रवास कर रहे थे क्योंकि ब्यावर समय पर पहुँचना था। रात्रि के समय युवा सत थकान से शिथिल होकर लेट रहे थे। थकान के कारण कराहने की धीमी-धीमी आवाज आ रही थी। पास मे सोये गुरुदेव की आँख खुली, उठकर सत के निकट गये और उनके पैर दबाने लगे। सत ने आश्चर्यचकित होकर कहा—'गुरुदेव आप यह क्या कर रहे है?, आप कष्ट मत कीजिए।' गुरुदेव बोले—'मैं नाना हूँ, बोलो मत, अन्य सत जग जाएगे' और सत के पैर दबाने का क्रम चालू रखा, इस प्रकार सत की विनम्रतापूर्वक सेवा की।

उनकी विनम्रता, सेवा भावना, त्याग और तप के साथ उनके चमत्कारों की अनेक घटनाएँ मेरे हृदय-पटल पर गहनता से अकित हैं, किन-किन के विवरण दूँ, मै समझ नहीं पाता हूँ। अधिक विवरणों की आवश्यकता भी कहाँ है? ससार जानता है कि कैसी अलौकिक शक्तियो से विभूषित था वह दिव्य पुरुष। मैं सोचता हूँ कि इस पीढ़ी के हम लोग कितने सौभाग्यशाली थे जो उनके दर्शन कर सके, उनकी वाणी सुन सके, उनका सान्निध्य प्राप्त कर सके और उनके प्रेम का पात्र बन सके। यही तो हमारे जीवन की निधि है। उनका स्पर्श हमें सोना बना गया। अब आवश्यकता है कि हम अपना मूल्य समझे और उनके स्वप्नों को साकार करने की दिशा मे स्वय को समर्पित कर दे। ◆

—सरदारमल काकरिया

स्मरण ही अब तुम्हारी अर्चना है

जीवन के कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जो हृदय-पटल पर अपनी अमिट छाप ही नहीं छोड़ जाते, जीवन की दिशा ही बदल देते हैं। ऐसे सस्मरण यदि महापुरुषो से सबधित हों और उनके साथ श्रद्धा और भक्ति भी समन्वित हो जाये तो वे जीवन की ऐसी अनुपम निधि बन जाते हैं जो समय-समय पर प्रेरणा देने एव मार्गदर्शन करने का कार्य करते रहते है।

हुक्मेश सघ के अष्टम् आचार्य श्री नानेश एक ऐसी ही दिव्य विभूति थे, जिनके दर्शनमात्र कल्याणकारी थे। उनके साथ किसी सबध सूत्र से जुड़ना तो ऐसा सौभाग्य होता था जैसा इस असार ससार मे बिरले व्यक्तियो को ही उपलब्ध होता है। अत मैं इसे अपना अपूर्व सौभाग्य ही मानता हूँ कि मैं न केवल उनके निकट सम्पर्क में आया वरन् उनके हृदय मे अपना स्थान भी सुरक्षित कर सका। वे ऐसे आचार्य थे जिनके साथ 'समता-दर्शन-प्रणेता', 'समीक्षणध्यान योगी' तथा 'धर्मपाल प्रतिबोधक' जैसे अनेक सबोधन जुड़े हुए हैं परन्तु इन सब से हटकर मेरा अतर तो उन्हे एक ऐसे भक्त वत्सल आध्यात्मिक गुरु के रूप में देखता है जिसकी कृपा पूर्वभवो के सत्कर्मो का परिणाम ही हो सकती थी। आज यद्यपि नश्वर देहधारी के रूप में वे हमारे सामने विराजमान नहीं है तथापि हमारे हृदय-पटल पर उनकी स्मृति अमिट रूप मे अकित हो गई है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि मेरा कृतज्ञ हृदय श्रद्धाजलि के रूप मे ऐसी दिव्य विभूति से सबधित सस्मरण लिखने हेतु उतावला हो जाता। निम्न कतिपय सस्मरण इसी उतावलेपन का प्रमाण हैं—

एक सम्पर्क जिसने जीवन-दिशा बदल दी

विक्रम सवत 2035 के चातुर्मास से कुछ समय पूर्व का अवसर था— आचार्य भगवन् चातुर्मास हेतु जोधपुर नगर की ओर पधार रहे थे। मैं, मेरी पुत्री मजु, मेरे अतिप्रिय तेरापथी मित्र श्री शुभकरण बरड़िया तथा उनकी धर्मपत्नी उस विहार में कई जगह पैदल साथ-साथ चल रहे थे। यात्रा समदड़ी से करमावास की ओर थी। रास्ते में चलते-चलते आचार्य भगवन् से कुछ चर्चा हुई थी। स्थिति कुछ वैसी ही थी जैसी पतग और डोर की होती है। पतग डोर से खिचती चली जाती है। मैं भी आतरिकता की डोर से आचार्यश्री की ओर खिचता चला गया था। घटना करमावास की है, जहाँ हमें छोड़ कर कोई अन्य श्रावक उपस्थित नहीं था। भगवन् के पास जितना उद्वृत्त समय था वह सारा समय उन्होने कृपापूर्वक मेरी जिज्ञासाओ के समाधान हेतु दे दिया। उन्हीं समाधानों ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी। उससे पूर्व षष्ठ पट्टधर श्री जवाहराचार्यजी, सप्तम् पट्टधर श्री गणेशाचार्यजी तथा अष्टम् पट्टधर स्वय आपश्री, से मेरा सम्पर्क दर्शनो के सौभाग्य तक ही सीमित था। परन्तु आपश्री न जैसे चुम्बक की तरह मुझे खींच लिया। यह जीवन तभी से सम्पूर्ण रूप से आपके श्रीचरणो में समर्पित हो गया।

असीम कृपाभाव दायित्व निर्वाह का आदेश

अजमेर चातुर्मास (वि स 2036) में अत्यधिक भीड़भाड़ थी। सतों ने फरमाया कि अलग से आपश्री के दर्शन होना कठिन था, परन्तु मैं निराश नहीं हुआ। व्याख्यान समाप्त होते ही मैंने विनती की कि मुझे उनसे कुछ समय की आवश्यकता है। उन्होने तुरन्त हाथ के इशारे से मेरी विनती स्वीकार करने का सकेत दिया। मैंने पूर्वांचल की स्थिति की जानकारी दी और सतो को उस ओर भेजने की विनती की। आपने फरमाया कि वर्तमान में तो यह सभव नहीं है परन्तु यह जिम्मेदारी मुझ पर डालते हुए कहा कि मैं पूर्वाचल क्षेत्र में धर्मजागरण का कार्य करूँ और लोगो को सघ से जोड़ कर जागृति उत्पन्न करूँ।

नाना नाम का चमत्कार

(क) मृत्यु के मुँह से वापसी—दिन था 4 मार्च, वर्ष 1989 एव स्थान बिड़ला हर्ट रिसर्च सेटर। मेरे हर्ट की बाई-पास सर्जरी होनी थी। पिछली रात से मैं चिन्तित था क्योंकि अवरुद्धता 98% तक हो गई थी। अधेरे-अधेरे ही नर्सो ने आकर आपरेशन हेतु तैयार कर दिया। अभी आपरेशन थियेटर मे ले जाये जाने मे कुछ समय शेष था। मैं 'जय गुरु नाना-जय गुरु नाना' करते-करते अल्प समय के लिए निद्रामग्न हो गया। स्वप्न में देखता हूँ कि आचार्य भगवन् हाथ ऊँचा कर मागलिक रूप में आशीर्वाद दे रहे है। उधर मेरे परिवार के लोग मालाएँ लेकर गुरुदेव के नाम का जाप करने बैठ गये। गुरु कृपा से आपरेशन पूर्णतया सफल रहा। आज सन् 2000 मे भी मै पूर्ण स्वस्थ हूँ। व्यसन मुक्ति एव सस्कार जागरण अभियान तथा वीरसघ के कार्य हेतु लाखों किलोमीटर की यात्राएँ कर चुका हूँ। यात्राओं का यह क्रम निरतर जारी है। मैंने तो गुरुदेव का नाम लेकर चिकित्सकों द्वारा निर्धारित वे तीनो दवाइयाँ लेना भी बन्द कर दिया है जो मेरे लिए जीवन भर

लेना आवश्यक बताया गया था। फिर भी मै पूर्ण स्वस्थ व सक्रिय हूँ, यह नाम का चमत्कार ही तो है।

(ख) डकैतो से रक्षा—स्थान कूचबिहार। मेरे घर मे शाम को कुछ डकैत घुस आये। उन्होंने मेरे पोते पवन के सिर के पास रिवाल्वर लगा दिया और मुझे धमकी दी, 'चिल्लाना मत, नहीं तो इसको गोली मार दूँगा। सोना, चाँदी, नगदी जो कुछ हो, हमें सौंप दो।' उस समय मै ओर मेरा एक बगाली मित्र 'समतादर्शन और व्यवहार' के बगला अनुवाद में लगे हुए थे, चार दिन पूर्व ही भीनासर मे गुरुदेव के दर्शन कर के लौटे थे और अनुवाद की योजना बनी थी। मैंने भीनासर में गुरुदेव से समता-समाज रचना की योजना ज्ञानस्थ की थी। उसी का प्रयोग कर मैंने डाकुओ से कहा, 'आपको जो लेना हो, ले लो, उसे छोड़ दो। हम शाति से बैठ जाते हैं।' वह मान गया। मैं और मेरी धर्मपत्नी 'जयगुरु नाना' का जाप जोर-जोर से करने लगे। उन डाकुओ ने गुरुदेव के नाम पर गाली देते हुए नाना को पुकारने की मनाही कर दी। मैने पूछा, 'क्या पुकारने से आ जायेगा?' डाकुओ ने कहा, 'सचमुच मे आ जायेगा।' हम आगे कुछ नहीं बोले और मन मे ही जाप करने लगे। थोड़ी ही देर मे बाहर से हमारा पड़ोसी आया। डाकुओ ने उसे पकड़ा परन्तु वह अपने को छुड़ा कर चिल्लाता हुआ बाहर भाग निकला। पड़ोस के लोग मेरे घर की ओर दौड़ पड़े जिससे भयभीत होकर डाकू भाग गये। इस प्रकार एक साथ कई चमत्कार हुए। प्रथम, मेरे पोते के जीवन की रक्षा हुई। द्वितीय, जो सम्पत्ति जाने वाली थी वे चाबियाँ उनके पास होते हुए भी बच गई। तृतीय, भागते हुए पड़ोसी बिहारीलाल करनानी के पीछे उन्होंने जो दो बम फेके थे वे फटे नहीं और इस प्रकार उसके प्राणो की रक्षा भी हो गई। यह था 'नाना' के नाम का अनोखा चमत्कार।

मेरे प्रति असीम उदारता

(क) उन दिनों आचार्य भगवन् भीनासर मे ही विराज रहे थे। दोपहर मे साधु-साध्वियों एव मुमुक्षु भाई-बहिनो को नियमपूर्वक आचाराग पढ़ाया करते थे। युवाचार्य भगवन् ने मेरे बारे मे गुरुदेव से कुछ कहा। उन्होंने तुरन्त ही साध्वियो से फरमाया कि आज कन्हैयालाल जी शरीर-विज्ञान के सबध मे आपको जानकारी देंगे। मैं हत्प्रभ रह गया, भगवन् की उपस्थिति मे साधु-साध्वियो को मैं ज्ञान दूँ! मुझे तो अपनी योग्यता पर भी सदेह हो रहा था परन्तु भगवन् का सकेत टालने का साहस भी नहीं कर पा रहा था। साध्वियाँ भी सदेह से मेरी तरफ देख रही थीं। खैर, मै 45 मिनट तक बोला और पन्द्रह मिनट प्रश्नोत्तर के लिए भी दिए। सभी कुछ सफलतापूर्वक निपट गया। मुझ जैसे एक श्रावक पर इतना दायित्व डालना, यह भगवन् की कृपा ही थी।

(ख) भीनासर में आचार्य भगवन् व्याख्यान फरमा रहे थे। मेरे किसी परिचित ने मेरा नाम भी सयोजक महोदय को वक्ताओ की सूची मे लिखा दिया। मै जब बोलने खड़ा हुआ तब सयोजक महोदय ने दो मिनट बोलने की सीमा बाँध दी। मैंने बिना समय नष्ट किये यही कहा कि 'व्यसना से कैसर और हृदयाघात जैसे रोग कैसे उत्पन्न हो जाते है, यह समय मिलने पर बताऊँगा। वह जानकारी प्राप्त कर आप स्वय आचार्य भगवन् के कहे बिना, उनके पास जाकर उनसे व्यसन छोड़ने का प्रत्याख्यान ले लेगे।' इतना कह कर मैं बैठ गया। आचार्य भगवन् ने युवाचार्य भगवन् से कहा—दो दिन बाद व्याख्यान का अधिकाश समय इनको देन का अवसर मिले यह ध्यान रखना। ऐसा ही हुआ। परमश्रद्धेय श्री धर्मेश मुनिजी म सा ने व्याख्यान शुरू किया और थोड़ी-सी देर मे सारी बात कह कर व्याख्यान का अधिकाश समय बोलने हेतु मुझे दे दिया। मेरा व्याख्यान सुनकर अनेक लोगों ने त्याग प्रत्याख्यान लिये। यह था गुरुकृपा का चमत्कार।

सम्प्रेषण की उदारता

बीकानेर चातुर्मास के दौरान आश्विन शुक्ला दूज स 2052 को आचार्य भगवन् के चादर प्रदान दिवस पर युवाचार्य भगवन् ने सघ से 35000 व्यक्तियों को व्यसनमुक्त बनाने का आह्वान किया। पूरे पण्डाल में निस्तब्धता छा गई। मैं पण्डाल मे आचार्य भगवन् से काफी दूर पीछे की तरफ बैठा था। अचानक मुझे लगा कि आचार्य भगवन् की आँखे कोई सदेश मुझ तक सम्प्रेपित कर रही हैं। मुझे लगा कि मैं उनकी अदृश्य प्रेरणा से प्रभावित हो गया हूँ और सर्वप्रथम मैंने ही उठकर

1000 बगाली व्यक्तियो को व्यसनमुक्त करने का प्रत्याख्यान ले लिया। सम्प्रेषण की उदारता आचार्य भगवन् ने मुझ पर ही की, यह मेरा परम सौभाग्य था।

प्रतिभा का सम्मान

नोखा चातुर्मास (वि स 2051) मे युवाचार्य भगवन् की प्रेरणानुसार एक 11 दिवसीय मुमुक्षु प्रशिक्षण शिविर मेरी देखरेख मे चल रहा था। इसी अवसर पर श्री साधुमार्गी जैन सघ की कार्यकारिणी समिति की बैठक भी पारख गेस्ट हाउस मे आयोजित हुई, जहाँ यह शिविर चल रहा था। बैठक के उपरान्त सभी लोग आचार्य भगवन् के दर्शन हेतु पधारे। भगवन् ने 10 मिनट तक उनको जो उद्बोधन दिया उसमे लगभग 4 मिनट मुझ पर ही केन्द्रित थे। आचार्य भगवन् के फरमाने का सार यही था कि कन्हैयालालजी भूरा अत्यत प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति हैं जिनकी प्रतिभा को पहिचान कर सघ को उसका उपयोग करना चाहिए। इस घटना का पूरा विवरण श्री जानकीनारायणजी श्रीमाली के पास सुरक्षित है। आचार्य भगवन् ने इस प्रकार कृपा कर मेरी पात्रता एव विश्वसनीयता का सम्मान किया।

मेरी विश्वसनीयता गुरु द्वारा प्रमाणित

वि स 2050, सन् 1993 मे देशनोक चातुर्मास में वहाँ समता शिक्षा सेवा सस्थान की स्थापना हुई। उद्देश्य था मुमुक्षुओं की शिक्षा की समुचित व्यवस्था करना। एतदर्थ विधिवत व्याख्याता रखकर शिक्षार्थियों की योग्यता एव पात्रता के अनुसार उनकी शिक्षा की व्यवस्था की गई थी। युवाचार्य भगवन् ने बड़ी सूझ-बूझ एव परिश्रम से पाठ्यक्रम का निर्धारण एव पाठ्य सामग्री का चयन किया था। मुझे उसका मत्री बनाया गया था। मुमुक्षु बहिन-भाई किसकी देख-रेख में रहे इस ध्येय से योग्य व्यक्ति की तलाश की जा रही थी। मैने तथा मेरी धर्मपत्नी ने भगवन् के पास अपनी समर्पणा दी। शुभारभ का दिन निश्चित हुआ उसके पहले हीरावत गेस्ट हाउस मे सारे सत-सतियों, मुमुक्षु बहिन-भाई आदि युवाचार्य भगवन् के सान्निध्य मे उपस्थित हए। आचार्य भगवन स्वय पधारे थे। श्रावकों मे मैं और डॉ सुरेश शिशोदिया, दो ही व्यक्ति थे। परिचर्चा के माध्यम से पाठ्यक्रम को अतिम रूप दिया गया। तदुपरान्त यह प्रश्न उठने पर कि अपनी-अपनी नेश्राय की मुमुक्षुओं को किसके भरोसे छोड़ा जाय, आचार्य भगवन् ने स्वय मेरा नाम लिया और सबको सबोधित कर मेरी प्रामाणिकता के बारे में सबको आश्वस्त किया। हम बाहर निकले तो डॉ शिशोदिया ने कहा, 'कन्हैयालालजी, आप तो धन्य हो गये। आपकी विश्वसनीयता का प्रमाणपत्र तो आचार्य भगवन् ने स्वय दे दिया है।' डॉ शिशोदिया यह बात अब भी मुझे समय-समय पर याद दिलाते रहते हैं। धन्य है गुरु की ऐसी कृपा!

सेवा कार्यों से सतुष्टि

मैं जब भी आचार्यश्री के दर्शनार्थ उपस्थित होता, कूचबिहार तथा निकटवर्ती क्षेत्रो में किये जा रहे सेवा कार्यों का विवरण उनके सम्मुख प्रस्तुत कर देता। सेवा कार्यो के ऐसे विवरण प्राप्त कर आचार्य भगवन् बहुत प्रसन्न होते। जब देशनोक मे सार्वजनिक आँखो का आपरेशन था तथा वहाँ एक्यूप्रेशर शिविर लगा तब भगवन् बहुत सतुष्ट हुए और उनके चेहरे पर अनोखी प्रफुल्लता देखने को मिली। ऐसी थी सेवा कार्यो के प्रति उनकी अनोखी लगन।

समीक्षणध्यान शिक्षण

मैं कई वर्षों से आचार्यश्री जी से मुझे समीक्षण ध्यान की विधि सिखाने की विनती कर रहा था। लोगों की आवाजाही इतनी अधिक थी कि गुरुदेव चाह कर भी समय नहीं दे पा रहे थे। सौभाग्य से देशनोक चातुर्मास के दौरान एक दोपहर को ऐसा सुअवसर आ ही गया। आचार्य भगवन् ने अत्यत कृपापूर्वक मुझे समीक्षणध्यान की विधाएँ ही नहीं बताई उनकी विधियाँ भी समझा दीं। उनके द्वारा प्रदत्त यह ज्ञान आज भी उपयोग में आ रहा है।

वीरसघ धर्म-प्रचारक का उत्तरदायित्व

ब्यावर चातुर्मास मे जब 'वीरसघ धर्म प्रचारक योजना' की घोषणा की गई तब सुपात्रों की खोज में भगवन् की दृष्टि अनेक लोगो की ओर गई होगी परन्तु मुझे

तथा मेरी धर्मपत्नी को प्रथम प्रचारक एव प्रथम प्रचारिका के रूप मे चयनित कर उन्होंने हमारा गौरव बढ़ाया। उनकी यह कृपा उनके हम पर अतीव विश्वास का एक और प्रमाण प्रस्तुत करती है।

शिशु-सम सरल

युवाचार्य भगवन् की कृपा से नोखा एव भीनासर दोनो स्थानो के मुमुक्षु प्रशिक्षण शिविर मेरी ही देखरेख में लगे। शिविरो के दौरान अपराह्न 2 00 से 3 00 बजे तक का समय केवल मुमुक्षुओ को देने हेतु आचार्य भगवन् से निवेदन किया गया। आचार्य भगवन् ने जिस उदारता के साथ यह निवेदन स्वीकार कर लिया उससे मुमुक्षु बहिनों को अतीव हर्ष हुआ क्योकि अन्य प्रकार से तो आचार्य भगवन् के पास जाने का उन्हे साहस ही नहीं होता था। मैं उन्हें हर तरह से आश्वस्त कर भगवन् के सामने ले जाता। भगवन् भी शिशु-सम सरल भाव से उनके साथ व्यवहार करते जिससे उनका सारा भय दूर हो जाता और बहिने नि सकोच भरपेट प्रश्न पूछतीं। भगवन् भी अत्यत सरल होकर स्नेहपूर्ण स्वर मे 'सुनो भाई', सबोधन देकर ऐसे समाधान देते कि वे बहिनें गद्गद् हो जातीं। आचार्यश्री का वह निर्मल एव बालक जैसा सरल रूप मुमुक्षु बहिनो को एव स्वय मुझे सदैव याद रहेगा।

ब्यावर चातुर्मास मे प्राण-रक्षा

ब्यावर चातुर्मास। आश्विन शुक्ला द्वितीया, चादर प्रदान दिवस का प्रसग। सयोजक श्रीयुत् कालूरामजी नाहर ने कहा, 'बोलने वालों में सर्वप्रथम आपका नाम बोलूँगा अत आप आचार्य भगवन् के पास ही रहना।' मैं आचार्य भगवन् के पाट के पास ही था कि इतनी जोर का बवडर आया कि पूरा पण्डाल ऊँचा उठ गया। पण्डाल को साधने वाली एक बल्ली बड़े जोर से आचार्य भगवन् एव स्थविर प्रमुख जी के मध्य गिरी। दूसरी भी गिरने वाली थी कि मैंने उसे पकड लिया। हवा के भीषण वेग ने मुझे लगभग सात फुट ऊँचा उठा कर धड़ाम से नीचे गिरा दिया। तब तक आचार्य भगवन् अन्दर पधार चुके थे। मैं लहूलुहान हो गया था परन्तु मेरे मन में असीम सतोष था कि मैंने उस बल्ली को आचार्य भगवन् पर गिरने से रोक लिया अन्यथा पता नहीं क्या हो जाता।

असीम जन-आस्था के केन्द्र

हम पति-पत्नी वीरसघ धर्म-प्रचारक के रूप मे राजसमद जिले के दूर-दराज के गॉवो में घूम रहे थे। दूर-दूर बिखरे उन छोटे-छोटे गाँवो मे कई स्थानों पर वृद्ध श्रावक मिले। 25-30 वर्ष पहले आचार्य भगवन् उन गाँवो मे पधारे थे। उसके उपरान्त कई गॉवो में तो सत-सती वृद का पधारना भी नहीं हुआ था। हम अचानक पहुँचे तो वे लोग गद्गद् हो गये। पिछले दृश्य उनकी आँखों में सजीव हो उठे। वे हमें दिखाने लगे—'हमारे इस आँगन मे पधार कर आचार्य भगवन् इस स्थान पर खड़े हुए थे और हमने आहार बहराया था।' उनकी स्मृतियों के पृष्ठ के पृष्ठ खुलते चले जाते। हमने अनुभव किया कि लोगो के हृदयों में उनके प्रति कितनी गहरी श्रद्धा थी जो उन्होंने आचार्य भगवन् से सबधित स्थानो को इस प्रकार चिह्नित कर रखा था और आज तक उन सुखद स्मृतियो को अपने हृदय में सजोये हुए थे। धन्य हैं ऐसे श्रद्धालु लोग और धन्य है उनका श्रद्धाभाव।

अनुशासन मे कठोर

बात नोखा चातुर्मास की है। शाम के मागलिक के बाद भगवन् अन्दर चहल-कदमी कर रहे थे। मुझ से कुछ वार्तालाप करना था। मै साथ-साथ घूम रहा था। अचानक आचार्य भगवन् की नज़र उस एकमात्र श्राविका पर पड़ी जो स्थानक मे उस समय थी। आचार्य भगवन् ने इतनी जोर से उसे उपालभ दिया कि वह थर-थर कॉंपने लगी। असावधानी व गलती को आचार्य भगवन् कभी सहन नहीं करते थे।

मागलिक का चमत्कार

वीरसघ धर्म प्रचारक व प्रचारिका के रूप में हम दोनों कई बार ऐसी-ऐसी जगह भी भेजे गये जो हमारे लिए पूरी तरह से अनजानी थी। कभी-कभी तो ऐसी

जगहो के श्रावको अथवा अन्य सम्पर्क सूत्रो की जानकारी भी युवाचार्य भगवन् से नहीं मिलती थी। अत मे हम आचार्य भगवन् से मागलिक सुनने जाते। हमारे यह कहते ही कि सम्पर्क सूत्र की जानकारी नहीं है, वे सहज भाव से फरमाते, 'कोई चिन्ता नहीं, आप सघ सेवा करे।' और सचमुच चमत्कार हो जाता। उन स्थानो पर अति विशेष सफलता मिलती। ऐसा होता था उनके मागलिक का प्रभाव। धन्य है हम जो गुरुदेव का ऐसा अव्यक्त सरक्षण हमे मिलता था।

परीषहो के प्रति निर्विकार

वीरसघ धर्म प्रचारको के रूप मे हम पति-पत्नी को धर्मपाल क्षेत्रों में ऐसी जगहो पर भी प्रवास करना पड़ा जहाँ भोजन पानी की भी समुचित व्यवस्था नहीं थी। तब हमे अनुभव हुआ कि आज से 30-35 वर्ष पूर्व जब आचार्य भगवन् ने उन क्षेत्रों में विचरण किया होगा तब स्थितियाँ कितनी विकटतर रही होंगी, आहार-पानी का जोग कैसे बैठा होगा, कैसे-कैसे परीषह आये होगे फिर भी आचार्य भगवन् निर्विकार एव अविचलित रहे, कैसी तपस्या थी और कैसी साधना की थी उन्होंने। धन्य है वे लोग जिन्हे ऐसे तपस्वी का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

आज्ञा की अवहेलना का दुष्परिणाम

बात भीनासर की है। हम दम्पती गगाशहर मे ठहरे हुए थे। अगले दिन प्रात इटरसिटी एक्सप्रेस से जयपुर होते हुए कूचबिहार जाने का कार्यक्रम था। एक्सप्रेस सुबह 5 00 बजे प्रस्थान करती थी। इतनी सुबह भगवन् से मागलिक सुनने जाना सभव न समझ कर पूर्व दिवस की सध्या पर ही हम लोग आचार्य भगवन् के पास मागलिक सुनने हेतु चले गये। सहसा भगवन् के मुँह से सहज रूप मे निकला, 'कल जाएँगे तो कल ही देख लेना।' इतना फरमाकर भगवन् चुप हो गये, मागलिक नहीं सुनाई। हमारा मन ऊहापोह की स्थिति में फँसा हुआ था। मैंने दुबारा-तिबारा विनती की, पर भगवन् चुप ही रहे। चौथी बार विनती करने पर उन्होने मागलिक तो सुना दी परन्तु उनके चेहरे पर गभीर भाव आ गये।

दूसरे दिन हम लोग बीकानेर स्टेशन पहुँच। कम्प्यूटर फेल था। मेन्युअल टिकट वितरण खिड़की पर महिलाओ की पक्ति में कम भीड़ देख कर मैंने अपनी धर्मपत्नी ~ पक्ति में खड़ा कर दिया और स्वय सामान लेकर गाड़ी मे जा बैठा। जितनी देर मे वे टिकट लेकर प्लेटफार्म पर आईं गाड़ी छूट गई व चल पड़ी थी। तेज दौड़ कर भी वे गाड़ी मे चढ़ नहीं पाई। सामान अधिक था इस कारण मैं भी तुरन्त उतर पड़ने की स्थिति में नहीं था। मैने चेन खींची तो हाथ कट गया, टप्-टप् खून गिरने लगा पर चेन की गड़बड़ से गाड़ी रुकी नहीं। वे सूमो लेकर गाड़ी के पीछे चल दीं। उन दिनो बीकानेर के बाद अगला स्टाप नागौर ही आता था। उनकी गाड़ी नागौर स्टेशन जब तक पहुँची, मेरी गाड़ी छूट चुकी थी। सर्दी का समय था, उनके पास ओढ़ने के लिए शाल तक नहीं थी। मै बुरी तरह से चिन्ताग्रस्त हो गया क्योंकि उनका हैण्डबैग भी ट्रेन मे मेरे पास था। भीषण मानसिक तनाव की स्थिति मे मैं मन ही मन गुरुदेव का स्मरण करने लगा। जयपुर मे कहाँ जाना था उस स्थान का पता भी उनके पास नहीं था। गुरुदेव के नाम-स्मरण का चमत्कार तो होना ही था, जयपुर में जिनके घर जाना था, उनका टेलीफोन नम्बर उन्हे याद आ गया। स्टेशन के बाहर टेलीफोन बूथ से जयपुर फोन कर उन्होने सारी स्थिति बताई और जयपुर जाने वाली बस का नम्बर भी बता दिया। मैं अत्यत तनाव की स्थिति मे जयपुर पहुँचा। जिनके घर ठहरना था वे प्रदीप बोथराजी सामने आये हुए थे। रास्ते भर मैं गुरुदेव के नाम का जाप करता रहा। जयपुर उतरते ही बोथराजी ने सूचना दी कि चिन्ता की कोई बात नहीं है, वे बस से पहुँच रही हैं। यह था सहज रूप से भगवन् के मुख से निकले वचनों की अनुपालना न करने का परिणाम।

गुरुदेव से सबधित स्मृतियाँ इतनी ही नहीं हैं, उनकी श्रृखला बहुत लम्बी है, एक कड़ी उठाओ तो दूसरी अपने आप उठ आती है। आज जब गुरुदेव महाप्रयाण कर चुके हैं तब मैं सोचता हूँ कि ऐसी स्मृतियों से क्या मिलता है? पर क्या नहीं मिलता है? जब इनकी श्रृखला चल पड़ती है, मन विभोर हो जाता है, आँखो मे प्रेमाश्रु छलक आते हैं, हृदय अनूठी अनुभूति से भर उठता है, मन में

अनोखी तृप्ति की तरगें उठने लगती है और सम्पूर्ण शरीर गद्गदायमान हो जाता है। यह मेरी भक्ति की सीमा है या आचार्य भगवन् की मुझ पर कृपा का पुरस्कार, मैं समझ नहीं पाता हूँ। भक्त और भगवान् के बीच की बात को कौन समझ पाता है, कौन समझा पाता है ? यह सबध तो आत्मा का होता है—अवर्णनीय। इसी को तो कबीर ने 'गूँगे का गुड़' कहा है—'गूँगे का गुड़ गूँगेहि जाना।' यह मिठास जो कभी जाने वाली नहीं है, मेरी अक्षय निधि है।

—कन्हैयालाल भूरा

स्मृति के झरोखे से

जिनके स्मरणमात्र से मन की सम्पूर्ण अशान्ति मिट जाती है तथा सभी प्रकार के आवेगों से मुक्त हो मन समता की पावन लहरों में हिलोरें लेने लगता है ऐसे परमपूज्य, समता विभूति आचार्य श्री नानेश के सयमित जीवन का चिन्तन मुझे भाव-विभोर कर देता है और मन लौट जाता है उन पावन क्षणो की स्मृतियो मे जो मेरे जीवन का पाथेय बनीं।

बात मैं अपने बचपन के अनुभव से प्रारम्भ कर रही हूँ। आपके आचार्य पद प्राप्त करने से पूर्व आपके दर्शन करने का अवसर मुझे बहुत बार मिला था। सदा ही मैंने आपको पूर्ण तन्मयता से सयम-साधना में निमग्न पाया। आगमो के अध्ययन में तल्लीन आपकी वह अनुपम छवि मैं आज तक विस्मृत नहीं कर पाई हूँ।

आचार्य पद पर आरूढ़ होने के पश्चात् आपका द्वितीय चातुर्मास इन्दौर में हुआ उस समय मेरी लाइलाज बीमारी के निदान के प्रयासो से थक कर मेरे पूज्य पिताजी, इन्दौर निवासी स्व श्री बख्तावरमल जी सॉड, ने आचार्यश्री जी से घर पधार कर मुझे मागलिक सुनाने हेतु विनती की। अत्यत सहज भाव से आचार्य प्रवर ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। कैसा सौभाग्यशाली था वह क्षण जब असीम कृपा कर घर पधार कर मुझे मागलिक सुनाई। बस, वह दिन था कि आज का दिन। मेरे शरीर की व्याधि प्रतिक्षण कम होती चली गई। जिस व्याधि के उपचार से चिकित्सको ने हाथ खींच लिये थे वही व्याधि आपश्री से मागलिक श्रवण करने के पश्चात् शनै -शनै शान्त हो गई। ऐसे दिव्य पुरुष की महिमा का वर्णन और ऐसे उपकार की स्वीकृति किन शब्दों में करूँ, मैं समझ नहीं पा रही हूँ।

इस घटना के उपरान्त जब-जब भी आपके दर्शन करने का सौभाग्य मुझे मिला, आपके सयम के तेज ने मेरे हृदय को दिव्य आलोक से प्रकाशित करने मे कभी कोई कमी नहीं छोड़ी। आपके निर्वाण के बाद आज मैं अनुभव करती हूँ कि आप इस धराधाम की एक अलौकिक विभूति थे और आपके सान्निध्य का जो लाभ हमे मिला वह हमारे जीवन की अनुपम निधि है। आपका आत्मतेज, ध्यान साधना और सयम साधना इतनी प्रखर एव पवित्र थी कि आपके सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। आपकी ममतामयी वाणी से जो अमृत बरसता था वह दर्शनार्थियों के मनोमल को धोकर उनके हृदयो को शुद्ध-पवित्र कर देता था, साथ ही आपके प्रति जो श्रद्धाभाव उनमे उत्पन्न होता था वह उन्हे धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता था। आपकी देशना ने दलित व उपेक्षित समाज के जिन लाखो लोगो को सुसस्कारित कर धर्मपाल बना दिया वे आज सम्मानजनक जीवन का उपभोग कर रहे हैं। आपके तप तेज से प्रभावित होकर लगभग 350 मुमुक्षु आत्माओं ने जो सयम का जीवन अगीकार किया वह अपने आप म एक कीर्तिमान है।

अपने जीवन की सध्यावेला में भी आपने सयम के प्रति पूर्ण सजगता रखते हुए लगभग छ माह पूर्व से ही किसी भी प्रकार के औषध-सेवन, परीक्षण एव उपचार स्वीकार करने से इन्कार कर सथारा ग्रहण करने की इच्छा का सकेत दे दिया था। आपकी सजगता एव शुद्ध चेतना भाव का ही परिणाम था कि आपको तेरह घण्टे का सथारा आया। धन्य है ऐसी महान् आत्मा जिसकी स्मृति युगों-युगो तक सद्धर्म की प्रेरणा प्रदान करती रहेगी। हमारा जीवन भी धन्य है जो ऐसे विरल आचार्य का सान्निध्य प्राप्त हुआ तथा उनके पावन ससर्ग से अपने तन, मन और आत्मा को पवित्र करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मेरे कृतज्ञ हृदय से उनके प्रति ये

उद्गार सहज ही निकल पड़ते हैं—

धर्म-पथ पर सदा जो चलाते रहे,
राह समता की सबको दिखाते रहे,
ऐसे आचार्य की हम करे वन्दना,
खुद तीरथ बने और तिराते रहे।
'निर्मला' अब करे बस यही कामना,
आपका पथ सदा जगमगाता रहे।

—निर्मला चोरड़िया

इलाज आत्मा का

विश्व के महान् आध्यात्मिक चिकित्सक, अनुपमेय व्यक्तित्व के धनी, अमृत योगी, महापुरुष आचार्य श्री नानेश का सम्पूर्ण साधनामय जीवन आत्मलक्षी रहा। प्रवचनों एव सत-सतियाँजी से बातचीत करते समय अथवा किसी भी जिज्ञासा का समाधान करते हुए, उनका प्रत्युत्तर आत्मा के इर्द-गिर्द ही रहता था। देह मे अवस्थित रहते हुए भीतर की ग्रन्थियो को भेद कर देहातीत साधना मे वे बेजोड़ थे। आपने सघ के बहुआयामी उन्नयन हेतु जो सदेश/सूत्र प्रदान किये, वे अपनी अन्तर आत्मा के निर्णयानुसार किये थे। एक प्रसग स्मृतिपटल पर उभर कर आता है, जो अत्यन्त मार्मिक एव चिन्तनीय है।

उस समय गुरुदेव भोपाल सागर विराजित थे। मेरे पास कपासन के एक सुश्रावक का फोन आया कि मुझे या सुशील बाबू को डॉक्टर को साथ लेकर आने के लिए स्थविर प्रमुख श्री ज्ञानमुनिजी म सा ने याद किया है। जब पूछा कि आचार्य भगवन् का स्वास्थ्य कैसा है तो प्रत्युत्तर मिला कि नॉर्मल है। फिर जनरल कण्डीशन के बारे मे पूछा तो ठीक बताई गई। तब मन मे यह प्रश्न उत्पन्न हुआ कि जब सब ठीक-ठाक है तो फिर डॉक्टर के साथ क्या याद किया गया है?

अस्तु, सकेत की पालना तो करनी ही थी अत मैं, सुशील बाबू एव डॉक्टर श्री सजयजी कोचर को साथ लेकर भोपाल सागर की तरफ प्रस्थान कर गया। आचार्य भगवन् एव सतो के दर्शन किये एव तदनतर गुरुभक्ति एव शासननिष्ठा के बेजाड़ धनी स्थविर प्रमुख, विद्वद्वर्य श्री ज्ञानमुनिजी म सा से आचार्य भगवन् के स्वास्थ्य के सबध में बातचीत हुई। श्री ज्ञानमुनिजी म सा ने फरमाया—'मुझे आचार्य भगवन् का स्वास्थ्य पूर्ण ठीक नहीं लग रहा है। पता नहीं क्यों रात से ही जब मै चितन मे लगा, मुझे आभास हुआ कि आचार्य भगवन् स्वस्थ नहीं हैं, ऊपर से भले ही ठीक लगते हों।' हमने जाच करवाई तो परिणाम चिताजनक लगा। फिर दूसरी बार जाच करवाई, वह भी पूर्ववत् ही थी। अत पक्का विश्वास हो गया था कि स्थविर प्रमुखजी का सोचना व उनका चितन एकदम ठीक था।

भोपाल सागर से फोन का साधन जैसा चाहे, वैसा नहीं था। अत कपासन जाकर कर्मठ सेवाभावी श्रीमान् राजमलजी चोरड़िया का डॉक्टर रत्नू सा को लाने हेतु निवेदन किया। साथ ही श्रीमान् कोठारी सा एव श्रीमान् गुमानमलजी चोरड़िया से भी बराबर सम्पर्क बनाये रखा। वे सभी अपने साधन लेकर गुरुदेव के चरणो मे पहुँचे। सभी ने बैठकर निर्णय लिया कि गुरुदेव का इलाज किस तरह से किया जाना था। स्थविर प्रमुखजी, सभी डॉक्टरो तथा बीकानेर-जयपुर से आये श्रावको ने गहन चितन करके आचार्य भगवन् का इलाज प्रारम्भ करवाया। तदन्तर डॉ रत्नू सा के साथ आये सभी डॉक्टर एव सघ गौरव श्रीमान् चोरड़िया सा आदि जयपुर चले गए।

इधर, डॉ रत्नू सा के निर्देशानुसार डॉ बड़जात्या सा, डॉ बोलिया सा, डॉ वर्मा सा आदि ने इलाज चालू रखा और स्थिति नियत्रण में आ गई परन्तु तीन दिन पश्चात् आचार्य भगवन् न इलाज कराने से मना कर दिया। लगभग तीन दशकों से आचार्य भगवन् के स्वास्थ्य का ध्यान रखने का हमे सौभाग्य प्राप्त था। आचार्य भगवन् की भी हम पर कृपा दृष्टि बराबर बनी रही थी। कभी हम चूक जाते या भूल जाते तो आचार्य भगवन् हमें याद दिला देते थे कि—डॉ सा ने ऐसा बताया था अथवा ऐसा कहा था, परन्तु आज नजारा कुछ और ही था।

आचार्य भगवन् ने इलाज कराने से एकदम मना कर दिया। आचार्य भगवन् के केनुला लगा हुआ था ताकि बार-बार इन्जेक्शन लगाने में सुविधा रहे। चूकि आचार्य भगवन् के केनुला पहली बार लगाने का काम पड़ा था अत आचार्य भगवन् ने मुझसे कहा—'आपने ये क्या लगा रखा है? इसे बाहर निकालो। हमे इलाज नहीं करवाना है।' डॉक्टरो ने बहुत समझाया, परन्तु आचार्य भगवन् टस से मस न हुए और आगे इलाज के लिए तैयार नहीं हुए। हम सभी डॉक्टरो को लेकर भोजन करने चले गए। जब हम वापस लौटकर आये, तब तक स्थविर प्रमुखजी ने आचार्य भगवन् का मानस बना दिया था तो आचार्य भगवन् इलाज के लिए तैयार हो गए।

ग्लूकोज की बोतले चढ़ानी थीं। आचार्य भगवन् ने कहा—'मै बैठे-बैठे ही लगवाऊँगा सिर्फ एक बोतल।' परन्तु हमे तीन बोतले ग्लूकोज चढाना था। एक बोतल खाली हुई, दूसरी लगाई थी। आचार्य भगवन् एव स्थविर प्रमुखजी आपस मे बात कर रहे थे। दूसरी बोतल लगाई तो आचार्य भगवन् ने पूछा—'क्या वह बोतल अभी तक नहीं लगी?' स्थविर प्रमुखजी ने फरमाया—'अन्नदाता, बोतल दूसरी चल रही है। थोड़े समय की बात है। यदि आप कहे तो उतार लेते हैं, परन्तु डॉ सा तीन बोतल का बोल रहे है।' आचार्य भगवन् ने कहा—'आपको जैसा अच्छा लगे कर लो।' तीन बोतल चढ गई।

आचार्य भगवन् के स्वास्थ्य मे काफी सुधार आ गया था। दूसरे दिन फिर आचार्य भगवन् से निवेदन किया, मगर आचार्य भगवन् की इच्छा नहीं थी। फिर भी दवा-पानी चालू रखा। शाम का वक्त आया। लगभग 4 00 बजे आचार्य भगवन् से इन्जेक्शन लगाने हेतु निवेदन किया। आचार्य भगवन् बोले नहीं। पुन निवेदन किया तो आचार्य भगवन् बोले—अब मैं इलाज नहीं करवाऊँगा। डॉक्टरों ने भी बहुत विनयपूर्वक निवेदन किया—'अन्नदाता इलाज कराना बहुत जरूरी है।' इस पर आचार्य भगवन् बड़े प्यार से मधुर शब्दो में बोले—*'मुझे इलाज करवाना है, मगर इलाज आत्मा का करवाना है। क्या आपके पास वह इलाज है?'* डॉक्टर मौन हो गए। फिर मुझसे कहा कि—'ये जो गोचा (केनुला) आपने हाथ के अन्दर डाला है, इसको बाहर निकाले।' मैं आचार्य भगवन् को देखता रह गया। हम दोनो एक-दूसरे को देखते रहे। इधर, डॉक्टर इन्जेक्शन लगाने के पक्ष मे थे। केनुला निकालने के लिए उनका मानस तैयार नहीं हो रहा था, लेकिन मेरे दिमाग मे *'इलाज आत्मा का'* शब्द बार-बार गूज रहा था, जिसका डॉक्टरो के पास न तो कोई इलाज था और न प्रत्युत्तर ही।

कुछ समय पश्चात् आचार्य भगवन् ने फरमाया—'आपने मेरी बहुत सेवा की है और हमेशा मेरी भावनाओ को ध्यान मे रखा। डॉक्टरो की हॉ में हाँ कभी नहीं मिलाई। आज आप मेरी भावना को ध्यान में न लेकर डॉक्टरों की हाँ मे हाँ मिला रहे हो। आपने सारी सेवा पर पानी फेर दिया है।'

स्थविर प्रमुखजी से मैने परामर्श कर केनुला निकालने के लिए निर्णय लिया, परन्तु कोई भी डॉक्टर इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

कर्मठ सेवाभावी श्री गोरधनजी एव श्रीमान् शातिलालजी नलवाया से मैंने कहा—'निकाल दो केनुला।' वे भी हमे, आचार्य भगवन् एव डॉक्टरो को देखते रहे। फिर भी मैंने कहा—'यहाँ से सारी दवाइयॉ हटा लो। केनुला भी निकाल लो।'

इस बार आचार्य भगवन् की भावना को श्री गोरधनजी ने भी ध्यान मे लिया। अत उन्होने तत्काल केनुला निकाल दिया। दवाइयों श्रावको को सौंप दी। उस समय मैने कहा—'अब आचार्य भगवन् को बहुत अच्छी नींद आएगी और कल तक एकदम स्वस्थ हो जाएँगे।'

गुरुकृपा से ऐसा ही हुआ। वस्तुत महापुरुष के तेज के आगे डॉक्टरो की थ्योरी भी असफल हो गई थी। सारे डॉक्टर अचम्भे मे पड़ गए कि बिना दवाइयो के गुरुदेव एकदम ठीक कैसे हो रहे है। यह चमत्कार था, सलेखणा पूर्वक सथारा करने की भावना का, कि मुझे इलाज आत्मा का करना है। तत्पश्चात् आचार्य भगवन् को इलाज एव दवाइयो से एलर्जी हो गई थी। डॉक्टर उनके पास आते—बातचीत करते, मगर जब इलाज या दवाइयों की बात करते तो गुरुदेव फरमाते—'आप दया पाल लो आपको बहुत काम होगा।'

समय व्यतीत हो गया, परन्तु गुरुदेव की बात 'इलाज आत्मा का' आज भी मेरे मन-मस्तिष्क मे उभरकर बार-बार आती है। श्रमण-निर्ग्रन्थ सस्कृति के सजग प्रहरी उपर्युक्त कथन से सदेश दे गए कि हमें भेद-विज्ञान के सहारे यह जानने और मनन करने की आवश्यकता है कि देह पृथक् है एव आत्मा पृथक्। हमे सदैव आत्मोन्नयन की दिशा मे ही चिंतन करना चाहिए। ◆

—जयचन्दलाल सुखानी

आचार्य नानेश जैसा मैने उन्हे जाना

देश के विशाल भू-भाग में अपनी पदयात्रा से विहार कर प्रभु महावीर के शासन को उद्योतित करने वाले आचार्य नानेश से सन् 1987 के इन्दौर वर्षावास मे मै विशेष रूप से रूबरू हुआ था। साधुमार्गी सघ को अप्रतिम गौरवपूर्ण विरासत देने वाले उस अवधूत मे मुझे अद्भुत खूबियाँ दृष्टिगत हुई थीं।

दैनदिनी के 24 दिन के प्रत्येक घण्टे निकट रहकर मैने उनके गहरे आत्मानुभूतिपूर्ण रहस्यो की जानकारी पाने का पूरा प्रयास किया।

मैंने पाया कि उस विलक्षण अवधूत में गहन से गहन तत्त्वों की थाह लेने की अद्भुत क्षमता थी, 'ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप त्रिवेणी' का अद्भुत सगम था, सयम पालन में अद्भुत चुस्तता थी तथा उसका जीवन सहज, सरल और आडम्बर-प्रदर्शन से दूर था।

चौड़ा ललाट, सावला रग, समदर से गहरे नेत्र, ऐसे नेत्र, जिनके भीतर नेत्र हो और जिन्होने मोतिया बिन्द के आघात सहे हो—एक चश्मा मोटी फ्रेम का, नाकोनक्श आध्यात्मिक, धवल चादर।

मुख पत्ती में झाकता सस्मित अथक चेहरा और मन में सीधे गहरे उतर जाने वाली वाणी।

एक-एक शब्द सोचा हुआ। विवेक और मुनित्व की तुला पर तुला हुआ। कोई छुपाव नहीं, सब कुछ खुला हुआ। मन के तमाम रोशनदान उन्मुक्त—कोई आच्छादन नहीं उन पर। साफ सुथरा मनन, सब कुछ विवेक के रजोहरण से परिमार्जित और सम्यक्त्व की पूजणी से निर्मल।

जो कहते थे, उसे सौ टका जीते थे, और जो किया हुआ था, मानिये उसकी जड़ आचरण मे पाताल तक थी। बातचीत में कोई झुझलाहट या चचलता नहीं। कोई सवाल कीजिए अक्षुब्ध उत्तर लीजिए। निराकुलता का एक पूरा का पूरा दरिया लहरे लेता हुआ। चारो ओर अखूट वात्सल्य की कादम्बिनी (मेघ घटा) घिरी हुई। जो भी उनके आभावलय मे पहुँचा, वह वहीं का हो गया। उनकी आत्मीयता समूचे जीवन को रूपान्तरित कर देती थी, उनके विचार वर्तुल में नैराश्य और उदासी को उत्सव मे बदल देने की अद्भुत क्षमता थी।

मैंने उनसे जैन धर्म/दर्शन के विविध प्रश्न आधुनिक विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले विविध सदर्भो और पक्षों के आधार पर किये थे। मैंन जिस उत्कण्ठा से प्रश्न किये थे, आचार्यश्री ने भी उसी भावना से आत्मविभोर होकर उत्तर दिये थे।

मै शुरू से ही मान रहा था कि इस महापुरुष मे बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र मे पिरोकर कुछ रचनात्मक करने की अद्भुत स्पृहा थी।

मैने गभीरता से अनुभव किया था कि यदि उनके भीतर के खुले ज्ञान-निर्झर को जन-जन तक पहुँचा सकने की कोई व्यवस्था नहीं की गई तो वह ऐसी भूल होगी जिसे कभी सुधारा नहीं जा सकेगा और हम सब ऐसे अमृतकुण्ड से वचित रह जाएगे जो आज के राह भटके आदमी को सही दिशा दे सकता है, उसके तन-मन को ठण्डक पहुँचा सकता है।

आचार्य श्री नानेश के तीन अप्रतिम अवदान इतिहास के पन्नो मे स्वर्ण अक्षरो मे अकित हुए है। सस्कृति के क्षेत्र मे—*'समता दर्शन'*, व्यक्ति के क्षेत्र मे *'समीक्षण ध्यान'* और समाज के क्षेत्र में *'धर्मपाल अभियान।'* हम उनके अपूर्व व्यक्तित्व की जीवनपर्यन्त अनुभूति इस त्रिकोण के बीच कर सकते हैं।

पहला अवदान है, जो विश्व शाति के लिए और राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय स्तर पर विषमता तथा अन्य ग्रन्थियों को समाप्त करने के लिए है वह है—*समता।* व्यक्तियो की वृत्तियो के परिष्कार एव दृष्टि-सस्कार के लिए समता दर्शन के 4 सोपान एव 21 सूत्रो का, व्यक्तियों के लिए सस्कृति के सस्कार-क्षेत्र मे, पालन अनिवार्य है।

दूसरा अवदान है, व्यक्ति के क्षेत्र मे—*समीक्षण ध्यान का।* समीक्षण ध्यान आत्मसाधना है। इसका मूल मत्र है—'आत्मान विधि' चित्तवृत्तियों का निरोध। सब कुछ भीतर में, अपने अतरग मे, समतापूर्वक अन्तरावलोकन, निरीक्षण, आदर्श स्थैर्य-प्राप्ति हेतु सहज योग। अह और मम का विसर्जन। एकाग्रता का उदय। आत्मशक्ति का सचय। सद्विचारो और समता भावो के उन्नयन से विश्वहित। चेतना का ऊर्ध्वारोहण।

तीसरा अवदान है, समाज के क्षेत्र मे—*'धर्मपाल अभियान का'।* आचार्यश्री का धर्मपाल अभियान एक स्मरणीय और प्रेरणास्पद आदोलन है जिसने विगत दशको के दौरान कई क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण और बहुमुखी उपलब्धियाँ हासिल क-राई हैं।

भगवान् महावीर ने जैन धर्म-दर्शन के द्वार जन-जन के लिए खोल दिये थे। उन्होने पूरी बुलन्दी से कहा पुश्तैनी कुछ नहीं है। जन्म किसी एक खास घर या घराने, कुल या कुनबे मे हो जाने से कोई शख्स छोटा या बड़ा, श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ नहीं हो सकता, न ही उसे कोई सामाजिक दर्जा इसलिए मिल सकता है कि उसने फला घर/घराने/कुल/वश में जन्म लिया है। ये सारी कसौटियाँ खोटी और *अविश्वसनीय हैं। खरी और सच्ची कसौटी है—आचरण और कर्म।*

ऐसा युगान्तरकारी कार्य कर दिखाया है 'आचार्य श्री नानेश' ने जो अपने आप मे अनुपम और अद्वितीय है। उनके द्वारा प्रवर्तित साधुमार्ग का धर्मपाल अभियान एक ऐसा अभियान है जो युगो-युगों तक दलित-दमित, पतित-पीड़ित मानवता के लिए प्रगति और मुक्ति के द्वार उन्मुक्त करेगा।

नई सदी का नया दौर दस्तक दे रहा है कि आचार्यश्री के इन बहुमूल्य अवदानों के आधार पर भविष्य की सरचना के प्रति व्यापक एव गहरा चितन करे एव बिखर चुकी जर्जर प्रणाली को सुधारने के लिए व्यापक सहमति बनाये, तभी भावी पीढ़ियो को भोगवादी मानसिकता से बचाया जा सकेगा। इस दृष्टि से आचार्यश्री ने अहिसक साधनो के उपयोग की जो शिक्षा दी है वह भी उनके गरिमामय आचार्यत्व के अनुरूप ही है। अब आवश्यक है कि व्यक्ति और समाज मिल कर उनके द्वारा उपदिष्ट मार्ग के अनुसार सघ, समाज और राष्ट्र को जागृत बनाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करे। ◆

—डॉ नेमीचद जैन

विरल आचार्य श्री नानेश

उदयपुर के राजमहल के प्रागण मे आयोजित वह अविस्मरणीय प्रसग आज भी मेरे मनमस्तिष्क पर अकित है जिसमे पूज्य श्री नानालाल जी म सा को युवाचार्य पद की चादर ओढ़ाकर हुक्मसघ के अष्टमाचार्य का पदभार दिया गया था। आचार्य बनने के पश्चात् आपका प्रथम ऐतिहासिक चातुर्मास रतलाम मे सम्पन्न हुआ था। श्री अ भा सा जैन सघ की स्थापना हुई। आपने अपने दृढ सयमी जीवन, प्रेरक व मार्मिक उद्‌बोधन से मालवा प्रान्त में बसे बलाई जाति के बन्धुओं को उपदेश देकर जिन धर्म का मर्म समझाया तथा उन्हे कुमार्ग से सन्मार्ग पर लाकर धर्मपाल बना दिया। ऐसे हजारों व्यक्तियों का जीवन आज सुसस्कारित, धर्ममय एव सम्मानित बन गया है। धन्य हैं ऐसे आचार्य भगवन्त ! आपने शुद्ध सयम एव विचक्षण ज्ञान से ओत-प्रोत उद्‌बोधन देकर लगभग 350 मुमुक्षु आत्माओ को सयम-पथ पर आरूढ कर उनका जीवन धन्य किया।

लगभग विगत 10 वर्षों से स्वास्थ्य परिचर्या की दृष्टि से मेरा आचार्यश्री जी के काफी निकट रहने का सम्पर्क रहा। सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ रत्नू साहब

आपके उपचार के लिए विभिन्न स्थानो पर पधारे। मेरा भी साथ मे जाने का प्रसग रहता था। वे भी आपके सयमी जीवन के प्रति, स्वास्थ्य के प्रतिकूल रहते हुए भी, अत्यधिक सजगता एव आपके आत्मबल को देखकर विस्मृत थे। अपने जीवन के तीसरे मनोरथ के लिए पूर्ण सजग रहते हुए आप यह प्रयास रखते थे कि सयमी जीवन के दौरान परिचर्या दोष कम से कम लगे। जीवन के तीसरे मनोरथ के बारे में आपने यह फरमा दिया था कि मेरा जीवन अन्तिम मनोरथ पूर्ण किये बिना नहीं रहना चाहिए। उदयपुर मे श्रावकों ने आपसे डायलेसिस हेतु निवेदन किया, परन्तु आपने इस हेतु कतई नकार दिया। इसके उपरान्त कोई चिकित्सक निदान हेतु आपके पास आते तो आप परीक्षण के लिए तैयार ही नहीं होते तथा उन्हे जीवन की नश्वरता के लिए उद्बोधन देने लगते थे। आचार्यश्री जी ने अपने जीवन को आजन्म सरल, निष्कपट, समता से परिपूर्ण रखते हुए समाज में ज्ञान, दर्शन, चरित्र की जो प्रभावना की, यह विचक्षण है,स्तुत्य है। ऐसे महान् युगद्रष्टा, युगपुरुष आचार्य के सान्निध्य से हमारा जीवन सफल हुआ। आपने अपनी परख, गहन चिन्तन से मथन करके सघ व समाज को जो हीरा आचार्य श्री रामेश के रूप में प्रदान किया है इसके लिए समाज आपका युग-युग तक उपकृत रहेगा।

आचार्यश्री को बच्चो से बहुत लगाव रहता था। तबियत ठीक न हो फिर भी बच्चो से आप खुल कर बात करते थे। इसी सदर्भ में एक घटना याद आती है— आचार्य भगवन् ब्यावर चातुर्मास हेतु बीकानेर से विहार करते हुए मेड़ता पहुँचे थे तब हम लोग सपरिवार जयपुर से दर्शनार्थ वहाँ पहुँचे। व्याख्यान के पश्चात् आचार्यश्री ऊपर कमरे मे विराज रहे थे तब हमारे साथ पौत्र वरुण चोरड़िया दर्शन करने के बाद आचार्यश्री की गोद में बैठ गया और आचार्यश्री उससे इतनी आत्मीयता से बात करते रहे कि हम विस्मित रह गये। अन्य दर्शनार्थी भाई दर्शन करने के लिए इन्तजार कर रहे थे इसलिए हमने उसे उतारना चाहा तो आचार्यश्री ने कहा आप रहने दो, फिर आचार्यश्री ने उसे अलग से मगलपाठ दिया और वह भी एकटक आचार्यश्री की तरफ देखता रहा। यह अद्भुत दृश्य देखकर हम सब भाव-विभोर हो गये। ऐसे सरल थे हमारे आचार्य भगवन।

जीवन में प्रथम बार वर्ष 1999 के पर्युषण पर्वाधिराज की आराधना आचार्यश्री के सान्निध्य में करने का सौभाग्य मिला। पर्युषण की पूर्व सध्या पर आचार्यश्री से प्रत्यक्ष चर्चा करने की इच्छा मन मे सजोकर उनके दर्शनार्थ पहुँचा तो सौभाग्य से आचार्यश्री ने मुझसे लगभग 20 मिनट बात करके मुझे आश्चर्य चकित कर दिया। आपने धर्म, समाज, युगल बच्चों के बारे में पूछा। स्वास्थ्य ठीक नहीं होते हुए भी आपने जिस तरह से बात की वह अद्भुत थी। वास्तव में यह आचार्यश्री का मनोबल ही था जो उन्हे इतना सजग एव सचेत रखे हुए था।

आचार्यश्री का स्वास्थ्य नरम चल रहा है, ऐसा समाचार मिला और प्रात काल मैं एव धर्मपत्नी निर्मलाजी करीब 9 15 बजे उदयपुर आचार्यश्री के पास पहुँचे। वहाँ हमारे पूज्य भाई साहब श्री गुमानमलजी चोरडिया भी पहुँच गये थे। आचार्यश्री की तबीयत गभीर थी, सभी ने स्वास्थ्य के बारे मे विचार-विमर्श करते हुए हमारे सामने युवाचार्य श्री रामलालजी महाराज ने आचार्यश्री को प्रात 9 45 बजे सथारे के पच्चखाण करवाये। असाता होते हुए भी आचार्यश्री जी ने जिस शान्ति व समभाव से पच्चखाण ग्रहण किया वह दृश्य अलौकिक था। गुरु कृपा से ही मैं आचार्यश्री की जीवनसध्या पर उनके दर्शनों का प्रत्यक्ष लाभ ले रहा था और अन्तिम समय मे भी मैं वहाँ उपस्थित था। आचार्य भगवन् की मेरे ऊपर जितनी कृपा थी उसे लेखनी में लिखने की मेरी क्षमता नहीं है।

ऐसे महान् अतिशयधारी, समताधारी, जन-जन के श्रद्धानिष्ठ, सरलमना, निश्छल जीवन के धनी, प्रात स्मरणीय आचार्यश्री के चरणो मे मेरा शत-शत-वन्दन-अभिवन्दन।

आचार्यश्री के बताये गये मार्ग पर हम चलते हुए धर्म के प्रति पूर्णश्रद्धा व समर्पणा रखे यही हमारी आचार्यश्री को सच्ची श्रद्धाजली होगी। ◆

—राजमल चौरड़िया

नाम-स्मरण की महिमा

देवताओ और सिद्धपुरुषों मे अपार शक्ति होती है परन्तु उसका लाभ उनमे अटूट आस्था रखने वालों को ही मिल पाता है। पूर्ण समर्पण भाव से किया गया उनका स्मरण अद्भुत रूप से फलदायी होता है। कहा भी गया है—विश्वासो फलदायक। इस प्रकार की ईश्वरीय सहायता के प्रसग समय-समय पर उपस्थित होते रहे हैं और श्रद्धा-पथ को पुष्ट करते रहे हैं। ऐसी सहायता की महिमा कितनी होती है यह तो लाभान्वित होने वाला ही जानता है, अन्य लोग तो केवल अनुमान ही लगा सकते हैं। ऐसे सिद्धपुरुषो में आचार्य श्री नानेश का नाम उनके भक्तो के लिए विशेष महत्त्व का है। उनके स्मरण मात्र से जैसे चमत्कार हुए है उनसे सारा समाज परिचित है। मुझे भी उनका स्मरण करने मात्र से जो कृपा-लाभ मिला उसे मैं कभी विस्मृत नहीं कर पाऊँगा।

भगवान् महावीर निर्वाण महोत्सव एव दीपावली पर्व के उपलक्ष्य में श्री सघ, गुवाहाटी के तत्वावधान मे समता भवन भूखण्ड पर दिनाक 21 अक्टूबर, 1998 को दिन के 2 बजे 'स्नेह मिलन' का आयोजन रखा गया था। परन्तु पिछले दिन अर्थात् 20 अक्टूबर को सुबह से ही लगातार वर्षा हो रही थी। 21 तारीख को 9 30 बजे तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। चारों तरफ पानी ही पानी नजर आ रहा था। मेरे मन मे आया कि आज का आयोजन होना असम्भव है, अब तो परम श्रद्धेय आचार्य भगवन् ही इस नैया को पार लगा सकते हैं। करीब 1 50 बजे वर्षा अचानक कम होने लगी और देखते ही देखते 2 बजे तक बन्द हो गई। पूर्व सूचना के अनुसार श्रावक-श्राविकाओ का आना शुरू हो गया व अच्छी उपस्थिति में स्नेह मिलन कार्यक्रम हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ। 'जय गुरु नाना-जयश्री राम' जय-जयकार के साथ कार्यक्रम-समापन होने के तुरन्त बाद वर्षा पुन प्रारम्भ हो गई और पूरी रात्रि भर चलती रही।

धन्य हैं आचार्य नानेश, जिन्होंने सयम साधना के कटीले पथ को फूलों के मार्ग में परिणत कर दिया। भले ही उनका नाशवान शरीर पचतत्त्व में विलीन हो गया हो, उनकी आत्मा अमर है। उनकी तो प्रेरणा ही युगो-युगो तक मार्गदर्शन करती रहेगी। ◆

—जेठमल बोथरा

आस्थाभरी अजलि का समर्पण

आचार्य श्री नानालालजी म सा की अस्वस्थता के कारण बहुत दिनों से उनके दर्शनों की अभिलाषा बढ़ती जा रही थी, मानस मे अनेक तरगे उठ रही थीं, अनेक प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न हो रही थीं। परिणामस्वरूप ऊहापोह की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अन्ततोगत्वा मैं अपने परिवार के साथ 13 अक्टूबर को उदयपुर आचार्यश्री की सेवा में पहुँच ही गया। उस समय वे जीवन से महाप्रयाण की दिशा मे सघर्ष कर रहे थे, उनकी शारीरिक व्याधि चिन्ताजनक थी। मगर महापुरुष ऐसी स्थिति मे भी घबराकर कब हिम्मत हारने वाले होते हैं ? उनके मुँह पर प्रसन्नता झलक रही थी।

मैने आचार्यश्री से निवेदन किया, 'हमारे लिए क्या आज्ञा है ? क्या सदेश है ?' तब आचार्यश्री ने कहा था 'श्री सोहनलालजी! दो बातो की ओर आपको ध्यान देना है

1 साध्वाचार का पालन बड़ी दृढता के साथ हो।

2 सघ में समता के साथ एकता बनी रहे।

दोनों बातें सघ के उत्थान के लिए आवश्यक हैं। अनुशासन के साथ दोनों बातों पर पूर्ण ध्यान दिया गया तो चतुर्विध सघ का गौरव बढ़ेगा।'

साध्वाचार, एकता, अनुशासन और स्नेहपूर्ण वातावरण बनाने के लिए आचार्यश्री के दिल मे एक दर्द, पीड़ा और टीस थी। वे चाहते थे सघ के साथ साधु-सन्तों का भी उत्थान हो। वे अपनी चर्या में दृढ़ रहे, ताकि वीर शासन गौरवान्वित हो सके।

ऐसे कर्मठ और महाप्रतापी आचार्य के मानस मे सघ के लिए कितनी तड़प, कितना प्रेम, कितनी आत्मीयता और एकता के लिए कितने मर्मस्पर्शी विचार थे, साचकर हृदय गौरवान्वित होता है।

मुझ म और मेरे परिवार म जो कुछ धार्मिक सस्कार पनपे है, जो कुछ मैं बन पाया हूँ, उसमें आचार्यश्री की ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। मैंने आचार्यश्री को निकट से देखा है, घटो उनके साथ सम्पर्क साधा है, उनके अन्तर को जाना है। एसे निस्पृह कर्मयोगी की साधना पर मैं और मेरा परिवार श्रद्धा और भक्ति से अवनत हैं। उनके सम्पर्क से मेरे जीवन में भारी परिवर्तन आया है और अनोखी प्रेरणा मिली है।

आचार्यश्री से सबधित कई अद्‌भुत स्मृतियॉ मेरे मानसपटल पर उभर रही हैं। 1999 के उदयरामसर क ऐतिहासिक चातुर्मास से सबधित एक ऐसी ही स्मृति उभर कर सवसे ऊपर आ रही है जो चातुर्मास गणिवर गौतम स्वामी की सी लब्धि होने की साक्षात् अनुभूति कराती है—

मूर्तिपूजक समाज मे दादागुरु के मेले का प्रसग था। मेलों में बीकानेर एव वाहर के श्रावको का आगमन हुआ था। आचार्य भगवन् के दर्शनार्थ जब वे पहुँचे तो साधर्मी वात्सल्यता की परिधि मे हमने आग्रह किया कि आप सब हमें आतिथ्य सत्कार का लाभ देने के वाद ही उत्सव मे पधारे। उन्होने हमारा आग्रह स्वीकार किया। हजार-वारह सौ तक के व्यक्तियों की भोजन व्यवस्था थी, किंतु उस वक्त जो अखूट भडार हुआ उसे आश्चर्य कहूँ या लब्धि का चमत्कार, समझ नहीं पा रहा हूँ। वारह सौ व्यक्तिया की व्यवस्था मे से पाँच हजार के लगभग व्यक्तियो का आतिथ्य सत्कार सपन्न हुआ। यह था महान् लब्धि सपन्न गुरु की महिमा का मात्र एक उदाहरण। उनके हम पर असीम उपकार हैं जिनके ऋण से उऋण तो कभी हो ही नहीं सकते किंतु आस्था भरी अजलि समर्पित करते हुए यही प्रण करते है—हे गुरुदेव ! जो सदेश, दिशा-निर्देश आपश्री ने प्रयाण से पूर्व हमे दिये थे उनका दृढतापूर्वक पालन होगा। तन-मन जीवन की एकरूपता में नवम् पट्टधर आचार्य श्री रामलालजी म सा के आदेश-निर्देशो के अनुसार हम वढ़ते रहेंगे। ◆

—सोहनलाल सिपानी

दिव्य प्रकाश-स्तभ

अब तो केवल स्मृतियो का कोश ही रह गया है और रह गया है आँखो के माध्यम से स्मृतिपटल पर उभरे उनके पावन सान्निध्य मे बिताई गई घड़ियो एव घटनाओ के चित्र। मानव की चेतना का विराट् रूप जब समग्र लोक में फैलता है तब मानवीय गुणो का आभामडल अपने दिव्य आलोक के सम्पर्क मे आने वाले जीवमात्र का कल्याण कर लोक मगल की पवित्र भावना दशो दिशाओ मे सुगध की तरह फैला देता है। पच तत्त्व से निर्मित देह का जब आत्महस त्याग करता है तब वह देह केवल जड़ पदार्थ रह जाती है परन्तु यही देह जब माध्यम बनती है लोक कल्याण, जीव कल्याण एव मानव मात्र को सुखाभास नहीं, उस अनत सुख शाति की प्राप्ति का उपाय बताने का एव उस राह पर चलने कि प्रेरणा देने का, तब यही देह पूजनीय, वदनीय एव अभिनदनीय बन जाती है, तब देह मदिर बन जाती है एव आत्मा परमात्मा का स्मरण कराने लगती है।

आचार्य श्री नानेश का भव्य व्यक्तित्व अपने ऐसे अलौकिक आभामण्डल के कारण देदीप्यमान बना। अन्य धर्मो एव सम्प्रदायो के सत-महात्मा भी आपके सम्पर्क मे आकर स्वय को धन्य मानते थे। उन्हें आचार्य नानेश धर्म के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक रूप की साक्षात् प्रतिमूर्ति लगते थे। निश्चय ही आचार्य नानेश एस तेजस्वी धर्माचार्य थे जिन्होने धर्म के सिद्धान्तो के साथ कभी समझौता नहीं किया और शुद्ध धर्म के पालन, प्रचार एव प्रभावना मे जीवनभर लीन रहे। अपने समता दर्शन को उन्होने इस प्रकार व्यावहारिक वना कर समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया जिससे सासारिक व्यक्तियो के लिये भी उसका पालन सहज एव सरल हो जाये। सामाजिक-सास्कृतिक पुनर्निर्माण एव वैचारिक क्रान्ति के लिए वे पूरी तरह समर्पित थे। उनक मानवतावादी चिन्तन में उन सभी समस्याओं क समाधान समाये हुए हैं जिनसे आज का ससार वुरी तरह पीड़ित है।

मुझे विगत 26 वर्षो तक आचार्य नानेश का पावन सान्निध्य समय-समय पर मिलता रहा था। पूर्व मे तो अपरिचित था परन्तु 25 वर्ष पूर्व मीनासर चातुर्मास

मे सयोग से ही पावन सान्निध्य प्राप्त हो गया। चद घड़ियो का यह सान्निध्य पूरे जीवन को परिवर्तित कर गया। ऐसा लगा कि लोहे का पारस से स्पर्श हो गया था। मुखमडल पर दमकता तेज, नेत्रो से झलकती करुणा, वाणी से प्रवाहित होती ज्ञान धारा एव शब्दो से फूटता माधुर्य। मन क्या आत्मा तक तृप्त हो गई। लगा खोज पूरी हुई। जिनके सम्मुख मस्तक झुकाना है, शरीर को नमाकर वदन करना है, वे महामानव यही हैं। बस तभी से आचार्य देव का पावन सान्निध्य मिलता रहा। आत्मीय सबोधन सुनकर मन, आत्मा और शरीर स्वय चुबक कि भाति आपकी ओर खिचते चले आते थे।

आपके सम्पर्क मे जो भी आया वह मेरी तरह ही अभिभूत हो गया। जिसके व्याख्यान में गागर मे सागर समाये, ओजस्वी वाणी मे आध्यात्मिक रस झरे, भगिमा मे हो अनोखा आकर्षण हो, यह थी उस नर-पुगव की पहिचान। मधुर स्वभाव, मृदु मुस्कान, तृप्ति का दिव्य सामान! इच्छा होती आपकी ओर टकटकी लगाकर देखते रहे परन्तु ऑखे कभी भी तृप्त नहीं होती थीं वरन् प्यास और अधिक तीव्र हो जाती थी। विरोधी तक आपके पुण्यदर्शन कर शान्त-प्रशान्त बन जाते थे। मै तो अपने जीवन की उन्हीं घड़ियों को सफल और सार्थक मानता हूँ जो उनके सान्निध्य मे बीतीं। अब उनके महाप्रयाण के बाद ऐसा लगता है कि कहीं यह शेष जीवन सासारिक प्रपचों, माया, मोह आदि मे उलझ कर व्यर्थ नहीं चला जाये।

अस्सी वर्ष की आयु उस महा मानव ने पूर्ण की—जीवन की यात्रा किसी न किसी प्रकार सभी पूर्ण करते हैं परन्तु कर्मयोगी की भाति कर्म करते हुए जीवन व्यतीत करना और पण्डित मरण का सौभाग्य अलौकिक पुरुषो को ही प्राप्त होता है। जन्म-मरण के बधनो से मुक्त होकर आप जब दिव्य लोक प्राप्त कर चुके है तब हम जैसे सासारिक लोगों को आपका पुण्य सान्निध्य कहाँ से प्राप्त होगा? हम अवश हैं, विवश हैं परन्तु आपकी दिव्य आत्मा से यह प्रार्थना करते हैं कि उस अमर लोक से हम सब पर अपनी करुणा, दया, प्रेम और पवित्रता के वारि-बिन्दु बरसाते रहना। सभव है आपके पुण्य-प्रताप से हमारा भी उद्धार हो जाये।

आप प्रकाश स्तम हैं, आपके गुणो का प्रकाश हमारे जीवन को सतत प्रकाशमान किये रहेगा। उसी प्रकाश मे हम अज्ञानी मानव शायद अपनी राह पाकर लक्ष्य को प्राप्त कर लें और जीवन को सफल बना ले! हे समता सूर्य, हे मनस्वी तेजस्वी आत्मा, हे ज्ञान के अथाह सागर, हे करुणा मूर्ति, आपके प्रति कभी भूलवश, प्रमादवश, अज्ञानवश कोई अशातना हुई हो तो आप प्रेम, करुणा, दया के भडार, हम पर करुणा करना और पथभ्रष्ट होने से हमे बचाना! ◆

—सुरेन्द्रकुमार धारीवाल

समताविभूति का स्मरण

समताविभूति, समीक्षण ध्यान योगी, धर्मपाल प्रतिबोधक पूज्य आचार्य श्री नानेश समाधिमरण प्राप्त कर अमर हो गए। ऐसे इस धरा-धाम से उठ गए पुरानी पीढ़ी के एक महान् आत्मार्थी आचार्य। उनका ध्यान आते ही सस्कृत के एक नीति कवि का यह श्लोक सहज ही मानसपटल पर उभर आता है—

जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धा कवीश्वरा ,
नास्ति येषा यश काये, जरामरणज भयम्।

कवीश्वरो की भाँति समाज में नव सृजनकार आचार्य श्री नानेश भी कालजयी बनकर अजर अमर यश के धारक बने रहेंगे। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठो पर उनकी यशोगाथा सदा स्मरणीय रहेगी। सयम के प्रति सतत जागरूकता, जिनेश्वर प्रणीत मुनिधर्म में दृढनिष्ठा, आगमानुकूल सुन्दर धार्मिक परम्पराओ का सम्यक् निर्वाह एव निस्पृहता उनकी कुछ ऐसी विशेषताऍ हैं, जिनके कारण उनका सदा-सदा स्मरण किया जायेगा।

नव्यभव्य समाज रचना मे आचार्यश्री का योगदान समतादर्शन—समता विभूति के सुयश से विभूषित आचार्य श्री नानेश ने आचाराग सूत्र में अकित समताधर्म की व्यापक एव सुन्दर व्याख्या की। वीतरागता के सन्दर्भ मे क्रोध

कामादि विकारों पर आध्यात्मिक विजय का महान् उद्घोष किया आचार्यश्री ने प्राणिमात्र के साथ समता व्यवहार एव जीवन की अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियो समतापूर्ण व्यवहार के साथ समाज को मुक्ति के राजपथ पर अग्रसर करने व भगीरथ प्रयास किया आचार्यश्री ने। फलस्वरूप समाज एव व्यक्ति जीवन समता विचार की एक लहर प्रवाहित हुई। *समतामूलक समाज के निर्माण आचार्य नानेश के इस चिंतन को समता धर्म का पुनर्जागरण काल कहा ः सकता है।*

समीक्षण ध्यान—अशात एव तनावग्रस्त युगमानव को शात एव तनावमुक्त होने की एक ध्यान पद्धति प्रदान की आचार्यश्री ने समीक्षण ध्यान के रूप मे। क्रोधकामादि विभावो से हटकर क्षमादि आत्मस्वभाव मे स्थित होने का मूल सदेश समीक्षण ध्यान का मर्म रहा। बहिर्मुखी बना मानव अतर्मुखी बनकर अपने आपको देख, सम्यक् रूप से देखे, यह समीक्षण ध्यान का मूल तत्त्व था। लेखक को इस ध्यान शिविर में भाग लेकर इसकी अनुभूति का अवसर प्राप्त हुआ था। सच ही इस ध्यान के अभ्यास द्वारा साधक आनद के अमूल्य क्षणों की अनुभूति कर पाता है।

धर्मपाल प्रतिबोध—आचार्य श्री नानेश द्वारा सुसम्पन्न यह एक महान् धार्मिक उत्क्राति थी। इसके क्रातद्रष्टा आचार्यश्री ने जिनशासन के गौरवशाली इतिहास-पृष्ठो की रचना की।

मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ क्षेत्र में विचरण करते हुए वहाँ का आदिवासी समुदाय आपके सम्पर्क मे आया। आपके महनीय उपदेशो से प्रेरणा पाकर हिंसक कृत्यों म डूबे ये सेकड़ों परिवार अहिंसक बने, माँस-मदिरा के त्यागी बने एव धर्म मार्ग में अग्रसर हुए। धर्मपालन म अग्रसर बने, इनका नाम धर्मपाल सार्थक बना।

सयम का आदर्श—सुना था कि आचार्य श्री नानेश जीर्ण हो जाने पर भी चादर को शरीर पर धारण किये रहते थे। एक विशाल सघ क आचार्यश्री से सबधित यह बात लोगों को अवश्य विचित्र लगती होगी। उनके मन मे अनेक सकल्प-विकल्प उठते रहते होगे। परतु आचार्यश्री सयम यात्रा में साध्वाचार के लक्ष्य पर दृढ रहकर सदा प्रसन्नचित्त रहते थे।

एक बार किसी जिज्ञासु ने इस विषय मे पूछ ही लिया, उनका उत्तर कुछ इस प्रकार का था—गृहस्थ पर अनावश्यक भार क्यों ? उनका शास्त्रसगत आशय रहा होगा कि गृहस्थ के यहाँ बिना आरभ के कोई वस्तु बनती नहीं। दातार को बिना मूल्य चुकाए मिलती नहीं। गृहस्थ ने धर्म बुद्धि से अपनी वस्तु साधु को दी है। जो साधु नवीन वस्तु के लालच से पास की वस्तु को बिना मुद्दत पूरी किए फेंक देता है, नष्ट कर देता है, वह दोष का पात्र होता है। यह अजीवकाय के सयम की गूढ बात है जो व्यवहार मे बहुत छोटी लग सकती हो परन्तु है अर्थ में अत्यत गभीर। साधक और श्रमण इससे निश्चय ही मार्गदर्शन प्राप्त कर सकते हैं।

सघो मे सौहार्द के समर्थक—आचार्यश्री धर्मसघों में सौहार्द के कितने प्रबल समर्थक थे इसका प्रमाण यह एक उदाहरण ही बहुत है। आचार्य श्री नानेश अस्वस्थ चल रहे थे। उनके सथारा ग्रहण करने के कुछ दिनों पूर्व की घटना है। श्री जैन रत्न हितैषी श्रावक सघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री रतनलालजी बाफना एव कार्याध्यक्ष श्री कैलाशचदजी हीरावत आचार्यश्री की सेवा में दर्शनार्थ उपस्थित हुए। लेखक भी उनके साथ ही था। युवाचार्यश्री से निवेदन किया गया। थोड़ी देर मे उनकी कृपा से आचार्यश्री के दर्शन का स्वर्णावसर सुलभ हुआ।

हम चार-पाँच व्यक्ति आचार्य श्री नानेश की सवा म प्रस्तुत थे। सघाध्यक्ष श्री बाफनाजी ने वदन नमन करने के बाद आचार्य से करबद्ध हो निवेदन किया—'आचार्यश्री हम सघ की ओर से आपके शीघ्र स्वास्थ्य लाभ एव दीर्घायु की कामना करते हैं एव सघ की ओर से क्षमायाचना भी करते हैं। आचार्यश्री ने बहुत-सी बातें कहीं परतु स्पष्ट सुनाई नहीं दीं। लेखक ने आचार्यश्री से निवेदन किया—आप रत्न जैन हितैषी सघ के लिए अपना सन्देश फरमावें। आचार्यश्री का कथन स्पष्ट सुनाई नहीं दिया। हमारी जिज्ञासा को शात करत हुए युवाचार्यश्री ने फरमाया—'आचार्यश्री फरमा रहे हैं—'दोनों सघों म सौहार्द प्रगाढ बने।'

यह महामूल्यवान अभिव्यक्ति आचार्यश्री के मनमानस में स्थित साम्प्रदायिक सौहार्द-भाव का उदार प्रकटीकरण थी। आज ऐसे साम्प्रदायिक सौहार्द की महती आवश्यकता है जिससे समाजगत समस्याओं का समाधान हो सके।

ऐसा था उस महान् सत का चिन्तन जो युग की समस्याओ के समाधान की दृष्टि से सर्वथा उपयुक्त था। वह सत तो मार्ग दिखा कर चला गया अब आवश्यकता इस बात की है कि हम उस मार्ग का अनुसरण कर उसके द्वारा परिकल्पित समाज की रचना की दिशा मे सक्रिय हों। यही उस के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी। ◆

—प्रो चाँदमल कर्णावट

भावना का चमत्कार

1 जुलाई, 1999। उदयपुर से रवाना होने से पूर्व दोपहर के समय आचार्य भगवन् 1008 श्री नानालालजी म सा स्थानक मे विश्राम फरमा रहे थे। युवाचार्यश्री सत-सतियों को शास्त्राध्ययन करवा रहे थे। गुरुदेव के सामने जाकर भावना प्रकट की—आपकी महती कृपा हमेशा रही है—एक कृपा और करे।

आपके सौ वर्ष पूर्ण हो, मैं आपके समक्ष उपस्थित रहूँ तथा मेरे कन्धे आपके काम आयें यही मेरी इच्छा है, पूर्ण करें।

भावना तो प्रस्तुत कर दी परन्तु मन में उथल-पुथल मच गई कि मैंने गुरुदेव से यह क्या कह दिया ? इसीलिए उसी वक्त बगैर कोई क्षण खोये शासन-प्रभावक श्री सम्पत मुनिजी म सा के पास जाकर जो कुछ गुरुदेव के सामने रखा था वही बात कह दी और पूछा कि मैंने कुछ अनुचित तो नहीं कह दिया। मुनिश्री ने समाधान किया—'आपने तो अपनी भावना रखी है।'

अन्त करण की भावना का चमत्कार देखिये

पूर्वांचल सघ का सिलचर से 22-10-99 को प्रस्थान, 26-10-99 की शाम 7 30 पर उदयपुर पहुँचना। खबर मिली कि आचार्य भगवन् का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उसी समय सभी भाई पौषधशाला मे पहुँचकर रातभर चलने वाले महामत्र जाप मे शामिल हो गये। दूसरे दिन 27-10-99 को युवाचार्यश्री ने आचार्य भगवन् को सुबह 9 30 के लगभग सगारी सथारा का पच्चक्खाण करवा दिया। स्वास्थ्य की प्रतिकूलता देखते हुए शाम को लगभग 4 30 बजे चौविहार सथारा पचक्खाण करवा दिया। रात्रि में हम लोग युवाचार्यश्रीजी से बातचीत कर रहे थे, थोड़ी देर पश्चात् हम स्थविर प्रमुखश्री ज्ञानमुनिजी के पास बैठ गये। समय लगभग रात्रि 10 00 बजे का था। अचानक श्री चद्रेशमुनि ने श्री स्थविर प्रमुख को अन्दर आने के लिये कहा। इधर मैं माला जप रहा था। माला जपते-जपते नींद की एक झपकी आ गई और पौषधशाला में एकाएक सहच्चन हो गया कान मे आवाज आई—'सथारा सीज गया।' झपकी से आँखे खुलीं तो वास्तविकता सामने थी। रात्रि के लगभग 10 बजकर 41 मिनट का समय था।

पूर्वांचल सघ का अहोभाग्य देखिये, वापसी की टिकटें 29-10-99 की थीं। स्वास्थ्य की प्रतिकूलता देखते हुए टिकटो की तारीख बदलवाने की काना-फूसी सुनी गई। महान् व्यक्ति अपनी देह त्याग देते हैं पर दूसरों को कष्ट नहीं देते। यही बात यहा पर सच हो रही थी। गुरुदेव के महाप्रयाण के समय प्रथम पहुँचने का सौभाग्य पूर्वांचल सघ को ही मिला जिसका नाम सदा के लिए इतिहास में सम्मिलित हो गया।

अब, जब मैं 1 जुलाई, 1999 की दोपहर को आचार्य देव के सम्मुख की गई प्रार्थना का स्मरण करता हूँ तब तुरन्त मेरा अतर कहता है कि यह चमत्कार ही था जो मेरी वैसी भावना बनी थी। महाप्रयाण से अन्तिम शोभा यात्रा तक गुरुदेव ने मेरी भावना को साकार कर मुझ पर तथा पूर्वांचल सघ पर महती कृपा की। दिव्य आत्माएँ क्या कुछ नहीं कर सकतीं। ◆

—सम्पतलाल सिपानी

सयम-सुमेरू—आचार्य नानेश

भारत भूमि अत्यन्त प्राचीन काल से ही ऋपियो, मुनियो, महात्माओ की भूमि रही है। यह रत्नगर्भा वसुन्धरा अज्ञात अतीत से ही ऐसी दिव्य विभूतियो को जन्म देती रही है जिन्हाने इस सासारिक मायाजाल मे जकड़े हुए, मूढ दशा को प्राप्त, आधि-व्याधि सत्रस्त मानव का सुपथ दिखाया है। एसी ही एक विरल विभूति थे श्रमण परम्परा के अद्वितीय सत आचार्य श्री नानेश जिन्होने श्रमण सस्कृति क उन्नयन एव सुदृढीकरण के लिए अपने गुरु आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा द्वारा चलाये गये *शान्त-क्रान्ति* अभियान को ओजस प्रदान किया। इस प्रकार प्रभु महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण परम्परा की विशुद्धता को अक्षुण्ण रखते हुए चतुर्विध सघ को साधना के पथ पर आग वढाया।

आप साधु समाचारी म मर्यादाआ की रक्षा के प्रवल पक्षधर थे। सयमीय जीवन म अशत भी कटोती करना आपश्री का कतई अभीप्ट नहीं था। आपका कहना था कि जो साधक साधना के मार्ग पर चलकर भी यश लिप्सा व प्रसिद्धि के इच्छुक वन जाते हैं और मर्यादाआ का खयाल नहीं रखते, विद्युत चालित उपकरण आदि हिसात्मक साधनो का प्रयाग करते हैं वे भगवान् की आज्ञा के आराधक नहीं कहे जा सकते। वे निरतिचार साधुता का पालन कैसे कर सकते है ?

सन् 1985 की वात है, जव आपका चातुर्मास घाटकोपर वबई में था। आपको पता चला कि वहाँ श्रावको की सख्या अधिक होने के कारण माइक पर प्रतिकमण कराया जाता है। तव आपन 'माइक और मुनिधर्म' विषय पर प्रवचन देत हुए माइक से होन वाली हानिया का जो अत्यन्त प्रभावशाली एव तर्क पूर्ण विवेचन किया उसका वहाँ क श्रावक वर्ग पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उसी सवत्सरी से माइक पर प्रतिक्रमण करना वद कर दिया।

आपके जीवन मे कई वार माइक क उपयोग, फोटो खिचवाना आदि से सवधित प्रसग उपस्थित हुए जिनसे साधु मर्यादा भग होती थी। आपके जीवन में कई वार मन को उद्वलित करने वाले प्रसग भी आए, निन्दा-प्रशसा के अनेक अवसर उपस्थित हुए परन्तु कभी भी अपने मन का राग-द्वष से विचलित नहीं होने दिया। हमेशा सुमेरु पर्वत की भाति अडोल, अप्रकम्प रहे। यही कारण है कि आपको 'सयम-सुमेरु' की सज्ञा से सवोधित किया जाता है।

यह आपके चरित्र का ही प्रभाव था कि आपके उपदेशो से प्रतिबोध पाकर मालवा क्षेत्र के लक्षाधिक बलाईयो ने मास, मदिरा, शिकार आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया तथा सात्विक जीवन जीने हेतु प्रतिज्ञा-बद्ध हुए। आपने ही अस्पृश्य समझी जाने वाली इस जाति को 'धर्मपाल' की सज्ञा प्रदान की और समाज म उसे उचित एव सम्मानजनक स्थान दिलाया।

आप सिर्फ नाम से ही 'नाना' नहीं वल्कि वास्तव में भी नाना गुणो के भडार थे। आप एक प्रखर चिन्तक और अद्‌भुत ध्यान योगी थे। आपने विश्वशाति क लिए समता के धरातल पर जो अभिनव चितन प्रस्तुत किया उसका अगर अनुशीलन किया जाय तो आज तनाव, भय, अशाति के साये मे जी रही मानवता को असीम शाति की अनुभूति हो सकती है।

आपने 'समीक्षण ध्यान' के रूप में ध्यान की एक अति सरल प्रक्रिया जनता के सामने रखी। ध्यान की गहराइया मे उतरे बिना मुक्ति रूपी मुक्ता प्राप्त नहीं किये जा सकते। परन्तु इसके द्वारा एक साधारण ज्ञान वाला व्यक्ति भी कपाय मुक्त हो कर साधना क मार्ग पर आग बढ सकता है। आचार्यश्री ने सिद्धान्तों को प्रतिपादित करके ही छोड़ दिया हो ऐसी वात नहीं है वल्कि उन्हें अपने जीवन में उतारकर आपने अनुकरणीय आदर्श भी उपस्थित किया।

आचार्य श्री नानेश एक उच्चकोटि के विद्वान और जैन जगत् के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। *समता दर्शन* और *समीक्षण ध्यान-साधना* के सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक पक्षों से सवधित जो वृहत् साहित्य-रचना आपने की है वह युगो-युगा तक दिग्भ्रान्त मानव-समाज का पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

ऐसे युग-प्रवर्तक आचार्य के निधन से आध्यात्मिक जगत् म जो रिक्तता आई है उस शब्दों मे व्यक्त कर पाना कठिन है। यद्यपि आपका पार्थिव शरीर आज हमार वीच नहीं है तथापि अपने सद्‌पदेशों एव आदर्शो के माध्यम से आप हमारे

हृदयो में सदा विराजमान रहेंगे। आपके उपदेशो को अपने जीवन मे उतारना ही आपके प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजलि होगी। ◆

—जेठमल धाड़ेवा

गुरु कृपा की महिमा

माता-पिता की दिव्य दृष्टि से ही गुरुदेव के दर्शन, उपदेशों व आशीर्वाद से मेरा जीवन प्रभावित हुआ। नाना प्रभु मेरे प्राणों के प्राण थे, उनका उपकार मैं जीवन भर नहीं भूल सकता। अपने जीवन में मुझे उनके पास रहने व दर्शन करने के अनेक सुअवसर मिले। उनके प्रसाद का जितना भी गुणानुवाद करूँ, उतना कम है। प्रभु को निकट पाना मुझे कभी असमव नहीं लगा। जब भी उनके पास अपनी समस्याओं (दुख-सुख, पारिवारिक-सामाजिक एव सासारिक जीवन से सबधित) को लेकर जाता उनके पास जाने मात्र से ही उनका समाधान हो जाता। ऐसे महान् महापुरुष ससार में बिरले ही होते हैं जो जन-जन के दुखो को दूर करने मे इतने तत्पर होते हैं। आज भी मेरा मन मानने को तैयार नहीं है कि प्रभु हमें छोड़कर चले गये हैं। उनके सम्पर्क की सारी बातें मेरे स्मृतिपटल पर अकित हैं।

गुरु कृपा से ही रायपुर मे दीक्षा कराने का सौभाग्य

सवत् 2045 मे परम पूजनीया शासन प्रभाविका 1005 इन्द्रकवरजी म सा के सान्निध्य में रायपुर मे दीक्षा-महोत्सव कराने का सौभाग्य बन रहा था लेकिन रायपुर के आसपास के क्षेत्र के लोगो के द्वारा बाधा डालने से यह प्रसग करीब 8 माह तक टलता गया। जब दीक्षा कराने की स्वीकृति का समय नजदीक आ रहा था उस समय दुर्ग से एक तार चित्तौड़गढ़ गुरुदेव के पास पहुँचा उसमे उन्होने लिखा कि, हम वहाँ आ रहे हैं—दुर्ग में दीक्षा कराने। यह तार पहुँचने पर वहाँ शोचनीय स्थिति बन गई। वे लोग वहाँ पर पहुँचे और दुर्ग वालो ने वहाँ के समाज की एकता की बात व अन्य बातें गुरुदेव के पास रखीं। गुरुदेव ने दुर्ग वालो से पूछा, क्या बात है ? उनके समाचार सुनने के बाद उन्होंने कहा कि रायपुर सघ के लोग करीब 8 माह से रायपुर मे दीक्षा कराने के लिये प्रयासरत हैं और वे इस प्रसग के लिये बार-बार मेरे पास आ रहे है। रायपुर सघ वालों ने विविध समाजो की रायपुर मे दीक्षा कराने के लिये अपनी स्वीकृति मेरे पास भिजवाई है। इसलिए इस दीक्षा के कार्य को सम्पन्न कराने के लिये मैं अपनी स्वीकृति रायपुर सघ वालो को दे रहा हूँ। इस प्रकार गुरुदेव की सारी कृपा से रायपुर मे भव्य दीक्षा का महासमारोह हुआ जिसमें करीब 15000 से अधिक लोग उपस्थित हुए। इस कार्य को रायपुर सघ ने पूरा कराकर रायपुर का नाम अमर कर दिया।

गुरु कृपा से ही अनेक वड़े कार्य करने का साहस मिला

रायपुर में सवत् 2045 मे परमपूज्या निरजना श्रीजी म सा का चातुर्मास तय हुआ था। उनके पास जाने से दर्शन व प्रवचन आदि के लाभ के साथ परमपूज्य गुरुदेव के चातुर्मास मगल प्रवेश पर एव चातुर्मास के समय 4-5 बार रतलाम पहुँचने का सुअवसर भी मिला। चातुर्मास प्रवेश के अवसर पर भी हम वहाँ गये थे। वहाँ बारिश काफी तेज थी लेकिन विहार के समय बारिश रुक गई और शहर के बाहर से चातुर्मास स्थल की ओर परमपूज्य गुरुदेव को ले जाया गया। रास्ते भर प्रभु महावीर की जय, नाना गुरु की जय आदि के नारे लगाते हुए जन-सैलाब चला जा रहा था। इस ऐतिहासिक जन-सैलाब को देखकर हृदय प्रफुल्लित हो रहा था। समता भवन में महापुरुष पधारे और फिर वहाँ से सभी स्थल पर पहुँचे। वहाँ नाना प्रभु ने 'जय-जय-जय भगवान अजर-अमर अखिलेश निरजन जयति सिद्ध भगवान ' भजन गाया और प्रवचन में बताया कि यह जो मानव जीवन मिला है, इस अमूल्य जीवन को अच्छे कार्य म कैसे लगाये। वहीं बैठे-बैठे मेरे मन मे विचार आया कि, प्रभु आप शक्ति दें तो मुझसे जितना बन सके धार्मिक, सामाजिक पारिवारिक आदि कार्य के लिये अपनी शक्ति लगाऊँगा। यह भावना मन मे जगी तब से अब तक समाज सेवा, व्यसनमुक्ति,

धार्मिक शिविर आदि अनेक कार्यक्रम आयोजित किये। गुरुकृपा से ही सभी कार्य सफलतापूर्वक करान का साहस व वल मुझे मिला।

एक दिव्य अनुभूति

घटना सवत् 2048 को पीपलियाकला की है। चातुर्मास के सुअवसर पर मुझ वहाँ जाने का सौभाग्य मिला था। रात्रि मे हम सोये हुए थे कि अचानक लगभग 3 00 वज मरी निद्रा खुल गई और मै उस स्थल की ओर चल दिया जहाँ गुरुदेव विराज रहे थे। मै उनके कमरे के वाहर सामायिक लेकर बैठ गया। अचानक मुझे लगा जैसे गुरुदेव साक्षात् मेरे सम्मुख खड़े थे। हर्षविभोर हो मैने उन्हे श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। हमारे वीच कुछ वार्तालाप होता इसके पूर्व ही स्वप्न भग हो गया। मैं सामायिक की मुद्रा मे बैठा था और गुरुदेव के कमरे का दरवाजा ता पूर्ववत ही वद था' तव यह सब क्या था? गुरुकृपा' निश्चय ही, क्योकि स्फूर्ति की अनोखी तरगें मेरे सम्पूर्ण शरीर मे दौड़ रही थीं जैसे मेरा नया सस्कार हो गया था। आज भी जव मुझे उस दिव्य अनुभूति का ध्यान आता है, मैं रोमाचित हो उठता हूँ।

जव नानाप्रभु को हँसी की मुद्रा मे देखा

आचार्य भगवन् को हँसी की मुद्रा मे देख पाना एक अलभ्य अवसर था जो हमे अत्यन्त सौभाग्य से प्राप्त हुआ। हम लोग आचार्य भगवन के दर्शनार्थ अलाय (राजस्थान) गये थे। वहाँ पर परमपूज्य गुरुदेव श्री ज्ञानमुनिजी, श्री चद्रेशमुनिजी आदि साधु-साध्वीजी प्रवचन स्थल पर विराजमान थे। पूज्यश्री ज्ञानमुनिजी म सा का धारा-प्रवाह प्रवचन चल रहा था। जिसके कतिपय विनोदपूर्ण प्रसगो को सुनकर नाना प्रभु की हँसी की जो मुद्रा वनी वह हमारे लिये यादगार वन गयी। वहाँ हम लाग 3-4 दिन रह और प्रभु क वार-वार दर्शन करने का सौभाग्य हमे मिला। आचार्य भगवन् ने जो स्नेह एव सद्भाव हम सभी के प्रति प्रदर्शित किया उसे हम कभी विस्मृत नहीं कर पाएगे।

गुरुदेव ने कहा मेरा नाम नही लिखने से कोई फर्क नही पड़ता कार्य करो

युवाचार्य श्री रामलालजी म सा के उपदेशों से प्रभावित होकर अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर ने निर्णय लिया कि व्यसनमुक्ति कार्यक्रम सारे भारतवर्ष मे चलाया जाय। रायपुर म भी करीब 19 स्थलो में (स्कूल व सस्थाओ में) कार्यक्रम कराये गये जिसके परिणामस्वरूप मात्र 12 दिनो मे 4823 लोगों ने व्यसनमुक्ति के फार्म भरकर उसे छोड़ने के लिये सकल्प लिया। पूरे कार्यक्रम को अपनी सेवा देने हेतु सेवाभावी श्री कन्हैयालालजी भूरा ने पधारकर पूरा कराया और बहुत ही कम खर्च मे यह कार्य बहुत ही सुन्दर ढग से सम्पन्न हो गया।

इधर कुछ भाइयो ने अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ से एव स्थानीय लोगो से सहयोग लेकर एक व्यसनमुक्ति का रथ तैयार कर जगह-जगह ले जाने के लिए छोड़ा था। उस रथ पर गुरुदेव एव युवाचार्यश्रीजी के नाम नहीं लिखे थे। वीकानेर मे गुरुदेव के पास भी यह वात पहुँची। इस वात को सुनकर गुरुदेव ने कहा—मेरा नाम लिखने से कोई फर्क नहीं पड़ता, कार्य करो। उनकी इस उदारता को देखकर वहाँ खड़े सभी लोगो की आँखे भर आई। जिस प्रभु का नाम लेने मात्र से वड़े-से-बड़े कार्य पूर्ण हो जाते है वही महापुरुप कह रहे है मेरा नाम नहीं लिखने से कोई फर्क नहीं पड़ता' धन्य हैं ऐसे महापुरुप, उन्हे शत शत वन्दन है, नमन है। ◆

—अशोक सुराना

सान्निध्य की सुखद अनुभूति

आचार्यश्री के सान्निध्य का सुख मुझे वाल्यावस्था से ही प्राप्त होता रहा था। यह ऐसा सौभाग्य था जिस पर मुझे गर्व है। यह सामीप्य अत्यत प्रेरणादायी तो था ही मेरे जीवन की दिशा वदल देने की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण था।

आचार्यश्री के इस सामीप्य से ही मैं जान पाया कि उनका हृदय कितना विशाल था, विचार कितने उदात्त, चिन्तन कितना गभीर तथा जीवनचर्या कितनी निर्मल एव सयमित थी। मेरे सस्कारों के निर्माण मे इस सामीप्य की कितनी महती भूमिका रही यह तो मैं पर्याप्त बाद में ही समझ पाया परन्तु तब भी अपने अनुभवों से मै भाव-विभोर होता रहा था। उनकी महनीयता के विविध पक्षों से इस प्रकार मेरा जो परिचय हुआ उसकी सम्पूर्णता मे विवेचना कर पाना तो सभव नहीं है तथापि कतिपय अनुभव ऐसे अवश्य है जो मेरे स्मृतिपटल पर गभीरता से अकित हैं और उनकी महानता का किसी रूप में आभास कराने की दृष्टि से जिनका कुछ महत्त्व है।

तब मेरी अवस्था मात्र 9-10 वर्ष की रही होगी जब आचार्य भगवन् का विहार राजनादगाव से खैरागढ़ की ओर होना था। मैं भी वैरागी की तरह आचार्यश्री के साथ विहार कर गया। प्रथम पड़ाव राजनादगाव से 5 किलोमीटर दूर ग्राम बोरी मे हुआ। उस समय तक मैंने स्वय अपने ही हाथो से अपने सिर के लगभग आधे से अधिक भाग का केशलोचन कर लिया था। उस दिन सायकाल मेरे पिताश्री एव माताश्री मुझे लेने वहा आ गये। मैंने उनके साथ जाने से इन्कार कर दिया। कुछ देर बाद मेरे दादाश्री आये तब आचार्यश्री के समझाने पर कि 'तू अभी छोटा है, फिर आ जाना' 'मैं अपने घर राजनादगाव वापस आया। दूसरे दिन मेरे दादाश्री मुझे ग्राम बुन्देली ले गये और वहा नाई को बुला कर मेरे सिर का मुण्डन करा दिया और कहा—'अब क्या लोचन कर पायेगा!'

एक ऐसी ही अन्य घटना आचार्यश्री के राजनादगाव वर्षावास के समय की है। कुछ वैरागी बधुओं ने मुझे साधुवेश पहना कर एव 'ओगा' देकर कहा—'जाओ, सभा मे श्रद्धेय आचार्य भगवन् को वन्दन करके आओ।' उस समय सभा में आचार्य भगवन् स्वय प्रवचन फरमा रहे थे। मैं अबोध तो था ही बाल सुलभ प्रवृत्ति से ऊपर की सीढ़ी से तेजी से नीचे आया, आचार्यश्री को वन्दन किया और तेजी से वापस ऊपर चला गया। आचार्यश्री के इस प्रकार दर्शन का मुझ पर कुछ ऐसा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा कि मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई।

आचार्य भगवन् शरीर के प्रति कितने निस्सग थे यह मैने उनके बीकानेर वर्षावास के दौरान जाना। प्रार्थना के पश्चात् गुरुदेव प्रतिदिन 'समता दर्शन एव व्यवहार की व्याख्या किया करते थे। मैं भी उनके व्याख्यानो में उपस्थित हो रहा था। एक दिन खून की जाच करने डाक्टर प्रात काल ही आ गये थे। गुरुदेव व्याख्या करते-करते बीच में उठे, अन्दर गये, खून दिया और हाथ पर रुई दबाये तुरन्त बाहर आ गये। उनसे आग्रह किया गया कि वे उस दिन का व्याख्यान वहीं समाप्त कर दें और अगले दिन उसे पूर्ण कर दे परन्तु गुरुदेव तैयार नहीं हुए। जिस हाथ से खून निकाला गया था उस पर रुई लगाये उसे मोड़े हुए ही वे व्याख्या करते चले गये। शरीर के प्रति उनकी इस निस्सगता पर सभी विस्मित थे।

गुरुदेव वाक्पटुता को नहीं सयमपूर्ण निर्मल जीवन को ही महत्त्वपूर्ण मानते थे। वे कहते थे कि साधक का मूल्याकन उसकी वाक्पटुता अथवा वक्तृत्व कला से नहीं बल्कि उसके निर्मल साध्वाचार से होता है, अपनी दैनिक जीवनचर्या में वह कितना विवेक रखता है, यह उसकी कलानिपुणता से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

महिलाओ का वे विशेष सम्मान करते थे तथा उनकी सुरक्षा के प्रति विशेष रूप से सतर्क रहते थे। किसी भी स्थिति में महिलाओं के प्रति किचित भी लापरवाही उन्हे सह्य नहीं थी।

उनका हृदय अत्यत उदार था। अपने से मतैक्य नहीं रखने वालो को भी वे पूर्ण सम्मान देते थे। उनका विचार था कि भिन्न मत रखने वाले भी अपने ही भाई है जो अवसर आने पर सत्य की अनुभूति स्वय ही कर लेगे और सुपथ पर आ जायेगे।

आचार्य भगवन् का 'नाना' नाम इस रूप में सार्थक था कि वे बालको के समान भोले थे। वे कहते थे—'मैं तो नाना हू, छोटा हू, गावड़े का आदमी हू। मैंने तो सासारिक शिक्षा भी प्राप्त नहीं की है।' यह बात वे बहुत सहजता से कह जाते और आगे श्रावको से कहते—'आप तो अम्मा पिया हैं, महान् हैं। आप लोगो को जब भी लगे कि मैं कुछ अनुचित कह रहा हू, मुझे नि सकोच भाव से सचेत कर

दे।' आचार्य भगवन् क ऐसे निश्छल कथन श्रावका को सहज ही नतमस्तक कर दत थ।

बच्चा क प्रति आचार्य भगवन् का विशप वात्सल्य भाव रहता था। माताओ से वे कहा करते थे—'छाट बच्चों को कभी नहीं मारना चाहिये, बच्चों को युक्तिपूर्वक समझाना चाहिय। बाल्यावस्था ही ऐसी उम्र है जब ये मन के सच्चे एव स्वभाव स निर्मल होते हैं। उन्हें आरम्भ से ही अच्छे सस्कार दीजिये, वे ही भारत के भावी भाग्य-विधाता हैं।' कई बार तो सामूहिक प्रत्याख्यान के समय भी वे नियम दिला देते—' आज बच्चों का नहीं मारना है।'

पूज्य गुरुदेव की मुझ पर विशेष कृपा थी, उनसे सवधित ऐस ही अनेक सम्मरण मेर जीवन की अमूल्य धरोहर हे जो मुझे सदैव प्रेरणा एव उत्साह प्रदान करत रहते हैं। आचार्यश्री के चरणों में सेवा का जा भी अवसर मुझे मिला, मैंने उस अपना पुण्य-अर्जन माना। उन्हाने भी मुझे जो स्नेह व प्रोत्साहन प्रदान किया उसे मैं कभी विस्मृत नहीं कर पाऊगा। ◆

गौतम पारख

असीम मनोबल की सजीव मूर्ति

आचार्य श्री नानेश के दिव्य व्यक्तित्व का स्मरण मुझे आज भी रोमाचित कर दता है। उनसे सवधित कितनी घटनाएँ मुझे याद आ रही हैं, मैं बता नहीं सकता। सस्मरणा की शृखला वहुत लम्बी है परन्तु कतिपय की छाप तो मरे हृदय पर अमिट रूप से पडी है जिन्ह मैं कभी विस्मृत नहीं कर सकता।

एक घटना ता उनके आचार्य पद का उत्तराधिकारी घोपित करने से ही सवधित है, जब आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा न मुनि नानालाल का नाम अपन उत्तराधिकारी के रूप में सुझाया तव सभी आश्चर्यचकित रह गये। 'मुनि नानालाल ? उन्हें ता बोलना भी नहीं आता।' लोगो की भिन्न-भिन्न प्रतिक्रियाएँ थीं। परन्तु श्री गणेशाचार्य आश्वस्त थे—'मैं तुम्हें ऐसा गुदड़ी का लाल दूँगा जिसे पाकर तुम मुझ भी भूल जाओगे।' और वास्तव में आचार्य नानालालजी म सा उनकी अपेक्षाओ के अनुरूप ही निकले। उनके आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के सात माह क भीतर ही सात मुमुक्षु आत्माएँ दीक्षित हो गई और उसक वाद तो दीक्षित होने वाले शिष्यो की सख्या 350 स भी ऊपर पहुँच गई। ऐसे होते हैं दृढ मनोवल और आत्मविश्वास से पूर्ण महापुरुष। ऐसे ही दृढ मनोवल से सवधित दा अन्य घटनाएँ मुझे याद आ रही हैं।

आचार्य पद प्राप्ति के बाद सबसे पहल उदयपुर से विहार का प्रसग वना। लोग कहने लगे—'महाराज दिशाशूल है, सूरजपाल स विहार नहीं करना है।' लेकिन आत्मवली के सामने तो शूल भी फूल वन जाते हैं। आपने उसी दरवाजे स विहार किया और विहार मगलमय रहा। इसी प्रकार लोगो ने प्रथम चातुर्मास रतलाम में न करने की सलाह दी थी और आसन्न समस्याओं से अवगत कराया था परन्तु आपने रतलाम मे ही प्रथम चातुर्मास किया जो अत्यन्त सफल रहा। हमें ज्ञात है कि इसी चातुर्मास के वाद धर्मपाल प्रवृत्ति के उदय का सयोग वना था।

गुरुदेव का सेवा-भाव भी अनूठा था। जयपुर चातुर्मास के दौरान श्री रवीन्द्र मुनिजी एव मीनासर मे श्री सुरेन्द्र मुनिजी की जिस तत्परता से आपने सेवा की थी उसकी मिसाल मिलनी मुश्किल है। धर्मसम्मत आचरण की पालना के प्रति वे कितने कठोर थे इसका प्रमाण तो घाटकोपर की वह घटना है जिसमें आचार-रक्षा के हितार्थ फटा दूध वे स्वय पी गय थे।

किसी भी विपत्ति, सकट अथवा विरोध के सम्मुख व तनिक भी विचलित नहीं होते थे। मुझे स्मरण है और सभी का स्मरण हागा, कि विघटनपूर्ण स्थिति में भी कितनी सफलता से वे चतुर्विध सघ को सकट से वाहर निकाल लाये और उस विकास क नवीन शृगा की ओर उन्मुख कर दिया। उनके अमित उपकार का चतुर्विध सघ कभी विस्मृत नहीं कर पायेगा। ◆

—उत्तमचद श्रीश्रीमाल
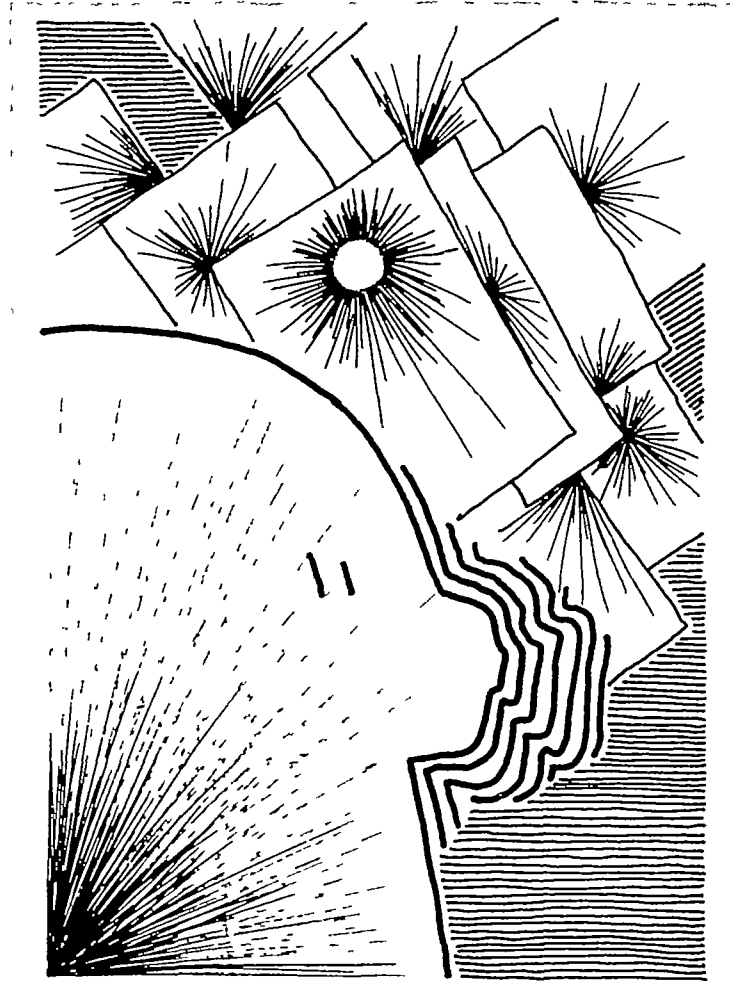
॥ शिव नाटेश ॥

भूमिका

साधुमार्ग आचार्य परम्परा और आचार्य नानेश

सर्वकल्याणकारी सर्वसिद्धि-प्रदाता, परम तेजस्वी एव अनत आध्यात्मिक शक्ति से परिपूर्ण *'नमस्कार महामत्र'* के पाँच पदो के साथ पाँच आत्माएँ जुड़ी हुई है। इन पाँच आत्माओ मे एक आत्मा आचार्य की भी है—*'णमो आयरियाण'*। वास्तव मे यह *'णमो आयरियाण'* एक सप्ताक्षरी मत्र है जिसके प्रत्येक अक्षर का अपना महत्त्व है। आचार्य ही परम आत्मा को जाग्रत कर उसे मोक्ष के मार्ग की ओर अग्रसर करने में सहायक होता है। वह प्रतिबोध, दीक्षा और शास्त्र-ज्ञान का मुख्य प्रदाता होता है। चतुर्विध सघ के सचालन में उसकी प्रमुख भूमिका होती है इसलिए उसकी योग्यता के शास्त्रीय मानक भी निर्धारित है। उसका आचार, श्रुतादि जैसी आठ सम्पदाओं से सम्पन्न होना, चरण करण, धर्मकथा एव द्रव्यानुयोग का ज्ञाता होना तथा ३६ गुणों से युक्त होना आवश्यक माना जाता है। ठाणाग सूत्र में कहा गया है—

पचिदिय सवरणो, तह नव विह, बभचेर गुत्ति धरो।
चहुविहकसाय मुक्को, इह अठारस्स गुणहि सजुत्ता।
पच महव्वय जुत्तो, पच विहायार पालण समत्थो।
पच समीय ती गुत्तो, इह छत्तीस गुणेहि गुरु मज्झ।।

धर्म सग्रह अधिकार के अनुसार आचार्य भी पाँच प्रकार के होते हैं—प्रव्राचकाचार्य, दिगाचार्य, उद्देशाचार्य, समुद्देशाचार्य और आम्नाचार्य वाचकाचार्य। वर्तमान में तीर्थकर न होने से आचार्य उनका प्रतिनिधि होता है। वह धर्मसघ का सचालन तो करता ही है, तीर्थकरों द्वारा बताये गये धर्म एव आचार का स्वय पालन करता है और दूसरों के द्वारा पालन कराता भी है। ये आचार पाच प्रकार के बताये गये है—ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार। इन आचारों का पालन जब आचार्य, साधु और गृहस्थ समान रूप से करते हैं तभी उस धर्म की प्रतिष्ठा सभव होती है जिसकी जीवन में

पालना आवश्यक हे और जिसे शास्त्रो ने जीवन मे अभ्युदय अथवा सर्वतामुखी उन्नति एव परलोक म कल्याण का कारण माना है—*यतोऽभ्युदय नि श्रेयसिद्धि स धर्म ।* (वै सूत्र)

सघ व्यवस्था के महत्त्व को समझ कर ही आचार्यो की व्यवस्था की गई है। तीर्थंकर भगवानो क काल म व्यवस्था का यह कार्य गणधरा के माध्यम से सम्पादित किया जाता था किन्तु तीर्थकर अपने मोक्ष स पूर्व, अपनी उपस्थिति मे ही, सघ व्यवस्था के मेरुदण्ड के रूप म आचार्य को प्रस्थापित करते थे। इस प्रकार प्रस्थापित आचार्य सघ-व्यवस्था का केन्द्र और कर्णधार होता है। तीर्थकर का प्रतिनिधि हाने के नाते तीर्थकर का प्रतिनिधि होने के नाते चतुर्विध सघ मे उसका स्थान सर्वोपरि होता हे। आचार्यो की इस परम्परा की पृष्ठभूमि पर किचित विस्तार से विचार अपेक्षित है।

पृष्ठभूमि

भगवान् महावीर न केवल आत्म साधना ही नहीं की, अपनी सिद्धि का लाभ जन साधारण तक पहुँचाने की भी उन्हे चिन्ता थी इसलिए उन्होंने एक सुव्यवस्थित एव प्रभावी देशना तत्र की स्थापना भी की। उन्होंने दख लिया था कि स्व' का परिवर्तन करन पर ही तथा विभाव से स्वभाव मे आने पर ही आत्मा परमात्मा वन सकती है। इस पथ को कैसे अपनाया जाय यह बतान क लिए वे स्वय धर्मोपदश देने की दिशा मे प्रवृत्त हुए। यद्यपि तीर्थकर कवली वनने के वाद कृत-कृत्य हा जाते हैं और स्वय के उत्थान के लिए पुरुषार्थ करना उनके लिए अपक्षित नहीं रहता तथापि व सर्वोत्कृष्ट पुण्य प्रकृति तीर्थकर नाम कर्म का वेदन करन क लिए भव्य जना के हितार्थ धर्मोपदेश की पावन मदाकिनी प्रवाहित करते हे। भगवान् ने अपने शासन की परम्परा को अक्षुण्ण वनाये रखने के लिए अपनी प्रथम देशना म ही वुद्धिमान अतिशय सम्पन्न शिष्यों को गणधर पद दिया और उन्हीं म स किसी एक गणधर को शासन सचालन म सक्षम जानकर सम्पूर्ण सघ का दायित्व वहन करने वाल आचार्य के रूप मे नियुक्त कर भावी शासन को सुव्यवस्थित रखने का मार्ग दिखाया।

मध्य पावा के महासन वन मे देवो ने भगवान् महावीर के द्वितीय समवसरण की रचना की जिसमे देवो और मानवो की विशाल सभा मे उच्च सिहासन पर विराजकर भगवान् ने जो देशना दी उसे श्रवण कर सव भाव-विभोर हो गये ओर मत्रमुग्ध से बैठे रहे। उनके तप प्रभाव से देवगण अपने दिव्य विमानो मे वैठ कर उनके समवसरण की ओर चल पड़े। उसी नगर मे सोमिल नामक धन कुबेर ने एक विशाल यज्ञ आयोजित कर रखा था जिसकी पुरोहिताई करने के लिए ग्यारह धुरधर विद्वाना को आमत्रित किया गया था जिनमे आचार्य इन्द्रभूति गौतम भी थे। देवताओ के विमानों को भगवान् महावीर के समवसरण की ओर जाते देख कर वे हतप्रभ रह गये क्योकि उन्हे देवगणा के अपने यज्ञ मे आने की अपेक्षा थी। उन्होने भगवान् महावीर को वहुत बड़ा इन्द्रजालिक समझा अत उन्हे शास्त्रार्थ में परास्त करने के लिए इन्द्रभूति गौतम अपने 500 शिष्यो के परिवार सहित भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँचे परन्तु भगवान् महावीर के दिव्य व्यक्तित्व ने उन्हे चमत्कृत कर दिया। इसके उपरान्त जब प्रभु महावीर ने उनके मन के सशय को दूर कर दिया तव इन्द्रभूति गौतम उनके दिव्य ज्ञान स अभिभूत होकर वहीं अपने 500 शिष्यो के साथ दीक्षित हा गये। इसके वाद अग्निभूति, वायुभूति और व्यक्तभूति ने भी अपने शिष्या के साथ भगवान् महावीर से प्रभावित होकर उनके चरणों में दीक्षा ले ली। सुधर्मा स्वामी पाँचवे व्यक्ति थे जिन्होने अपने सशय के समाधान के वाद प्रभु महावीर की नेश्राय में दीक्षा अगीकार की। इस प्रकार सभी ग्यारह विद्वानो ने अपने शिष्यों क साथ प्रभु महावीर के चरणों मे दीक्षा अगीकार कर ली। भगवान् महावीर ने इन्हें त्रिपदी दी जिससे इन्हें सम्पूर्ण द्वादशागी का ज्ञान हो गया। चूँकि इनके साथ साधु समुदाय रूपी गण भी दीक्षित हुआ था इसलिए इन्हें गणधर का पद प्राप्त हो गया। इस प्रकार एक ही दिन म 4400 शिष्यों को दीक्षा प्रदान कर भगवान् महावीर ने चतुर्विध सघ की स्थापना कर दी।

आगमकालीन आचार्य परम्परा

भगवान् महावीर द्वारा नियुक्त नौ गणधर अपने-अपने गणो की व्यवस्था

कुशलतापूर्वक सम्हालने लगे परन्तु भगवान् की दृष्टि दूर भविष्य पर लगी हुई थी। उन्हे अपना उत्तराधिकारी भी नियुक्त करना था। उन्होंने अपनी केवली दृष्टि से स्थिति का अवलोकन किया। उन्होने ज्ञात किया कि नौ गणधर तो उनकी उपस्थिति मे ही मोक्ष पधार जायेगे अत शेष दो गणधरों—गौतम और सुधर्मा में से ही उन्हे किसी को अपना उत्तराधिकारी चुनना था। उन्होने दिव्य दृष्टि से देख लिया कि उनके निर्वाण के बाद गौतम गणधर सर्वज्ञ बन जायेंगे, केवली बन जायेगे और केवली आचार्य पद पर नहीं आते। तब सुधर्मास्वामी ही आचार्य पद के एकमात्र सुयोग्य उत्तराधिकारी शेष रह गये। वे दीर्घजीवी भी होने को थे अत उन्हे ही भगवान् ने आचार्य का दायित्व सम्हलाया। आवश्यक चूर्णि मे लिखा है—'द्रव्य, गुण, पर्याय रूप श्रुत तीर्थ का दायित्व गणधर गौतम को और साधु समुदाय रूप तीर्थ का दायित्व गणधर सुधर्मा को भगवान् महावीर ने सम्हलाया। इसके बाद अग्निभूति आदि 9 गणधर अपने-अपने निर्वाण काल को समीप जान कर अपने निर्वाण से एक माह पूर्व श्री सुधर्मा स्वामी को अपने गण सम्हला कर एक मास का सलेखणा सथारा करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त हो गये और परिनिर्वाण को प्राप्त हो गये। इस प्रकार भगवान् महावीर की उपस्थिति मे ही सुधर्मा स्वामी विशाल शिष्य सम्पदा के सचालक बन गये। उन्हीं से आगमकालीन आचार्य परम्परा प्रारभ होती है। इस परम्परा के आचार्यो पर सक्षेप में दृष्टि-निक्षेप उचित होगा।

आचार्य सुधर्मा स्वामी—कार्तिक कृष्णा अमावस्या को प्रभु महावीर के निर्वाण प्राप्त कर लेने के बाद, वीर सवत् के प्रारभ काल मे, शक सवत् से 605 वर्ष पूर्व कार्तिक शुक्ला एकम के दिन आचार्य सुधर्मा स्वामी ने चतुर्विध सघ की बागडोर सम्हाली। *गणहर सत्तरी* के अनुसार—

तित्थाहिवो सुहम्मो

लहुकम्मो गरिम गयण सकासो

वीरेण मज्झिमाए

सत वियो अग्गिवेसाणो। (गणहर सत्तरी-2)

इसके अनुसार स्वय भगवान् महावीर ने मध्यम पावा मे अतिक्षीणकर्मा केसरी सिह के तुल्य अग्नि वैशम्पायन गोत्रीय सुधर्मा स्वामी को तीर्थाधिप अर्थात् साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ के नायक पद पर प्रतिष्ठित कर अपना प्रथम पट्टधर नियुक्त किया।

वीरवश पट्टावली की निम्न गाथा भी इसी तथ्य को स्पष्ट करती है—

भविय जणे पडिवोहिय

बावत्तारि पालिऊण वरिसाई

सोहम्म, गणहरस्स य

पट्ट दाउ सिव पत्तो। (वीरवश पट्टावली-9)

अर्थात् भव्य जीवो को प्रतिबोधन देकर, बहत्तर वर्ष की आयु पूर्ण कर और गणधर सुधर्मा को अपने उत्तराधिकारी के रूप मे पट्टधर पद आचार्य पद प्रदान कर भगवान् महावीर निर्वाण को प्राप्त हुए। इन सुधर्मा स्वामी को ही वर्तमान मे उपलब्ध द्वादशाकी की वाचना का स्रोत माना जाता है क्योकि शेष दस गणधरो की वाचनाएँ भगवान् महावीर के निर्वाण के कुछ समय पश्चात् ही समाप्त हो गईं। आज जो वाचना उपलब्ध है वह सुधर्मा स्वामी की ही है। इस तथ्य की पुष्टि आगम-प्रमाणो से होती है। आगमों मे स्थान-स्थान पर श्री जम्बू स्वामी ने सुधर्मा स्वामी से प्रश्न पूछे और सुधर्मा स्वामी ने उनके उत्तर देकर अग शास्त्रों की वाचनी प्रदान की। सुधर्मा स्वामी ने जो कुछ भगवान् के मुख से सुना था वैसा ही कहा, अपना मतिकल्पित कुछ नहीं कहा। जैसा कि आगमो में भी उल्लेख है, सुधर्मा स्वामी स्वय जम्बू स्वामी से कहते है, 'हे जम्बू, जैसा मैंने भगवान् के श्रीमुख से सुना है वैसा ही कहता हूँ।' भगवान् की वाणी होने के कारण ही द्वादशागी आप्त रूप है। इस प्रकार श्री सुधर्मा स्वामी ने आचार्य परम्परा का प्रारम तो किया ही, उसे तथा आचार्य की शिक्षाओ को सुदृढ आगमिक धरातल भी प्रदान किया। 100 वर्ष की आयु मे जम्बू स्वामी को अपना पट्टधर घोषित कर श्री सुधर्मा स्वामी एक मास का सलेखणा-सथारा करके सिद्ध-बुद्ध मुक्त बने।

श्री सुधर्मा स्वामी से आचार्य देवर्द्धिगणी क्षमा श्रमण तक यह आगमयुगीन आचार्य परम्परा चलती रही जिसमे 34 पट्टधारी आचार्य हुए। इस 34 की सख्या पर मतभेद है। माथुरी तथा वल्लभी वाचनानुसार 27-27 आचार्यो की एव नन्दी सूत्र के अनुसार 33 आचार्यो की पट्टावलियाँ प्राप्त होती हैं। इन पट्टावलियों में नामा की सख्या एव उनके क्रमो म अतर है जिसका कारण समय-समय पर पड़ने वाले वे दुर्भिक्ष थे जिनके कारण श्रमण सघों को दक्षिण की ओर बढना पड़ा था। दूसरी शताब्दी के मध्य तक सभी सघ सम्मिलित हो गये थे लेकिन चूँकि आगमो का व्यवस्थित करने के लिए विभिन्न समयो मे वाचनाएँ हुई थीं इसलिए उनमें व्यक्तिक्रम के लिए पर्याप्त अवसर था। जो भी हो, 27 आचार्यो की सख्या पर सामान्यत सहमति है। ये 27 आचार्य है—

1 सुधर्मा स्वामी
2 जम्बू स्वामी
3 आचार्य प्रभव स्वामी
4 शय्यभव स्वामी
5 आचार्य यशोभद्र स्वामी
6 आचार्य सभूति विजय
7 आचार्य भद्रबाहु
8 आचार्य स्थूलिभद्र
9 आर्य महागिरि
10 आर्य सुहस्ति
11 आर्य बलिस्सहजी
12 आर्य स्वाति
13 कालकाचार्य
14 आर्य षाडिल्य
15 आर्य समुद्र
16 आर्य मगू
17 आर्य नदिल
18 आर्य नागहस्ति
19 आर्य रेवती नक्षत्र
20 आर्य ब्रह्मदीपिक सिह
21 आर्य स्कन्दिल
22 हिमवत क्षमा श्रमण
23 आचार्य नागार्जुन
24 आर्य भूत दिन्न
25 आर्य लोहित्य
26 आर्य दूष्य गणि
27 आर्य देवर्द्धि गणि क्षमा श्रमण

इन सत्ताईस आचार्यो मे अतिम आचार्य आर्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण का विशेष महत्त्व है क्योंकि इनके समय में ही आगम व्यवस्थित रूप से लिपिबद्ध हुए। आर्य देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण ने वीर निर्वाण सवत् 980 मे वल्लभी नगर में देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण सघ एकत्र हुआ उसमे जो आगम-वाचना हुई वह श्रमण सघ द्वारा होने वाली अतिम आगम वाचना थी जिसमे आगमो को लिपिबद्ध किया गया। इस आगम वाचना के साथ एक हजार वर्ष का आगम युग समाप्त हो गया। इस आगम युग मे छ श्रुत केवली हुए—प्रभव, शय्यभव, यशोभद, सभूति विजय, भद्रबाहु और स्थूलिभद्र। इसके बाद दस पूर्वधरो की परम्परा प्रचलित हुई। दस पूर्वधर दस आचार्य हुए हैं, इनके नाम हैं—महागिरि, सुहस्ती, गुणसुदर, कालकाचार्य, स्कदिलाचार्य, रवतीमित्र, मगू, धर्म, चन्द्रगुप्त और आर्यवज्र।

आगोमत्तरकालीन आचार्य परम्परा

बार-बार पड़ने वाले दुर्भिक्षो के कारण आगमिक परम्परा तो विच्छिन्न हुई ही, विधि-विधान, समाचारी आदि की एकरूपता भी नष्ट हुई। विषमता की इस स्थिति में जैसे-जैसे आध्यात्मिक रुचि कम होती गई वैसे-वैसे शिथिलाचार की प्रवृत्तियाँ भी बढती गई। श्रावको के वर्ग पर भी इस स्थिति का प्रभाव पड़ा, परिणामस्वरूप वह भी अपने कर्तव्य से च्युत होकर शिथिलाचार का पोषण करने म प्रवृत्त हो गया। फिर भी वीर शासन साधु-विहीन नहीं हुआ। देवर्द्धिगणि क्षमा श्रमण के बाद आगमोत्तर काल में जो पाट-परम्परा चली उसमे सर्वाधिक प्रामाणिक प्रतीत होने वाली पाट-परम्परा में वीरभद्र स्वामी से आचार्य ज्ञानजी ऋषि तक 34 आचार्यो की परम्परा का विवरण मिलता है। इस प्रकार भगवान् महावीर से अब तक 27+34=61 आचार्यो की परम्परा का स्वीकार किया जा सकता है। इन 61 आचार्यो मे अतिम आचार्य ज्ञानजी ऋषि का गुजरात के अहमदाबाद नगर के लोकाशाह नामक धार्मिक प्रकृति एव साधु स्वभाव क श्रावक से सम्पर्क हुआ। आचार्य के निर्देश पर लोकाशाह न सुन्दर लेखन में शास्त्रों की प्रतिलिपियाँ करने का दायित्व स्वीकार कर लिया। इसका विशेष सुपरिणाम हुआ। अब तक आगमो मे वर्णित साध्वाचार का ज्ञान केवल साधु वर्ग तक ही

सीमित था, अब श्रावक वर्ग को प्रथम बार उसकी जानकारी हुई। लोकाशाह कुशाग्र बुद्धि एव सत प्रकृति के श्रावक थे। उन्हे शास्त्रो मे वर्णित साध्वाचार और अपने युग के साधु वर्ग के आचरण मे गभीर अतर दिखाई दिया। इस पर वे चकित रह गये। उन्होंने प्रबुद्ध एव प्रभावी श्रावकों से इस सबध मे गभीर चर्चा की। आगम सम्मत साध्वाचार से विपरीत प्रवृत्ति के प्रचलन की इस जानकारी ने प्रतिरोध की प्रवृत्ति को जन्म दिया। लोकाशाह ने अत्यत विवेकपूर्ण एव शालीनता से साध्वाचार के आगमिक स्वरूप को चतुर्विध सघ के सम्मुख उपस्थित किया, फलस्वरूप श्रावक वर्ग ही नहीं साधुवर्ग भी शास्त्रानुसार अनगार धर्म के पालन किये जाने का समर्थक बन गया। अब समाज मे साध्वाचार की रक्षा के लिये एक प्रभावी आन्दोलन चल पड़ा। इसके मार्गदर्शन के लिये एक ऐसे श्रमण वर्ग की आवश्यकता थी जो आगमिक परम्परा के अनुसार दीक्षित होकर प्रचार कार्य हेतु तत्पर हो। लोकाशाह ने अपनी वृद्धावस्था के कारण इस गुरुतर दायित्व को स्वीकार करने मे अपनी असमर्थता बताई। तब भाणजी भाई आदि 45 श्रावकों ने दीक्षित होकर *लोकाशाह गच्छ* के नाम से आचार्य पाट-परम्परा का प्रारभ किया जिसमे ज्ञानजी ऋषि के पश्चात् श्री भाणजी ऋषि से श्री लालचन्दजी म सा तक 12 आचार्य हुए। इस प्रकार ज्ञानजी ऋषि तक के 61 और श्री भाणजी ऋषि से श्री लालचदजी महाराज तक के लोकाशाह गच्छ के 12 आचार्यो को मिला कर यह परम्परा 73 आचार्यो तक पहुँच गई।

हुक्मी सघ उदय, विकास और आचार्य परम्परा

73वे आचार्य श्री लालचदजी म सा के 9 शिष्यो में श्री हुक्मीचदजी म सा सर्वाधिक प्रतिभा-सम्पन्न एव उत्कटतर धर्म-भावना से युक्त थे। सयमीय अक्षुण्णता बनाये रखने के प्रति वे विशेष रूप से सकल्पबद्ध थे इसीलिए उन्होने सम्यक् ज्ञान और दर्शन को सम्यक् क्रिया मे रूपातरित किये जाने की आवश्यकता को सर्वाधिक महत्त्व दिया। अपने स्वय की आचरण-शुद्धि से उन्होने जनता के सम्मुख सम्यक् क्रिया का विशिष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। सयम क्रान्ति के उनके आह्वान ने लोगो को इस प्रकार प्रेरित किया कि उनके बिना प्रयास किये

ही साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविकाओ का एक चतुर्विध सघ उनके आस-पास एकत्र हो गया। इस चतुर्विध सघ ने जब सघनायक के रूप मे श्री हुक्मीचदजी म सा को अपना नेता और आराध्य स्वीकार कर लिया तब स्वत ही एक नये सघ का उदय हो गया जो *हुक्म सघ* के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिसके प्रथम आचार्य श्री हुक्मीचद जी म सा भगवान् महावीर की पाट-परम्परा के 74वे आचार्य हुए।

आचार्य श्री नानालाल जी म सा इसी हुक्मी सघ की पाट-परम्परा के आठवे और भगवान् महावीर की पाट-परम्परा के 81वें आचार्य हुए। चूँकि आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा ने सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन को सम्यक् क्रिया के साथ सम्मिलित कर एक नई धार्मिक क्रान्ति को जन्म दिया था इसलिए समाज ने उन्हे *'महान् क्रियोद्धारक आचार्य'* की उपाधि से विभूषित किया। उन्होने सयम-साधना का जो आदर्श पथ प्रदर्शित किया वह अपने आप में धर्मक्षेत्र में किया गया अनोखा प्रयास था। उनके बाद आने वाले पट्टधर आचार्यो ने किस प्रकार उस आदर्श को सुरक्षित रख कर धर्म प्रभावना के कार्य को आचार्य श्री नानालालजी म सा तक पहुँचाया इस पर सक्षेप में दृष्टि-निक्षेप आवश्यक है।

हुक्मीचदजी म सा मे बाल्यावस्था से ही आचरण सक्रियता और अध्ययन की प्रवृत्ति के दर्शन होने लगे थे। किशोरावस्था में जीवन की परिस्थितियो को दार्शनिक एव भावनात्मक दृष्टि से देखने की रुचि उनमे उत्पन्न हो गई। सुखों की निस्सारता के अनुभवों ने उन्हे राग की वीथिकाओं से निकाल कर वैराग्य के राजमार्ग पर गतिमान कर दिया। विद्या और विराग के समन्वय ने उन्हें प्रव्रज्या की दिशा में मोड़ दिया और विक्रम सवत् 1979 की मार्गशीर्ष अष्टमी को बूदी नगर में आचार्य श्री लालचदजी म सा की नेश्राय मे उन्होंने दीक्षा अगीकार कर ली। स्वभाव से ही सकल्पशील, दृढ सयमी, श्रमण सस्कृति की शुद्धता में दृढ विश्वास रखने वाले तथा सिह के समान निर्भीक श्री हुक्मीचदजी म सा शिथिलाचार के घोर विरोधी थे। अपने गुरु के आचरण मे शिथिलता तथा शिथिलाचार के वातावरण से क्षुब्ध होकर उन्होंने अलग विचरण प्रारभ कर दिया। पू श्री शीतलदासजी महाराज के शिष्य श्री मोतीरामजी म सा के साथ मिलकर उन्होंने

शिथिलाचार के विरुद्ध आवाज उठाई और निर्ग्रन्थ श्रमण सघ की उत्क्रान्ति तथा श्रमण परम्परा की शुद्धता के लिये कार्य प्रारभ कर दिया। वे उन्मुक्त प्रकृति के सत थ और अपनी आत्मा क आदश के अनुसार कार्य करते थे इसीलिए पहले चातुर्मास स्वीकार नहीं करत थ। जहाँ उनकी इच्छा होती थी वहाँ जाकर चातुर्मास हतु निवास कर लते थे। घार सयम-साधना, कठार इन्द्रियदमन, कठिन तप और अपूर्व मनानिग्रह क ताप म अपने शरीर को तपा कर उन्होंने कुदन वनाया। 21 वर्षो तक उन्होंन बले-बेले की तप साधना की तथा 18 द्रव्यो स अधिक का त्याग किया और प्रतिदिन दो हजार शक्रस्तव एव दो हजार गाथाओ के परावर्तन का क्रम जीवनभर निभाया। प्रशसा अथवा निदा दोनो के प्रति तटस्थ भाव रख कर उन्हाने समभाव की साधना की। असह्य कष्टा और परिषहा को सह कर भी साधुचर्या का जो आदर्श उन्हान प्रस्तुत किया उसका ही परिणाम था कि शिथिलाचार समाप्त हुआ, तप-त्याग का मार्ग प्रशस्त हुआ, श्रमण सस्कृति की रक्षा हुई और सघ का सुदृढीकरण हुआ। अपने चरित्र एव कार्यो द्वारा उन्होंने सिद्ध कर दिया कि वास्तव में वे क्रियाद्धारक थे। वि स 1917 की वेशाख शुक्ला पचमी का जावरा (म प्र) म उनका स्वर्गवास हो गया।

आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा क पाट पर विराजने वाले दूसरे आचार्य थे आचार्य श्री शिवलालजी म सा , जिन्हे वि स 1917 मे आचार्य पद प्राप्त हुआ। आप भी सयम-साधना क कठोर पक्षधर थे। शास्त्रा का गभीर ज्ञान आपने प्राप्त किया था। प्रवचन कला म आप अत्यत निपुण थे। अपने प्रयासो से आपने न केवल सघ की प्रतिष्ठा वढाई वरन् अनेक भव्य आत्माओं को विरक्ति के मार्ग का पथिक भी वनाया। वि स 1933 की पौष शुक्ला षष्ठी को जावद नगर म आपका स्वर्गवास हो गया।

हुक्म सघ के तीसरे आचार्य श्री उदयसागरजी महाराज भाग से याग की आर प्रवृत्त होन वाले ऐस सत थे जिन्हान सयम-साधना का अपन जीवन का प्रमुख कर्तव्य वनाया। प्रभावी व्यक्तित्व, विलक्षण प्रतिभा तथा विचक्षण प्रज्ञा का उनम अनोखा समन्वय हुआ था। आपक ऐसे ही विशिष्ट गुणा स प्रभावित होकर आचार्य श्री शिवलालजी म सा ने आपका अपना उत्तराधिकारी घापित किया था। पूर्ववर्ती आचार्यो की भाँति आपने भी शिथिलाचार के विरुद्ध सघर्ष जारी रखा और शुद्धाचार के आदर्श को प्रसारित करत रहे। विनम्रता, क्षमाशीलता, शील और त्याग क अपन गुणो द्वारा चतुर्विध सघ के बहुमुखी विकास मे आपने विशेष योग दिया। वि स 1954 की माघ शुक्ला अष्टमी को आपका स्वर्गवास हो गया।

चौथे पट्टधर आचार्य श्री चोथमलजी म सा न बाल्यावस्था स ही जा धार्मिक-आध्यात्मिक सस्कार प्राप्त किये थे उनके परिणामस्वरूप ही उन्हे ससार से विरक्ति हा गई थी। अपनी शाश्वत सुख की पिपासा को शात करने के लिये ही वि स 1909 मे उन्होने भागवती दीक्षा अगीकार की। सयम-साधना में वे वज्रवत कठोर थे और शिथिलाचार किसी भी रूप म स्वीकार नहीं कर सकत थे। ऐसे सयम के पालक निर्ग्रंथ शिरोमणि महान् क्रियावान् सत को उनके गुरु आचार्य श्री उदयसागरजी म सा न अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। वि स 1954 की फाल्गुन कृष्णा चतुर्थी को इन्होने आचार्य पद ग्रहण किया और मात्र तीन वर्ष के आचार्यत्व काल के बाद 1957 की कार्तिक शुक्ला नवमी को रतलाम मे आपका स्वर्गवास हो गया।

पचम पट्टधर आचार्य श्री श्रीलालजी महाराज साहव अपने युग में जीवदया के अनुपम प्रतीक बने। बाल्यावस्था से ही सुसगति एव माता-पिता के धर्माचरण के प्रभाव से आपमे शुभ सस्कारो का विकास हो चुका था। छ वर्ष की अवस्था में ही माता से सुनकर प्रतिक्रमण के पाठ उन्होंन कठस्थ कर लिये थ। सुसस्कारों एव आत्मा की पवित्रता का ही परिणाम था कि वैवाहिक जीवन को अस्वीकार कर युवावस्था म ही आप साधुमार्ग मे दीक्षित हो गये। वि स 1957 में आपको युवाचार्य घापित किया गया। उसके वाद आपके प्रवचनों की धूम मच गई। उदयपुर, भीलवाडा, नागौर, बीकानर, जाधपुर आदि स्थाना में आपके प्रवचनो से प्रभावित हाकर पीड़ित एव तिरस्कृत वर्ग के ही नहीं उच्च सम्पन्न वर्ग क अनेक श्रद्धालुआ न त्याग-तप क प्रत्याख्यान लिये। वश्या स लकर इस्लाम धर्म क अनुयायियो तक को अपना जीवन बदल लेन की प्रेरणा दकर आपने उनके जीवन

मे शुभ परिवर्तनों का सतत क्रम प्रारभ कर दिया। वि स 1963 के रतलाम चातुर्मास में तो त्याग और तपश्चर्या के अनोखे कीर्तिमान स्थापित हुए। कसाइयों तक ने आपके प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए कसाईखाने बन्द रखे। अनेक स्थानो पर आपने शिकार तथा जीवहत्या के विरुद्ध निषेध आज्ञाए जारी कराई। ब्यावर में वि स 1967 के चातुर्मास के दौरान एक साथ पॉच दीक्षाएँ सम्पन्न करा कर आपने एक कीर्तिमान स्थापित किया। अपने विविध चातुर्मासों और विहारो द्वारा आपने अनोखी धर्म-प्रभावनाएँ ही नहीं की, सदाचार, चारित्राचार, अहिसा, दया तथा क्षमा के आदर्शो की स्थापना कर सैकड़ो लोगों की जीवनचर्या को बदल दिया। वाणी का अनुपम वर्चस्व आपको प्राप्त था तथा अद्भुत आत्मबल के आप धनी थे इसलिए किसी रूप मे वचन-सिद्धि भी आपको प्राप्त थी। आपने ही अष्टाचार्य के परम प्रतापी होने की भविष्यवाणी की थी जबकि तब तक छठे एव सातवे पट्टधर आचार्यो का पदस्थापन भी नहीं हुआ था। 51 वर्ष की अवस्था मे जैतारण मे वि स 1977 मे आषाढ शुक्ला तृतीया को सथारापूर्वक आपने देह त्याग किया।

षष्ठम आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा को हुक्म सघ का परम तेजस्वी आचार्य होने का गौरव प्राप्त हुआ। वि स 1976 मे आप आचार्य पाट पर विराजित हुए थे। सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्रान्ति का शखनाद कर आपने भूमण्डल को चकित कर दिया। उत्सूत्र सिद्धातों का उन्मूलन करने तथा आगम सम्मत सिद्धान्तों की प्रतिष्ठा करने के लिये आपने शास्त्रीय चर्चाओ द्वारा जन-मानस को जाग्रत किया। शुद्ध खादी का परिवेश धारण कर आपने स्वदेशी आन्दोलन को ही प्रोत्साहित नहीं किया, परतत्र देश को स्वतत्र कराने के लिए एक विचारधारा भी दी जिसका प्रचार भी आपने गाँव-गॉव घूम-घूम कर किया। शास्त्रो के उद्भट विद्वान आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने धर्मशास्त्र एव धार्मिक जीवन की अनेक पेचीदा समस्याओ का शास्त्र-सम्मत प्रमाणो द्वारा निराकरण किया। तेजस्वी वक्ता के रूप मे आपने अपनी अनोखी छवि बनाई थी। विभिन्न चातुर्मासो द्वारा आपने धर्म की तो महती प्रभावना की ही अन्य धर्म व सम्प्रदायो के साधु-सतो का भी मार्गदर्शन किया।

धार्मिक क्राति के साथ-साथ सामाजिक क्रान्ति की ओर भी आपकी दृष्टि लगातार रही। कन्या-विक्रय, वैवाहिक कुरीतियो, मृत्यु-भोज, दहेज आदि का तो आपने विरोध किया ही, हिसक प्रसाधनो, जैसे हाथी दाँत के चूड़े पहिनने जैसी परम्पराओ के विरुद्ध भी जनमत तैयार कर आपने इनके निषेध हेतु पचनामे लिखवाये। 1982 के अपने उदयपुर चातुर्मास मे वेश्या नृत्य, विवाहो मे फिजूलखर्ची, आतिशबाजी का उपयोग, शिकार, मासाहार, तम्बाकू सेवन जैसे कुव्यसनो के विरुद्ध प्रवचन देकर आपने सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति हेतु सुदृढ आधारभूमि तैयार की। आपकी रचनाओ *'सद्धर्म मण्डनम्'* एव *'अनुकम्पा विचार'* द्वारा आपने सच्चे धर्म की प्रतिष्ठा का ही प्रयास नहीं किया अन्य सम्प्रदायो द्वारा प्रसारित की जा रही भ्रामक धार्मिक एव सामाजिक मान्यताओ का प्रामाणिक आधार पर खण्डन भी किया। रूढ़िवाद एव अविवेकपूर्ण विचारो तथा मान्यताओ पर कठोर प्रहार कर आपने आध्यात्मिक नवजागरण का शख फूका। एक क्रान्तिकारी धर्माचार्य के रूप मे आपकी प्रशसा प जवाहरलाल नेहरू, आचार्य विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक तथा सरदार पटेल जैसे तत्कालीन राष्ट्रीय नेताओ ने मुक्तकण्ठ से की थी। आपके ऐसे ही प्रदेयों के कारण समाज ने आपको *ज्योतिर्धर युग-पुरुष* जैसा गौरवशाली सबोधन प्रदान किया। वि स 2000 की आषाढ़ शुक्ला अष्टमी को आपने सथारापूर्वक देह का त्याग किया।

सातवे आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा वास्तव म गणेश थे। वे अपनी साधना के बल पर *'गण'* अर्थात् जनता/समाज के *'ईश'* अर्थात् आचार्य बने। प्रारभिक जीवन के भीषण वज्रपातो ने उनके हृदय मे अनजाने ही वैराग्य के अकुर प्रस्फुटित कर दिये थे। परिणामस्वरूप 15 वर्ष की अल्प वय में ही वि स 1962 मे उन्होने दीक्षा ग्रहण कर ली। तत्पश्चात् कठोर तपस्या एव सतत ज्ञानार्जन मे आपका समय व्यतीत होने लगा। गुरु सेवा करते-करते आप आगम भी कण्ठस्थ करते रहे। सवत् 1965 मे थादला चातुर्मास से आपने आभ्यतर तप भी प्रारभ कर दिया। योग्य एव अधिकारी विद्वानों के सान्निध्य मे आपने व्याकरण, दर्शन, साहित्य आदि विषय एव सस्कृत और प्राकृत भाषाओ का भी गभीर अध्ययन

किया। युवाचार्य पद प्राप्त करने के उपरान्त आपने जो चातुर्मास सम्पन्न किये उनम समाज-सुधार और सास्कृतिक पुनर्निर्माण का विशेष लक्ष्य रखा। अनुचित वैवाहिक परम्पराओ पर रोक तथा दलितो को व्यसनो से मुक्त कर उन्ह धर्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देन जैसे धर्म आपने अपने रतलाम चातुर्मास मे विशेष रूप से सम्पन्न किये। आपक प्रगतिशील एव मानवतावादी विचारों की श्री विनाबा भावे तथा श्री जयप्रकाश नारायण ने भी भूरि-भूरि प्रशसा की थी। जयपुर मे आचार्य तुलसी स धार्मिक मान्यताओ पर आपकी सक्षिप्त चर्चा हुई जिसमे आप अपना पक्ष सफलतापूर्वक रख सके। अपने विचारो में आप कितने उदार थे तथा पद-लिप्सा से कितने मुक्त, इसके उदाहरण अखिल भारतवर्षीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ्रेस में प्रस्तुत किये गये आपके प्रस्ताव हैं। आपने स्पष्ट कहा था 'एक समाचारी, एक शिष्य परम्परा, एक के हाथ म प्रायश्चित्त व्यवस्था और एक आचार्य के नेश्राय मे समस्त साधु-साध्वियाँ साधना करने की भावना रखते हा तो मै और मेरे नश्राय में रहने वाले समस्त साधु-साध्वी एकता के लिए अपने आपको विलीन करने में सर्वप्रथम रहेगे।' अलवर श्री सघ में आपने दृढतापूर्वक घोषणा की थी—'मुझे किसी सम्प्रदाय विशेष के प्रति मोह, ममता या लगाव नहीं है। सत-जीवन ममताविहीन हाना चाहिए किन्तु अपने कर्तव्य की पालना के लिये सम्प्रदाय क अन्दर रहकर कार्य करना पडता है। यदि एक आचार्य के नेश्राय मे एक समाचारी आदि का निर्णय करते हुए सयम साधना के पथ पर चारित्रिक दृढता के साथ अग्रसर होने की स्थिति के योग्य कोई सगठन बनता है तो मे प्रथम होऊँगा जो अपनी आचार्य-पदवी छोड़कर सगठन के अधीन सघ की सेवा के लिय सहर्ष तत्पर रहूँगा।' आपकी योग्यता एव आपके ऐसे उदार विचारो के आधार पर ही आपको सादड़ी सम्मेलन मे श्रमण सघ का नायक निर्वाचित किया गया था परन्तु आपके सद्प्रयासों के बाद भी श्रमण सघ की कल्पना साकार नहीं हो सकी। इसी समय श्रमण सघ में अनुशासनहीनता का दौर भी प्रारभ हो गया जिसका प्रभाव सघ की सभी गतिविधियों पर पडने लगा। आपने इसके विरुद्ध दृढ कार्यवाही प्रारभ की परन्तु अपेक्षित सफलता न मिलती देख उपाचार्य के पद से त्यागपत्र दे दिया। श्रमण सघ के विघटित हो जाने के बाद श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिये आपने शातिपूर्ण क्रान्ति का श्रीगणेश किया जिसका उद्देश्य भगवान् महावीर द्वारा निर्देशित आचार धर्म का पूर्ण पालन था। आपके सद्प्रयास का परिणाम यह हुआ कि श्रमण सस्कृति की रक्षा का कार्य तो सम्पन्न हुआ ही, एक नये शुद्धाचारी सगठन का जन्म भी हुआ। अपनी अस्वस्थता के कारण वि स 2017 मे सघ का उत्तरदायित्व आपने अपने सुयोग्य शिष्य नानालालजी म सा को सौंप दिया। ये ही हैं वे परम प्रतापी अष्टमाचार्य श्री नानालालजी म सा अथवा आचार्य श्री नानेश जिन्होंने हुक्म सघ को अपने आचार्यत्व काल म गौरव के उच्चतर शिखर पर पहुँचाया।

अष्टमाचार्य श्री नानेश की गौरवशाली भूमिका

आचार्य श्री नानेश के पूर्ववर्ती सातो आचार्यो की श्रमण परम्परा के प्रदेय पर विचार के उपरान्त ध्यान स्वत ही उन उपलब्धियो की ओर चला जाता है जा अष्टमाचार्य श्री नानेश ने श्रमण परम्परा, धर्मसघ, चतुर्विध-सघ एव विस्तृत मानवता के लिये अर्जित कीं। आचार्य नानेश अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के कार्य को आगे बढाते, इसके लिये यह आवश्यक था कि अपने निर्माण के लिये उस आधार का उपयोग करते जो उनसे पूर्ववर्ती सप्ताचार्यो ने अपने तप-त्याग से तैयार किया था। अपने ज्ञान, अपनी प्रज्ञा तथा अपनी प्रतिभा के बल पर उन्होने ऐसा ही किया। उन्हाने स्वय तो कठोर साधना की ही, अपनी साधना में अपने पूर्ववर्ती सप्ताचार्यो के चिन्तन, दर्शन, कार्यप्रणाली एव साधना का भी सहज समन्वय कर लिया और उस परम्परा को पुष्ट कर उसे विकास की नवीन ऊँचाइयो तक पहुँचाने का प्रयास किया जिसकी देशना भगवान् महावीर ने दी थी। इस प्रकार अपने आचार्य हुक्मीचन्दजी म सा की श्रमण सघ की उत्क्राति, श्रमण परम्परा की शुद्धता की रक्षा शिथिलाचार के विरुद्ध सघर्ष, कठोर सयम-साधना, शास्त्रा का गमीर ज्ञान और समता भाव के आदर्शो का, आचार्य श्री शिवलालजी म सा की कठोर सयमचर्या एव शास्त्रों के गभीर ज्ञान का, आचार्य श्री उदयसागरजी म सा की विलक्षण प्रतिभा, शील, त्याग, विनम्रता, क्षमाशीलता और शुद्धाचार की दृष्टि का, आचार्य श्री चौथमलजी म सा की क्रियावतता का, आचार्य श्री

श्रीलालजी म सा के जीवदया, सस्कार-निर्माण, पतितोद्धार एव कुव्यसनों के त्याग का, आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा की वैचारिक क्रान्ति, आगम-सम्मत सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा, राष्ट्रवादी चितन, नारी जागरण के विचारो का, तथा आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के सामाजिक-सास्कृतिक पुनरुत्थान, दलितोद्धार की भावना, मानवतावादी चितन, सघीय एकता एव शात क्रान्ति के विचारो का समन्वय आचार्य श्री नानेश ने अपने चितन के साथ किया। इस दृष्टि से सघीय एकता के आपके प्रयास, शुद्धाचार की रक्षा, कठोर अनुशासन, धर्मपाल आन्दोलन, सस्कार क्रान्ति के प्रयास, कुव्यसनो के त्याग का आह्वान, राष्ट्रीय, सामाजिक एव वैयक्तिक समस्याओ के समाधान हेतु मार्गदर्शन, समता दर्शन का प्रतिपादन, समीक्षण ध्यान-साधना की विधियो का निरूपण, आगमीय ज्ञान एव चिन्तन को आचरणीय बनाने के प्रयास, कतिपय ऐसे कार्य हैं जो विशेष महत्त्व रखते हैं। इस प्रकार उन्होंने अपने आचार्यत्व काल मे उस धार्मिक-आध्यात्मिक-सामाजिक क्रान्ति का नये क्षितिजो तक विस्तार किया जिसका प्रारभ आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा ने किया था,जिसे बीच के छहो आचार्यो ने पोषित किया था, जिसके आदर्श आगमों ने स्थापित किये थे और शुद्ध श्रमणाचार जिसका मूल था।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर बीसवीं शताब्दी के अत तक अर्थात् लगभग डेढ शताब्दी के परिवर्तनो और विकास के परिणामों को ही आपने नहीं समेटा, इस कालावधि की विकासमान चेतना के प्रवाह एव वेग की अनुभूति भी की। यह पूरी डेढ शताब्दी का समय विश्व मे, विशेष रूप से भारतवर्ष मे, अत्यत उथल-पुथल का समय था और इसी ने उस सम्पूर्ण भौतिक-उपभोक्तावादी क्रान्ति का साक्षात्कार किया था जिसकी परिणति परमाणु युग, अतरिक्ष युग और कम्प्यूटर युग में हुई थी। अपने पूर्ववर्ती आचार्यो के चिन्तन को उन्होंने अपने ज्ञान के आलोक में पुनर्नियोजित कर ऐसे युगानुरूप चिन्तन का स्वरूप प्रस्तुत किया जो युग-व्यवहार, युग-चिन्तन एव युग-निर्माण कार्य का आधार बन सकता था। भूतकाल के अनुभवो को वर्तमान काल की परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य में देखकर जो भविष्य की जीवनचर्या का मार्ग प्रदर्शित कर सकता है, वही सत *'युगाचार्य'* के उस सबोधन का अधिकारी बन सकता है जिसके अधिकारी आचार्य नानेश बने। उनके अन्य सबोधन भले ही वे अखण्ड ब्रह्मचारी, समता विभूति, समीक्षण-ध्यान योगी, धर्मपाल प्रतिबोधक आदि हो, उन सभी की सार्थकता और महिमा उनके युगद्रष्टा होने मे है क्योकि युगद्रष्टा ही उन गुणो को अर्जित कर पाता है जो उसे अन्य सबोधनों का अधिकारी बनाते हैं। युगद्रष्टा बन कर ही वह आत्मा की उस जय-यात्रा का मार्ग प्रशस्त कर सकता है जो मानव जीवन का इष्ट है। युगदृष्टि का अभाव अन्य सभी अलौकिक गुणों को मात्र विद्युत् कौध बना कर छोड देता है। मानवता को चाहिए अखण्ड प्रकाश, उज्ज्वल प्रकाश, पूर्ण प्रकाश, सतत प्रकाश, वह अकप प्रकाश जो न केवल अधकार से प्रकाश की ओर ले जाता है वरन् अज्ञान से ज्ञान की ओर, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमृत्यु की ओर भी ले जाता है। ऐसा प्रकाश न केवल आँखों का सहारा बनता है वरन् आत्मा की ज्योति भी बनता है और इस प्रकार जीव के उद्धार का मार्ग प्रकाशित करता है। ऐसा प्रकाश आचार्य श्री नानेश विकीर्ण कर सके यह उनका इस ससार को प्रमुख प्रदेय तो है ही, इस प्रदेय की यह एक और दिशा भी है कि उस प्रकाश का स्रोत एक ऐसे समर्थ उत्तराधिकारी को सौप सके जो उसे विस्तीर्णतर कर जीवन, जगत् और आत्मा के उन कोनों में भी पहुँचा सकेगा जिनकी दिशा वे सुनिश्चित कर गये हैं। आचार्य श्री रामलालजी म सा के रूप मे उन्होने दिव्य साधना का स्रोत ससार को समर्पित कर दिया है। दीप की सार्थकता इसी मे है कि वह प्रकाश को अक्षुण्ण रखे और इसलिए अपने अवसान से पूर्व अपनी लौ से दूसरा दीप प्रज्वलित कर जाए। इस प्रकार दीप से दीप जलते जाये और सर्व अधकार तथा सर्व अज्ञान को समाप्त कर दे। हुक्म सघ के आचार्य ऐसे ही पावन प्रकाश का स्रोत बने। इस प्रकार आगमो के पथ को तो उन्होने आलोकित किया ही, आचार्यो की परम्परा को भी गौरवान्वित किया। ◆

डॉ आदर्श सक्सेना

ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया

शरीर आत्मा का आच्छादन है और चादर शरीर का। इन दोनो आच्छादनो को निर्मल रखना आवश्यक है क्योकि निर्मल आत्मा ही परमात्मा को प्राप्त कर पाती है। सत कबीर ने आत्मा की निर्मलता की बात को चादर के रूपक मे बाँधकर जीवन की चादर को निर्मल रखने की बात कही है—
'दास कबीर जतन तैं ओढी, ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया।'

कबीर एक जुलाह थे। चादर बुनने और उसक सुरक्षित रख-रखाव की बात व खूब समझत थ तभी तो चादर की रक्षा की बात व आधिकारिक रूप से कह सके थे। पर वह चादर ता शरीर का आच्छादन थी। आत्मा के आच्छादन शरीर को भी ता कोई बुनता है। कबीर ने उस बड जुलाहे (भगवान) का पहचान कर उसक श्रम की महिमा भली प्रकार आँकी थी—

इला पिगला ताना भरनी,
सुषमन तार स बीनी चदरिया,
आठ कमल दल चरखा डोलै,
पॉच तत्त्व गुन तीनी चदरिया,
साँई का सियत मास दस लाग,
ठोंक-ठाक के बीनी चदरिया।

कबीर न भी जीवन की चादर को ठाक-ठाक कर बुना था और उसकी निर्मलता की पूरी चिन्ता की थी। ईश्वर द्वारा बुनी गई चादर की निर्मलता की चिन्ता कितन लोग करत है ? कबीर न ता की थी तभी तो व गर्वपूर्वक कह सके थे—**'दास कबीर जतन त ओढी, ज्यो की त्यो धर दीनी चदरिया'**।
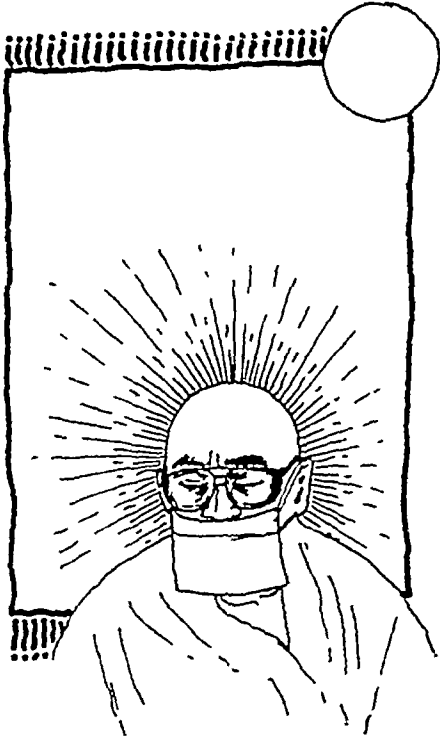
चादर के इस रूपक से ही जुड़ती है उस चादर की बात जो धर्म सघ के नायक को सघ का आचार्य होने के प्रतीक के रूप मे ओढ़ाई जाती है। एक चादर को सीने मे साँईं को 'मास दस' लगते हैं, दूसरी चादर जुलाहा दस दिन मे ही बुन लेता है, परन्तु आचार्यत्व की चादर का पात्र बनने मे सयमपूर्ण साधना के बीसियो वर्ष लग जाते हैं (आचार्य श्री नानालालजी म सा को तो पूरे 42 वर्ष लग गये थे), फिर उस चादर को ओढने वाले का उसे निर्मल रखने का दायित्व भी तीन गुना बढ जाता है, अर्थात् वह साँईं की बुनी चादर को निर्मल रखे, जुलाहे की बुनी चादर को निर्मल रखे और सबसे बढ़कर, आचार्यत्व की चादर पर बिना कोई दाग लगाये अपने उत्तराधिकारी के लिये 'ज्यों की त्यों धर' जाये। इस त्रिस्तरीय निर्मलता की प्राणपण से रक्षा करने वाले जो गिने-चुने समर्थ आचार्य हुए है उनमे आचार्य श्री नानालालजी म सा का स्थान अद्वितीय है। उन्होने उस पाट परम्परा की, जो भगवान महावीर के उपरान्त अविच्छिन्न रूप से चली आई थी, पूर्ण समर्पित भाव से रक्षा की।

धर्मशास्त्र का इतिहास बताता है कि आगमिक पाट परम्परा पर जब सकट के बादल घिर आये थे तब महान् धर्म सुधारक लोकाशाह ने शुद्ध साध्वाचार की परम्परा अक्षुण्ण रखने हेतु भागीरथ प्रयास किये थे। उनके उपदेशो से प्रभावित होकर जो 45 श्रावक दीक्षित हुए उन्होने अपने गच्छ का नाम भी लोकाशाह गच्छ रख लिया था। इस गच्छ के 12वें पट्टधर आचार्य श्री लालचदजी महाराज साहब के शासन तक आते-आते शिथिलाचार की स्थितियाँ जब पुन प्रकट होने लगीं तब उन्हीं के एक तजस्वी शिष्य श्री हुक्मीचदजी म सा ने सयमीय अक्षुण्णता की सुनिश्चिति हेतु आत्मशुद्धि के साथ सम्यक् ज्ञानयुक्त क्रियाओ के निर्वाह का विशिष्ट आदर्श जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया। भले ही उन्होने अलग सघ बनाने

आचार्यत्व की चादर का पात्र बनने में सयमपूर्ण साधना के बीसियों वर्ष लग जाते हैं। फिर उस चादर को ओढने वाले का दायित्व भी तीन गुना बढ़ जाता है, अर्थात् वह साँईं की बुनी चादर को निर्मल रखे, जुलाहे की बुनी चादर को निर्मल रखे और सबसे बढ़कर आचार्यत्व की चादर पर बिना कोई दाग लगाये अपने उत्तराधिकारी के लिए 'ज्यों की त्यों' धर जाये। इस त्रिस्तरीय निर्मलता की प्राण-पण से रक्षा करने वाले जो गिने-चुने समर्थ आचार्य हुए हैं उनमें आचार्य श्री नानालालजी का स्थान अद्वितीय है।

का प्रयास न किया हो तथापि उनकी तपश्चर्या के प्रभावस्वरूप एक ऐसा चतुर्विध सघ स्वत ही उनके आस-पास तैयार हो गया जिसने उन्हें आचार्य पद पर आसीन कर दिया। इस प्रकार स्थापित हुक्मीगच्छ के प्रतापी गच्छपति आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा, क्रम मे, भगवान महावीर के पाट पर विराजने वाले 74वे पट्टधर थे।

यह आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा की विलक्षण सघ-सचालन क्षमता एव उत्कट अनुशासनप्रियता का ही परिणाम था कि उनके पाट पर आचार्य पद की चादर ओढ़ कर विराजने वाले सभी आचार्य निर्मल चरित्र के धनी, कठोर सयम साधना के व्रती तथा श्रमणाचार का पूर्ण निष्ठा एव समर्पण भाव से पालन करने वाले ऐसे सघ-प्रमुख बने जिन्होने आचार्य परम्परा के गौरव को उच्चतम शिखर तक पहुँचाया। सत कबीर ने जहाँ शिथिलाचारियो पर टिप्पणी करते हुए लिखा है—'नैहर मे दाग लगाय आई चुनरी', वहीं शुद्ध सयमित जीवन व्यतीत करने वालो पर सतगुरु की कृपा से सुदर रग चढ़ जाने की बात भी लिखी है—

सतगुर हैं रगरेज, चुनर मोरी रग डारी।
स्याही रग छुड़ाय के रे, दियो मजीठा रग,
धोये से छूटे नहि रे, दिन-दिन होत सुरग।।

चुनरी के गुरु द्वारा रग दिये जाने की बात हो चाहे चादर को बिना मैली किये ओढ़ कर रख दिये जाने की बात हो, उपयोगकर्ता में निर्मल विवेक का होना आवश्यक है क्योकि अविवेकी, दभी और शिथिलाचारी साधु तो इन पर दाग ही लगाता है। हुक्मी सघ के पाट पर विराजने वाले प्रत्येक आचार्य ने आचार्यत्व की चादर को जतनपूर्वक ओढ़ कर, बिना मैली किये, आठवे पट्टधर आचार्य श्री नानालालजी म सा के लिये छोड़ा था। इन

आठवे पट्टधर आचार्य ने अपनी ज्ञान गरिमा, निर्मल साध्वाचार तथा उत्कृष्ट अनुशासनप्रियता से उसकी निर्मलता की यत्नपूर्वक रक्षा ही नहीं की, विवेकपूर्ण उपयोग से उसके गौरव को बढाया भी।

सघ का इतिहास साक्षी है कि पॉचवें पट्टधर आचार्य श्री श्रीलालजी म सा ने अपने समय में भविष्यवाणी भी कर दी थी कि सघ के अष्टम पट्टधर इतने पुण्यशाली होंगे कि उनके आचार्यत्वकाल मे धर्म की महती प्रभावना होगी एव यह पाट परम्परा अत्यत दीपेगी। अष्टम आचार्य श्री नानालालजी म सा का आचार्यत्वकाल इस भविष्यवाणी के अनुसार ही परम गौरवशाली रहा। उन्नीस वर्ष की अल्पवय में सन्यास ग्रहण कर तथा तेईस वर्षो तक गुरु की उत्कृष्ट सेवा-साधना कर आचार्यपद पाने वाले आचार्य श्री नानेश बहुमुखी प्रतिभा के घनी थे। आपने जैन आगम ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन तो किया ही था, वेद, पुराण, गीता, कुरान आदि का भी गभीर ज्ञान प्राप्त किया था। नैसर्गिक रूप से अद्भुत प्रतिभा से सम्पन्न, शात, धीर, गभीर यह अनुपम अध्यात्म योगी लाकैषणा से सदैव दूर रहा। उनके नाम के साथ जुड़ने वाले विशेषण उनके कृतज्ञ अनुयायियो द्वारा उन्हें प्रदान की गई उपयुक्त उपाधियाँ ही हैं। इस प्रकार प्रात स्मरणीय, चरित्रचूडामणि, बालब्रह्मचारी, समताविभूति, धर्मपाल प्रतिबोधक, जिनशासन प्रद्योतक, विद्वद्‌शिरोमणि, समीक्षण ध्यानयोगी, समता-दर्शन-प्रणेता, युग-द्रष्टा, राष्ट्रसत जेसे सबोधन उनके व्यक्तित्व एव कृतित्व का ही परिचय कराते है।

सासारिक कार्यो की पूर्ति एव सघ दायित्वा तथा धर्म-प्रभावना के उत्तरदायित्व के निर्वाह के दौरान ऐसे अवसर आने की सभावनाऍं लगातार बनी रहती हैं जिनमे कोई कर्तव्यनिष्ठ योगी भी अपने आदर्शो से च्युत हाकर कुछ ऐसा कर सकता है जो साधुचर्या की निर्मल चादर पर दाग लगा दे, परन्तु आचार्य नानश त्याग-तपस्या के उस शिखर तक पहुँच गये थे जिसकी ऊँचाई तक सासारिकता क सघर्ष से उठने वाली धूल का कण तक नहीं पहुंच सकता था। वे तो व्यक्ति न रह कर विश्व के लिये आत्मवत हो गय थे। जीवमात्र के प्रति दया तथा सम्पूर्ण ससार म शान्ति की कामना ने ही उन्हे समता-दर्शन का प्रवर्तन करने के लिये प्रेरित किया था। इस समता दर्शन के प्रथम चरण, समता सिद्धान्त दर्शन, को ही अपना लिया जाय तो भी ससार के सार सघर्ष समाप्त हो जाये, हिसा, अशाति, युद्ध एव शोषण की स्थितियों पर नियत्रण प्राप्त हो जाये और जीव मात्र प्रकृति की असीम करुणा की छाया मे शातिपूर्ण जीवन व्यतीत करन का अवसर पा जाए। उनके द्वारा प्रारभ किया गया धर्मपाल अभियान तथा सस्कार क्रान्ति का उनका आह्वान इसी दिशा मे किये गये दो अन्य प्रयास है, जो गभीर सभावनाओ से युक्त है। स्वय हजारो किलोमीटर की यात्राऍं कर तथा अपने शिष्यो को देश के सुदूर क्षेत्रो में भेजकर उन्होने उस जनकल्याणकारी चिन्तन के प्रचार का ही प्रयास किया जा 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' के आदर्श की प्राप्ति मे सहायक हो सकता है। आपके उपदेशा से प्रभावित हाकर ही आपके भक्तो ने जनकल्याण हेतु अस्पताल, स्कूल, छात्रावास, सेवा-सस्थान आदि स्थापित किये तथा सहायता की ऐसी अनेक योजनाऍं प्रारभ कीं जिनसे सामान्य जन लाभान्वित हो सके। अपने उदात्त चिन्तन, पवित्र आचरण तथा प्रभावी नेतृत्व के कारण ही वे वर्ग, धर्म, सम्प्रदाय आदि की सीमाओ से ऊपर उठकर सभी वर्गो, समाजों एव सम्प्रदाया के लिये समान रूप से आदरणीय बन गये। चरित्र की चादर को इस प्रकार निर्मल रखन की उन्होंने जीवनभर चिन्ता की।

अपने ज्ञान से लोगों को लाभान्वित करने तथा उनका मार्गदर्शन करने के उद्देश्य से उन्हाने विपुल साहित्य की रचना भी की। वे जानते थे कि निर्मल चरित्र की रक्षा के लिये चित्तवृत्तियों पर नियत्रण रखना परमावश्यक होता है। क्राध, लोभ, मोह, अहकार, मान, माया आदि मानसिक ग्रथियों से वे पूर्णत मुक्त हो चुके थे और जानते थे कि इनका विमोचन कैसे किया जाय। लोगो के मार्गदर्शन हेतु ही उन्होने 'क्रोध-समीक्षण', 'मान-सगीक्षण', 'लोभ-समीक्षण' जैसे ग्रथो के साथ 'आत्म-समीक्षण' नामक विशिष्ट ग्रथ की रचना भी की। गभीर धार्मिक, आध्यात्मिक एव दार्शनिक साहित्य के साथ उन्होन नीतिकथाओ बोधकथाओ तथा ज्ञानवर्द्धक-प्रेरक कथा-कहानियो की भी रचना की जिनसे सभी वर्गो एव स्तरों क आबाल वृद्ध नर-नारी लाभान्वित हो सकते हैं। उनका सम्पूर्ण साहित्य

लोगों को उनके अपने जीवन की चादर को निर्मल रखने की प्रेरणा देने की दृष्टि से अत्यत उपयोगी है।

अपने जीवन की चादर के समान ही आचार्यत्व की चादर को भी निर्मल बनाये रखने की उन्हे कितनी चिन्ता थी, इसका प्रमाण वह प्रवचन है जो चादर प्राप्त कर लेने के उपरान्त उन्होने दिया था। विशाल जन-समुदाय को सबोधित करते हुए उन्होने कहा था—

> 'चादर की परम्परा निर्ग्रन्थ सस्कृति का द्योतन करने की दृष्टि से नवीन नहीं है बल्कि यह तो विशिष्ट ज्ञानियों एव पूर्वाचार्यों द्वारा चतुर्विध सघ के सामने चिरकाल से चली आ रही है चादर के विषय में पूज्य आचार्यश्री जी ने मुझे फरमाया है कि यह चादर सुधर्मा स्वामी आदि आचार्यों से चली आ रही है यह चादर श्वेत एव उज्ज्वल है, निष्कलक है, पवित्र है इसके समान अपने जीवन में स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता एव उज्ज्वलता आदि रखने का जो सदेश चादर के रूप में पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, उसको मैं आप तक पहुँचा रहा हूँ।'

इस चादर की निर्मलता के प्रतीक को स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा था—

> 'इस चादर का रग सफेद है जो सात्विक गुण और शाति का प्रतीक है प्रत्येक भाई मे शाति, प्रेम एव सात्विक गुणों का सचार हो। यह चादर शुभ भावना का प्रतीक भी है।'

चादर की निर्मलता के समान ही उन्होंने जीवन की उस चादर की निर्मलता के लिये भी आचार्यश्री का उपकार स्वीकार किया जिन्होने वह चादर ठोक-ठोक कर बुनी थी। उन्होने कहा था—

> 'आचार्य देव के चरणो मे आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्यविहीन था इन महापुरुष ने मेरे पर जो उपकार किया है, उससे मैं जन्म-जन्मान्तर तक भी उऋण नहीं हो सकूँगा।'

यह थी उस महान् आत्मा की विनम्रता जिसने उन्हे कृतज्ञ एव कर्मनिष्ठ ही नहीं बनाया था बल्कि जीवन की पवित्रता की प्राणपण से रक्षा करने की दिशा मे सन्नद्ध भी किया था। अपने जीवन की इस पवित्रता का जन-सामान्य मे सचार करने तथा उसे प्रेरित करने के लिये उन्होंने जीवनभर अथक श्रम किया। झोंपड़ियों से महलों तक, ग्रामों से महानगर तक तथा देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण किया और समता का सदेश नि स्पृह भाव से, दीनदलितों से लेकर उच्चवर्ग तक के आबाल-वृद्ध नर-नारियो को समान रूप से दिया। अपने जीवन को ज्ञान और साधना के जिस प्रखर आलोक से उन्होंने देदीप्यमान किया था उसी का प्रकाश वे जीवनभर विकीर्ण करते रहे और जब महाप्रयाण का समय आया तब उन्होने उस पुँजीभूत प्रकाश को परम प्रकाश में विलीन कर देने के लिये निस्सग भाव से त्याग दिया। उपस्थित लोगों ने आत्मज्योति के परमज्योति में विलीन होने के इस अलौकिक दृश्य को साक्षात् देखा। यह चमत्कार नहीं था, यह परिणति थी उस त्याग और तप की जिसकी उन्होने जीवनभर रक्षा की थी। ये ही वे जतन भी थे जो उन्होंने चादर को ज्यो की त्यों रख देने के लिए किए थे। कबीर की यह अटपट वाणी तभी तो उन पर फलीभूत होती है—

> जो चादर सुर, नर, मुनि, ओढ़ी,
> ओढ के मैली कीनी चदरिया,
> दास कबीर/नाना गुरु/जतन सौं ओढ़ी
> ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।

◆

इन्दरचन्द बैद

अंतर्मुखी विचारपुरुष आचार्य श्री नानेश
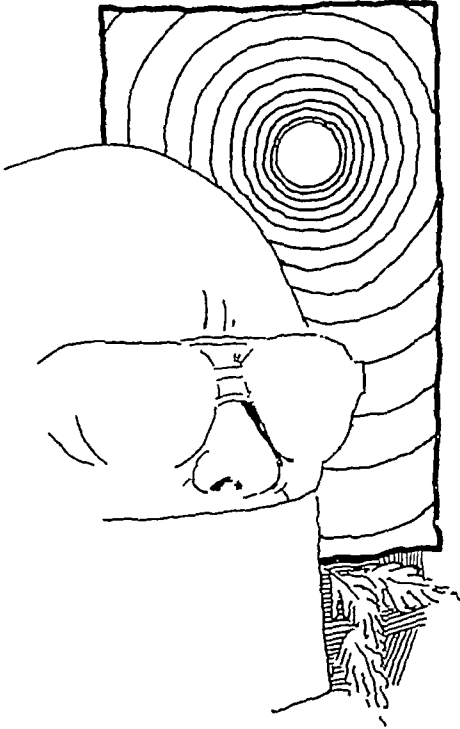
यह शाश्वत सत्य है कि जीवन का अत मृत्यु नहीं है। यह भी सत्य है कि जो जन्म लेता है वह मरता भी है। जन्म और मृत्यु शरीर के दो पहलू हैं, जीवन के नहीं। शरीर स्थूल है और स्थूल ता नष्ट होता ही है, जो शाश्वत है, नित्य है, सनातन है और नष्ट नहीं होता, वह है—विचार।

जीवन विचार है इसलिये अमर रहता है। विचार समय-सापेक्ष नहीं होता न शरीर म आबद्ध ही होता है। विचार को देश और काल की किसी सीमा मे कैद भी नहीं किया जा सकता क्योकि वह सार्वदेशिक और सार्वकालिक होता हे और इसीलिये युगो-युगों तक जीवित रहता है।

इस धराधाम पर ऐसे विशिष्ट जीवन भी अवतरित होते है जो अपने विचार-वैभव से मानव को सम्पन्न कर अनोखी वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात कर जाते हैं। ऐसे नरपुगव असीम शक्तिसम्पन्न मानव, मन का नवीन सस्कार कर उसकी वृत्ति को सार्थक सक्रियता की ओर माड देते हैं और इस प्रकार अपने अवदान से सम्पूर्ण मानव समाज को ही उपकृत नहीं कर जाते, विचारो का सौरभ युगों-युगो तक विकीर्ण होने के लिये भी छोड़ जाते है। यही कारण है कि ऐसे महापुरुषों की पदचापो की अनुगूँज युगो-युगा तक सुनाई देती रहती है और भावी पीढियो का मार्गदर्शन करती रहती है। ऐसे ही महापुरुषो की पावन परम्परा मे आचार्य श्री नानेश का नाम उनके अमूल्य आध्यात्मिक प्रदेय के कारण 20वीं शताब्दी के शिखर पुरुषो म स्वत ही जुड़ जाता है।

हमें ज्ञात है कि यह विगत होती हुई बीसवीं शताब्दी ससार के इतिहास मे सर्वाधिक उथल-पुथल की शताब्दी रही थी। भारत मे भी इस उथल-पुथल की प्रतिध्वनि सुनाई दी थी। राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रो की भाँति दर्शन और अध्यात्म का क्षेत्र भी इसकी अनुगूँज से अछूता नहीं रहा था। शताब्दी के उदय के समय ही महान् क्रियोद्धारक आचार्य श्री हुक्मीचद जी म सा ने

सयम-साधना के जिस दिव्य पथ का प्रदर्शन किया था और जिसे ज्योतिर्धर युगपुरुष आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने क्रिया की जिस अनोखी दीप्ति से आलोकित किया था उसी पर शान्त क्रान्ति के पुरोधा आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा ने आध्यात्मिक क्रान्ति के नवीन आदर्श की प्रतिष्ठा की थी। इन्हीं श्री गणेशीलालजी म सा के सुयोग्य शिष्य थे जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, बाल ब्रह्मचारी, चरित्र-चूड़ामणि आचार्य श्री नानालालजी म सा जिन्होने शान्त क्रान्ति को समता-साधना की नयी दिशा प्रदान की। उदधि के समान जिसका हृदय गभीर हो उस पर गगन मण्डल की आलोड़ित-विलोडित करनेवाली झझाओं का कोई प्रभाव नहीं पडता। शाति, सहनशीलता, त्याग और तपस्या की इस अनुपम विभूति की सरलता पर स्वय आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा मुग्ध थे और उन्होंने इनमे छिपी भावी शासननायक की छवि का साक्षात्कार कर लिया था इसीलिये जब-जब यह पूछा जाता कि 'आपके पीछे सघ नैया का खेवनहार कौन होगा', तब-तब अपने शिष्य की योग्यता से आश्वस्त गुरुदेव गभीर वाणी में कहा करते—'देखा करो, ऐसी हस्ती छोड़ कर जाऊँगा कि आप चद श्रावक ही नहीं, सारी दुनिया देखा करेगी।'

और दुनिया ने आचार्य श्री नानालालजी म सा के रूप में एक ऐसे प्रतापी सघनायक के दर्शन किये जो अपने से पूर्व के सातों आचार्यो की प्रतिभा, क्रियाशीलता, सयम-साधना और आध्यात्मिक गरिमा को अपने में समन्वित किये हुए थे। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, अनुपम आभायुक्त मुखमण्डल, मर्मभेदिनी दृष्टि, गुरु-गभीर वाणी और निष्कलक चरित्र। तड़क-भड़क और प्रचार-प्रसार से दूर, आध्यात्मिक साधना मे लीन रहने वाला यह ऐसा व्यक्तित्व था जिसकी गति का प्रवाह अतर की ओर था। अत यह स्वाभाविक ही था कि यह अन्तर्मुखी विचारपुरुष, बाह्य से अतर की ओर की यात्रा का मार्ग प्रशस्त करता, बाहर के आलोडन-विलोड़न से असपृक्त रह कर अतर्मन की गहराइयों मे पैठने का मार्ग दिखाता और इस प्रकार बाह्य क्लेषो, पीड़ाओ, अभावो, आकर्षणों और मोह से मुक्ति की दिशा मे गतिमान करता। समीक्षण ध्यान साधना, आत्मसमीक्षण और समता समाज की स्थापना का आह्वान, छुआ-छूत, ऊँच-नीच आदि के विचारो से मुक्ति, कुव्यसनो के त्याग से युक्त आध्यात्मिक जीवन की ललक पैदा करने वाले इस अनुपम योगी ने सस्कार क्रान्ति हेतु स्वय को समर्पित कर दिया था। बीसवीं शताब्दी के विकट काल के वे एक ऐसे शलाका पुरुष थे जिन्होंने घोर निराशा के दौर मे भी अपने विचारों से नये विश्वासों को जन्म दिया। उनकी कथनी और करनी में तो असाधारण सामजस्य था ही, सात्विक जीवनचर्या, आध्यात्मिक प्रकृति और प्रबल आत्मबल ने उनके व्यक्तित्व को ऐसा अनुपम तेज प्रदान किया था कि उनके आभावलय में पहुँचने वाला कोई भी व्यक्ति उनके तप तेज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। यह उनकी मर्मभेदिनी दृष्टि का ही परिणाम था कि श्रावक अपने हृदय में उठती जिज्ञासाओं का समाधान उनके प्रवचनो मे ही पा लेते थे। हम चाहे तो इसे विलक्षण योगदृष्टि कह लें परन्तु यह उन्हे स्वत सिद्ध थी।

> इस धराधाम पर ऐसे विशिष्ट जीवन भी अवतरित होते है जो अपने विचार-वैभव से मानव को सम्पन्न कर अनोखी वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात कर जाते हैं। ऐसे नर पुगव असीम शक्तिसम्पन्न मानव, मन का नवीन संस्कार कर उसकी वृत्ति को सार्थक सक्रियता की ओर मोड़ देते है और इस प्रकार अपने अवदान से सम्पूर्ण मानव समाज को ही उपकृत नहीं कर जाते, विचारों का सौरभ युगों-युगों तक विकीर्ण होने के लिये छोड़ भी जाते हैं। ऐसे महापुरुषों की पावन परम्परा में आचार्य श्री नानेश का नाम स्वत ही जुड़ जाता है।

आचार्य को दीपक की उपमा से उपमित किया जाता है। दीपक स्वय जलकर सैकड़ों दीपको को प्रज्वलित कर देता है। आचार्य श्री नानेश ऐसे ही प्रज्वलित दीपक थे। आपके आचार्यपद पर प्रतिष्ठित होने के बाद सघ अभिवृद्धि

की ओर निरतर गतिमान रहा। आपके आचार्यत्व काल मे 300 मुमुक्षु आत्माओ ने सयमी जीवन अगीकार किया। लोकाशाह के बाद स्थानकवासी समाज में एक आचार्य के सान्निध्य मे एक साथ जो 25 दीक्षाएँ सम्पन्न हुई वह स्वय मे एक कीर्तिमान है।

शैक्षणिक विकास की ओर आपका ध्यान विशेष रूप से केन्द्रित रहा। जो साधु-साध्वी परिष्कृत हिन्दी मे अपने भावो को अभिव्यक्त भी नहीं कर पाते थे उन्होंने भी आपश्री की प्रेरणा एव मार्गदर्शन से हिन्दी मे ही नहीं, सस्कृत, प्राकृत, अग्रेजी, मराठी, गुजराती आदि भाषाओं में धाराप्रवाह भाषण की क्षमता प्राप्त कर ली। कवि, लेखक, चिन्तक आदि विभिन्न रूपों मे आपने अपने शिष्य समुदाय को तैयार किया। यह आपके ही अथक प्रयासो का परिणाम था कि आपका विशाल शिष्य समुदाय ज्ञान की हर दिशा मे गतिमान हुआ। परन्तु यह आपके कर्तृत्व की सीमा नहीं थी। भक्तकवि गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है—'तुलसी सत सुअब तरु, फूलहि फलहि पर हेतु', अर्थात् सत जन और आम्र वृक्ष परहित के लिये ही सम्पन्न होते है। परन्तु आज सुख, सत्ता, सम्पत्ति, यश और कीर्ति की अधीदौड़ ने मनुष्य को आत्मकेन्द्रित कर दिया है परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन से सुख शाति, सतोष और आनन्द की स्थितियाँ समाप्त हो गई है। इस विषम स्थिति से मुक्ति पाने के लिये आपश्री ने 'समतादर्शन और व्यवहार', 'ऐसे जीयें', 'पर्दे के उस पार', 'समीक्षण धारा', 'समीक्षण ध्यान मनोविज्ञान', 'गुण स्थान स्वरूप और विश्लेषण' जैसे ग्रथों का सर्जन कर लोगो का सम्यक् मार्गदर्शन किया। यही नहीं, मानव-मन को प्रभावित करने वाली क्रोध, लोभ, मोह, माया, अहकार जैसी मनोग्रथियों के विमोचन हेतु क्रोध समीक्षण, मान समीक्षण, माया समीक्षण, लोभ समीक्षण जैसी पुस्तकों की आपने रचना की। उनके ये साहित्यिक प्रयास इस बात के प्रमाण है कि उन्हे मानव-मनोविज्ञान का तलस्पर्शी ज्ञान था और साहित्य के माध्यम से वे मनोविकारो की चिकित्सा मे पूर्ण सक्षम थे।

अपनी साधना से जैनधर्म को जनधर्म बना कर उन्होने सम्प्रदाय-सम्प्रदाय और मानव-मानव के बीच की दूरी को पाटने का सार्थक प्रयास तो किया ही, समाज मे नैतिक मूल्यो की स्थापना तथा समाज के कल्याण के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। मालवा मे आपने उन दीन-दरिद्र जातियों का उद्धार किया जो कुव्यसनो और कुसस्कारो से ग्रस्त थीं। उन्हें बलाई से धर्मपाल बना कर उनके अधकारपूर्ण जीवन मे अध्यात्म का प्रकाशदीप जला कर उन्हें सहज सुसस्कृत जीवन जीने की कला का ज्ञान कराया। सामाजिक कुरीतियो के मूलोच्छेदन के लिये भी आपने अथक प्रयास किये। बालविवाह, मृत्युभोज, विधवाओ के प्रति तिरस्कार की भावना आदि को समाप्त करने के लिये आपने प्रेरणा दी और इस प्रकार एक अभिनव सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

वे एक ऐसे आचार्य थे जिन्होने परलोक एव इहलोक के प्रति सम्यक् दृष्टि विकसित कर ली थी। उनके अन्तर्मुखी व्यक्तित्व की यह चरम उपलब्धि थी। अपने स्वय के जीवन को उन्होने इसी वृत्ति से सचालित किया था। दीक्षा लेने के समय से लेकर आचार्य पद की प्राप्ति तक उनके आत्ममूलक चिन्तन की जो विविध दिशाएँ उनकी साधना ने ग्रहण कीं, उनकी दिव्य परिणति उनके निर्वाण के समय की स्थितियों के रूप मे हुई जिसके साक्षात् प्रमाण उस समय वहाँ उपस्थित लोगो ने स्वय अपनी आँखो से देखे। यह स्थिति थी सलेखना सथारे की अवस्था जिसके साथ सयुक्त रही अतिम समय तक जाग्रत उनकी चेतना और अतिम क्षणों का वह चमत्कार जिसमे उनकी आत्मज्योति परमज्योति के साथ एकाकार हुई। यह ऐसी लगभग अलभ्य स्थिति थी जैसी बिरले ही सिद्ध सतो के जीवन में आती है। यह निश्चित रूप से उनकी स्वय की उत्कट साधना की सिद्धि थी जिसकी जड़े उस साधना पद्धति में पैठी हुई थीं जिसे व्यापक विश्व समुदाय आत्मसमीक्षण के नाम से जानता है। इस रूप मे आचार्य श्री नानेश ने चेतना के परिवर्तन के विज्ञान, ध्यान-साधना की अनेक विधाएँ एव जीवन मे पवित्रता के लिये सुस्पष्ट नैतिक जीवन पद्धति की अभिनव रूपरेखा भी प्रस्तुत की है। समीक्षण ध्यान के माध्यम से शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और आत्मिक स्तरों पर स्वास्थ्य, शाति, सुख एव सतोष प्राप्त करने के उन्होंने प्रामाणिक प्रयोग किये थे

और उनके अनुसरण द्वारा विश्व को एक नई दिशा मे ले जाने का दिव्य मार्ग दिखाया था। इस ध्यान पद्धति से शरीर, प्राण, मन, चित्त और आत्मा का स्वस्थ विकास तो हाता ही है, प्रज्ञा भी बलवती होती है। इस विद्या के लोकप्रिय रूप को प्रतिष्ठित कर वे जन-जन के मन-मदिर के आराध्य बन गये।

आचार्य श्री ने अपनी दिव्य दृष्टि से आधुनिक जीवन मे व्याप्त विषमता को उसकी पूर्ण वीभत्सता मे देखा था। मनुष्य जीवन के अभिशाप, स्वार्थपरता, अत्याचार, हिसा और पापाचार की बढ़ती हुई प्रवृत्तियों को भी उन्होंने पहिचाना था जो विकटतर होती जा रही थीं और सामाजिक जीवन की सुन्दर व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने का कारण बन रही थीं। ऐसी स्थिति में समता के मूल्यों की स्थापना ही समाज की सुरक्षा का शरणस्थल बन सकती है यह समझ कर ही समतादर्शन को व्यापक मानव धर्म के रूप में उन्होंने प्रतिष्ठित ही नहीं किया, जनहितार्थ उसे व्याख्यायित और विश्लेषित भी किया। मानव समाज मे समता सर्वव्यापी हो, इसके लिये उन्होंने समता के स्थूल रूप में व्यवहार से लेकर सूक्ष्म चिन्तन तक के उपायों की विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की। समतादर्शन ने सैकड़ों लोगों को जीवन की विषमतर स्थितियों मे भी, मन और मस्तिष्क के सघर्षो मे सन्तुलन बनाये रखने की क्षमता प्रदान कर उनकी जीवनधारा की दिशा ही मोड़ दी। जब सभी कुछ आत्मवत हो जाता है तब न पीड़ा रहती है, न विषाद, न अशाति रहती है, न तनाव। सम पर आया हुआ ऐसा मन और हृदय इस जीवन और जगत् को जिस रूप मे देखता है उसे मोह की छाया लेशमात्र भी प्रभावित नहीं कर पाती। मेरा स्वय का जीवन ऐसे चमत्कारिक अनुमवो का साक्षी रहा है। इस प्रकार जो परिवर्तन मेरी चिन्तन धारा में आया, वह सिद्धि का कौन-सा रूप था, इसका अनुमान सुधी पाठक स्वय ही कर सकेंगे।

आज से लगभग 6 वर्ष पूर्व देशनोक चातुर्मास के दौरान पूरे पाँच माह आचार्यश्री के अमूल्य सान्निध्य की प्राप्ति का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। इस अवधि में आपके प्रवचन श्रवण करने, आपका जीवनचरित्र पढने और उससे प्रेरित होने का पूर्ण अवसर भी मुझे मिला। यह उस दिव्य सान्निध्य का ही प्रभाव था कि मेरे जीवन एव जीवन के प्रति दृष्टि मे अनेक स्वभावगत परिवर्तन हुए। ये सभी तो व्याख्यायित नहीं किये जा सकते परन्तु इनमें से सर्वाधिक प्रमुख मैं प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस चातुर्मास से दो वर्ष पूर्व मेरे पिताश्री का इन्दौर मे देहावसान हो चुका था। तब मै सूरत मे था। पितृ-वियोग का हृदय-विदारक समाचार प्राप्त होते ही मेरे पाँवों तले से जमीन खिसक गई थी। मैं सुध-बुध खो बैठा था क्योंकि परिवार के सिर से साया ही उठ गया था। मैं मानसिक रूप से बहुत व्यथित था। मेरे पिताजी व्यवसाय से तो निवृत्त हो ही चुके थे, पारिवारिक झझटों से भी मुक्त हो चुके थे। इस कारण उनके अभाव के दारुण अनुभव में किसी प्रकार की लोभवृत्ति का कोई अश नहीं था, था तो केवल मोह अथवा ममता का भाव। अभाव की ऐसी विकट मन स्थिति में इस चातुर्मास के दौरान मैंने समझा—जीवन क्या है, समता क्या है, समीक्षण ध्यान क्या है? मै इस ज्ञान को आचार्यश्री की कृपा से आत्मसात भी कर पाया परिणामस्वरूप मेरे जीवनक्रम एव चिन्तनशैली में आमूलचूल परिवर्तन हो गया। जीवन की परिस्थितियों को बिल्कुल नये ही कोण से देख सकने के मैं योग्य बन गया। अनुभव और अनुभूति की जो नयी भगिमाऐं मेरे चित्त में विकसित हुईं उन्होंने विचारों और भावनाओं को 'सम' के स्तर पर नियत्रित करने की अपूर्व क्षमता मुझे प्रदान कर दी। परन्तु यह अनुभव एकाकी नहीं था, इससे भी विकटतर अनुभव मेरे आत्मज्ञान की परीक्षा की प्रतीक्षा कर रहा था और वह स्थिति इस चातुर्मास के एक वर्ष पश्चात् आ उपस्थित हुई। मेरे 24 वर्षीय ज्येष्ठ पुत्र कैलाश का विवाह 10 दिसम्बर, 1994 को समारोहपूर्वक सम्पन्न हुआ था। विवाह के पाँच दिन पश्चात् ही देशनोक से सूरत जाते समय कार दुर्घटना मे उसका निधन हो गया। उस समय मैं यात्रा मे था। मैं जैसे ही अहमदाबाद पहुँचा मुझे यह हृदयविदारक दु खद समाचार प्राप्त हुआ। मेरे युवा, नवविवाहित, व्यवसाय में सहयोगी, सर्वगुणसम्पन्न पुत्र से सबधित यह समाचार मेरा मनोबल तोड़ देने के लिये पर्याप्त था। परन्तु यह गुरु द्वारा प्राप्त अनोखे

आत्मबल का ही प्रभाव था कि मै जरा भी विचलित नहीं हुआ। इस हादसे से मुझ
न किसी प्रकार की दु खानुभूति हुई और न ही ऑखो से ऑसू टपके। भीषण
दुर्योग क इस समय में मैं स्वय को सयत रख सका तथा किसी भी प्रकार के
विचलन से अपनी भावनाओ और विचारो को मुक्त रख सका, यह निश्चय ही
आचार्य श्री नानेश की कृपा और उनके सान्निध्य से प्राप्त आत्मज्ञान का ही
परिणाम था। यह वृत्ति-परिष्कार था या वृत्ति-सस्कार, मैं नहीं कह सकता परन्तु
यह निश्चय ही जीवन और जगत् के प्रति वह नयी दृष्टि थी जो दीर्घ साधना से
प्राप्त होती है परन्तु मुझे तो गुरुकृपा से सहज ही प्राप्त हो गई थी।

मुझे ज्ञात है कि ऐसे चमत्कारिक परिवर्तन अन्य अनेक लोगों के जीवन मे भी घटित हुए हैं और वे भी उनसे अभिभूत है। क्या ऐसे उदाहरण यह प्रमाणित नहीं करते कि पारसमणि लोहे को भी कचन में बदल देती है? निर्मल विवेक, सम्पूर्ण आस्था और निष्कपट समर्पण भाव के सम्मुख कुछ भी अलभ्य नहीं। पूर्व में मैने उनके जीवन के अतिम क्षणों म घटी दिव्य घटना की ओर सकेत किया था। उन्होने सलेखना सथारापूर्वक समाधिमरण प्राप्त किया। सलेखना सथारा जीवन का प्रतिबिम्ब है। यह आत्मसाधना का प्राणबिन्दु है। अपने इहलोक का जीवन सार्थक करते हुए, भयमुक्त होकर, ज्ञान, दर्शन और चरित्र का सामजस्य कर, पूर्ण चेतना मे, ममत्व त्याग कर तथा जिजीविषा से छुटकारा पाकर आचार्यश्री ने समाधिमरण प्राप्त किया। अतिम समय मे भी उनकी खुली आँखो मे अनोखी दीप्ति थी। उनका मुस्कराता चेहरा जैसे इस तथ्य के प्रमाण प्रस्तुत कर रहा था कि चरित्रबल और तपोबल मनुष्य को किस प्रकार महानता के उच्चतम शिखर तक पहुँचा सकते है।

आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं है परन्तु उनके द्वारा प्रज्वलित आध्यात्मिक ज्योति मानव-चेतना को प्रकाशित करती हुई उसका सदैव मार्गदर्शन करती रहेगी। उनके जीवन के आदर्श मानव की अमूल्य निधि बन कर युगों-युगो तक उसे प्रेरित करते रहेंगे। ऐसे अलौकिक विचारपुरुष के सान्निध्य का सौभाग्य किसी भी रूप में जिन लोगों को उपलब्ध हुआ है, वे निश्चय ही धन्य हैं। ◆

नमस्कार—मस्तक, दो हाथो और दो पैरो से ही नहीं होना चाहिये—इन अगो के साथ मन भी नमे, भावना भी नमे तथा श्रद्धा और आत्मा भी नमे, तब सम्पूर्ण आत्मा का नमस्कार होता है और वास्तव मे नमस्कार आत्मा को ही करना है।

—आचार्य श्री नानेश

महाश्रमणी इन्द्रकवर

भेद विज्ञान की महाज्योति आचार्य श्री नानेश
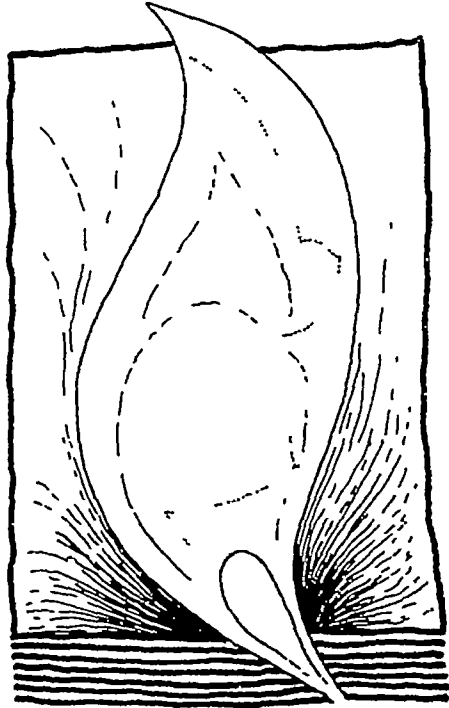
त्रिपदी का प्रदीप ज्योतिर्मय बना आप्त ऊर्जस्वित महापुरुषों के मुखारविन्द से और उस अलौकिक आलोक से देदीप्यमान हो उठे गणधरों के आत्मप्रदेश। वे सपूर्ण श्रुत-सुधा से आप्लावित हो गये। चतुर्दश पूर्व के ज्ञाता बन, अर्थ निर्झरणी को सूत्र साहित्य मे प्रतिबद्ध कर महती उपकार किया, युग युगान्तर मे होने वाली मुमुक्षु आत्माओं का।

आत्मदिक् दर्शन कराते रहे और कराते रहेगे, आगमाकाश में दीप्तिमत सूत्र एव अर्थ ध्रुवतारा बनकर। अनत-अनत उपकृति के केन्द्र शासनेश प्रभु की आप्तवाणी की अक्षुण्णता से विश्व त्रैलोक्य उपकृत हुआ, कृतार्थ बना।

शासन के क्षितिज पर द्युतिमन्त 'जिन' नहीं पर जिनसदृश तीर्थंकर महाप्रभु का प्रतिनिधित्व करने वाले आचार्यो की सुदीर्घ शृखला में आचार्य श्री नानेश के जीवन दर्शन की अल्पसामायिक परिक्रमा करने का मुझे सौभाग्य समुपलब्ध हुआ। चितन समीर समीरित/प्रवहण में स्फुरणा हुई कि आचार्यश्री का जीवन असाधारण जीवन कैसे बना ? वर्तमान की विभीषिका के दौर से गुजरते मानवों में ये महामानव के रूप मे कैसे बने ? गहराई मे डूबती चली गयी, जन्म जीवन से लेकर दिवगत होने तक का घटना चक्र, स्थूलबुद्धि के साधारण पारदर्शक में प्रतिबिबित होने लगा और अतिम चरम समय की मरणान्तक घटना ने मेरे अन्तस्तल को स्पर्शित किया। आचार्यश्री के देहोत्सर्ग की विस्मयकारी घटना, आँखों से दिव्य प्रकाश रश्मि का तीव्रता से निकलना और अनत में विलीन होना यह चमत्कारिक दृश्य उपस्थित जनो ने देखा।

महाप्राण। प्रकाशपुज। ऊर्जापुरुष का अन्तिम परिणाम देहोत्सर्ग की प्रक्रिया, नयनपथ से रश्मिपुज का निसरण, योगनिद्रा की गहरी अवस्था, काया का निष्प्रकप होना उससे पूर्व तिविहार सथारा प्रत्याख्यान, फिर चौविहार, उससे भी पूर्व ओषधोपचार का त्याग, आहार की मात्रा का

अल्पीकरण, ये सारे क्रिया-कलाप क्या आगम के पृष्ठो को अनावृत नहीं करते ? क्या अतीत मे अतक्रिया करनेवाले या 3 भव, 15 भव करने वाली आराधव आत्माओं के जीवन की याद नहीं दिलाते ?

यशस्वी ऊर्ध्वारोही चेतनाओं को आगम पृष्ठो पर पढा ही था लेकिन अब प्रत्यक्षदर्शी होकर अनुभूत भी किया। श्रद्धानुरजित अध्यवसायो को अत्युज्ज्वल बनाने वाले आचार्य पुगव श्री नानेश इस युग की बेमिसाल ज्योति बने। जब से, आचार्यदेव का सलेखनापूर्वक दिव्यलोक गमन हुआ तभी से 'सलेखना सथारा, दिव्य पडित मरण, ये शब्द मेरे मनोमानस को स्पन्दित करने लगे थे।

'सलेखना और सथारा' कितने महत्त्वपूर्ण पारिभाषिक शब्द दिये है तीर्थकर महाप्रभु ने।

सपूर्ण जीवन को किस तरह जिया जाए कि फिर पुनर्जन्म न हो, मृत्युजयी बन जाये, वियुक्त दशाजन्य अनिर्वचनीय आनद अनत हो जाए तदर्थ परम रहस्य ज्ञाता प्रभु ने जीवन के हर क्षण मे जीने की विद्या दी। बाह्य जीवन का निर्वाह करते हुए अध्यात्म मे आवसित कैसे हो ?

जैनागम मे मरण की बुनियाद पर ही जन्म, जीवन, सुख-दु ख, मुक्ति, निर्वाण आदि सब का निर्धारण किया। आगम-अध्ययन का निष्कर्ष है— समस्त कर्मो के चक्रव्यूह का भेदन कर जन्म-मरण से मुक्ति पाना। आत्मगुणों के आनद मे अनत के लिये निमज्जित हो जाना। उसकी प्राप्ति के लिये विविध प्रकार की विधाए प्रस्तुत कीं। सयम का राजमार्ग दर्शाया। तपयज्ञ के अनुष्ठान की विधि बतायी। बालवीर्य को पडितवीर्य मे परिणत करने का पथ सुझाया। ससार की नश्वरता शरीर की मरणधर्मिता, आत्मा की शाश्वतता बताकर तथा देह-देही का भेद-ज्ञान कराकर, कुल मिलाकर जीवन का जन्म-मरण के पार पहुँचने की सारी दिशाएँ प्रदान की है।

> 'मृत्युजयी की दिशा में अग्रसर बने आचार्य नानेश ने अतर की सजगता से प्रतिक्षण आयु को क्षीण होते अनुभूत किया। जीवन के प्रारंभ और मध्यकाल में उस अवीचि मरण, धारावाहिक मृत्यु के प्रति तो पूर्व से ही सावधान थे, निस्तरग निश्चल रूप से दृढ सकल्पी हो सारा जीवन जिन्होंने समता भावों की गहराई में डूबकर जीया था ऐसे भेद-विज्ञान की महाज्योति आचार्य श्री नानेश ने क्षणभंगुर देह की विमुक्ति भी अत्यत शान्त भावों से की।'

सम्यक् दर्शन से लेकर चरम परिणति के जो मार्ग दर्शाए, उनमे सलेखना शब्द अति महत्त्वपरक है। कषाय की सलेखना फिर काया की सलेखना। कषाय ससार की नींव है इसे आमूल चूल नष्ट किये बिना मुक्ति कहाँ ? अत ससार की समाप्ति का इच्छुक सर्वप्रथम कषाय की जड़ें खोखली करने का प्रयास करे। 'सलिख्यतेऽनया शरीर कषायादि सलेखना' (स्थानाग सूत्रवृत्ति 2/2)।

कषाय और काया को कृश करने की प्रक्रिया को ही तो सलेखना कहा है— सम्यक् प्रकार से लेखना, कृश करना। शरीर बल रहते हुए पूर्व कषाय को मद/कृश करे फिर निर्बल, अक्षम, असमर्थ काया को कृश करते हुए देह का इस तरह से सबध विच्छेद करना कि मरण/मृत्यु समाधि बन जाए, मृत्यु के बाद अन्य के द्वारा समाधि बनाने से पूर्व स्वय ही अपने को समाधिस्थ बना ले।

शरीर का परित्याग कितने वैधानिक तरीके से बताया गया है। जब तक जीवन मे प्राणों की उष्मा है तब तक धर्म और मोक्ष का पुरुषार्थ अनथक करते रहें। जब देह-बल निर्बल हो जाये हौले से उससे बाहर हो जाओ। जैसे प्रज्वलित घर मे से सारभूत वस्तु को मालिक लेकर अपनी प्राणसुरक्षा हेतु घर की परवाह किये बिना निकल जाता है वैसे ही तन के डेरे से खतरा होते ही, इसके गिरने के पहले ही परित्याग बुद्धिमत्ता की निशानी है। केवली काल मे आयुष्य की विज्ञप्ति हो जाने पर उत्कृष्ट, मध्यम आदि सलेखना विधिवत किया जाता रहा मगर उनके वियुक्ति काल मे यह सभव न होने से निर्मल श्रुतधर गुरु की प्रज्ञा से या स्वय की अनुभूतियों से देह-त्याग का समय निकट जानकर,

शरीर ममत्व का त्याग कर, अपने आराधक भाव के साथ सथारा करना जीवन की अत्य क्रिया है।

'आवीलाए पवीलए णिप्पीलए जहित्ता पुव्वसजोग हिच्चा उवसम।'

आचाराग सूत्र मे आत्मसाधना की कर्म विधुनन की अति सुदर गहन आत्मतलस्पर्शी व्याख्याए दी गई है। तेजस, कार्मण सूक्ष्म शरीर पिघलाने की प्रक्रिया अनिर्वचनीय है। 12 वर्षीय, 12 मासिकी एव 12 पक्षीय सलेखना मे 12 का अक परिवर्तन का प्रतीक तो है ही और भी बहुत सारे रहस्यो से गुफित भी है। यदि इस अक के काल में दर्शायी गयी साधना आराधना न कर पाये तो स्वजन परिजन मृत्यु के पश्चात् 12 दिन तक अधूरी साधना को पूर्णता देने की लौकिक क्रिया करेगे। 12 पक्षो तक, 12 माह तक दिवगत आत्मा के शोक को ओढ़े रहेगे।

जीवन का अतिम पड़ाव अनासक्ति भावों से समृद्ध हो तदर्थ सलेखना अनिवार्य है। इसमें पूर्व यावत कथित तप नहीं किया जाता। शरीर को कृश करने हेतु विविध प्रकार का तप करते हुए बीच-बीच मे आहार ग्रहण किया जाता है साथ ही कषाय को क्षीण कर सहिष्णुता, क्षमा आदि गुणों की अभिवृद्धि तथा आलोचना से अतर का निशल्यीकरण किया जाता है। यह 12 वर्ष तक विधिपूर्वक किया जाता है। जो कार्मण शरीर को क्षीण करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया है।

बारहवर्षीय सलेखना विधि—

द्वादशवर्षीय सलेखना की विधि इस प्रकार है—

1 साधक प्रथम चार वर्ष तक कभी उपवास, कभी बेला, कभी तेला, चोला या पचोला, इस प्रकार विचित्र तप करता है। पारणे के दिन उद्‌गमादि दोषो से रहित शुद्ध आहार करता है।

2 तत्पश्चात् फिर चार वर्ष तक उसी तरह विचित्र तप करता है, पारणा के दिन विगय रहित (रसरहित) आहार लेता है।

3 उसके बाद दो वर्ष तक एकान्तर तप करता है। पारणा के दिन आयम्बिल तप करता है।

4 ग्यारहवे वर्ष के प्रथम 6 मास तक उपवास या बेला तप करता है, द्वितीय 6 मास मे विकृष्ट तप तेला, चोला आदि करता है। पारणे में उनोदरीयुक्त आयम्बिल करता है।

5 उसके पश्चात् 12वे वर्ष में कोटी सहित लगातार हायमान आयम्बिल करता है। पारणा के दिन आयम्बिल किया जाता है। साधक भोजन में प्रतिदिन एक-एक ग्रास को कम करते-करते एक सिक्थ भोजन पर आ जाता है।

निशीथ चूर्णिकार आचार्य जिनदास गणि का मत है—

दुवालस वरिस निरन्तर हायमाण आयबिल करेइ।
कोडीसहिय भवई जेण अबिलस्स कोडी कोडीए मिलइ।।

बारहवे वर्ष में उष्ण जल के आगार के साथ हायमान आयम्बिल करे। इससे एक आयम्बिल का समाप्तिकाल दूसरे आयबिल के प्रारभ काल से मिल जाता है। बीच में कोई भी व्यवधान नहीं आता, इसे 'कोडी सहिय आयबिल' कहा जाता है। हायमान का अभिप्राय है—कि प्रत्येक आयम्बिल के पूर्व आयम्बिल की अपेक्षा आहार पानी की मात्रा कम करते-करते वर्षान्त मे इस स्थिति में पहुँच जाना कि एक दाना (कण) अन्न और एक बूद (या घूँट) पानी ग्रहण करे। इस स्थिति से साधक वापस नहीं लौटता। यह सलेखना पूर्ण करके वह इगित मरण, भक्त प्रत्याख्यान या पादपोपगमन की तरफ ही बढ़ता है।

बारहवे वर्ष के अन्त मे वह अर्धमासिक अनशन या भक्त प्रत्याख्यान आदि कर लेता है।

इस तरह तप की जो विधि प्रतिपादित की है वह कर्मशरीर का विधुनन करती है अर्थात् तप की गर्मी जो भीतर साक्षी भाव से पैदा होती है, जिससे सूक्ष्म शरीर पिघलने लगता है। तेजस व कार्मण का शरीर ऊर्जा (एनर्जी) के रूप मे हमारे चेतन शक्ति से सबद्ध है। जिस प्रकार रेडियो तरग में विद्युत तरगें और चुम्बकीय तरगें एक साथ रहती है, उनमे बीजभूत शब्दों को पैदा करने की शक्ति प्रसुप्तावस्था मे रहती है, ठीक इसी प्रकार से तेजस कार्मण शरीर भी तरगो

(Waves) के रूप में चैतन्य शक्ति को बाधे हुए है। यही तरगे कर्मो के आश्रव बध तथा सवर निर्जरा की प्रक्रिया कराती हैं। जैसे आकाश की अनत विद्युत चुम्बकीय तरगो मे से एक निश्चित बारम्बारता (Frequency) की तरगा को उत्पन्न कर रेडियो रिसीवर का ऑसीलेटर अपने मे उसी प्रकार की तरगो को उत्पन्न कर विद्युतीय साम्यावस्था (Electrical Reasonance) क सिद्धात से प्राप्त करता है, ठीक ऐसी ही घटना आत्मा मे कार्मण स्कन्धो के आकर्षण मे होती है। योग शक्ति से आत्मा के प्रदेशों एव क्षेत्रावग्राही सबध रखने वाले कार्मण शरीर के परमाणु मे कपन होते हैं। कार्मण शरीर ऑसिलेटर की भाँति कार्य करने लगता है। जो इलेक्ट्रीकल रिसोनेन्स के सिद्धातानुसार लोकाकाश में उपस्थित समान बारम्बारता या तरग की लबाई की कार्मण तरगो को आकर्षित कर ग्रहण करता है और इसी प्रकार कार्मण शरीर का सगठन कभी स्खलित नहीं हो पाता। सलेखना तप वह प्रक्रिया है जो कार्मण शरीर के ऑसिलेटर की कम्पन प्रक्रिया को ढीली करता है। योगो की चचलता समेटता है। कार्मण शरीर पिघलता है। तेजस भी विरल होता जाता है। यही प्रतिक्षण सवर की प्रक्रिया है जो अनवरत आत्मगुण अनावृत करते हुए समाधि को उपलब्ध कराती है।

जैन दर्शन में समाधिमरण की भव्य प्रक्रिया है। इस प्रकिया का पहला चरण है—भेद विज्ञान। आत्मा और अनात्मा का विवेक। दूसरा चरण शरीर के प्रति मूर्च्छा, ममत्व और अनुराग को शिथिल करना। फिर आचाराग सूत्र के विमोक्ष अध्ययन मे कथित कषाय विमोक्ष, अर्थात् कषाय का अल्पीकरण करे कषाय को क्षीण करे, उससे आत्मशान्ति एव प्रसन्नता में वृद्धि होती है, अन्तर्द्वन्द्व-विकल चित्त समरसता की स्थिति का अनुभव करता है। तत्पश्चात् आहार विमोक्ष में आहार का विधिवत कम करते जाना। इसके पश्चात् यदि साधक को लगे कि अब मेरा यह शरीर बहुत अक्षम हो गया है और मैं अपनी अध्यात्म साधना को इस शरीर द्वारा सम्पन्न नहीं कर पा रहा हूँ, इसका उपयोग कम, भार अधिक है तब वह धीरे-धीरे शरीर के प्रति अनासक्त होता हुआ, शरीर विमोक्ष की ओर बढता है। देह के प्रति सपूर्ण उपेक्षा अनासक्ति समाधिमरण का यह समग्र दर्शन है। सथारे या पडितमरण की यात्रा का सपूर्ण क्रम है।

मरण की परपरा को रोकने की कला है सथारा। जीवन एक अध्ययन है, मृत्यु परीक्षा। पडित मरण या समाधिमरण सहज प्राप्त करने की विधि का नाम है सलेखना सथारा। सलेखना और सथारा दोनो ही समाधिमरण की प्रक्रिया हैं। सथार की पूर्व भूमिका सलेखना है। जिसमे आहार के साथ-साथ मन, वचन और काया के योगों की निवृत्ति, सबध सयोगो से निर्लिप्तता, वस्तु-तत्त्व के प्रति निस्पृहता नि सगता आदि की उत्तरोतर वृद्धिगत करते हुए अतिम मरणान्तक सलेखना इहलोगाससप्प-ओगे, पर लोगाससप्पओग जीवियाससप्पओगे, मरणाससप्पओगे, कामभोगाससप्पओगे। न इस लोक की न परलोक की वाछा, न जीवन की आशा, न ही मरण की अभीप्सा। कामभोग की तनिक भी अभिलाषा न करते हुए वीर्य शक्तियों को ऊर्ध्वारोही अवस्था मे आत्मप्रदेशो का सवलन करना।

जीवन के अन्तिम क्षणो में समाधि व शान्तिपूर्ण मृत्यु की प्रतीक्षा चिरपालित इच्छा है। इसमे न मृत्यु की इच्छा है, न मृत्यु का भय या जीवन का मोह है। यह जीवन की अनूठी अवस्था है जब मनुष्य कृतकार्य होकर शरीर के छूटने की प्रतीक्षा *करता है। सथारे का आनद सवेदन अनिर्वचनीय एव अनुभूतिगम्य है।*

'सथारा' शब्द का अर्थ आगमों में दर्भ का बिछौना दिया गया है, अर्थात् देह त्याग की अवस्था के पूर्व में काया को जहाँ पर अवस्थित करके जिस क्रिया में सयुक्त/सलग्न किया जाता है उस क्रिया को उपचार से सथारा कहा है। ये सलेखना और सथारे की एक स्थूल अभिव्यक्ति है। इस प्रकार की अद्भुत विधा को आत्मसात किया आचार्य श्री नानेश ने। अतिम समय की अद्भुत अपूर्व आराधना ने सारे सघ समाज में आचार्यश्री के प्रति जो अहोभाव उद्भावित किये वे अपने आप में अनूठे, अनुपम, अनुत्तरणीय एव अविस्मरणीय तो हैं ही, साथ ही प्रेरणा के अनूठे सूत्र भी हैं।

आचार्य श्री नानेश ने विरक्ति के प्रथम बिदु को स्पर्श किया जब छठे आरे का रोमाचक दु खपूर्ण वर्णन पढा। तब मानस ने विचारों का वेग पकड़ा और चितन मथन की प्रक्रिया से सवेग-निर्वेद का नवनीत उभर आया। पथिक बन गये, सयम पथ के और दृढ़ सकल्पपूर्वक चल पड़े अप्रमत्त। दशापन्न हो गये अध्यात्म दिशा

मे। सलेखना का स्वरूप उतर आया आत्मधरातल पर। प्रतिफल, कषाय की प्रतिसलीनता से अनत ससार की सघन शृखला को शिथिल बनाने मे सलीन हो गये। कषाय की सलेखना तो सर्वविरनि स्वीकृति के पूर्व आगार दशा मे ही प्रारभ हो गयी थी। पितृवियोग, व्यापार क्षेत्र मे अवतरण के क्षणों मे उद्गार निकले अपने व्यावसायिक साझेदार (साथी) के समक्ष, क्रोध जब मुझे आये तब आप क्रोध नहीं करेगे, जब आपको आयेगा तो मै उपशात रहूगा। क्या यह सलेखना के बीज का अकुरण नहीं था? काललब्धि के परिपाक के स्वर्णिम अवसर पाते ही हस-परमहस, चेतना परमचेतना, आत्मा-परमात्मा बनने की ओर उन्मुख हो जाती है।

मृत्यु का पर्याय दु ख है। मृत्यु मुक्ति ही दु ख मुक्ति है। या दु ख मुक्ति ही मृत्यु मुक्ति है। मानवीय परिप्रेक्ष्य मे यह कार्य/पुरुषार्थ अन्य गतियो की अपेक्षा सहज व सुलभ ही नहीं है, मनुष्येतर गति मे पथ पार किया जा सकता है, पर गतव्य/मजिल तो मानव जीवन से ही प्राप्त होती है। इन सब रहस्यों को आत्मसात् कर गुरु खोज मे निकल पडे। बिना गुरु के मुक्ति दुष्कर है। गहरे शोध से पा लिया निखालिस, क्रियावान, चारित्रशील गुरु भगवन् आचार्य श्री गणेश को। मुनिपर्याय मे विनयावनत हो मृत्यु मुक्ति की साधना में अनवरत सलग्न हो गये।

मृत्यु का दर्शन जो प्रतिपल करता है वही जीवन का दर्शन कर सकता है। मृत्यु की कला जानने वाला ही जीवन की कला को ग्राह्य बना सकता है, मृत्यु का क्षण सपूर्ण जीवन का सारभूत क्षण है, इसी केन्द्र पर आचार्य श्री नानेश का जीवन गतिमान रहा।

मृत्यु आपश्री की साधना की महत्वपूर्ण भूमिका रही। शरीर में उत्पाद व्यय की ओर निरतर प्रक्रिया को जन्म और मृत्यु का सबोधन मिला। प्रतिक्षण एक पर्याय का जन्म, पुराने का विसर्जन। इसके मध्य शाश्वत चैतन्य देव का अस्तित्व/स्थायित्व को जिसने ज्ञात कर लिया वही आत्मा समत्व की दिशागामी हो सकती है। ओर ऐसे समत्व के पैगबर आचार्य श्री नानेश ने अवीचिमरण के स्वरूप को सिर्फ दर्शन और ज्ञान का विषय ही नहीं बनाया, उसे चारित्रस्पर्शी भी बनाया।

सुख-साधना और जीवन की दीर्घता मे उपासना सफल कम, विफल अधिक होती है, जबकि दु ख, सकट, मरणजन्य सकटों मे साधना अधिक गहरी बनती है। जीवन का साक्षात्कार कराती है। सघर्षो की आधी मे आचार्यश्री का जीवन अपने अस्तित्व पर केन्द्रित रहा। यही कारण था कि आप सामान्य से असामान्य, मानव से महामानव की यात्रा पर गतिमान हो सके। समता के पर्याय बन गये। सम्प्रदायो के विरोधाभास के गरल घूटों को पीते गये। धर्मदेव-महादेव के पर्याय बने। मृत्यु-रहस्य-ज्ञाता आचार्यश्री कालान्तर मे धर्मपाल प्रतिबोधक बने। अनुभूति मानव के वेष मे रहने वाली कर्मकारानिबद्ध अज्ञान के भवर मे फसी आत्माओ को व्यसन मुक्त करा उन्हे निर्ग्रन्थवाणी के पीयूष पान से परिष्कृत किया। वात्सल्य के महासागर, करुणा के आकर आचार्य श्री नानेश ने सघ समाज को कल्याण की दिशा पर गतिशील करते हुए, आत्मसमीक्षण की ध्यान-धारा प्रवाहित की। स्वय आचार्यप्रवर ने प्रखर योगी के रूप अपने आभ्यन्तर जीवन के रेशे-रेश को उज्ज्वलता से अनुरजित किया। समीक्षण सम+ईक्षण सम्यक् प्रकार से अन्तर और बाहर को देखा ही नहीं, वरन् उसे जीवन्त रूप भी दिया। विद्यार्थी के रूप मे स्वय को अध्ययन-तल्लीन आजीवन बनाये रखा। परीक्षा की घड़ी यह मूल्याकन करती रही, आपश्री की मूल्यवत्ता दर्शाती रही।

मृत्यु-दर्शन ने ही उन्हे समस्त आधी, तूफानो, झझावातो मे सरक्षण प्रदान किया। भाईचारे का मृदु व्यवहार आबालवृद्ध के साथ रहा, विश्ववात्सल्य की प्रतिमूर्ति हर श्रद्धालु के श्रद्धास्पद, अनगिनत आस्थावानों की आस्था बने महायोगी नानेश सचमुच इस काल के तीर्थंकर थे।

सैकड़ो शिष्य-शिष्याओ के परिवार को स्नेह/प्रेम का अनूठा अनुदान देकर अनुगृहीत किया जिसके फलस्वरूप भवपरित आचार्य देव के वे कृपाशु बन पाये।

क्रान्त पुरोधा आचार्यदेव के जीवन, सयम-साधना, उपासना का अन्तिम अभिदृश्य आराधना का प्रतिफल (उपसहार) कितना भव्य, दिव्य, मनोहारी, अध्यात्म का प्रतीक रूप अभिव्यक्त हुआ, यह अति महत्त्वपूर्ण है, प्रेरणास्पद है। सारे जीवन का निष्कर्ष, साधना क निकष पर कसा गया। आद्योपान्त जीवन-

सघर्षो की धधकती ज्वालाओं से गुजरा। आक्रोश, उत्तेजना, ईर्ष्या, असूया आदि लपलपाती सैकड़ों जिह्वाओ ने उन्हे अपना ग्रास बनाना चाहा पर वह महाप्राण, महातेजस्वी, युगपुरुष सभी को उपशान्त बनाता गया!

सीमातीत यह अवस्था तो तब बनी जब गुरुदेव जिन्दगी के अतिम मोड़ पर थे। बाह्य उपसर्गो को हसते-मुस्कराते जीवनभर झेलनेवाले उस कर्मयोगी को अपने ही श्रमसाध्य पर्युपासको से अन्तरव्यथा/खेद-खिन्नता उद्‌भवित की गई। समता के चरम चरण छूने वाले सयमी प्राणो ने उफ् तक स्वरित नहीं किया। ऐसे नीलकठ ही कषाय की सलेखना करने मे समर्थ हो सकते हैं।

मध्यकाल में जिन अनेक सत-निर्ग्रंथों ने इतिहास को गरिमा मण्डित किया उनमे महासतीवर्याओ का भी अनुपम स्थान रहा है। हुक्मगच्छ की शान, शील, सौदर्य की मूर्ति पूज्यश्री रगूजी म सा के सप्रदाय मे महासती श्री सरदारकवरजी म सा , महासती श्री वल्लभकवरजी म सा , महासती श्री गुलाबकवरजी ने क्रमश 62, 72, 83 दिन का सथारा कर जीवन को अध्यात्म क्षितिज-स्पर्शी बनाया।

अध्यात्म दर्शन मे समाधिपूर्वक मृत्यु सतो की जीवन शैली रही है। कुछ वर्ष पूर्व भारत के दार्शनिक सत विनोबा भावे ने जीवन के अतिम क्षणो मे स्थितप्रज्ञ होकर आहार, जल दवा आदि का परित्याग करते हुए सथारे की स्थिति का दर्शन कराया। गजसुकुमाल मुनि, मैतार्यमुनि, अवन्ति सुकुमाल मुनि, स्कधक मुनि, जैसे अध्यात्म-अवधूत उपसर्गो की स्थिति में मरणान्तिक सलेखना सथारे की ज्वलत ज्योति बने।

काय और कषाय की सलेखना ही यथार्थ सलेखना है। आगमीय दृष्टि से उत्कृष्ट 12 वर्षीय की सलेखना, मध्यम सवत्सर की, जघन्य छ मास की कही गयी है। आचार्य भगवन् ने आभ्यन्तर रूप से सलेखना कब से प्रारभ की यह तो आचार्य देव को ही ज्ञात था पर सतत थी, यह आपश्री के सान्निध्य मे निवसित को भी अनुभतिगम्य है।

आहार से निर्लिप्त देहातीत अवस्था मे जीने वाले आत्मध्यानी महापुरुष को चतुर्विध सघ के जिन अनुभवियों ने गहराई से देख पाया वे ही आशिक रूप से अपने बुद्धिबल से कुछ अभिव्यक्ति दे सकते हैं। उदयपुर प्रागण मे वर्षावास का दृश्य—आचार्य भगवन् की देह-जर्जरित अवस्था ऊपर से दुर्बलता की झलक, शारीरिक स्थिति गिरती जा रही थी पर आभ्यन्तर की सजगता बरकरार, अप्रमत्त दशा मे अपने आपको अदर से सक्षिप्त करने की प्रक्रिया हरक्षण बिना रुके करते जा रहे थे। सारे उपचार, औषध, डाक्टरीय निदान, सभी से विरक्ति। सन्यास निवृत्ति, आहार भी यदाकदा, वह भी अल्प। शनै शनै अपनी काया से आत्मप्रदेशों को सहरण, सवलन करते आखिर वह क्षण, सलेखना की अन्तिम परिणति, सथारा का पल भी, प्रस्तुत हुआ। मृत्यु की अगवानी, मृत्यु का आलिगन किस तरह से किया जाता है वह आगम पृष्ठों का विषय न रहकर आचरण का अग बनकर उतर आया। आचार्य श्री नानेश ने जीवन को, महावीर वाणी के कण-कण को जीया और अन्तिम क्रियान्विति भी कर डाली। अपने योग्यतम उत्तराधिकारी अध्यात्मवेत्ता प्रशान्तचेता युवाचार्यश्री रामेश एव स्थविर प्रमुख पूज्यश्री ज्ञानेश के समक्ष सथारे के भाव प्रकट किये। शास्त्रो मे उद्धरणो को पढा और पाया कि अनेक अणगारो ने उपासको ने अपने जीवनकाल को व्रतो, महाव्रता से सजाया, तप से अलकृत किया 'पच्छापरिन्नाय मलावध सी पश्चात शरीर का सयमी क्रिया के अयोग्य समझकर विधिवत जीर्ण वस्त्र की तरह निर्लिप्त दशापन्न होकर परित्याग कर दिया। जीवन-मरण की आशसा से रहित आत्मरमण करते-करते जीवन का विसर्जन। कितनी भव्य विधि है सलेखना सथारे की!

मृत्युजयी की दिशा मे अग्रसर बने आचार्य श्री नानेश ने अन्तर की सजगता से प्रतिक्षण आयु को क्षीण होते अनुभूत किया। जीवन के प्रारभिक ओर मध्यकाल में उस अवीचिमरण/धारावाहिक मृत्यु के प्रति तो पूर्व से ही सावधान थे, निस्तरग निश्चल रूप से दृढ़ सकल्पी हो सारा जीवन जिन्होने समता, भावो की गहराई मे डूब के जीया था ऐसे भेदविज्ञान की महाज्योति आचार्यश्री ने क्षण भगुर देह की विमुक्ति भी अत्यत शान्त भावो के साथ की। दाहिनी आँख से तेज पुज का बाहर

निकलना आज के आगम-अनभिज्ञ जनमानस के लिये आश्चर्य मिश्रित जिज्ञासा का विषय हो सकता है परतु जो वीतरागवाणी से परिचित हैं उनके लिये यह आत्मतृप्ति, सतोष का विषय बना।

अरूपी आत्मप्रदेश, तेजस कार्मण शरीर से रूपयुक्त हो जब आगामी यात्रा के लिये प्रस्थान करता है, तब उसके दैहिक अवस्था के विभिन्न प्रकार बनते है। स्थानाग सूत्र के दूसरे स्थान मे बताया गया है कि, आत्मा शरीर का देश या सर्व प्रदेशो से स्पर्श करके शरीर को स्फूरित करके या स्फूटित करके बाहर निकलती है, सकुचित होकर या जीवन आत्मप्रदेशों से अलग (निर्वर्तित) होकर बाहर निकलती है। इन भेदो में से आचार्य देव की कायमुक्ति निर्वर्तित अवस्था की सभव है। ज्योही सथारे के प्रत्याख्यान हुए उसके पश्चात गुरुदेव ने अपनी काया को किचित मात्र भी हिलाये डुलाये, ज्यों की त्यों अविचल, स्थिर रूप में रखा। मानो पादोपगमन सथारे की स्थिति में हो। यह तो केवली एव आचार्य भगवन् के ही ज्ञानगम्य हो सकता है, पर कषाय की प्रचुर सलेखना का ही यह अप्रतिम परिणाम था।

नारियल पानी से युक्त रहता है अन्दर का गोला छिलके से चिपका रहता है। पानी सूखने की स्थिति मे छिलके से अपना पार्थक्य कर लेता है। कषाय का पानी सूखे बिना ऐसी सुखद मृत्यु कहाँ? जितना आसान चितन-लेखन है, उतना ही उसे आत्मसात करना दृष्कृत कृत्य है, कठिन साधना है। जन्म-जन्मान्तरो के दीर्घ/चिर अभ्यास के बिना यह कैसे सभव है? आचार्य भगवन् ने युगो-युगों की साधना इस जीवन की अल्प सामायिक स्थिति में कर डाली। अति गहन रहस्यपूर्ण थी आपकी साधना-आराधना। जितना-जितना समझने की कोशिश करते हैं, उतने अपने आपको हम अधूरा और अपूर्ण ही पाते हैं। जो दिव्य दृष्टि, दिव्य पुरुष को समझने के लिये आवश्यक है उसकी प्राप्ति के लिये भव भवन्त तक आमोक्ष उन्हीं की शरण, उन्हीं के पावन चरणो का सान्निध्य चाहिये। तब कहीं जाकर आत्मभेद, विज्ञान की ज्योति जला सकते हैं और सलेखना सथारे की स्वीकृति से दाक्षिण्यता पूर्वक समाधिकरण को समुपलब्ध हो सकते हैं।

धन्य हुए, अध्यात्म की अगम्य ज्योति आचार्य श्री नानेश की शरण पाकर, कृतार्थ बने उनके शिष्यत्व को स्वीकार कर सदा-सदा गुरु के रूप में ऊर्जापुरुष का सान्निध्य वात्सल्यवर्षण करता रहे, यह अभीप्सा किस की नहीं होगी। ◆

बुद्धि की मलिनता को हटाकर यदि उसे विमल बनाना है तो मोह का त्याग करना होगा और तभी आध्यात्मिक ज्ञान एव सत्य का मार्ग खुलेगा।

—आचार्य श्री नानेश

वैरागिन पद्मा साखला

एक संत प्रातःस्मरणीय

एक फकीर था। दिन के समय हाथों मे मशालें लेकर निकल पड़ा। एक-एक स्थानक पर ठहरता, एक-एक उपाश्रय पर ठहरता, ठहरने के पश्चात् चल पड़ता। एक व्यक्ति ने पूछा—'बाबा! तुम यह दिन के समय मशाले लेकर क्या देखते फिरते हो ? क्या ढूँढ़ते हो ?'

फकीर ने कहा—'बेटा! मैं सन्त को खोज रहा हूँ।'

उस व्यक्ति ने आश्चर्य से पूछा—'इतने सन्तों में तुम्हे कोई सन्त नहीं मिला ?'

फकीर ने एक लम्बी आह भर कर कहा—'अभी तक तो नहीं मिला।'

पूछने वाले ने फिर कहा—'तुम सन्त किसे कहते हो ?'

फकीर ने जवाब दिया—जो इन्द्रियों का दास नहीं, जिसमे कषाय की आग नहीं, जिसके रोम-रोम में समता समायी हो, जो जन-जन के लिए कल्याणकारी हो, जिसकी वाणी हृदयस्पर्शी, अमृतमयी हो, जो परोपकारी हो, सरलता की प्रतिमूर्ति हो और जो प्रात स्मरणीय हो, वही सन्त है।

उस व्यक्ति ने पुन पूछा—कैसे सन्त प्रात स्मरणीय होते है ?

फकीर ने उत्तर दिया—अनत काल से जीवन अधेरी गलियो मे भटक रहा है, विषय वासना मे अटक रहा है, जो सन्त हमें इन अधेरों मे राह दिखा दे, हमारे लोहे रूपी जीवन को पारस पत्थर बन स्वर्ण में परिवर्तित कर दे, ससार रूपी सागर मे डूबती हुई जीवन रूपी नौका को कुशल नाविक बन पार करा दे, माया-ममता को हटाकर जीवन मे समता-रस का सचार कर दे और सबसे बड़ी बात, हमे इन्सान से भगवान् बना दे। जो हमारे जीवन को आदर्श से, सकल्प से, प्रतिज्ञा से बाधकर हमें सुरक्षित जीवन प्रदान करे, धर्म के प्रति सच्ची श्रद्धा, सच्ची निष्ठा प्रदान करे, हमारे भीतर सेवा और समर्पण,

त्याग और बलिदान की भावना को जाग्रत करे, जो स्वय मृदुभाषी, अल्पभाषी, सरल, सहृदय, निरभिमानी, विनीत, निस्पृही और पदलिप्सा से परे हो और जन-जन को भी यही दिशाबोध दे। ऐसे सतो के दर्शन एव नाम-स्मरण से लोगो का दारिद्र्य धुल जाता है, इच्छाए पूरी हो जाती है। इस प्रकार जिनसे भव्य जीवो को मार्ग-दर्शन एव सार्थक जीवनशैली का उद्‌बोधन मिले, जिनके दर्शन मात्र से दिलो मे अगाध आस्था जाग्रत हो, जो हमारी दृष्टि को अन्तर्मुखी बनाए, आत्मा की आन्तरिकता में प्रवेश कराए, जिनमे कथनी-करनी, अन्दर-बाहर, एक-अनेक, सत्कार-तिरस्कार, मान-अपमान, ऊच-नीच, निन्दा-स्तुति आदि का भेद न हो, जो महापुरुष ससार के भोगो की क्षण-भगुरता और सारहीनता को देखकर त्याग और सयम-साधना द्वारा अन्तर्मुखी हो जाते हों, अपने भीतर स्थित आत्मस्वरूप का साक्षात् करके कृत-कृत्य हो जाते हो और हर आत्मा को अनुभव कराते हों कि उसकी आत्मा मे भी अनन्त शक्ति भरी पड़ी है। आवश्यकता है उसे जगाने के लिए पुरुषार्थ की, दुर्व्यसनों को दूर करने की। ऐसा होते ही शक्ति स्वत चली आयेगी, जिनके स्मरण से मन निर्मल हो, पवित्र हो, राग-द्वेष-रहित हो, ऐसे सन्त प्रात स्मरणीय होते हैं, उस व्यक्ति को उत्तर देकर वह फकीर पुन सन्त की खोज में चल पड़ा।

आपने सुना होगा तिराने वाली नौका कभी डुबो भी देती है। इसका उत्तरदायित्व किस पर है? जो साधना आत्मा को सिद्धि की ओर ले जाती है कभी-कभी वह बीच जलधारा मे डुबो भी देती है यदि उसका मल्लाह कुशल नहीं हो, कुशल मल्लाह के हाथों मे सौंपी गई नाव कभी भटक नहीं सकती।—यह बात वह फकीर भली भाति जानता था इसीलिए कुशल मल्लाह की तलाश थी उसे। और यह बात भी शत-प्रतिशत सत्य है कि कोशिशें हमेशा कामयाब हुआ करती है।

> भारत अध्यात्मप्रधान देश है और भारतवासी प्रकृति से ही आध्यात्मिक होते है। अध्यात्म वस्तु को नहीं, गुण को प्रमुखता देता है। शरीर वस्तु है और चरित्र गुण। शरीर नष्ट होता है, गुण अमर रहते हैं। गुण ही शरीर के प्रतीक नाम के रूप में अपनी पहिचान बनाता है। भारतीय मनीषा ऐसे जिन प्रतीक नामों को प्रात स्मरणीय मान कर अपनी दैनदिन प्रार्थना में सम्मिलित करती है वैसे ही नामों में एक प्रात स्मरणीय नाम है—आचार्य श्री नानेश।

उस फकीर की कोशिशे भी रग लायीं और एक दिन उसने भी एक ऐसे सन्त को दुनिया की भीड़ मे ढूढ निकाला। अनुमान कीजिए, वे सत कौन थे? आपका अनुमान ठीक है—वे सत युगपुरुष, समता-विभूति, समीक्षण-ध्यान-योगी, आचार्य श्री नानेश ही थे।

उस फकीर की बात छोड़ें, फकीर तो होते ही फक्कड़ और अक्खड़ है, ससारी लोगो, दुनियादारों की बात करें। आखिर आचार्य श्री नानेश में ऐसा क्या था जिसने उन्हें प्रात स्मरणीय बनाया? उस फकीर ने प्रात स्मरणीय सत के जो गुण बताये थे वे तो आचार्य नानेश मे अपनी पूर्णता मे थे ही जिसकी भविष्यवाणी पचम पट्टधर आचार्य श्री श्रीलाल म सा ने आचार्य नानेश के जन्म से पूर्व ही यह कह कर कर दी थी कि अष्टम पट्टधर आचार्य इतने अधिक पुण्यशाली होंगे कि यह पाट-परम्परा अत्यत दीपेगी और जिसके प्रमाण इस पुण्यशाली के अवसान के समय की उस चमत्कारिक घटना ने प्रस्तुत किये जिसमे लोगा ने उनकी आत्मज्योति को परम-ज्योति में विलीन होते देखा, परन्तु उनमें इससे भी अधिक 'कुछ' था जिसकी पुष्टि उनका जीवनक्रम करता रहा और जिसे उस विस्तृत समाज ने देखा, जिसके प्रति वह श्रद्धाभाव से नत-मस्तक होता रहा, जिसे प्रेरणा का दिव्य स्रोत मानता रहा और जिसकी कल्याणकारी छवि उसने अपने हृदय में अकित कर ली थी। यही वह अधिक 'कुछ' था जिसने उन्हें प्रात स्मरणीय बनाया अर्थात् ऐसा स्मरणीय सत बनाया जिसका नाम प्रात काल के समय स्मरण करने मात्र से वह सम्पूर्ण दिन, दिन के बाद और दिन, इस प्रकार सम्पूर्ण जीवनकाल मगलमय बन जाता है।

नाम की महिमा अपरम्पार है। नाम तो व्यक्ति से भी बड़ा होता है। व्यक्ति तो अपने जीवनकाल तक ही प्रेरित, प्रभावित और अनुदेशित करता है परन्तु नाम

तो चिरकाल तक ऐसा करता रहता है। यह समझ कर ही तुलसी ने 'राम नाम' की महिमा का मुक्तकठ से गान किया था। आचार्य श्री नानेश के नाम की महिमा से उनका भक्त समाज भलीभाँति परिचित है जिसके स्मरण मात्र ने अनेक लोगो की विकटतर परिस्थितियो मे रक्षा की और उनका मार्गदर्शन किया। ऐसे लोगो के सस्मरण और अनुभव वृत्तात 'नाना' नाम के चमत्कारी प्रभाव के प्रमाण प्रस्तुत करते है। आचार्यश्री के जीवन में यह कब-कब, कहाँ-कहाँ और कितनी बार घटित हुआ इसका ब्योरा न उपलब्ध है और न ही सम्पूर्ण रूप मे सकलित किया जा सकता है परन्तु कुछ घटनाओं को देखें।

आचार्य श्री नानेश के मुँह से अमृत झरा और गुराड़िया ग्राम धर्मपालों की उद्भव भूमि बन गया, एक अनजान छोटा-सा गाव तीर्थ बन गया और हजारों असस्कारित परिवारो के जीवन मे सुसस्कारो की गगा प्रवाहित होने लगी। स्वय तरने का तो सभी प्रयास करते हैं परन्तु जो तारणहार बनते हैं, वे जन-जन के लिए प्रात स्मरणीय बन जाते हैं। ऐसा ही कुछ घटा था मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ अचल के एक छोटे-से गाव अछोली मे।

तब स्वर्गीय आचार्य भगवन् डोंगर गाव मे धर्म जागृति का उद्घोष कर अछोली पधारे थे। अछोली ग्राम मे जैन परिवारों की सख्या यद्यपि 10-20 ही थी, किंतु कबीरपथी साहू समाज के बहुत परिवार थे और उनके आग्रह के कारण आचार्य देव को वहाँ लगभग आठ दिन रुकना पड़ा। छत्तीसगढ के ग्रामीण अचलों का भ्रमण अछोली ग्राम के जैनेतर बन्धुओ मे सस्कारारोपण की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। सम्पूर्ण ग्राम के जैन-जैनेतर आबालवृद्ध नर-नारियो मे धार्मिक भावना की एक लहर-सी फैल गई। लगभग सभी ग्रामवासियों ने शराब-मास के राक्षसी खान-पान को अपने ग्राम की पवित्र भूमि से निष्कासित ही कर दिया। तत्कालीन सरपच लब्धप्रतिष्ठ श्री केदारनाथजी साहू आदि अनेकानेक बन्धुओ ने आचार्यश्री से गुरु धारणा 'सम्यक्त्व' ग्रहण की। श्री केदारनाथजी की अहिसक भावना तो इतनी उत्कृष्ट थी कि अपने सरपचत्व काल में शासन द्वारा डाला जाने वाला मत्स्य बीज भी यह कहकर रुकवा दिया कि 'इस ग्राम मे कोई मासाहारी नहीं है अत मत्स्योत्पादन नहीं किया जा सकता है।' कुछ कर्मचारी आग्रह करने लगे कि सरकारी तालाब है, तो साहूजी ने उनसे सचोट एव स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि 'यदि तालाब सरकारी है तो अपना तालाब ले जाए सरकार, किन्तु यहा मत्स्योत्पादन नहीं हो सकता है।' इस प्रकार वहाँ के लोगों मे मछुआरे जैसे लोगों ने भी स्वर्गीय गुरुदेव के उद्बोधन से अपने हाथों से जाल फैंक दिए।

घटनाओं की बात भी छोड़े—घटनाओं की गणना कौन करा सकता है? बात करे सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चरित्र के उन तीन रत्नों की जिनकी अपने जीवन में सिद्धि कर लेने के कारण ही वह सत धर्मानुशासन, सघानुशान और आत्मानुशासन के अनोखे आदर्श स्थापित कर धर्मप्रभावना के क्षेत्र मे भी कीर्तिमान स्थापित कर सका—350 से भी अधिक दीक्षाएँ, 60 चातुर्मास, सघ एव सघ गतिविधियो का चतुर्मुखी विकास एव विस्तार तथा हज़ारा किलोमीटर की पद यात्राएँ! परिणाम-आत्मोत्थान, आत्म-प्रबोधन, व्यसन-मुक्ति, समता-समाज की स्थापना और सस्कारक्रान्ति के नये क्षितिजो की खोज। इनके अतिरिक्त समीक्षण ध्यान-साधना और आत्म-समीक्षण की दिशाएँ उन्मुक्त कर उन्होने ससार की विमीषिकाओ, कुण्ठाओ, तनावो तथा माया, मोह, लोभ जैसे मनोवेगो से मुक्ति का मार्ग भी जन-सामान्य को दिखाया। ऐसे उपकारी सतो का नाम-स्मरण ही मगलकारी होता है। भारतीय जन-मानस ऐसे मगलकारी नामो का स्मरण प्रात काल के पावन समय में स्मरण कर अपने पूरे दिन का कल्याण और मगल सुनिश्चित कर लेता है। आचार्य श्री नानेश ने अपने अनुपम त्याग और दिव्य साधना से ऐसे प्रात स्मरणीय सतो की परम्परा में अपना नाम भी सम्मिलित करा लिया।

भारत अध्यात्म प्रधान देश है और भारतीय प्रकृति से ही आध्यात्मिक होते हैं। अध्यात्म वस्तु को नहीं गुण को प्रमुखता देता है। शरीर वस्तु है और चरित्र गुण। शरीर नष्ट होता है, गुण अमर रहते हैं। गुण ही शरीर के प्रतीक नाम के रूप मे अपनी पहिचान बनाता है। भारतीय मनीषा ऐसे जिन प्रतीक नामों को प्रात स्मरणीय मान कर अपनी दैनदिन प्रार्थना मे सम्मिलित करती है वैसे ही नामों मे एक प्रात स्मरणीय नाम है—आचार्य श्री नानेश। ◆

साध्वी पुष्पलता

गुरु खोजा गुरु पाइयाँ गहरे पानी पैठ

खोजना, ढूढना, तलाशना, पता लगाना, अनुसधान करना ये सब शोध के पर्याय हैं। मानव चिरन्तनकाल से खोजी प्रकृति का रहा है। नित्य नई खोजों तथा अनुसधानों के फलस्वरूप अनेक आविष्कार हुए और ज्ञान का विस्तार हुआ। भौतिक जगत् में ही नहीं, अध्यात्म के क्षेत्र मे भी शोध सदा से होती रही है।

'अप्पणा सच्च मेसेज्जा'—सत्य की खोज करने का सकेत देवाधिदेव प्रभु दे रहे हैं। स्वय सत्य का अनुसधान करो। वैज्ञानिक जगत् की खोज एक व्यक्ति (वैज्ञानिक) करता है और सारा जगत् उसका उपयोग करता है मगर अध्यात्म जगत् मे यह नियम लागू नहीं होता। स्वय की खोज ही स्वय के काम आती है। अतीन्द्रिय ज्ञानियो ने जो खोजें की है उन आत्मानुभूतियों को वाणी के माध्यम से वचन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पर साधक जब तक प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर लेता तब तक उनकी आप्तवाणी (सर्वज्ञों का दर्शन) श्रुति का, बुद्धि का विषय मात्र रहती है।

अत सत्य शोधार्थी अध्यात्म की गहराइयों मे उतरने का पुरुषार्थ करता है। भव-भवान्तर तक यह उद्यम चलता है। अनेक विघ्न-बाधाए पार करनी होती हैं, परिषहों की, उपसर्गो की, आधियो में विवेक प्रदीप को प्रज्वलित रखने का अथक प्रयास करना पड़ता है तब कहीं जाकर अनत की मजबूत सगीन पर्तो को काटकर सत्य सलिल की प्रच्छन्न धारा तक वह अपनी पहुँच बना पाता है।

दृढसकल्पी सत्यान्वेषी यदि अविचल, अप्रमत्त, जागरूक हो तो वह अग्रसर होता ही रहता है परन्तु मजिल की उपलब्धि हेतु खोज तो करनी ही पड़ती है। बोध होने के बाद शोध की प्रक्रिया से गुजरना अनिवार्य है अन्यथा पूर्णता की प्राप्ति नहीं हो पाती।

'जिन खोजा, तिन पाईया', अर्थात् जिसने भी खोजा, पाया ही है। गहरे पानी मे गोता लगाये बिना सागर की अतल गहराइयो मे दबी हुई मुक्ताओ को नहीं पाया जा सकता। कुछ पाने की गर अन्तर
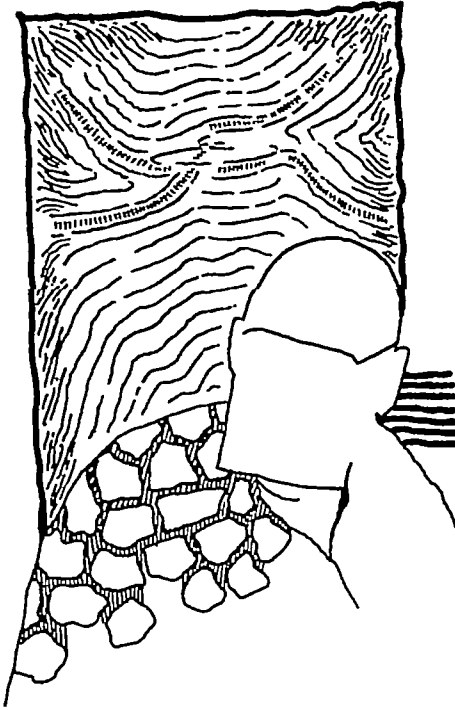
मे तड़प, तरस, ललक है तो खोजना ही पड़ेगा। साहसपूर्ण सकल्पो के साथ धैर्य से अग्रसर होना पड़ेगा, तब कहीं जाकर मनोवाछित वम्तु की उपलब्धि हो सकेगी। जैसे क्षुधातुर व्यक्ति आहार तथा तृषातुर व्यक्ति सरोवर-सरिता को तलाशता है वैसे ही अधकार के वर्तुल में फसे व्यक्ति को आलोक पथ की यात्रा पर निकलना ही पड़ता है।

खोज आवश्यक क्यों है? क्या जरूरत है किसी वस्तु की अथवा तत्त्व की खोज करन की? अनादिकाल से अधकार मे भटकने वाला जब अधकार के प्रतिपक्षी आलोक को प्राप्त करना चाहता है तब वह शोध करने की तमन्ना से भर उठता है पर जिसने प्रकाश को सुना या देखा ही नहीं, वह खोजेगा कैसे? किस दिशा म यात्रा करेगा? अगर वह स्वत ही शोध-सलग्न होगा तो अज्ञानी तथा अपरिचित होने से भटकेगा ही। सवर्तक वायु की तरह वर्तुलाकार उसकी गति हो जायेगी। उस वर्तुल से बाहर होने की विधि और मार्ग को जानने के लिये खोज आवश्यक हे।

तव खोज किसकी करे? बाहरी जगत् की खोजें पुद्‌गलो से सबधित हैं, सुख-सुविधाओं की वृद्धि करने वाली, भोगमार्ग की मृगमरीचिका के दर्शनमात्र कराने वाली हैं। उन खोजो से विकास कम, विनाश की अधिक सभावनाएँ हैं। आज का यात्रिक युग इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। आज बौद्धिक स्तर पर जितना विकास हुआ है, रसातल से लेकर अन्तरिक्ष तक की यात्रा मनुष्य ने की है, विश्व के कण-कण को खाजने के प्रयास किये हैं, एक के वाद एक शोध होती जा रही है, मगर शान्ति के बजाय अशान्ति ही बढ रही है और समस्याओ के समाधान दूर, सुदूर होते जा रहे हैं। उस पर मी ये समस्याएँ दिन प्रतिदिन, सुरसा के मुखवत् दीर्घकाय होती जा रही हैं। ऐसी स्थिति मे क्या शान्ति का इच्छुक इस अनुसधान को श्रेष्ठ या अच्छा कह सकता है? जब तक बाहरी शोध के साथ आन्तरिक गहराइयों को नहीं जोड़ेंगे तब तक समस्या हल नहीं हो सकती।

> निश्चय ही गहरे पानी पैठने से मोती मिलता है परन्तु जिसे मोती मिल जाता है वह मोती से कम मूल्यवान थोड़े ही रहता है। सच्चे गुरु की यही महिमा है कि शिष्य गुरुवत बनने में सक्षम हो जाये, उसकी सिद्धियों का भोक्ता बन सके और इस प्रकार उस अमूल्य निधि का पात्र भी बन सके।

अध्यात्म का मार्ग दुरुह अवश्य है मगर अगम्य नहीं। उस दुष्कर कृत्य की कठिन राहो पर समर्थ गुरु का हाथ पकड कर चला सकता है। यदि समर्थ गुरु मिल जाय तो अध्यात्म के दुष्कर मार्ग पर भी चलने का साहस उत्पन्न हो जाये तथा सफलता भी मिल जाये—क्योंकि गुरु अन्धकार अथवा अज्ञान को नष्ट करता है, आलोकमुखी बनाता है, सत्य का दर्शन कराता है, आत्मानद में निमज्जित कर देता है तथा शाश्वत सुख की अनन्तता को उपलब्ध कराता है। स्वय जिस अद्वितीय आनन्द को एव रहस्यो को उसने पाया है, आलोक की जो अनुभूति की है, शक्तियो का जैसा पुज वह बना है, उस सब का यदि कोई परिचय दे सकता है, तो वह गुरु ही है। गुरु की पदनखमणि की ज्योति के स्मरण मात्र से हृदय का कोना-कोना दिव्य प्रकाश से उद्‌भासित हो जाता है, अन्त चक्षु उन्मीलित हो जाते है तथा पकट एव गुप्त सभी प्रकार की वस्तुएँ हस्तामलकवत् दृष्टिगोचर होने लगती है।

गुरु की महत्ता अनिर्वचनीय है। उर्जस्विल गुरु की खोज कठिन ही नहीं, अति कठिन है। पुण्य की प्रबलता होगी, जन्म-जन्मातरों की साधना होगी, तो सम्यक् ज्ञान-प्रदाता मोक्ष-मार्गदर्शक गुरु की शरण मिल सकती है। तथाकथित गुरुओ की कोई कमी नहीं, हर कोई गुरु बनने की चाह लिये बैठा है। कोई शिष्य मिले तो मुझे गुरु पद मिल जाए, इस महत्वाकाक्षा की पूर्ति में कैसे-कैसे हथकडे नहीं अपनाये जा रहे है यह सर्वविदित है। लोकैषणाओं से ग्रसित ऐसे लोमी व्यक्ति कभी गुरु नहीं वन सकते। गुरु वही वन सकता है जिसका चित्त और जिसकी अतरात्मा अपनी सम्पूर्णता मे सम्यक्त्व मे स्थित हो। देव, गुरु और धर्म की त्रिवेणी म श्रद्धापूर्वक अवगाहन करने वाला ही सम्यक् द्रष्टा वन सकता है। इस त्रिपथगा मे गुरुपद मध्य का है—देव व धर्म का प्रतिबोध देने वाले गुरु ही तो हाते हैं। इस प्रकार गुरु एकमात्र द्वार है जो परमात्मा तक ले जाता है। उस द्वार में से गुजर कर ही शिष्य परमात्मा को उपलब्ध होता है। गुरु नानक ने अपने धर्मस्थान को गुरुद्वारा कहा है—कितना सटीक शब्द है।

गुरु के द्वारा अन्दर की उपलब्धि होती है। बिना द्वार के, बिना माध्यम के, बिना आलम्बन के अपने चैतन्यदेव निखालिस आत्मतत्त्व को नहीं पाया जा सकता।

गुरु गोविन्द दोऊ खडे काके लागू पाँय,
बलिहारी गुरुदेव की गोविन्द दियो बताय।

हाँ, तो ऐसे गुरु की खोज करने वाला शिष्य भी कोई सामान्य शिष्य नहीं होगा। वह ता अमृततत्व का तीव्र पिपासु होगा, मुमुक्षु होगा, परिनिर्वाण का लक्ष्य जिसके अतर म गुजरित होगा और कर्ममुक्ति के लिये जो अत्यत आकुल आतुर होगा। ससार की नश्वरता, भोगों के प्रति उदासीनता तथा जीवन की क्षणभगुरता जैसे विषय जिसके लिये पहेली बन चुके हो तथा जिनको सुलझाने की विधि उसके हाथ न आई हो, उसकी तो ज्ञानपिपासा ही सदिग्ध होगी। जिसे अपने अज्ञान का अहसास हो जाता है, वही गुरु के द्वार पर दस्तक देता है और गुरु की शोध में निकल पड़ता है।

अज्ञान का बोध ही गुरु शोध का प्रथम चरण है। गुरु तुम्हें रूपान्तरित करेगा, गुरु तुम्हे जाग्रत करेगा, गहरी प्रसुप्ति में होश-हवास पैदा करेगा, तुम्हारे पतित जीवन को ऊर्ध्वगामी बनायेगा। अपने कर-कमलों से जो सहारा देगा वही गुरु शिष्य को ऊँचाइयों पर ले जा सकेगा।

'गुरु दीपक गुरु चाँदणो, गुरु बिन घोर अधार'

गुरु प्रदीप है। जो ज्योतिर्मय बन चुका है, जिसकी ज्योत्स्ना पूर्णतया खिल चुकी है वही गुरु अज्ञान के अधकार से आच्छादित बुझे दीपरूपी शिष्य की ज्ञान शिखा को देदीप्यमान कर सकता है।

गुरु की शोध कैसे की जाए ? क्या लक्षण हैं गुरु के, जो किसी को सच्चे गुरु के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं ?

आचार्य श्री श्रीलालजी म सा के सम्मुख जिज्ञासा प्रस्तुत की गई थी कि 'सच्चे सत निर्ग्रन्थ की क्या पहचान है ?' समाधान मिला था—

ईर्या भाषा, ऐषणा, ओळख जो आचार।
गुणवन्त गुरु देखने बदो वारम्बार।।

ईर्या शोधन—ईर्या याने गमनागमन, चरण गति, चलने की क्रिया को देखकर सत की चरण-चर्या ज्ञात होती है। चलने के विषय मे प्रभु से पूछा गया कि, 'कह चरे' कैसे चले ? 'जय चरे', यतनापूर्वक चलो, जिससे पापकर्मो का बध नहीं होगा। सिर्फ चरणो की गति व्यक्ति के पूरे जीवन का आलेखन कर देती है। चरण मे आचरण की विज्ञप्ति प्रच्छन्न है।

चर+ण असद् की ओर चलने का निषेध-सकेतित है। ण+चर=ऐसे कार्यों की रचना प्रवृत्ति ना करें जो असद् हो। चरण-चारित्र का दर्पण है अथवा पर्याय भी है।

अत चरण से चरण अर्थात् चारित्र का ज्ञान होता है। क्रोध में अथवा उद्विग्न भावो से उठे चरण अन्दर की विकृति को ही अभिव्यक्त करते हैं। नपे-तुले सही ढग से बढ़ते चरण अन्तर-शाति एव सतुलन को दर्शाते हैं। जीवों के प्रति करुणाभाव है या नहीं, किसी लेश्या, तथा किन भावों के प्रवाह मे आप बह रह हैं, इस सब का पादचाप से ग्राफ अकित किया जा सकता है। अत गुरु बनाने से पूर्व व्यक्ति के स्वभाव, प्रकृति आदि से परिचित होना आवश्यक है।

ज्ञानी पुरुषों की चाल मन्थर होगी, दृष्टि सम्यक् होगी, अहिसकरित्या चलेंगे, बैठेंगे, सोएगे। सारी शारीरिक क्रियाए ईर्या के अन्तर्गत आ जाती हैं। दैहिक चेष्टा गति से सबधित है।

दूसरा लक्षण भाषा है। सत की भाषा, वचन व्यवहार, कैसा है यह भी विचारणीय होता है। वाणी एक ऐसा माध्यम है जो मनुष्य के अन्तर के सारे भावों की अभिव्यजना करता है। मौन अवस्था में व्यक्ति के व्यक्तित्व को कोई विरल मनुष्य ही जान पाता है पर वाणी अथवा वचन प्रयोग से सामान्य व्यक्ति भी उसकी भावनाओं को समझ सकता है।

आचार्य श्री नानेश गुरु की खोज मे निकले, जैसे ही विरक्ति के अकुर प्रस्फुटित हुए। तदनतर गुरु की खोज प्रारम्भ कर दी। सत की खोज करते हुए कोटा मे शात क्रान्ति के अग्रदूत आचार्य श्री गणेश (जो तब युवाचार्य थे) के चरणों मे वदन कर अपना परिचय दिया—'भगवन् शिष्य सेवा मे उपस्थित है, आपश्री के चरणो मे स्वय का कल्याण करके आत्माराधना करना चाहता है।' युवाचार्यश्री ने सहज भाव से सुस्पष्ट कितु गभीर उत्तर दिया, 'भाई, साधु बनना कोई हसी खेल नहीं है। साधु बनने से पूर्व साधुता को समझने का प्रयास करो। कुछ ज्ञान, ध्यान सीखो, त्याग एव वैराग्य को स्थायी सबल बनाते हुए समता जीवन को सूक्ष्मतापूर्वक परखो। चित्त की चचलता के साथ भावावेश मे किसी भी मार्ग पर बढ जाना श्रेयस्कर नहीं माना जाता। यदि कल्याण मार्ग का अनुकरण करना हो तो गुरु का भी परीक्षण कर लो। इसके पश्चात् साधु दीक्षा स्वीकार करके आत्मा को तप की भट्टी पर चढ़ा दो। अभी तो आये हो, न तुमने मुझे ठीक से देखा न हमने तुमको।' यह निस्पृह अनासक्त योगी-सा उत्तर सच्चे गुरु को दर्शाता था। इसी उत्तर के आईने में तब युवक नानालाल ने अपने गुरु के अन्तरजीवन का दर्शन कर लिया। विरक्ति का मधुकर सत उद्यान में घूम-घूमकर, उस गुरु पुष्प पर गुजार करना छोड़कर, पराग-पान करने में तल्लीन हो गया।

भाषा के माध्यम से गुरु की महिमा का ज्ञान कर श्रद्धा से अभिभूत हो उठे और कहने लगे, 'भगवन्, मैं तो कई सतों के पास घूम-फिरकर यहा श्रीचरणों में उपस्थित हुआ हूँ। किन्तु अगर आप सभी दीक्षार्थियों के समक्ष ऐसी कठोर शर्त रखेंगे तो आपकी शिष्य-परपरा कैसे बढ़ेगी? कैसे कोई आपका शिष्य बनेगा?'

युवाचार्यश्रीजी ने गभीर मुद्रा मे कहा, 'यदि मेरा कोई शिष्य नहीं बनेगा तो मेरे आत्मकल्याण में कौनसी बाधा उपस्थित हो जायेगी? मुझे जमात नहीं बढानी। आत्म-साधना के पथ पर वही चल सकता है जो वास्तविक वैराग्य भावना से विभूषित हो, तपोपूत हो, जिसकी ज्ञान, दर्शन, चारित्र के प्रति अविचल आस्था हो। जो इतना परिपक्व होगा, वही आगे बढ़ सकेगा। भाई मुझे सख्या नहीं साधना चाहिए। गुरु शिष्य का सबध स्थापित करने के पूर्व यह नितात आवश्यक है कि एक दूसरे को परख लें। निर्लिप्त, निस्पृह सत के अन्त करण के दर्शन वाणी एव व्यवहार से हो गये और नानालाल ने गुरु का चुनाव कर लिया।

इस प्रकार सिद्ध होता है कि भाषा अन्तरजीवन के दर्शन का एक मार्ग है। सस्कारो की सरिता शब्दपथ से गुजरती हुई विकास या विनाश को आमत्रित करती है।

तीसरा लक्षण है ऐषणा। गुरु स्वय सत्य की ऐषणा करने वाला खोजी होगा। आहार, वस्त्र, पात्र आदि जीवनयात्रा की सहायक आवश्यक वस्तुओं की वे जो गवेषणा, ग्रहणेषणा, परिभोगेषणा करते हैं उससे तो सारी अन्तर्वृत्तियो का प्रतिलेखन एव अनुसधान किया जा सकता है कि ये कितने गहरे मे अवतरण कर चुके है। ये लक्षण पर्याप्त हैं गुरु की खाज की दृष्टि से। सच्चे गुरु की खोज हेतु यही गहरे पानी मे पैठना है। इसी प्रकार खोज कर गुरुरूपी मुक्ता को प्राप्त किया जा सकता है। उथले, छिछले पानी में ऊपरी सतह पर तैरते ही रहे, तो क्या मिलेगा? यदि अथाह की थाह पाने की कोशिश नहीं करोगे, तो उस रत्नाकर के हृदयस्थल मे प्रच्छन्न खजाना कैसे पा सकोगे? डुबकी लगानी ही पड़ेगी, अन्तर मे पैठना ही पड़ेगा। भयभीत होकर किनारे पर बैठे रहने से मोती कैसे मिलेगा?

खोज का जिज्ञासु अदम्य साहसी यात्री सर्वप्रथम साधु-सतों की सन्निधि मे जाता है। जब भी खबर लगती है कि सत-महात्मा आये हैं, तुरन्त पहुँच जाता है, उनको देखता-परखता है। जब उनमें उसे कोई विशिष्टता दीखती है तब उनके साथ अपने आतरिक विचारों का तालमेल बैठाता है। शनै शनै रसरुचि वृद्धिगत होने लगती है और अत मे वह उन्हे अपना गुरु बना लेता है।

जब तक गुरु का निर्णय नहीं होता तब तक खोज जारी रखनी चाहिए परन्तु जैसे ही अपने योग्य गुरु को पा ले, फिर कोई तर्क विचार नहीं होना चाहिए। गुरु के चरणो मे सर्वतोभावेन श्रद्धायुक्त ऐसा समर्पण हो जाए कि, गुरु दिन को रात कहे तो उसे भी रात ही दीखे। इसमे न सदेह को कोई अवकाश होता है न तर्क-वितर्क या ऊहापोह की स्थिति बनती है। अनन्य श्रद्धा के रग से अनुरजित हृदय वाला

शिष्य गुरु मिलने के पश्चात् अपने मनोमस्तिष्क से विचारो को शून्य कर देता है तथा गुरु के विचारों के अनुरूप चलता है। ऐसा समर्पित शिष्य ही गुरु के पास रहता है और उन्नयन की दिशा मे गति करता है।

गुरु खोज के अनन्तर ज्ञान-चक्षु खोलने वाले शिक्षा गुरु, चारित्र की राह बनाने वाले दीक्षा गुरु स्वय ही आत्मा को जागृति प्रदान करने वाले समर्थ गुरु होते हैं। ऐसे गुरु के सत् सान्निध्य मे रहना सत्सग है। सत्य के सग रहना खोज के बाद का चरण है। गुरु सत्य का ही पर्याय है। जिस अन्तर-पिपासा से प्रेरित होकर गुरु को पाया उसकी प्राप्ति के पश्चात् पिपासा उपशान्ति का क्षण प्रारभ हो जाता है। इसलिए आप्त पुरुषों ने इगित किया कि गुरु के सान्निध्य में रहें।

गुरु के सान्निध्य मे रहने के अर्थ गाभीर्य को समझे। गुरु के पास बसने का तात्पर्य उनके इगित आकारों के अनुरूप ही अपनी गति एव क्रिया हो जिससे चैतन्य जागरण और आत्मदर्शन का महायात्री गुरु अपने शिष्य की अन्त चेतना को जगाकर उसके कण-कण मे आलोक भर सके। गुरु माझीवत अपने शिष्य को आध्यात्मिक ज्ञानोपदेश के द्वारा अज्ञान-सरिता के पार उतारकर प्रकाश के लोक में ले जाता है।

ऐसी शिक्षा, दीक्षा में समर्थ गुरु आचार्य श्री नानेश ने अपने सरक्षण उपपात में रहने वाले अपने विनीत समर्पित शिष्यमडल को अपनी अत ऊर्जा से स्फुरित तथा स्पन्दित किया, उन्हें विशिष्ट आकार प्रकार में ढाला, उन्नयन के शिखर की महायात्रा का दिग्दर्शन कराया, आत्मानद प्राप्ति के गुर सिखाये, यावत मोक्ष प्राप्ति की दिशा की पहिचान कराई और समता-साधना तथा समीक्षणध्यान साघना के पथ पर अग्रसर किया।

ऐसे समता-साधक ऊर्जा-पुरुष को पाना महासौभाग्य का विषय था। आचार्य भगवन् को स्वय जो शोध करनी पड़ी थी उसका इतिहास भी आँखें खोलने वाला है। उन्होंने भिन्न-भिन्न तरह के साधु-सतों का समागम किया था। सभी की अलग शैली और अलग ढग था। एक ने कहा था—बच्चा, हमारे पास साधु बनेगा तो तुझे किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। खूब आराम से रखेंगे। दूसरे ने कहा था—हमारा चेला बनेगा तो हम तुझे अपनी सब विद्याएँ सिखायेंगे। तीसरे ने प्रलोभन दिया था—मेरा शिष्य बनेगा तो तुझे सप्रदाय का प्रमुख बना दूगा। चौथे ने अपनी प्रतिष्ठा का प्रदर्शन करते हुए कहा था—अधिक दौड़-धूप और सोच-विचार की आवश्यकता नहीं है। हमारे जैसे सत और सप्रदाय तुझे अन्यत्र नहीं मिलेंगे। हमारे यहाँ सयमी जीवन की क्रियाओं का कठोरता से पालन होता है। शिष्य बनाने के कई प्रकार के आकर्षणो ने, गुरु को कैसा होना चाहिए इस चितन को अधिक प्रखर बना दिया था। जहाँ जाते ही जिसके चरणो में आत्मशाति, तृप्ति, आत्मिक आनद की अनुभूति हो, हृदय जिसे बिना किसी ऊहापोह के स्वीकार कर ले, वही तो वास्तविक गुरु होता है। आज की सस्कृति में पालित-पोषित मानसिकता वाले, आत्मकल्याण की स्थिति के ज्ञान से कोसों दूर तथाकथित धार्मिक परिवेश मे जीने वालो का कई जिज्ञासुओ का विचार होता है कि सभी सत हमारे गुरु हैं। एक के प्रति श्रद्धा-समर्पण करके एक सप्रदाय मे बधना कहाँ की बुद्धिमत्ता है ? ऐसे विचित्र चितक जिदगीभर इधर-उधर धक्के खाते, भटकते ही रहते हैं। उनकी स्थिति वैसी ही होती है जैसी कि बाजार में जाकर दूकानो मे झाककर वस्तु के दाम-भाव पूछने वालो की, जिन्हें खरीदना कुछ भी नहीं होता। ऐसे लोग सिर्फ शक्ति और समय को नष्ट करते हैं, उनके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता।

समर्पण एक के प्रति ही होता है, उसके चरणों में अर्पित होकर सब कुछ पाया जा सकता है। 'एकै साधै सब सधे, सब साधे सब जाय —जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ।'

जो एक को जान लेता है वह सपूर्ण का ज्ञाता बन सकता है, यह बात समझ लेने की है।

गुरु के प्रति समर्पण किये बिना समस्त के प्रति समर्पण नहीं कर पाओगे। पहले एक की साधना करो समस्त की, समष्टि की साधना स्वत ही सिद्ध होगी। खोजने के बाद भी कितना गहरा अतर में पैठना पड़ता है। गहरे में गये बिना कुछ

जीवाणापि य ण अक्खरस्स अणत भागो, निच्चुग्घाडियो जइ पुण सोऽवि आवरिज्जा तेण जीवो आजीवच पाविज्जा', अर्थात् सभी जीवो मे अक्षर का अनतवा भाग हमेशा अनावृत रहता ही है। यदि वह भी आवृत हो जाय तो जीव अजीव हो जायेगा। ज्ञान आत्मा का मौलिक गुण है। गुण कभी गुणी से सर्वथा अलग नहीं हो सकता, आवरण की न्यूनाधिकता भले हो सकती है। पृथ्वीकाय आदि प्राणियों मे भी यह ज्ञानाश रहता है भले ही वह विपर्यय रूप मे ही हो, पर है वह भी ज्ञान का ही पर्याय। मिथ्यात्व के कारण दृष्टि मे विपर्यास बना हुआ है। विपर्यास के हटते ही उसकी परिणति सम्यक् रूप मे हो जायेगी जैसा कि जैन दर्शन मानता है कि अधकार के पुद्गल ही प्रकाश मे परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसा नहीं कि कमरे में जो अधकार है पहले उसे हटायें तब स्विच 'आन' करने पर बाहर स नवीन प्रकाश का आयात होगा, अपितु अधकार के जो अशुभ पुद्गल हैं, वे ही अधकार की पर्याय से प्रकाश मे परिवर्तित हो जाते हैं। यह है वह सैद्धान्तिक तथ्य जो विकास की सभावनाए व्यक्त करता है।

व्यक्ति के भीतर भी उत्थान की असीम सभावनाएँ अतर्निहित होती हैं, जिनके विदोहन की आवश्यकता होती है। दीप जब कमरे की चारदीवारी मे जलता है तब उस कमरे को ही प्रकाशमान करता है किन्तु यदि उसी दीप को देहरी पर रख दिया जाय तो वह बाहर-भीतर दोनो तरफ अपना प्रकाश विकीर्ण करने लगता है। और यदि उस दीप की लौ का स्पर्श अन्य तेल-बाती युक्त दीपो से हो जाय तो एक के बाद एक सहस्रों दीप आलोकित हो कर सम्पूर्ण परिवेश को आलोकित कर सकते हैं। यही सत्य उस रूपक का आधार है जो दीप के आदित्य बनने की बात कहता है। ऐसा मूल दीप गुरु होता है जिनकी ज्ञान लौ का स्पर्श एक के बाद दूसरे और इस प्रकार सहस्रों-लाखो पचभूत दीपा को आलोकित कर देती है। इस प्रकार वह आलोक भौतिक स्थानों तक ही नहीं, मन, हृदय, बुद्धि और आत्मा के गुह्य प्रदेशों तक पहुँचकर उन्हे आलोकित करने की क्षमता रखता है। ऐसा गुरु दीपक, आदित्य ही नहीं, आदित्य से भी अधिक प्रखर और प्रभावी प्रकाशस्रोत होता है।

दीप शब्द कहते ही हृदय मे एक चित्र उभरता है ऐसे पात्र का जो स्वय प्रज्वलित होकर दूसरो को प्रकाशित करता है। परन्तु क्या दीप स्वय जलता है? दीप स्वय नहीं जलता, जलता है स्नेह या तेल और जलती है बाती यद्यपि स्वय जलने का श्रेय दीप को मिल जाता है। इसका भी कारण है। दीप वह आधार प्रदान करता है, वह माध्यम बनता है जो तेल और बाती को सयुक्त करता है। सिर्फ बाती या सिर्फ तेल से स्थिर प्रकाश उत्पन्न नहीं हो सकता। तेल से आर्द्र बनी बाती दीपाधार को पाकर लौ बनती है, प्रकाश बनती है और अधकार को विदीर्ण करने का माध्यम बनती है। पात्र आधारभूत होता है, आधार के सहारे ही आधेय टिकता है, द्रव्य, गुण और पर्याय से युक्त होता है, तीनों की सयुति का प्रतीक बनता है तभी उस महिमा का अधिकारी बनता है जो दीप को प्रकाश के स्रोत और अधकार के सहारक बनने के प्रतीक के रूप में प्राप्त होती है। जैसे प्रकाश को माध्यम बनाकर अथवा उसके सहारे व्यक्ति पदार्थो का बोध कर पाता है वैसे ही आत्मज्ञान प्राप्त कर अपने पथ का द्रष्टा तो बनता ही है दूसरो को भी वह उनक पथ का सम्यक् ज्ञान करा सकता है। गुरु-दीप आदित्य बन कर इसी महान् दायित्व का निर्वाह करता है।

> जो हमारे सामने सर्वोत्तम है, उपमा उसी से दी जा सकती है अर्थात् हमारी बुद्धि उसी के आधार पर विराटता को हृदयगम कर सकती है। यह हमारी दृष्टि की सीमा भी है और उसका विस्तार भी। इसीलिए आचार्य श्री नानेश का व्यक्तित्व ज्ञान की प्रखर रश्मियों और आचार की तेजस्विता का आधार प्राप्त कर दीप से आदित्य के पर्याय में रूपान्तरित हो गया।

सदर्भ हैं आचार्य श्री नानेश जिन्होने अपने आत्मदीप की ज्योति को इतना प्रकाशमान बनाया कि वह आदित्य से भी अधिक जाज्वल्यमान हो गया। यह कोई अनहोनी बात भी नहीं थी। तीर्थकर देवों की स्तुति करते हुए कहा जाता है- *'आइच्चेसु अहिय पयासयरा'*, एक सूर्य स नहीं अनेक सूर्यो से भी जो अधिक प्रकाश वाले हैं। ऐसा कहने का कारण हे। कारण यह हे कि उनके ज्ञान-प्रकाश से

कोई भी कोना वचित नहीं रह पाता। इससे भी बढकर बात यह है कि उनकी तेजस्विता मे आतप नहीं है अचिन्त्य शाति है, शीतलता है। हमारे इस दृश्य जगत् मे सूर्य से अधिक प्रकाशमान वस्तु उपलब्ध नहीं है। जो हमारे सामने सर्वोत्तम है, उपमा उसी से दी जा सकती है अर्थात् हमारी बुद्धि उसी के आधार पर विराटता को हृदयगम कर सकती है। यह हमारी दृष्टि की सीमा भी है और उसका विस्तार भी। इसीलिए आचार्य श्री नानेश का व्यक्तित्व ज्ञान की प्रखर रश्मियों और आचार की तेजस्विता का आधार प्राप्त कर दीप से आदित्य के पर्याय में परिवर्तित हो गया। आचार्य के पद पर प्रतिष्ठित होकर इस आदित्य ने विश्वव्यापी विषमता के तम का उन्मूलन करने हेतु समता की ऐसी दिव्य रश्मियाँ बिखेरीं कि जगत् का कोना-कोना आलोकित हो उठा। अपनी ऊर्जा की प्रखरता से उन्होने यदि सामाजिक कुरीतियो, कुविचारों और कुसस्कारो के कीटाणुओं को भस्मीभूत किया, तो तनावो से ग्रस्त मन और हृदय पर आत्म समीक्षण का चदन-लेप कर उसे शीतलता भी पहुँचाई। उनके प्रवचनों ने शाति, सतोष और समभाव की त्रिवेणी प्रवाहित कर समाज के सभी वर्गों के लोगो को उसमे अवगाहन कर कलिमल धो डालने के अपूर्व अवसर प्रदान किये।

आचार्य नानेश गुरु थे, आचार्य थे। गुरु के प्रति भारतीय मनीषा भावोद्गार के रूप मे अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती रही है–

गुरु दीपक, गुरु चाँदणो, गुरु बिन घोर अधार।
पलक न विसरूँ तुम भणी, गुरु मुझ प्राणाधार।।

गुरु स्वय जलकर अर्थात् स्वय ज्ञान सम्पन्न होकर दूसरो को प्रकाश अर्थात् ज्ञान प्रदान करते हैं। इसीलिए गुरु को ब्रह्मा, विष्णु, महेश ही नहीं साक्षात् परमेश्वर तक कहा गया है। इस दृष्टि से आचार्य श्री नानेश का जीवन एक प्रज्वलित दीपक के समान रहा। उनकी चेतना मे कितनी ऊर्जा थी, गुरु की कृपा प्राप्त करने के लिये उन्होने कितने कष्ट उठाये, किस प्रकार कठोर सयम साधना द्वारा वे उस कृपा के अधिकारी बने, तत्पश्चात् कैसे तपस्या की अग्नि मे स्वय को जलाते हुए दीपक के समान प्रकाशवत बने, यह उनके जीवन का ऐसा इतिहास है जो जगविदित है। अपने प्रकाश द्वारा लोक को प्रकाशित करने तथा अन्य दीप प्रज्वलित करने के उनके प्रयासो को सम्पूर्ण समाज जानता है। 60 वर्षो के अपने साधुकाल के दौरान उन्होने 60 चातुर्मासों, हजारो किलोमीटर की पदयात्राओ तथा विपुल साहित्य के निर्माण द्वारा जो कुछ प्रदान किया वह सब प्रखर प्रकाश रश्मियो का पुज ही तो था जो अधकार भेदन का माध्यम बना। उन्हे ज्ञात था कि समाज के अधकारपूर्ण स्थल कौन-कौन से हैं, कहाँ-कहाँ हैं तथा वे कितने सुगम या दुर्गम हैं। साथ ही वे युगीन परिस्थितियों के आग्रहो एव मनुष्य की उन आग्रहों के प्रति प्रतिक्रियाओ के रूपो से भी परिचित थे इसीलिए उन्होने समाज के सभी वर्गो के लोगों के उपयोग के लिये ज्ञान-सामग्री को विविध रूपो में सयोजित कर तथा सुपाच्य बना कर प्रस्तुत किया। एक कुशल वैद्य रोगी की प्रकृति का विचार कर ही उपयुक्त औषध एव उसकी उचित मात्रा निर्धारित करता है तभी वह आबाल वृद्ध नर-नारियो की सम्यक् चिकित्सा कर पाता है। आचार्य श्री नानेश का जीवन-चरित्र इस बात का प्रमाण है कि भव रोगों के विशेषज्ञ चिकित्सक के रूप मे उन्हे यह कुशलता प्राप्त थी। आदित्य के रूपक के सदर्भ मे यदि बात करे तो उन्होने आदित्य के समान ही सभी पर, बिना किसी भेदभाव अथवा सकोच के, समभाव से, अपनी ज्ञान रश्मियाँ विकीर्ण की थीं। यही नहीं, उन्होने उन रश्मियो को आवश्यकता एव अपेक्षा के अनुसार वक्र, केन्द्रित, परावर्तित, अपवर्तित कर अथवा अन्य प्रकार से अनुदेशित कर उन गुह्य क्षेत्रो में भी पहुँचाया जिन तक सूर्य से आने वाली किरणें पहुँच नहीं पाती हैं। इस प्रकार अध्यात्म, चिन्तन, जीवनचर्या, मनोविज्ञान आदि के क्षेत्रों को उन्होंने प्रकाशित किया। दीप के रूप मे प्रज्वलित होकर तथा आदित्य के रूप मे विकसित होकर उन्होंने अन्तर्जगत् और बहिर्जगत् के विविध क्षेत्रो को आलोकित करने का जो चमत्कारी कार्य किया वह निश्चय ही एक अलौकिक सत के रूप में उन्हें प्रतिष्ठित करता है।

◆

साध्वी सुमतिश्री

एक पदयात्री धर्म-पथ का

'यात्रा' शब्द जितना सुहावना और अर्थपूर्ण है, उतनी ही उसकी सफलता श्रम, सकल्प, साहस एव धैर्य सापेक्ष है। हम सभी यात्रा कर रहे हैं और अनवरत कर रहे है, बिना रुके कर रहे हैं और अनत काल से कर रहे है। इस विश्व के लोकाकाश के कण-कण को स्पर्श किया है, फिर भी यात्रा का अत दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। जन्म-मरण-जीवन की त्रिपदी का पुनरावर्तन करते रहे, लेकिन वह मजिल नहीं मिल पायी, जहाँ पहुँच कर विश्राम मिल सके और आने-जाने का सकट समाप्त हो जाये। परन्तु अपुनरावर्तनीय गति की उपलब्धि कर्म सयुक्त आत्मा को कहाँ ?

निगोद से नरक तक की दूरी तय की, तिर्यंच से देवों तक की विभिन्न अवस्थाओं को भी अनेक बार पा लिया। लोक के इस छोर से उस छोर तक एक समय मे गति करने की शक्ति भी मिली, फिर भी यात्रा तो अतहीन रही, द्रौपदी के चीर की तरह पथ दीर्घ होता ही रहा। जड़ की भी अपनी गति है। पुद्‌गल अजीव तत्त्व भी गतिमान तत्त्व है। जीव की तरह परमाणु भी इस छोर से उस छार तक लोकान्त को समय मात्र मे स्पर्श कर सकता है बिना किसी उद्देश्य क। तव क्या इस यात्रा का कोई अर्थ है ?

उत्पाद और व्यय लगातार द्रव्य के पर्याय को वदल रहे हैं। पर्याय की अनन्तता में ध्रौव्य तत्त्व से द्रव्य अपने में स्थिर है। गति और स्थिति जगत का क्रम अनादिकाल से चल रहा है। नरक तिर्यच और देव अपनी स्थिति में लक्ष्य को केन्द्रित नहीं कर पाते। वह सिर्फ मनुष्य ही है जा सृष्टि का सर्वोच्च विचारशील प्राणी है और वही चितन-मनन की गहराइयों म उतर कर अपनी जीवन-यात्रा को व्यवस्थित रूप दे सकता है। हाँ, यह सभव है कि लक्ष्यभेद के अनुसार दिशाभेद हो। तव अपन विचारा के अनुरूप मजिल होगी और मजिल के अनुसार ही पथ निर्धारित होगा। वह यदि बाह्य जगत की यात्रा करना चाहता है, प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्यों की खोज में अपने जीवन के सपूर्ण समय को समर्पित करता है तो बौद्धिक क्षयोपशम और साधनों की तारतम्यता के अनुरूप

बाहर की शोध सफल बनती है। लेकिन वह सफलता चरम और परम नहीं है। वह तो आशिक है।

दूसरे प्रकार के वे यात्री हैं जो अलौकिक पथ से गुजरते हुए अनुत्तर मजिल पर पहुँचने का जीवटपूर्ण सकल्प करते हैं। यह अध्यात्म की यात्रा है, बड़ी अद्भुत और बड़ी विलक्षण। हर कोई इसे नहीं कर पाता। कर पाने की बात तो दूर रही इस ओर बहुत ही कम मानवों का ध्यान जाता है। अन्तर की यात्रा की उमग पैदा भी हो गयी तो कुछ दूर जाकर पुन लौट पड़ते हैं, बाहर की ओर। घबराहट होने लगती है। भीतर के जगत् में प्रवेश सहज नहीं है। अध्यात्म शब्द जितना आनदपूर्ण सुनने में लगता है उतना ही उसका अनुशीलन कठिन है क्योंकि बाहरी यात्रापथ से यह अध्यात्मपथ बिल्कुल अलग और अनोखा है। बाहरी यात्रा में तो इद्रियो का प्रयोग, साधनो का उपयोग और कई साथियो का सहयोग भी रहता है मगर अन्तर की यात्रा में तो निपट एकाकी चलना पड़ता है, इद्रियों से विरक्त होकर और साधनों को त्याग कर। साथियो को भी उस यात्रा में साथ नहीं लिया जा सकता। उसका पथ भी अनुभूति का पथ है जिसका कोई आकार है न कोई प्रकार। चलने वाला यात्री स्वय यह पथ बनाता रहता है। आकाश मे पक्षी उड़ता है तो वह कोई ऐसा मार्ग नहीं बनाता जिसका दूसरे विहग उपयोग कर सकें। स्वय के पथ का निर्माता स्वय ही है। वह अलौकिक पथ है— 'धर्मपथ'।

इसी धर्मपथ पर अनत से मुमुक्षु आत्माएँ चलती रही हैं। सख्यातीत आत्माओं ने इस पथ पर चलकर शिवपुरी में प्रवेश किया। सिद्धि सौध में अनत के लिये ऐसा विश्रामस्थल बना लिया जहाँ से पुन लौटना न पड़े। ऐसे अप्रतिम धर्मपथ के पदयात्री बने क्रान्तपुरोधा युगपुरुष आचार्य श्री नानेश।

> महान् आध्यात्मिक सत आचार्य श्री नानेश ने पदयात्री के रूप में मोक्ष-मार्ग पर चल कर अपने जीवन की यात्रा पूरी की। उन्होंने निर्वाण का लक्ष्य तो प्राप्त किया ही, सयम-साधना के क्षेत्र को भी अलकृत किया। अपने पथ पर अडिग, अविचल चलते रहे और 'णमो लोए सव्वसाहूण' के पद से 'णमो आयरियाणं' पद पर आरूढ़ हो गये। अपने अंतर को, सघ-नायक बनने के बाद भी क्षणभर को भी विस्मृत नहीं कर पाये। अद्भुत योगी समत्व की मशाल लेकर अधियारे गलियारों, वीथिकाओं, पथों को प्रकाशित करते चले गये। जहाँ भी इस महायोगी के पदपकज के स्पर्श से धरा सुवासित हुई वहाँ भक्त भ्रमर मंडराने लगे। गुणगुजन गुजनरव बढ़ता ही गया पर धर्मपथ लोकैषणा का पथ नहीं बना।

आचार्यश्री को जगत् का परिदृश्य देखने मिला और आगामी काल का वर्णन उन्हें रोमाचित कर गया। चितन की धारा ने मोड़ लिया और भीतर की धरा पर प्रवाहित हो गयी। तभी से समूचा जीवन बस अतर की ही परिक्रमा में लीन हो गया। सत्यान्वेषी बनकर आत्म साक्षात्कार की प्रचड जिज्ञासा अन्तर मे उद्भूत हो गयी। अपना सकल्प दृढ़ कर लिया और अविचल भाव से उस पावन सकल्प के प्रति समर्पित हो गये।

सत्यदर्शन दुष्कर है सत्य की यात्रा दुरूह है। ऐसी कठिन यात्रा पर निकल पड़े पदयात्री के रूप में आचार्य श्री नानेश। यात्रा वाहनों से भी की जा सकती है और बिना साधनों के भी सभव है। वाहनों की यात्रा का पथ सीमित होता है। बीच मार्ग में वाहन खराब भी हो सकते हैं तब यात्रा स्थगित करनी पड़ती है। कई समस्याओं के साथ जुड़ी है यह बाहर की यात्रा। बिना वाहन की यात्रा सीमातीत पथ वाली है। साहसी साधक अनवरत चलता ही रहता है। देह का सयोग भी बीच में न मिले फिर भी यात्रा मे कोई व्यवधान नहीं आता। आत्मिक शक्तियो से, आत्मबल से चरम केन्द्र तक पहुँच ही जाता है। वह यात्रा पद से भी सबधित है अर्थात् पैरों से अपनी बाहरी चर्या करता हुआ अध्यात्म को पोषित करता है।

पदयात्रा अन्तरयात्रा को कैसे पुष्ट करती है। जब साधक साधना की गहराइयों में डूबता है तब शरीर साधना सहयोगी बनकर उसे प्रगति की दिशा देती है। धर्मपथ पर गमन करने वाला साधक का शरीर औदारिक वर्गणाओं से निर्मित होता है और पृथ्वी पर

चलते वक्त उसका औदारिक वर्गणाओ से निर्मित धरती का गुरुत्वाकर्षण पैरो के माध्यम से ऊर्जा को परिवर्द्धित करता है। बहुत बड़ा विज्ञान है इस पदयात्रा का। पैरो मे सारे शरीर के अवयवो के केन्द्रबिन्दु समाहित हैं। खुले पैरो से पृथ्वी तत्त्व का सीधा सम्पर्क होता है जो मस्तिष्क तक के सारे अवयवो और कोशिकाओ को सक्रिय कर देता है। शरीर मे उत्पन्न होने वाली तरगे सूक्ष्म शरीर तक पहुँचती हैं और अध्यात्म के द्वार अनावृत करने में सहयोगी बनती हैं।

महान् आध्यात्मिक सत आचार्य श्री नानेश ने पदयात्री के रूप मे मोक्ष मार्ग पर चल कर अपने जीवन की यात्रा पूर्ण की। उन्होने निर्वाण का लक्ष्य तो प्राप्त किया ही सयम-साधना के क्षेत्र को भी अलकृत किया। अपने पथ पर अडिग, अविचल चलते रहे और 'णमो लोए सव्वसाहूण' के पद से 'णमो आयरियाण', पर आरूढ़ हो गये। अपने अन्तर को सघनायक बनने के बाद भी क्षणभर को भी विस्मृत नहीं कर पाये। पद-प्रतिष्ठा हजारो हजार श्रद्धासिक्त अनुयायियों की भीड़ भी उन्हे अन्तर की यात्रा से इच भर भी डिगा नहीं सकी। अद्भुत योगी, समत्व की मशाल लकर अधियारे गलियारो की वीथिकाआ और पर्थों को प्रकाशित करते चलते गये। जहाँ भी इस महायोगी के पदपकज के स्पर्श से धरा सुवासित हुई वहाँ भक्त भ्रमर मडराने लगे। गुण गुजन गुजनरव बढता ही गया पर धर्मपथ लोकैषणा का पथ नहीं बना।

इस साहसी पदयात्री की सफल यात्रा को देख-देख कर प्रमुदित होने वाले तो प्रणतिपूर्वक समर्पित हो गये श्री चरणों मे, पावन पदपरिधि में प्रविष्ट हो गये। पर कुछ विघ्न-सतोषी मानवो ने धर्मपथ पर ईर्ष्या के शूल बिखेर दिये, वैर की अग्नि भडका दी, अफवाहो के बवडर खडे कर दिये। पर वह अलबेला अवधूत अपनी ही मस्ती में आत्मानद में डूबा चलता ही रहा। कोई प्रभावित नहीं कर पाया उसकी गति, कोई नहीं हटा पाया उसे अपनी डगर से।

कदम दर कदम समीक्षण-ध्यान के साथ सयमपथ पर आगे से आगे जीवन की अतिम श्वासों तक बढता ही रहा। स्वय के साथ सैकड़ो को उस पथ का राही बना दिया। ऐसा था वह 'नाना' 'गरु' जो सार्थवाह बन अपने सयमी काफिले को सार्थ के रूप मे साथ ले बीहड़ आटविकों को पार करता ही गया। कितनी भव्य यात्रा हुई इस जीवन मे आचार्य श्री नानेश की, यह शब्दसीमा से परे है, मात्र अनुभूति का विषय है।

अपने जीवन मे सयमित राह से हटकर आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों और सुविधा-साधनो को जिसने धर्मप्रचार का साधन नहीं बनाया, अहिसा का कीर्तिध्वज बन सिद्धाता से हटकर कभी किसी बात पर समझौता नहीं किया, एकता के जो पूर्ण हिमायती रहे पर चारित्र निष्ठा के साथ आगमीय धरातल पर ही एकता को चाहते रहे, ऐसे ध्रुवनैष्ठिक क्रान्ति के उद्‌गाता सिद्ध हुए आचार्य श्री नानेश। परिवर्तन के युग मे भी उन्होने श्रमण सस्कृति की सुरक्षा करके साधना के तजस से आत्मानुशासन के कीर्तिमान स्थापित किये। मानवता के मसीहा बनकर पतितो को पावन किया। उन्हें धर्म के पथ पर चलना सिखाया। गिरे हुओं को गले लगाया। यही नहीं, परमात्मपद तक पहुँचने की सारी प्रक्रिया योग्यतम पात्र को प्रदान की। फिर भी वे अपने आपमें अद्‌भुत एकाकी साधक ही बने रहे। अप्रमत्त, सहिष्णुता के साथ भीतर की पर्तो को उघाड़ते ही रहे। गहर से गहरे उतरते ही गये और उन गहराइयो मे डूबकर बहुत कुछ पाया, पाया ही नहीं जनकल्याणार्थ दिया और अनुभूति को अभिव्यक्ति देकर विश्व के परम आराध्य के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

अध्यात्म के पथिक आचार्य श्री नानेश ने यात्रा को बहुआयामी बनाया। हर पड़ाव को धार्मिक आयोजनों का रूप देकर वे समाज को नई दिशा और नई गति प्रदान करते रहे। यात्रा के दौरान सस्कार क्रान्ति, ब्रह्मचर्य-अभियान, दहेज प्रथा उन्मूलन, व्यसनमुक्ति, पर्यावरण सुरक्षा आदि का जीवत उद्‌घोष करते रहे।

समतादर्शन मे विषमता की खाइयो को पाटा। वैमनस्य की गुत्थियों को सुलझाया, गाँव-गाँव घर-घर पहुँचकर। मानवमात्र को तनाव से मुक्त कर परमशाति के केन्द्र तक पहुँचने की सीख दी। क्या नहीं किया आपने इस अलौकिक यात्रा में? धर्मपथ पर चलकर इस अध्यात्म-यात्री ने शिथिलाचार के प्रवाह में बहने वाले, भौतिक चकाचौंध में सयमी जीवन की आभा को खोने वाले

और आत्म-प्रवचना में लगे तथाकथित धार्मिक परिवेश में अधर्म को पोषित करने वाले साधको के समक्ष धर्म का सत्य-सम्यक् रूप उद्घाटित किया तथा उन्हें ज्ञान और सदाचरण से अनुप्राणित किया।

आज के युग मे भी सयम की सम्यक् रूप से आराधना की जा सकती है तथा धर्मपथ पर इच-इच चला जा सकता है, कोई व्यवधान नहीं, न ही कोई खतरा। चाहिये चलने की दृढ़ इच्छा, प्रबल मनोबल, साहस और धैर्य। हुक्म गच्छ के प्रत्येक आचार्य मे इनका उज्ज्वलतर रूप दिखाई दिया। आचार्य श्री नानेश तक पहुँचते हुए युग काफी बदल चुका था, पर तपोधनी, क्रियोद्धारक आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा से लेकर शात क्राति के अग्रदूत गणेशाचार्य तक के आचार-व्यवहार का एक-एक कण जीया आचार्य श्री नानेश ने।

प्रकाश के प्रेरक पुज, आचार्य श्री नानेश ने 'किजीवनम्' जिज्ञासा का सुदर समाधान प्रस्तुत करते हुए 'सम्यग् निर्णायकम् समतामयञ्ज यत् तज्जीवनम्' जीवन को परिभाषित करते हुए बताया कि समत्व ही जीवन का केन्द्र है, विषमता ही सघर्ष और हिसा की जननी है तथा चेतना को अधोगति में ले जाने वाली है। उन्होंने अनासक्त भावो से जीने का मार्ग भी बताया। इस तरह आत्मज्ञान की साधना करते-कराते हुए आचार्यश्री ने अपनी यात्रा सुखद और आनदपूर्ण रूप में पूर्ण की।

अपने जीवन के अतिम पड़ाव पर आगामी यात्रा के लिये, सफल सफर के लिये, विपुल पाथेय भी सग में सन्निहित किया। बाह्य पदार्थो से, पुद्गलो से, ममत्व मूर्च्छा परित्याग का मार्ग बताने वाले महापथिक ने अतिम श्वास-प्रश्वास मे भी यह सिद्ध कर दिया कि पदार्थ तो क्या, जिस देह मे जीवन बिताया, जो सयम सहयोगी बनी, जिसके द्वारा अनगिनत आस्थावानो को अनुगृहीत किया, जिस देह से अन्तर साधना का अमृत प्रवचनों के माध्यम से जन-जन को पिलाया, गाँव-गाँव में विचरण कर उस धरा को तीर्थस्थली का रूप दिया, ऐसी उपकृतियो के केन्द्र तन में बिना किसी ममत्व भाव के विसर्जन की सुदरतम प्रक्रिया घटित कर ली।

विश्व के प्राणो के सवाहक ऐसे अद्वितीय व्यक्तित्व वाले आचार्य भगवन् के जीवन का आद्योपान्त गुणानुवाद कोई भी हस्ती नहीं कर पायेगी। उन की धर्मपथ के राजमार्ग की यात्रा अनुपम आध्यात्मिक आनद की यात्रा थी जिस से मुमुक्षु यात्री प्रेरणा ग्रहण कर अपने मार्ग पर अग्रसर होते रहेंगे। प्रकृति विभाव से आत्मस्वभाव की ओर इस सुदर यात्रा मे परम सौख्य की अनुभूति तो होती ही है इसके माध्यम से परमपद की उपलब्धि भी असदिग्ध है। धर्मपथ के ऐसे पदयात्री आचार्य श्री नानेश का आदर्श भव्य आत्माओं के लिये सदा ही प्रेरणा का स्रोत रहेगा।

◆

सेवा करने वाले व्यक्ति को यह सोचना चाहिये कि मैं सेवा अन्य की नहीं कर रहा हूँ, अपितु अपने आपकी ही कर रहा हूँ। अन्य की सेवा के निमित्त से स्वय की ही आत्मा का परिमार्जन कर रहा हूँ।

—आचार्य श्री नानेश

राजमल पिछोल्या

गुरु-भक्ति का अनुपम आदर्श · मुनि नानालाल
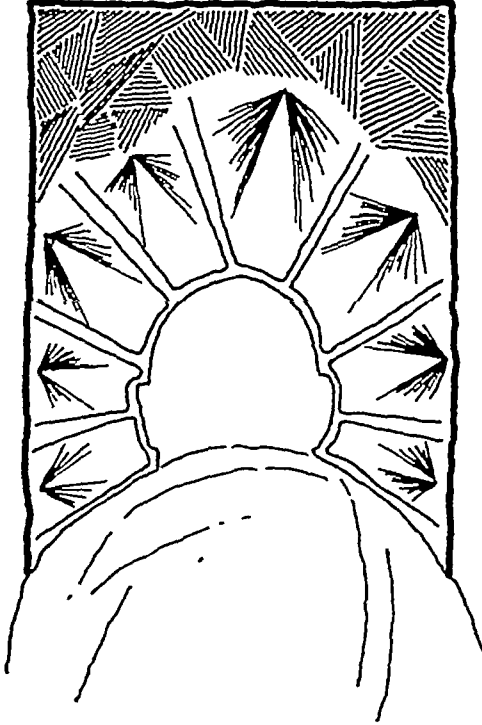
गुरु के रूप में आचार्य श्री नानालालजी म सा ने जो अपार ख्याति अर्जित की, समर्पित शिष्यों तथा चतुर्विध सघ की जैसी गहन श्रद्धा के वे अधिकारी बने, सयम साधना का जैसा आदर्श उन्होने स्थापित किया और गुरु-शिष्य परम्परा के पथ को जिस प्रकार आलोकित किया, वह साधना जगत् का एक अनुपम कीर्तिमान है परन्तु एक सत के ऐसे गौरवशाली पद तक वे अनायास ही नहीं पहुँच गये। सोना ही तप कर कुदन बनता है और सच्चा मोती ही विधता है। कहावत है कि पूत के पॉव पालने मे ही दिख जाते है, नानालाल की किशोरावस्था ने इसे चरितार्थ किया। गुरुपद की आवश्यक अर्हताएँ उन्होंने इसी जीवन मे दिखानी प्रारभ कर दी थी। कहते हैं—Those who would govern, must learn to obey अर्थात् जिन्हे शासन करना हो उन्हे पहले आज्ञापालन सीखना चाहिये। इस बात को यूँ भी कहा जा सकता है—जिन्हे गुरु बनना हो उन्हें पहले समर्पित शिष्य बनना चाहिए। परन्तु समर्पणभाव ओढा नहीं जा सकता, वह औपचारिक भी नहीं होता। वह तो आत्मप्रेरित होता है, अन्तरात्मा की लगन से जन्मता है, सहज ही प्रस्फुटित होता है और उद्दाम गति से प्रवाहित होता है। युवा नानालाल के हृदय में ऐसी ही अनुपम गुरुभक्ति सहजात रूप म उपस्थित थी। वस उसके प्रवाह मार्ग को उन्मुक्त कर देने के लिए उपयुक्त अवसर की आवश्यकता थी। वह अवसर उपस्थित हुआ भादसोड़ा मे स 1994 में मेवाड़ी मुनि श्री चौथमलजी म सा के प्रवचन के माध्यम से। परिणाम-स्वरूप स्रोत पर अड़ा पड़ा पाषाणखण्ड अन्तर्मन के उग्र प्रवाह ने वहा दिया और साधना की निर्मलधारा सहज रूप में प्रवाहित हो चली। भदेसर पहुँचते-पहुँचते उसने उद्दाम रूप धारण कर लिया और वह चली उस तीर्थ की ओर जो उसकी महिमा को प्रतिष्ठित कर देने वाला वनता। यह तीर्थ थे तत्कालीन युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा । ऐसे गुरु की खोज में सफलता भी कठिन साधना और लगन का परिणाम थी।

जिसके हृदय मे सच्ची गुरुभक्ति होती है, वह सच्चे गुरु की पहिचान भी कर लेता है। उत्कट गुरुभक्ति ने ही दीक्षाप्राप्ति हेतु उपयुक्त गुरु की तलाश में नानालाल को स्थान-स्थान पर भटकाया। गुरुपद का छद्म आवरण ओढे सतों से भी उनका सामना हुआ परन्तु आपकी कसौटी पर तो सोना ही परखा जा सकता था। गुरु की यह खोज ही उन्हें दाता से उदयपुर, बदनौर और ब्यावर भटकाती हुई कोटा ले गई, जहाँ युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के प्रथम दर्शन का ही उन पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने उनके आचार्यत्व में ही दीक्षा लेने का सकल्प कर लिया। गुरु योग्य थे इसका प्रमाण तो गुरु ने यह कह कर ही द दिया था कि दीक्षा लेने से पहले गुरु की परीक्षा कर लेनी चाहिए। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि उन्हें शिष्यो की जमात नहीं बढानी थी बल्कि अपना आत्मकल्याण करना था और गुरु एव शिष्य के बीच सबध सयम-साधना में पारस्परिक सहकार पर आधारित होने चाहिए। ऐसी खरी बातें सच्चा गुरु ही कह सकता था और इस सच्चाई को शिष्य बनने की सच्ची एव दृढ कामना रखने वाला श्रद्धालु शिष्य ही समझ सकता था। बस, गुरु में ऐसी आस्था उत्पन्न हुई कि नानालाल ने अपना तन-मन सर्वस्व गुरु चरणों में इस भावना से समर्पित कर दिया—

गुरु दीपक, गुरु चाँदणो, गुरु बिन घोर अधार।
पलक न बिसरूँ तुम भणी, गुरु मुझ प्राणाधार।।

और गुरु ने भी गद्गद् भाव से शिष्य को दीक्षा प्रदान कर दी। फिर गुरु की कृपा और आशीर्वाद से सयम पथ की यात्रा प्रारम हो गई। गुरु-शिष्य का यह सबध जैसा प्रगाढ़ बना उस पर कवि राजिया की यह उक्ति अत्यत सटीक बैठती है—

पर कर मेरु समान, आप रहे रज कण जिसा,
ते मानव धन जान, मृत्यु लोक मे राजिया।

> *समर्पित शिष्य ही सच्चा गुरु बनता है परन्तु समर्पण भाव ओढ़ा नहीं जा सकता, वह औपचारिक भी नहीं होता। वह तो आत्मप्रेरित होता है, अन्तरात्मा की लगन से जन्मता है, सहज ही प्रस्फुटित होता है और उद्दाम गति से प्रवाहित होता है।*
>
> *प्रकृति का नियम है कि जो बोओगे वही काटोगे। मुनि नानालाल ने गुरु-भक्ति बोई थी तो आचार्य नानालाल को गुरु-भक्ति काटनी ही थी।*

दीक्षित सत नानालाल का गुरु के प्रति यह समर्पणभाव भक्ति की कोटि मे आता है क्योंकि उनके भाव मे विशुद्ध श्रद्धा थी। जिस अनुराग में भाव की निर्मलता नहीं होती वह अनुराग (प्रेम) भक्ति नहीं कहला सकता, ससार के अनुराग मे वासना होती है इसलिए उसे भक्ति का रूप नहीं कहा जा सकता। परमात्मा, सत या शास्त्रों पर होने वाले विशुद्ध प्रेम को ही भक्ति कहा गया। भक्ति तर्क को पसन्द नहीं करती वह तो श्रद्धा-प्रसूत होती है यद्यपि उसमें विवेक का स्थान भी महत्त्वपूर्ण होता है।

जैनाचार्यो ने भक्ति को निष्काम कर्म माना है और उसका लक्ष्य मुक्ति। जब तक मुक्ति प्राप्ति न हो जाय तब तक भक्त भक्ति में लीन रहता है।

महाकवि धनजय कहते हैं—हे देव! इस प्रकार आपकी स्तुति कर मै आपसे कोई वर नहीं मागता—क्योकि किसी से मागना तो एक प्रकार की दीनता है, सच तो यह है हे प्रभु! आप उपेक्षक हैं—आप में न द्वेष है और न राग। राग बिना कोई किसी की आकाक्षा पूरी करने के लिए कैसे प्रवृत्त हो सकता है? तीसरी बात यह है कि छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठकर फिर उस वृक्ष से छाया की याचना करना तो बिल्कुल व्यर्थ है, क्योंकि वृक्ष के नीचे बैठने वाले को तो वह स्वत ही प्राप्त हो जाती है।

कल्याण मन्दिर स्तोत्र मे भक्ति की महिमा इस प्रकार वर्णित है—

यद्यस्ति नाथ! भवदघ्रि सरोरुहाणा
भक्ते फल किमपि सन्तत-सचिताया।
तन्मे त्वदेकशरणस्य शरण्य! भूया
स्वामी त्वमेव भुवनेऽत्र भवान्तरेऽपि

अर्थात् हे शरण्य! आपके चरण कमलों की सतत सचिता भक्ति का यदि कोई फल हो तो वह यही होना चाहिए कि इस जन्म और अगले जन्म में आप ही

मेरे स्वामी हों क्योकि आपके अतिरिक्त मेरी कोई शरण नहीं हो सकता। आचार्य मानतुग स्वामी ने भक्तम्बर के दसवे श्लोक मे गुरु की महिमा का इस प्रकार गान किया है—

नात्यद्भुत भुवनभूषण! भूतनाथ!
भूतैर गुणैर् भुवि भवन्तमभिष्टुवन्त।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन कि वा
भूत्याश्रित य इह नात्मसम करोति।।

हे तीनो भुवन के भूषण और समस्त प्राणियों के नाथ! आपके सद्गुणमय शुद्ध स्वरूप को भजने वाले कालान्तर में आपके सदृश ही वन जाते है इसमे आश्चर्य की क्या वात है।

महावीर ने कहा है—वीएण विणा सस्स इच्छादि, सो वासमब्भ एष लिणा। आराधण मिच्छतो आराधण भक्ति करतो (भगवती आ 750)

जो मनुष्य आराध्य (देव गुरु) की भक्ति के बिना रत्नत्रय की सिद्धि चाहता है, वह बीज के बिना अनाज की और वादलों के बिना वर्षा होने की इच्छा करता है।

जो सयम को धारण करता हुआ भी उन आराधनाओ के (पचपरमेष्ठी) की भक्ति नहीं करता वह ऊसर जमीन में अनाज बोता है।

श्री हरिभद्र सूरि ने भी कहा है—वदन, स्तुति, प्रार्थना, स्तवन आदि सभी भक्ति के अग है। वीतराग देव और निर्ग्रन्थ गुरु की भक्ति क्षीरसागर के मधुर अमृत के समान है। तथा—अहिसा सच्चम चोरिय, वमचेर असगया गुरुभक्ति नवो नाण अट्ठ पुष्पाणि यवुच्चई।

अर्थात् अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, निस्सगता, गुरुभक्ति, तप और ज्ञान, पूजा-भक्ति के आठ पुष्प हैं (आ हरिभद्र टीका 316)।

मुनि नानालाल की गुरुभक्ति मे पूजा-भक्ति के आठ और नवधा भक्ति के नौ प्रकार भी सम्मिलित थे—

श्रवण, कीर्तन, चितवन, सेवन वदन ध्यान। लघुता, समता, एकता नवधान भक्ति प्रधान (प बनारसीदास कृत समयसार नाटक, मोक्षद्वार टीका)

मुनि नानालाल की गुरुभक्ति का यह अनुपम आदर्श आने वाले काल मे सभी वर्गों के लिये (साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका) प्रेरणा-स्रोत रहेगा। आज भी वे सभी के लिए वदनीय एव पूजनीय है। आप भले ही शरीर से न रहे हो, आपके ये आदर्श सब को प्रकाश स्तभ की तरह सदा प्रकाश देते रहेगे।

आचाराग सूत्र के प्रथम स्कन्ध के प्रथम अध्याय में अनगार के तीन लक्षण बताये गये हैं—'उज्जुकडे नियण प्रतिपन्न-अमाय' जो स्वभाव से सरल हो, जिसका लक्ष्य भौतिकता व ऐश्वर्य को छोड़ कर्ममल से स्वय को मुक्त करना हो तथा जो अमायी हो, ऐसे तीनो गुणो से युक्त थे मुनि नानालाल, जिन्होंने 'जाए सद्धाए णिक्खतो तमेव अणुपालिजा' का पालन किया, यानी जिस श्रद्धा के साथ सयम पथ पर कदम वढ़ाया उसी श्रद्धा के साथ सयम-पालन किया।

वि स 1996 की पौष शुक्ला अष्टमी के दिन आपने कपासन मे स्व आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के मुखारविन्द से दीक्षा पाठ पढ़कर अपना जीवन गुरुचरणों में समर्पित कर दिया और कह दिया—'आणाए मामग धम्म' गुरु आज्ञा ही मेरा परम धर्म है।

आज्ञापालन करना, चित्त प्रसन्न रखना तथा विनय, शिष्य के लक्षण हैं। विनयी शिष्य को ही अक्षय खजाने की चावी मिलती है इसलिए आचाराग सूत्र म आज्ञाकारी शिष्य को पडित कहा गया है—'आणाकरवी पडिए' (आचाराग 4-3)।

आचार्यश्री की कोई इच्छा नहीं थी—'छदणि रोहेण उवेइ मोक्ख', अर्थात् अपनी इच्छा मे मोक्ष नहीं है—मोक्ष तो भगवान के वनाये मार्ग पर चलने में हैं।

आपने दीक्षा लेने के वाद एक या दो चातुर्मास अलग किये वाकी सभी वर्षावास गुरु की सेवा में किये। गुरु गणेश का उदयपुर में स्थिरावास होने के साथ ही आप गुरुसेवा मे ऐसे लगे जैसे नींद पर कावू पा लिया हो। स्वय इन्जेक्शन लगाना सीखकर इन्जेक्शन लगाना, गुरुदेव का स्वास्थ्य अत्यधिक खराव होने

पर घटों तक खड़े रहना, नाड़ी व श्वासोच्छवास की बारीकी से निगरानी रखते हुए आपको न खाने की चिन्ता रहती न सोने की। बस, एकमात्र लक्ष्य 'गुरुसेवा'। इसी प्रकार की सेवा आपने नाथद्वारा मे इन्द्रमलजी म सा की भी की थी।

मुनि नानालाल की सहनशीलता एव सेवा-भावना अत्यत उच्चकोटि की थी। उनका प्रथम चातुर्मास वि स 1997 मे फलोदी मे हुआ था। उस समय मुनि रत्नलालजी भिक्षावृत्ति आदि के सयोजन का कार्य करते थे। वे प्रकृति के तेज थे। उन्होने युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा को प्रकट रूप मे निवेदन किया, 'गुरुवर मुझे सभी पर किसी न किसी बात पर क्रोध आ जाता है। पर नवीन दीक्षित मुनि ने ऐसा जादू किया कि मेरा सारा क्रोध उनको देखकर काफूर हो जाता है। वे मेरे क्रोध पर हसते रहते हैं, शायद दो-चार वर्षावास इनके साथ करलू तो क्रोध अपने आप ही भग जावेगा।' ऐसे शात स्वभाव के थे मुनि नानालाल!

वि स 1998 में बीकानेर में प्रज्ञाचक्षु स्थविर मुनि श्रीचदजी की सेवा मे रहकर अपने स्वास्थ्य की चिता किये बिना आपने उनकी जो सेवा की वह सेवाधर्म का अनुपम उदाहरण है। वयोवृद्ध मुनि कहा करते थे—नवदीक्षित मुनि से सेवा की प्रेरणा सबको लेनी चाहिए।

वि स 1999 के ब्यावर चातुर्मास मे मुनि श्री प्यारचन्दजी म सा एव श्री बोथलालजी म सा की आपने अनुपम सेवा की तथा अपनी विनयशील एव सहिष्णु सेवा से सबका दिल जीत लिया। वृद्ध मुनि कहते कि ऐसा विनीत, कम बोलने वाला और ज्यादा सहने वाला साधु अपनी दीक्षा के इतने दीर्घकाल मे नहीं देखा—ऐसा विचक्षण साधु जरूर शासन में सितारा बन कर चमकेगा।

दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है—

हत्था सजए पाय सजए वाय सजए स ज इदिए। अज्झप्पराए सुसमा हियप्पा सुत्तत्थ च वियाण ई जे सभिक्खू (दशवै 10 अ 535 गाथा) अर्थात् वचन से जो सयत है वही इन्द्रियो को वश मे रखता है। जो सूत्र व अर्थ को यथार्थ रूप से जानता है वही भिक्षु कहलाता है। भिक्षु नानालाल ऐसे ही आत्मार्थी साधक थे। कषाय, उपशातता, निस्पृहता, मधुरभाषिता, दयालुता के गुण उनमे कूट-कूट कर भरे थे, वे गुणों के सागर थे।

आपकी विनयशीलता अनुपम थी। उत्तराध्ययन सूत्र मे कहा गया है—

आणाणि द्देस करे गुरुण भुव वाय कारए।

इगियागार सपण्णे से विणिये त्ति वच्चुई।। (उत्तरा प्रथम अ 2)

अर्थात् जो गुरुजनों की आज्ञा और निर्देश के अनुसार कार्य करता है, गुरुजनो के निकट रह कर सेवा करता है तथा इगित और आकार को सम्यक् प्रकार से जानता है, वह विनीत कहा जाता है। ऐसी विनयशीलता शिष्य नानालाल मे थी।

विनय, सेवा, भक्ति, श्रद्धा, क्या नहीं था नानालाल में अपने गुरु के प्रति? आदर्श शिष्य की जैसी कथाएँ लोक-साहित्य और धार्मिक साहित्य मे पढ़ने को मिलती हैं, गुरु के प्रति वैसी ही निष्ठा उन मे थी। इस अनुपम निष्ठा का प्रतिफल भी शिष्य नानालाल को मिला। जब उन्हें गुरु-पद प्राप्त हुआ तब उन्हे भी निष्ठावान समर्पित शिष्यो की ऐसी भक्ति मिली जैसी किसी आदर्श आचार्य को ही मिल सकती है। आखिर कुछ कारण तो रहा ही होगा जो उनकी नेश्राय में 350 से भी अधिक मुमुक्षु आत्माओं ने दीक्षा ग्रहण की। एक साथ सम्पन्न की गई 25 दीक्षाएँ तो अब तक सुरक्षित कीर्तिमान है। वैसे कोई भी कीर्तिमान इस जिन शासन प्रद्योतक के लिए बड़ा नहीं था। महत्त्व कर्म का होता है फल का नहीं, इसी दृष्टि से आचार्य श्री नानालाल जी म सा ने जिन शासन की सेवा की थी और यह प्रकृति का नियम है कि जो बोओगे वही काटोगे। मुनि नानालाल ने गुरु-भक्ति बोई थी तो आचार्य नानालाल को गुरु भक्ति काटनी भी थी। आचार्य नानेश जैसे शिष्य को यदि गुरु धन्य करते हैं तो वे भी अपने गुरु को गौरवान्वित करते हैं। गुरु-शिष्य सबधो की यह वह आदर्श स्थिति है जिस पर कोई भी समाज गर्व कर सकता है। ◆

साध्वी वनिताश्री

आचार्य श्री नानेश और उनकी आध्यात्मिक चिकित्सा-पद्धति
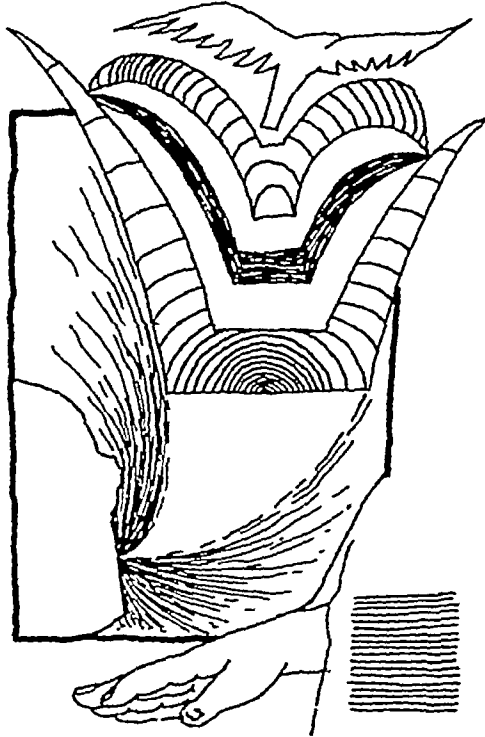
ससार म जीवनचर्या के दो प्रमुख मार्ग दृष्टिगोचर होते हैं—एक आध्यात्मिक, दूसरा भौतिक। दोनो मुख्य दीखते हुए भी एक-दूसरे से भिन्न हैं। आध्यात्मिक मार्ग व्यक्ति के पैर के समान है तो भौतिक मार्ग लकड़ी के सहारे के समान। लकड़ी भी चलने की क्रिया में सहायक होती है परन्तु पैर तो चलने का साधन ही हैं। उसी प्रकार प्रगति एव आत्मोन्नति के लिये आध्यात्मिकता की परम आवश्यकता है और वही साधन भी है।

अधि+आत्मा+इक। अधि उपसर्ग समीप अर्थ मे, आत्मा शब्द में, तत् सम्बधी अर्थ में इक् प्रत्यय लगाकर 'आध्यात्मिक' शब्द बना है। इस प्रकार आत्मा के समीप वास करना, आध्यात्मिक है। यदि क्षेत्र की दृष्टि से विचार किया जाय तो मनुष्य आध्यात्मिक प्राणी है क्योंकि उसका ही आत्मा से सबसे अधिक नैकट्य रहता है। भाव अर्थ मे कहें तो—आत्मा के गुणों के पास रहना और इतना पास रहना कि तद्मय अवस्था बन जाय। यह मनुष्य ही कर सकता है। आत्मा के गुण हैं—क्षमा, दया, सरलता, करुणा, त्याग, सौहार्द, प्रेम आदि। ये गुण जितनी मात्रा में किसी मनुष्य म होते हैं, उतनी ही मात्रा में वह आध्यात्मिक होता है। आध्यात्मिकता अपने आप मे एक सिद्ध शक्ति है जिसे प्रमाणित करने के लिये किसी दार्शनिक, वैज्ञानिक अथवा तार्किक की आवश्यकता नहीं।

आध्यात्मिकता ससार मे सर्वोपरि है क्योकि आध्यात्मिकता ही सर्वगुणा और सर्वशक्तियों का आधार है। आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा ही मनुष्य स्वार्थ, ईर्ष्या, द्वेष आदि के सकीर्ण घेरों से बाहर निकल कर परार्थ, प्रेम, त्याग, सदाशयता आदि मे स्थित हो सकता है। ससार में शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो अध्यात्म स पूर्णत रहित हो या उसकी पूर्ण उपेक्षा करता हो। हर व्यक्ति में अध्यात्म का कुछ अश तो रहता है ही यही कारण है कि वह किसी इष्ट से जुडता है, पारिवारिक कर्तव्य पालता है, मेलजोल के व्यावहारिक जीवन मे जीता है और कभी न कभी, किसी न किसी क्षण दया, प्रेम, त्याग,

सहृदयता आदि का व्यवहार करता है। यहाँ अध्यात्म अल्पाश मे होता है। ये आध्यात्मिक गुण ही जब विस्तार प्राप्त कर लेते हैं और आचरण के परम अग बन जाते हैं तब आध्यात्मिक जीवन का परिचय सबको त्यागी, वैरागी, सत, सन्यासी आदि मे प्रत्यक्ष रूप में मिलने लगता है। ये त्यागी, वैरागी, सत आदि ही अपने आदर्शो से सामान्य जनो को प्रभावित कर उनके अतर मे समाये भौतिक गुणो और भौतिक इच्छाओं का मूलोच्छेदन कर उन्हें भी अध्यात्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। इस रूप में वे एक चिकित्सक का ही कार्य करते हैं जो शरीर मे पनपे भौतिकता के विषाणुओं को निरोधक औषधियो के प्रयोग द्वारा शरीर से निष्कासित कर उसे रोगमुक्त व स्वस्थ अथवा आध्यात्मिक बना देते हैं। ऐसी आध्यात्मिक चिकित्सा करने वाले सत निश्चय ही समस्त भवरोगों से मनुष्य को मुक्ति दिला कर अपवर्ग की दिशा मे उसकी यात्रा सुनिश्चित करते हैं।

आध्यात्मिक चिकित्सा भारत जैसे अध्यात्म-प्रधान देश के लिये कोई अनोखी वस्तु नहीं है। एक सामान्य भारतवासी स्वभाव से ही आध्यात्मिक होता है परन्तु आध्यात्मिक शक्ति को जाग्रत कर उसे प्रभावी बना पाना प्रत्येक मनुष्य के वश की बात नहीं है। इसे जाग्रत और सक्रिय बनाने के लिये व्यक्ति को अपनी ही चेतना को जाग्रत कर आत्मविश्वास और साहसपूर्ण कदमो से आत्मगुणो की राह पर चलना पड़ता है। जो ऐसा कर पाते हैं वे अनेकानेक भटके हुए पथिकों के पथप्रदर्शक बनते हैं और मनुष्य की आत्मिक बीमारियों को दूर करने मे सफल होते हैं। आचार्य श्री नानेश एक ऐसे ही सिद्धिप्राप्त आध्यात्मिक चिकित्सक थे। मनुष्य समाज पर इस दृष्टि से उनका कितना बड़ा उपकार रहा, यह जानने के लिये शारीरिक व्याधियो और मानसिक या आत्मिक व्याधियों के बीच परस्पर सबधों पर भी विचार करे।

> त्यागी-तपस्वी सत अपने आदर्शों और उपदेशों से सामान्य जनों को प्रभावित कर उनके अतर में समाये भौतिक आग्रहों तथा कामनाओं का मूलोच्छेदन कर उन्हें भी अध्यात्म के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हैं। इस रूप में वे एक चिकित्सक का ही कार्य करते है जो शरीर में पनपे विषाणुओं को निरोधक औषधियों के प्रयोग द्वारा शरीर से निष्कासित कर उसे रोगमुक्त करते हैं। आचार्य श्री नानेश बीसवीं सदी के एक ऐसे ही कुशल आध्यात्मिक चिकित्सक थे।

पुद्गलो से बना यह शरीर जब रुग्ण हो जाता है अथवा शिथिलता, अक्षमता या दर्द का अनुभव करता है तब व्यक्ति उसका तुरन्त उपचार चाहता है। प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि शरीर मे आये इस प्रकार के किसी भी विकार को कोई ठीक कर देता है या किसी अग में आई विकलता को दूर कर देता है तो हम उपचारक का बहुत उपकार मानते है। यह तो बात है पौद्गलिक शरीर की। इससे भी कई गुना अधिक उपकारी वह परम पुरुष है जो शरीर, मन और आत्मा के रोगों को दूर कर परम शाति की दिशा का ज्ञान करा दे तथा सम्पूर्ण आन्तरिक वेगों का ही मूलोच्छेदन कर दे। इस युग मे यह पुनीत कार्य आचार्य श्री नानेश ने सम्पन्न किया। उन्होने समीक्षण ध्यान साधना के मार्ग से भौतिकता से ग्रस्त रोगियों को स्वय स्वस्थ होने का राजमार्ग दिखाया। वैसे भी भौतिक रोगो की बहुलता के कारण शरीर मे स्फूर्ति और ताज़गी का जो अभाव देखा जाता है उसमें 75% कारण मन की दुर्बलता, आत्मविश्वास की कमी तथा मनोवेगों की प्रबलता के ही होते हैं। क्रोधादि मनोवेग अथवा मनोविकार मानसिक व शारीरिक व्याधियों के जनक होते हैं। मनोविज्ञानवेत्ता और शारीरिक चिकित्सक उच्च रक्तचाप, हृदयाघात, चिड़चिड़ापन, सरदर्द आदि अनेक रोगों का कारण उपर्युक्त स्थितियों को ही बताते हैं। अत यह परमावश्यक है कि अस्वस्थता के आन्तरिक कारणों को दूर किया जाय क्योंकि मन और सद्विचारों की स्वस्थता यदि व्यक्ति के पास हो तो वह शरीर की अस्वस्थता मे भी प्रसन्नचित्त एव शान्त रह सकता है। परिष्कृत विचार ही इस लोक में तन, मन और आत्मा को स्वस्थ रखते हैं और एक स्वस्थ अर्थात् निष्कलक आत्मा ही अपवर्ग की अधिकारिणी बनती है। आचार्य श्री नानेश ने विचारो को परिष्कृत करने के लिये जो दृष्टि दी है वह समीक्षण ध्यान साधना के नाम से प्रसिद्ध है। इस रूप में उन्होंने

सकारात्मक चिन्तन का मार्ग वताया है। उन्होन कहा कि अपने ही भीतर उपस्थित अनत ज्ञान, शक्ति और सामर्थ्य पर विश्वास करो। उन्होने सिखाया कि विवक वुद्धि स हेय, ज्ञेय और उपादेय का जानकर प्रवृत्ति करना, रोगाक्रान्त होने पर भी अपने को स्वस्थ समझने का मनावल वनाय रखना और हताशा अथवा निराशा को जीवन मे उत्पन्न ही न होने दना, व्यक्ति को ऐसी शक्ति देता है कि वह अपन जीवन में सदा प्रसन्नता एव उत्साह का अनुभव करता है। समीक्षण ध्यान साधना क माध्यम से इस प्रकार उपचार लेते रहने से व्यक्ति की आत्मा सदा प्रसन्न व सतुष्ट रहती है।

आचार्य श्री नानेश द्वारा अनुशसित एक अन्य औषध है—समता चिन्तन और व्यवहार। सम्पूर्ण विश्व आज अशाति, हिसा और असतोष की जिस स्थिति से गुज़र रहा है उसका मुख्य कारण है विषमता भाव। अर्थात् अपनेपन और परायेपन का वाध। यह मानना कि कुछ अपना है कुछ पराया है। इस रुग्ण चिन्तन क कारण 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना विलीनप्राय हो गई है। अपने स्वार्थ की सिद्धि हेतु, उचित-अनुचित तक का विवेक त्याग, मनुष्य कुछ भी करने को तैयार हो जाता है परन्तु परार्थ के नाम पर उसकी भावनाएँ सुप्त हो जाती हैं और चेतनाएँ पगु। मन की इस प्रकार की विषम भावनाआ के कीटाणु ही जीवन मे अशाति और क्लेश की गाँठें पैदा कर देत हैं और यदि गाँठा का इलाज करने वाला कोई ज्ञानी गुरु, आतरिक द्वद्व-निवारक चिकित्सक न मिले तो ये गाँठें फैलती जाती हैं और अतत जानलवा सिद्ध हो सकती हैं। आचार्य श्री नानेश ऐसी ग्रन्थियों की चिकित्सा करते थे समता के परम साधन से, प्रवचन के पीयूष से, सम्पर्क की स्पर्शमणि से और विहरण के माध्यम से। उन्होने जीवन की विराटता में आत्मवत् सर्वभूतेषु के दर्शन कराये और आत्मा को प्रयुद्ध किया। उनकी सजग साधना पद्धति की प्रखर रश्मियाँ सीधी व्यक्ति क अतर में प्रवेश कर सात्विक परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारभ कर दती थी। लगभग एक लाख व्यसनग्रस्त लोगा का पूरा जीवन आपन इसी प्रक्रिया से परिमार्जित किया। जिस वलाई जाति का जीवन अज्ञान, व्यसनान्मुखता, कुरीतियों और अधविश्वासों के कारण क्लेशमय वना हुआ था उस जाति की व्यथा आपन सुनी-समझी और चिकित्सा प्रारभ कर दी। आपने उन्हें यह अहसास कराया कि जाति से कोई ऊँचा या नीचा नहीं होता। व्यसन, अज्ञान और अधविश्वास आदि के विषाणुओ की उन्हे जानकारी कराई और अहिसा, सुसस्कारित जीवन, शाकाहार और व्यसनमुक्ति की औषधियों के सेवन का उपदेश दिया। इस प्रकार आध्यात्मिक चिकित्सा द्वारा उनकी प्रकृति और प्रवृत्ति का सस्कार कर उन्हें जीवनीशक्ति का अहसास कराया, परिणामस्वरूप कुव्यसनी वलाई, सुसस्कारित धर्मपाल वन गये।

मानव मन के सामान्य रोग, जो आत्मा को रुग्ण कर देते हैं, वे हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या आदि। ये मनुष्य के अतर को जर्जरित कर देते हैं। आध्यात्मिक चिकित्सक आचार्य श्री नानेश ने इन्हे दूर करने के लिये ज्ञान, दर्शन और चरित्र की त्रिपुटी दे आत्मा को परमानन्द तक पहुँचाने के सफल प्रयोग किये थे। उनकी वाणी का जादुई प्रभाव पड़ता था और वचनामृता का पान कर रुग्ण श्रावक रोग-मुक्ति की दिशा मे अग्रसर हो जाते थे। भय, शोक, हताशा और अविश्वास जैसे रोगो को जड़मूल से उखाड़ कर व्यक्ति के भीतर आप अपूर्व उत्साह, आत्मविश्वास और कर्मठता का सचार कर देते थे।

सचमुच दुनिया में एसा सत विरला ही होता है जो त्रिविध व्याधि से व्यक्ति के जीवन को सदा-सदा के लिय मुक्ति दिला दे, अखण्ड सुख का उसे अनुभव करा दे और परमधाम के उसके अतिम लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त कर दे।

एक प्रसिद्ध विचारक ने कहा है—सच्चा गुरु वही है जो हमें आत्म-भावा से जोड़ द और सच्चे सुख की झलक दिखा दे। प्रभु महावीर ने भी कहा था—'अज्झत्थ सुद्ध एसए', अर्थात शुद्ध अध्यात्म की खोज करो। आचार्य श्री नानेश न ऐसी ही खोज मे सफलता पाई थी और इस प्रकार अपनी साधना द्वारा जो सिद्धि उन्होने प्राप्त की थी उसे उन्होने नि स्पृह भाव से जनकल्याण हेतु सुलभ वना दिया। आज वह आध्यात्मिक चिकित्सक तो हमारे वीच से चला गया है परन्तु अपनी तपस्या द्वारा खोजी गई औषधियाँ हमारे लिये छोड गया है। अव यह हम पर निर्भर करता है कि हम उन औषधिया का प्रयोग किस प्रकार विवेकपूर्वक कर तन, मन और आत्मा को निराग रखते हैं। ◆

साध्वी प्रेमलताश्री

आध्यात्मिक चिकित्सक : आचार्य श्री नानेश
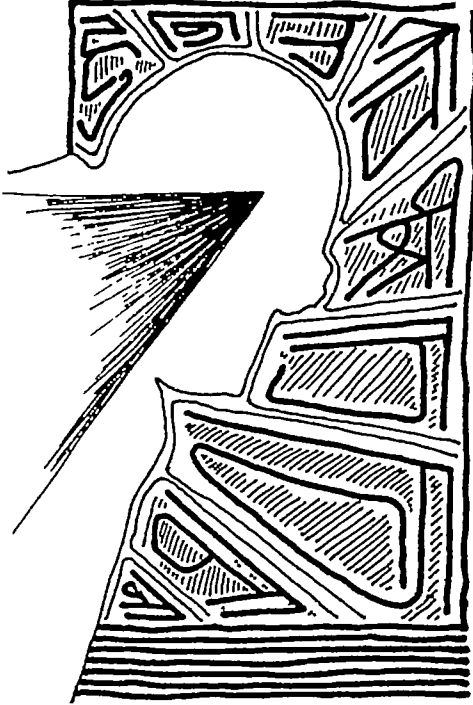
आरोग्य-बोधि-समाधि की उपलब्धि हेतु मानव सदैव पुरुषार्थरत रहा है। इस तत्त्वत्रयी में आरोग्य को प्राधान्य दिया गया है। जब तक व्यक्ति स्वस्थ नहीं होता तब तक आगे के अन्य कार्यों की स्फुरणा नहीं हो सकती। अत तीर्थंकर महाप्रभु की नामस्तुति करते हुए मुमुक्षु आत्माओ ने चऊवीसत्थ मे याचना के स्वरो में कहा है कि *आरुग्ग बोहि लाभ समाहिवर मुत्तम दिन्तु*—आरोग्य बोधि का लाभ एव उत्तम समाधि देवें।

आरोग्य दो प्रकार का है—प्रथम भौतिक, दूसरा आध्यात्मिक। ये दोनों ही परस्पर सापेक्ष हैं। स्वस्थ तन मे स्वस्थ मन रहता है और तन की स्वस्थता मन पर आधारित होती है, पर फिर भी आरोग्य का मूल हेतु तो अध्यात्म ही है, क्योकि यदि रोग के उद्गम की शोध की जाए तो गहराई में जाने पर ज्ञात होगा कि जितनी आधि, व्याधि, उपाधियाँ है उनका मूल स्रोत आत्मा में ही है। वेभाविक रूप को प्राप्त चेतना-राग द्वेष जन्य विकारों के कारण जन्म-मरण के चक्र मे सचरित है।

ससारी आत्माएँ जन्म-मरण करती हुई कर्मो का उपार्जन करती है। कर्म का राग ही, मूल रोग है अर्थात् रोगों का मूल ही कर्म है। आधि, व्याधि, उपाधि उसी के विभिन्न रूप हैं। अशाति भी उसी की फलश्रुति है। आत्मा के स्वरूप को कर्म धूमिल बनाते हैं तो आत्मा की शाति भग हो जाती है। उससे उसकी वृत्तियों मे तथा जीवन के क्रियाकलापों में अशाति छा जाती है। यह अशाति आत्मा के लिए महान रोगरूप सिद्ध होती है।

जब कोई रोग लग जाता है तब उसका निदान आवश्यक हो जाता है एव उसकी चिकित्सा भी अनिवार्य हो जाती है। यदि अशाति के भीषण रोग का निदान और उसकी चिकित्सा नहीं की जाये तो अनेकानेक अन्य रोगो को एकत्र करती हई आत्मा साघातिक रूप से रुग्ण बन जाती है। भयकर रूप से

रोगग्रस्त आत्मा कभी स्वस्थ ही नहीं हा पाती। शत्रु और रोग को कभी भी वढने नहीं देना चाहिए। रोग का प्रारभ से ही उपचार करके उसे समूल नष्ट कर देना चाहिए।

शरीर मे, शरीर के किसी अवयव मे रोग हो जाए तो तुरत आप योग्य चिकित्सक के पास पहुँच जाते हैं। चिकित्सक रोग का निदान (डायग्नोसिस) करके औषधि देता है और पथ्य परहेज की विधि भी बताता है। स्वास्थ्य लाभ चाहने वाला निर्देशानुसार दवा लेता है और स्वास्थ्य के प्रति सतर्क, सावधान रहन वाला शीघ्र ही उपचार से अपने को स्वस्थ बनाता है। ठीक वैसे ही अध्यात्म जगत म महापुरुषों के निर्देशानुसार इस कर्म उपाधि को समूल नष्ट करके ही आरोग्यलाभ किया जा सकता है।

आरोग्य की प्रार्थना से ही अभीप्सित पूर्ण नहीं होता साथ मे पुरुषार्थ भी अपक्षित है। रोगमुक्ति हर व्यक्ति स्वय ही कर ले यह कम सभव है। चिकित्सक की उपस्थिति अनिवार्य है। कुशल चिकित्सक वह होता है जो रोग, रोग का हेतु, आरोग्य और आरोग्य का हेतु, इन चारो को जानता है और फिर चिकित्सा करता है। यही वात आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी सत्य है। पहुँचे हुए ज्ञानी, सिद्ध या सत ही मन के रोग को पहिचान सकते हैं, उसके हेतु को जान सकते हैं, आरोग्य की विधि और आरोग्य का रूप जान सकते हैं।

आज चिकित्सा क्षेत्र मे चिकित्सको की बाढ़-सी आयी हुई है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण रोग विविध रूपों में जैसे-जैसे तेजी से वढ रहे हैं वैसे-वैसे चिकित्सक भी बढ रहे हैं। शोध पर शोध हो रही है फिर भी प्राणि-जगत रोग के शिकजों में फसता जा रहा है। यात्रिक प्रणाली के सहारे रोगों के निदान हो रहे हैं। यात्रिक चिकित्साओं से चिकित्सा पद्धति अत्यत महँगी होती जा रही है।

आरोग्य दो प्रकार का है—प्रथम भौतिक, दूसरा आध्यात्मिक। ये दोनों ही परस्पर सापेक्ष हैं। स्वस्थ तन में स्वस्थ मन रहता है और तन की स्वस्थता मन पर आधारित होती है पर फिर भी आरोग्य का मूल हेतु तो अध्यात्म ही है क्योंकि यदि रोग के उद्गम की शोध की जाय तो गहराई में जाने पर ज्ञात होगा कि जितनी आधि, व्याधि, उपाधियाँ हैं, उनका मूल स्रोत आत्मा में ही है। वैभाविक रूप को प्राप्त चेतना राग-द्वेष-जन्य विकारों के कारण जन्म-मरण के चक्र में संचरित है। अत आरोग्य हेतु प्रभावी चिकित्सा कोई आध्यात्मिक चिकित्सक ही कर सकता है।

अर्थसमस्या के कारण अधिकाश रोगी उपचार मे असमर्थ हो रहे हैं। इलाज के अभाव में मानव विक्षुब्ध विक्षिप्त-सा होता जा रहा है। असमजसपूर्ण समस्याओ से तथा तनावग्रस्त मानसिकता से मनुष्य आर्य सस्कृति से दिन व दिन पिछड़ता जा रहा है। शरीर से बैचेन हो रहा है। ऐसी स्थिति मे कर्तव्यवोध की वातें तथा धर्म और अध्यात्म की बातें बहुत दूर की वस्तुएँ हो जाती हैं। पुरानी और नई पीढी के बीच इन्हीं आधि-व्याधि-उपाधि के कारण दूरी बढती जा रही है। सैकड़ों परेशानियाँ मुँह बाए खड़ी हैं। जीवन में आत्मीय सवेदनाओं की तलैया सूखती जा रही है। धन भी हो तो समय और स्नेह के अभाव मे आबाल वृद्ध मृतप्राय -सा जीवन जी रहे हैं। इस सब के लिए वह भौतिकवादी चिन्तन उत्तरदायी है जिसने उपभोक्तावादी सस्कृति को बढावा देकर तथा उपभोग की अस्वस्थकर वस्तुओं का निर्माण कर समाज में दूषित जीवनचर्या को ही जन्म नहीं दिया है, लोगो की मानसिकता और प्रकृति को भी दूषित कर दिया है। ऐसी विकट स्थिति म एक एस चिकित्सक की आवश्यकता है जो समस्त समस्याओ का तथा वाहरी-भीतरी सभी वीमारियों का सही उपचार कर सके। यह चिकित्सक एक ऐसा आध्यात्मिक सत होना चाहिए जो मन और भावना के परिष्कार की विधि भी जानता हो, ऐसा मानवतावादी चिन्तक होना चाहिए जो प्रेम, सहानुभूति, करुणा आदि के साधनो में आस्था रखता हो और अपनी साधु प्रकृति, निश्छल प्रवृत्ति, उज्ज्वल चरित्र और निर्मल जीवनचर्या द्वारा अपने प्रति श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करने की क्षमता रखता हो क्योंकि प्रभावी उपचार की प्रथम आवश्यकता है कि रागी की चिकित्सक में आस्था हो तथा उसकी उपचार विधि में विश्वास। विश्वसनीय चिकित्सक क सम्मुख होते ही रागी का मनोवल वढ जाता

है और बढ़ा हुआ मनोबल चिकित्सा की शेष आवश्यकताओं की स्वत ही पूर्ति कर देता है—विश्वासो फलदायक।

इस उद्देश्य से जब हम इस युग के ऐसे प्रमुख आध्यात्मिक चिकित्सको पर दृष्टि डालते हैं तथा रोग निदान एव उपचार की उनके द्वारा प्रस्तावित विधियो एव उनके परिणाम पर दृष्टिपात करते हैं तब जो विशिष्ट व्यक्तित्व हमारी नजरो मे उभर कर आता है वह हुक्मगच्छ के अष्टमाचार्य आचार्य श्री नानेश का है। वे इस सदी के कुशल धर्माचार्य ही नहीं थे, निपुण आध्यात्मिक चिकित्सक भी थे। धुआँधार विपदाओं से आक्रान्त मानवों के लिए वे बहुत बड़े मनोबल के रूप में प्रकट हुए थे। वे विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न चिकित्सक थे जिन्होंने अपनी साधना से रोगों के मूल तक पहुँच कर उनके कारणों की खोज कर ली थी। अन्य चिकित्सकों ने जिन रोगों को असाध्य घोषित कर दिया था उन रोगो की चिकित्सा करने मे भी वे पूर्णत सफल हुए थे। हमें ज्ञात है कि एक कुशल साधक ही कुशल चिकित्सक होता है। कर्म और कर्म के हेतु तथा बध और बध के हेतु के साथ जो उनसे मुक्ति के हेतु भी जाने वही तो कुशल साधक होता है। आचार्य श्री नानेश ऐसे ही कुशल साधक-चिकित्सक थे।

विश्व-धरातल पर होने वाले प्राणी-आक्रदन के स्वर को सुनकर उनका हृदय द्रवित हुआ और भीतर की अथाह गहराइयो में डुबकी लगाकर कराहती मानवता को त्राण दिलाने की अद्वितीय, अपूर्व उपचार विधि उन्होंने खोज निकाली। यह विधि है समीक्षणध्यान और समतादर्शन।

उन्होंने स्वय इस अनमोल ध्यान-प्रक्रिया को तथा समत्व भावो को अपने जीवन के कण-कण से अनुप्राणित किया था और उसे आत्मसात् करके ही मानव जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया था।

महापुरुष जब साधना की गहराई में पहुँच जाते हैं और अदर के प्रकपन धीरे-धीरे शात होते जाते है तब केन्द्रस्थ साधक के भीतर अल्फा तरगें तरगित होती हैं और आनद की अनुभूति से वे आप्लावित हो जाते हैं। ये तरगें इतनी प्रखर होती हैं कि बाह्य वातावरण का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, बल्कि उस महासाधक की ऊर्जा से सम्पूर्ण वातावरण प्रभावित हो जाता है। ऐसे देवाधिदेव महाप्रभु के सान्निध्य में आने वाला अपने जीवन को रूपान्तरित कर लेता है। श्रान्त विश्राति का अनुभव करते हैं और रोगी निरोगी हो जाते हैं। यही नहीं मिथ्याद्रष्ट सम्यक्द्रष्टा बन जाते हैं और सम्यक्द्रष्टा श्रावक और श्रमण के सोपानो पर आरूढ़ हो जाते है। ये सब अल्फा तरगों की अधिकता का ही प्रभाव होता है। ये किरणें शरीर से बाहर फैलकर अपना प्रभाव प्रकट करती हैं। आज चिकित्सा वैज्ञानिकों ने ऐसे उपकरणो का निर्माण कर लिया है जिनसे मनुष्य के मस्तिष्क मे अल्फा तरगे देखी भी जा सकती हैं और सप्रेषित भी की जा सकती हैं। इस दिशा मे विज्ञान की खोज जारी है पर अध्यात्म विज्ञान का अनुसधान बाहर की प्रयोगशाला मे नहीं, भीतर की रहस्यपूर्ण प्रयोगशाला मे होता है।

आचार्य श्री नानेश इस दृष्टि से आज के महान् वैज्ञानिक और आध्यात्मिक चिकित्सक के रूप में अवतरित हुए थे। कषाय और आवेग से उत्पन्न उत्तेजना या तनाव से मुक्ति-प्राप्ति के उपाय उन्होंने जिज्ञासुओं और श्रद्धालुओ को दर्शाये। निर्देशित उपायो के अनुसार जिन्होंने भी उपचार प्राप्त किया वे आरोग्य-लाभ के साथ बोधि और समाधि को भी उपलब्ध हुए।

आचार्यश्री को जिसने भी एक बार देखा, उनके चरण-सन्निधि में जो भी पहुँचा आत्मीय स्तर पर आस्था के तार उनसे जोड़े उसकी तत्काल चिकित्सा हो गयी। बाहरी चिकित्सा पद्धति मे लबी प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। डाक्टर की पूर्व स्वीकृति, रोग निदान हेतु विविध टेस्ट, एक्सरे, सोनोग्राफी आदि यान्त्रिक जाँचो से गुजरे बिना निदान ही नहीं हो पाता। निदान के पश्चात् भी कई रोगों का तो इलाज नहीं है यह घोषित कर दिया जाता है। कुछ रोगों का इलाज होने के पश्चात् भी पूर्णत स्वास्थ्य-लाभ होगा यह भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। उपचार से ज्यादा तो औषधियों के सह-प्रभाव (Side effects) अन्य रोगो को आमत्रित कर देते हैं। ऐसी जटिल चिकित्सा पद्धति से आज का मानव सत्रस्त है जबकि अध्यात्मपुरुषो द्वारा चिकित्सा सरल, सहज और नि शुल्क है। हर कोई

विना देश, काल, जाति प्रतिबध आदि के अपनी चिकित्सा करवा सकता है और चद क्षणो में निरामयता को उपलब्ध हो सकता है। आवश्यक इतना ही होता है कि रोगी श्रद्धा, आस्था और समर्पित भक्ति भावों से ऊर्जापुरुषों के चरणो मे प्रणत हो जाये।

ऐसे लब्धिपुरुषो की हथेलियो और पैरों के तलुवो से तरगो के साथ बिजली प्रवाहित होती है। नमन करने वाला श्रद्धालु अपने मस्तिष्क से उन तरगो को आत्मसात् करता है। नमस्कार की मुद्रा में पैरो मे से निकलती ऊर्जा मस्तिष्क द्वारा अवशोषित की जाती है। अल्फा तरगो वाली यह ऊर्जा प्रसन्नता एव आनद से भक्त के हृदय को भर देती है और उसके विषाद समाप्त हो जाते हैं। विशिष्ट चिकित्सकीय प्रभाव से ऐसे चुवकीय और रासायनिक परिवर्तन हो जाते हैं जो निश्चित प्रभाव डालते ही हैं।

मगलपाठ श्रवण से (महापुरुषो की वाणी जो साधनामिश्रित होती है) श्रोता के शरीर के श्वेतकणो मे प्रतिरोघात्मक शक्ति विपुल मात्रा में पैदा हो जाती है। प्रवचन-गगा पर्युपासको के मिथ्यात्व का कलुष और कल्मष प्रक्षालित कर उन्हें सम्यक्दृष्टि प्रदान करती है। ऐसे सिद्धपुरुष जीवन को पारदर्शी बनाने की कला सिखाते हैं तथा आत्मा के पकमल को हटाकर परमात्मपद तक की राहे निष्कटक बना देते हैं। इस प्रकार जो भवरोग से मुक्त करा दें उन्हे अध्यात्म के विशेषज्ञ (Specialist) न कहे तो क्या कहें? उनके मन, वाणी, काया के योगों के माध्यम स नहीं, आत्मा के प्रत्येक प्रदेश से जगत् के समस्त रोगों का प्रणाशन होता है वशर्ते कि रोगी, रोग का उपचार कराना चाहे, स्वास्थ्य लाभ के लिए सतर्क हो, दर्शाये मार्ग पर चलने को तैयार हो। ऐसा होने पर कोई भी हस्ती उसे आरोग्य-लाभ से वचित नहीं रख सकती। महाप्राण के ऐसे साधक आचार्य श्री नानेश ऐसी विशेषज्ञता से लब्ध अनुपम आध्यात्मिक चिकित्सक थे।

आचार्यश्री के जीवन के पृष्ठा से जुड़ी अनेकानेक घटनाएँ इस तथ्य के प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। चरणस्पर्श, आशीर्वाद, मागलिक श्रवण आदि तो बहुत दर की बातें हैं, उनके नामस्मरण मात्र मे वह चमत्कार है जो स्तुतिकर्ता के शारीरिक रसायनो को परिवर्तित एव रूपान्तरित कर देता है। आप ने कई श्रद्धालुओ की शारीरिक स्तर पर विकृत ग्रथियों को ही समाप्त नहीं किया, भीतर के कषाय और आवेगों से उत्पन्न क्रोध, वैर, वैमनस्य आदि की गाठों को उपशात करके निर्ग्रथ नाम को सार्थक भी किया, ग्रथ तो रखे पर ग्रथियो को नहीं रहने दिया। ऐसे जिनशासन के जो निर्ग्रंथ हैं, सत हैं, वे ही तीर्थकर शासन के उद्यान के महकते अनत वसत-महत हैं। ग्रथियो की शल्यचिकित्सा तो डाक्टर भी करते हैं, लेकिन ग्रथियों के निकालने के बाद पुन ग्रथि (Glands) वनने की सभावना ही न रह ऐसी शल्य चिकित्सा तो आचार्य नानेश जैसे निर्ग्रंथ ही कर सकते थे।

आज चिकित्सा के क्षेत्र में भारी प्रगति हुई है। शरीर के एक-एक अवयव का, प्रत्यक हिस्से को खोलकर देख लिया गया है और जान लिया है। अव कोई भी हिस्सा अज्ञात नहीं रहा है। परन्तु समूचे शरीर की चीरफाड कर लेने के वाद तथा उसके सूक्ष्म निरीक्षण के वाद भी कुछ भी उपलब्धि नहीं हुई है। होती भी कैसे? स्थूल दृष्टि, सूक्ष्म को कैसे पहचान पाती? अधिक से अधिक अपनी पहुँच बनायी तो मन के स्तर पर होने वाली ग्रथियो के मूल तक जिसे आज की भाषा में मनोचिकित्सक सायटोसोमेटिक कहते हैं अर्थात् मनोकायिक वीमारी। इस प्रकार प्राचीन आधि अर्थात् मानसिक रोग और व्याधि अर्थात् शारीरिक रोग, इन दोनों को जोड़कर यह मनोदैहिक शब्द वना लिया गया है। इस बीमारी में तनावमुक्ति का उपचार विद्युत प्रयोग और ओषधि के प्रयोग से किया जाता है।

इन दोनों के प्रयोग का उद्देश्य मस्तिष्क को आराम पहुँचाना, शात करना होता है। विद्युत के झटके देकर या औषध देकर नींद में सुलाते हैं। वेहोशी लाते हैं और अर्धनिद्रा में भी ले जाते हैं जिससे तनाव विसर्जित हो सके। लेकिन इसके दुष्परिणाम भी कम नहीं। न ये पूर्णत निर्दोष ही है न वीमारियों का यह वास्तविक इलाज ही हैं। साथ ही यह इलाज अल्पकालिक राहत ही दे सकता है। लेकिन आध्यात्मिक-चिकित्सा में चिकित्सा पाने वाला अपने रागो स सदैव के लिए मुक्त हो सकता है।

आचार्यश्री की चिकित्सा पद्धति में समीक्षणध्यान के माध्यम से मन के स्तर से भी अदर की पर्तो की तह तक पहुँचा जाता है और अपनी विकृतियो का परीक्षण कर उन्हे परिवर्तित किया जाता है। स्वभाव का परिवर्तन नहीं हो सकता, लेकिन वृत्तियो को रूपातरित किया जा सकता है और आचार्य श्री नानेश ने किया है। उन्होने अपने सपूर्ण जीवन को इसी अनुसधान में लगाया था।

साधना जीवन के प्रारभिक क्षणों मे विविध आत्मिक स्तरो पर वे प्रयोग करते रहे फिर समता, समीक्षणध्यान योग के विशेषज्ञ बनकर एक विलक्षण चिकित्सक के रूप में साधुमार्गी क्लिनिक में तीर्थंकर के प्रतिनिधि बने और कर्म, कषाय, विषय-वासनाओ से रुग्ण लोगों का उपचार करते रहे और सच्चे अर्थों में आरोग्य सजीवनी का लाभ प्रदान किया। महावीर चिकित्सा सस्थान मे सैकड़ो आत्माओं को प्रवेश देकर उन्हे निरोग ही नहीं किया बोधि और समाधि की उपलब्धि भी करवायी।

ऐसे महान् चिकित्सक की एक अनुपम विशेषता यह थी कि विवाद, विषाद धर्मसकट आदि की घड़ियो में भी उन्होने अपने को आत्मिक स्तर पर स्वस्थ रखा। कभी भी म्लान अवस्था, निराशा अथवा विषाद ने आपको घेरने का साहस नहीं किया। आत्मवीर्य के प्रबल स्वामी के रूप में अतिम समय तक, जीवन की अतिम श्वास तक उन्होंने समत्व के प्रयोग चालू रखे।

सलेखना, सथारा, आत्म-आराधना के विशिष्ट योग-प्रयोग वे भीतरी कर्म ग्रथियों की शल्य चिकित्सा हेतु करते रहे। महानिर्ग्रंथ पथ के महापथिक आचार्यश्री, महावीर चिकित्सा सस्थान के अद्भुत सर्जन थे। कोई भी चिकित्सक चाहे कितना ही कुशल क्यो न हो, स्वय की चिकित्सा स्वय नहीं कर सकता। पर आचार्यश्री ने यह दुष्कर कार्य भी कर दिखाया। अपनी चिकित्सा उन्होंने स्वय की। आज रेकी (स्पर्श चिकित्सा) और प्राणिक ऊर्जा चिकित्सा जैसी उच्चस्तरीय अध्यात्मस्पर्शी पद्धतियाँ विकसित होती जा रही हैं जो एक सीमातक, अध्यात्म परिवर्तन मे सहयोगी सिद्ध हो रही हैं। यहाँ तक कि किर्लीयन फोटोग्राफी से आभामडल की फोटो लेकर भावी में होने वाली बीमारियों का इलाज भी होने

लगा है। पर इन प्रणालियो के साथ अगर समीक्षणध्यान की पद्धति को भी जोड़ दें तो मणिकाचन सयोग हो। आचार्यश्री इसके प्रत्यक्ष ज्वलत प्रमाण हैं। अपने ही भीतर से प्राप्त ऊर्जावलय से ऊर्जस्वल महापुरुष बन गये।

देह विसर्जन की स्थिति जो उन्होने भव्य आत्माओ के लिए आलोक मार्ग की यात्रा के रूप में प्रस्तुत की, वह कितनी अद्भुत थी! बिना एनेस्थेसिया (Anesthesia) प्रयोग के आतरिक ग्रथियो का आपरेशन करते हुए देह को अपनी चेतना से/आत्मा से सहज रूप मे विलग कर दिया। उस विलगाव की अवस्था में जो दिव्य आलोकरश्मि नयन पथ से निसृत हुई वह अपूर्व और अद्भुत थी। उस अध्यात्म चिकित्सक के अलौकिक रूप से दिवगत होने की प्रक्रिया के समक्ष सारे विश्व के चिकित्सक हतप्रभ हो नतमस्तक हो गये। उनकी सारी चिकित्सा प्रणालिया इस आत्मावधानी अवधूत के सामने पराभूत हो गयीं। पार्थिव देह परित्याग से महीनों पूर्व ही उन्होंने सारे उपचार बद कर दिये थे और आहार आदि की मात्रा अल्प करते हुए अनशन की स्थिति मे पहुँच गये थे। ये ही नहीं, सारे प्रकपनों को निरुद्ध करते हुए उस अविचल ध्यानी ने शरीर को भी स्थिर कर लिया था। कोई क्या समझ पायेगा उस महायोगी की उपचार प्रणाली को और उस कठोर साधना को जो उसने जीवनभर अतरग की प्रयोगशाला मे की थी और जिसके परिणामस्वरूप समता रसायन जैसी सजीवनी भवरोगों के उपचार हेतु ससार को प्रदान कर सका।

अब यह भवरोगियों का दायित्व है कि वे उसके द्वारा आविष्कृत एव विकसित औषध का सेवन करें, तथा समीक्षण योग पद्धति का लाभ उठाकर, 'स्व' में स्थित हो कर स्वस्थ बने। हम चिर ऋणी रहेगे उस आध्यात्मिक चिकित्सक के जिसने हमें भव-भवान्तर के रोगों से मुक्ति हेतु ऐसी सफल विधि सिखाई। अब हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि सम्पूर्ण श्रद्धा और समर्पण भाव से प्रणतिपूर्वक हम उस महान् चिकित्सक की आराधना करते रहें और आरोग्य के साथ बोधि और समाधि को प्राप्त हो जायें।

श्रीमती सोनाली ओस्तवाल

आचार्य नानेश होने का मतलब
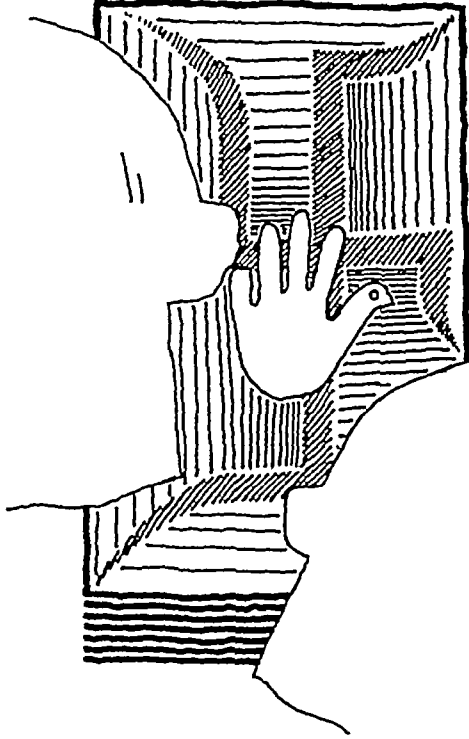
आखिर ऐसा क्यो होता है कि कोई नाम किसी विशेष क्षमता या गुण का वाचक या प्रतीक बन जाता है, अथवा मतलब बन जाता है ? महावीर का नाम लेते ही अहिसा परमोधर्म का सिद्धान्त ध्यान में आ जाता है, ईसा मसीह का स्मरण करते ही क्षमा की महिमा मानस-पटल पर अकित हो जाती है, गौतम बुद्ध का नाम लेते ही एक प्रचण्ड धर्म-प्रचारक की छवि आँखो में तैर जाती है और शकराचार्य का नाम लेते ही एक ऐसे धर्म सस्थापक का रूप सामने आ जाता है जिसने आध्यात्मिक चितन को नई दिशा दी। गाँधी और लिकन जैसे नाम भी राजनीति के पक का नहीं उसमें खिलने वाले पकज के रूप का स्मरण करा देते है। ऐसा इसलिए होता है कि ऐसे युगपुरुष अपनी जीवन साधना द्वारा एसे अनुकरणीय आदर्श स्थापित कर जाते हैं जो युगों-युगों तक सुविशाल मानव समाज का मार्गदर्शन करते रहते है और उसकी प्रेरणा का स्रोत बन जाते हैं। उनके द्वारा स्थापित आदर्श ही उनके नाम का मतलब है।

तब आचार्य नानेश होने का मतलब क्या हुआ ? आचार्य नानेश होने का मतलब है विषमतामुक्त, सुसस्कारित, समतामूलक समाज की स्थापना। ऐसा नहीं हो सकता कि हम आचार्य नानेश का नाम लें और समता तथा समीक्षण-साधना हमारे ध्यान मे न कौंधे या हम विषमता के उन्मूलन और आत्म परिष्कार की बात करें और आचार्य नानेश का ध्यान हमें न आये। इस प्रकार कुछ गुणों का किन्हीं व्यक्तियों के साथ अन्योन्याश्रित सवध जुड़ जाता है और इसलिये एक की याद आते ही दूसरे की याद स्वत ही आ जाती है।

इस स्थिति को एक और कोण से देखें। आचार्य नानेश हम वाद म कहते हैं, पहले कहते हैं— प्रात स्मरणीय, वाल-ब्रह्मचारी, चरित्र-चूड़ामणि, समता-विभूति, समीक्षणध्यान योगी, धर्मपाल-प्रतिवोधक आदि। नानेश वनने के लिये इन सव विशेपणों की पात्रता अर्जित करनी आवश्यक है। तो

'नाना' होने का मतलब हुआ—व्यक्तित्व, चरित्र, चितन, जीवनचर्या धर्माराधना, मानवतावाद, आगम-ज्ञान आदि की दृष्टि से एक अप्रतिम महिमामय विभूति, जो अपनी पहिचान स्वय हो। तब इस पहिचान की बात करें जो नानेश का मतलब प्रदान करती है। बात नाम से ही शुरू करें।

एक अति सरल सीधा-सादा नाम 'नाना'। 'नाना' शब्द ही मन को मोह लेता है। एक सरल, भावुक, शिशु-सम भोले व्यक्तित्व की छवि हमारी आँखों में उतर आती है। 'नाना' विविधता का भी बोधक, एक ऐसे व्यक्तित्व का बोधक शब्द है जो सद्गुणों का पुज हो, जिसमे अनेक समाये हुए हों। एक सघनेता, गुरु, जन-जन की श्रद्धा का आधार। नाना के आशीर्वाद और शुभ-भावना ने अनेक श्रमण-श्रमणियों और श्रावक-श्राविकाओ को आध्यात्मिकता के मार्ग पर आगे बढाया, उन्हे सद्मार्ग दिखाया। नाना—एक आदर्श सरलता, ज्ञान-गरिमा, धर्म आराधना आदि का।

नाना गुरु का विशाल से सूक्ष्म तक का रूप, पिड से परमाणु तक का रूप, जन्म से जीवनात तक की प्रक्रिया, पृथ्वी के एक छोर से दूसरे छोर तक फैली मानवता की श्रद्धा और उन सब से ऊपर जन-जीवन में बसी स्नेह, त्याग, ममता और सरलता की मूर्ति। उनके अनुयायियो की उनमे इतनी दृढ आस्था थी कि वे आश्वस्त रहते थे कि आचार्य नानेश के नाम-स्मरण से ही उनके सभी कार्य सिद्ध हो जाएँगे और सारी समस्याएँ, भय-सकट आदि समाप्त हो जाएँगे। उनकी कसौटी था जौहरी नाना। इतनी आस्था कि एक छोटा बालक भी बड़े प्यार, उत्साह और साहस से कहता–

मेरे हाथ मे गुड़ का भेला।
मैं गुरु नाना का चेला।

> आचार्य नानेश हम बाद में कहते हैं, पहले कहते हैं—प्रात स्मरणीय, बाल-ब्रह्मचारी, चरित्र-चूड़ामणि, समता-विभूति, समीक्षणध्यान योगी, धर्मपाल-प्रतिबोधक आदि। अर्थात् नानेश बनने के लिये इन सब विशेषणों की पात्रता अर्जित करने की आवश्यकता है। तो नानेश होने का मतलब हुआ व्यक्तित्व, चरित्र, चिंतन, जीवनचर्या, धर्माराधना आगम-ज्ञान आदि से समन्वित एक अप्रतिम व्यक्तित्व।

हर आशका-शका के समय यह जप जैसे आवश्यक-सा हो गया था और इससे शका का निर्मूलन भी होता था–

जय गुरु नाना,
पार लगाना।

यह आस्था का ही चमत्कार होता कि मानव समुदाय समता योगी आचार्य श्री नानेश के समक्ष खड़ा रहता और उसकी हर मनोकामना पूरी हो जाती। कई उदाहरण, अनेक दृष्टात हमने देखे, सुने और पढे है। इन सबके बावजूद एक अजीब-सा बधन, समर्पण की डोर हमें बाँधकर रखती है और स्वत ही हम झुक जाते हैं उस दिव्य सत, अलौकिक गुरु श्री नानेश के चरणो मे, स्मृति में ही सही।

तब आचार्य नानेश होने का मतलब अत्यत गूढ़ हुआ। इतना विश्वास, इतनी श्रद्धा हमारे मन में उपजती है कि 'जय गुरु नाना' कहने मात्र से हम में अनोखी दृढ़ता आ जाती है और मनोबल बढ जाता है। इस युग में यह विश्वास, यह सहारा क्या कम है?

नाना सूक्ष्मता से विशालता तक के रूप को अपने मे सजोये हुए हैं। हम अकेले में हों या सघ के बीच, उनकी कृपा का एक ही रूप रहता था। उनके प्रति यह निष्ठा विश्वास को अतुलित रूप से बढाती थी।

तब क्या नाना होने का मतलब 'चमत्कार' है? हमने उनसे सबधित चमत्कार पढे हैं, सुने हैं, देखे हैं और अनुभव भी किये हैं। क्या वे दैवी शक्ति के रूप मे हमारे बीच उपस्थित रहे? 'श्री नानेश होने का विश्वास' उनके अनुयायियो के साथ जिस तरह जुड़ गया है वह उनकी एक चमत्कारी छवि ही निर्मित करता है—एक भक्तवत्सल, परमस्नेही ऐसे आचार्य की जो जन-जन का हृदय सम्राट् था।

'नाना' शब्द समता का पर्याय बन गया है। सम्पूर्ण विश्व म स्वय को ओर सम्पूर्ण विश्व को स्वय मे पहिचानो, हर रूप में सम को देखो, सम मे रहो, समता की वाणी बोलो। बड़ा कठिन लग सकता है समता को जीवन में उतारना और वैसा वना रहना। पर 'नाना' नाम ने चमत्कार कर दिया। समता व्यवहार में उतरी और व्यक्ति, परिवार, समाज, राज्य, राष्ट्र और विश्व तक पहुँच गई। इतना ही नहीं हमे विश्वास हो गया कि समता-धारक इसान सदैव प्रसन्न रहेगा, अपने अह का छाड़कर इन्द्रिया के आकर्षण से मुक्त होकर कषाय, ईर्ष्या, मोह, माया आदि से हटकर जीने का उपक्रम करेगा। जव इन सारे दुर्गुणों पर पकड़ मजबूत हो जाती है तव आत्मा पर से पर्दा उठ जाता है और आत्मा से परमात्मा का मार्ग खुल जाता है।

नाना होने का मतलब है–त्यागपूर्ण जीवन, अजस्र साधना, अचूक साधना। वे पीछे नहीं हटे, अपने मुकाम पर डटे रहे और सफलता के साथ आगे बढ़ते रहे। नाना ने स्वय पथ बनाया, उस पर चले और दूसरो को चलाया। उन्होंने अपने देश की माटी का उपकार सदा जाना, सदा समझा और उनकी यही कोशिश रही किं प्रत्येक व्यक्ति अपने देश की माटी के प्रति कृतज्ञ रहे। धर्म, दर्शन, समाज, जीवन और साधना से कोई व्यक्ति जग को कितना प्रकाशमान वना जाता है, आचार्य नानेश इसका प्रमाण थे।

तब आचार्य नानेश होने का मतलब है ज्ञान का प्रकाश, अध्यात्म की ज्याति, त्याग की रश्मियाँ, मानवता का आलोक, धर्म प्रभावना की किरणे, प्रकाश ही प्रकाश' आलोक ही आलोक' उन्मुक्त द्वार, आलोकित पथ और प्रकाशित दिशा में आत्मा की यात्रा' आचार्य श्री नानेश होने का मतलब है–मनुष्य से देवता बनना, आत्मा से परमात्मा बनना।

◆

सच्चा योग यही है कि कोई अपने मन, वचन और काया की योग-वृत्तियो को सवृत बनाकर उन्हे 'कु' से 'सु' की दशा में मोड़ दे। जो योग का सच्चा अर्थ नहीं समझते हैं, वे विचारहीन शारीरिक क्रियाओ मे योग को ढूढते हैं।

—आचार्य श्री नानेश

गुमानमल चोरड़िया
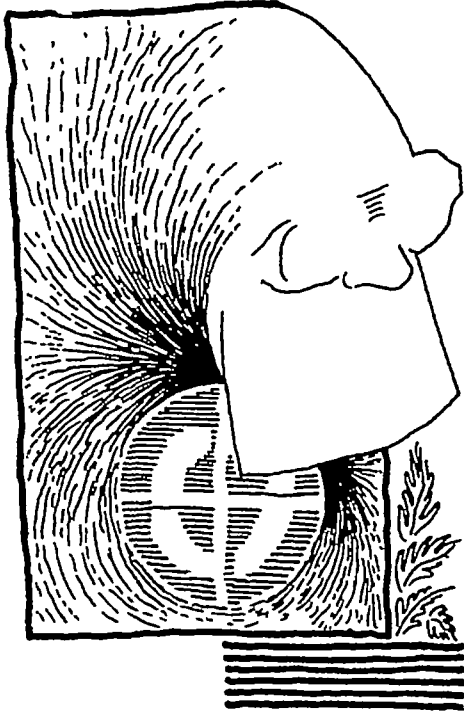
एक युग-प्रतिबोधक संत

युग-निर्माण मे विविध क्षेत्रो की जिन महान् विभूतियो का योग रहता है उनमे युग-प्रतिबोधक सत का महत्त्व सर्वाधिक एव सर्वोपरि होता है क्योकि जहाँ अन्य विभूतियाँ भौतिक एव लौकिक दृष्टि से क्रियाशील होती हैं और समाज को विकास की अलभ्य ऊँचाइयो तक ले जाने में प्रयत्नशील रहती है, वहीं युग-प्रतिबोधक सत समाज को ऐसा प्रतिबोध देता रहता है जिससे अलभ्य ऊँचाइयों का आकाक्षी यात्री धर्म, न्याय, नीति और आत्म सस्कार के मूल्यो के विस्मरण से रक्षित तथा सत्य, शिव एव सुन्दर की स्थापना के प्रति सजग रहकर युग-निर्माण के दायित्व की पूर्ति मे भी सलग्न रहे। हम जानते हैं कि केवल लौकिक उपलब्धियाँ ही सफलता का मापदण्ड नहीं होतीं क्योंकि मनुष्य केवल शरीर नहीं है, शरीर के आवरण मे उसमें एक आत्मा भी निवास करती है जिसका हित, जिसकी उपलब्धियाँ और जिसका विकास, वह कसौटी है जिस पर युग की सफलताओ की परख होती है। इस दृष्टि से आचार्य नानेश युग-प्रतिबोधक सत तो थे ही, अपने विशिष्ट प्रदेय के कारण युग के सर्वोपरि सतों मे परिगणना के अधिकारी भी बन गये।

यह भी द्रष्टव्य है कि युग-प्रतिबोधक सत शैशवावस्था से ही युग-प्रतिबोधन की अपनी क्षमता एव शक्तियों के प्रमाण प्रस्तुत करने लगता है। आचार्य नानेश के साथ भी ऐसा ही हुआ। उन्हे एक सुसस्कारित धर्मनिष्ठ परिवार में जन्म मिला, परिणामस्वरूप उनकी क्षमताओ को भी खुलकर खेलने के अवसर प्राप्त हुए। झीलो की नगरी उदयपुर के एक छोटे-से ग्राम दाता में श्रेष्ठी परिवार मे आपका जन्म हुआ था। आपकी मातेश्वरी गृहकार्यो की कुशल सचालिका, सुश्रद्धासपन्न, धर्मपरायण महिलारत्न थीं। आपके अग्रज 2 भ्राता एव 5 भगिनियाँ थीं जिनमें दो भगिनियों ने आपश्री का ही अनुसरण कर भागवती दीक्षा अगीकार की थी। परिवार मे सबसे छोटे होने के कारण स्नेहाभूत आपको सब नाना के नाम से ही सम्बोधित करते थे यद्यपि आपका नाम गोवर्धनलाल था जो गौण ही रहा।

वचपन म ही आपकी सेवा भावना प्रस्फुटित हो रही थी, अशक्त वृद्ध महिलाओं का पानी का घट उठवाना आदि कई उदाहरण आपकी बाल्यावस्था में घटित हुए हैं। वचपन में आप खेतों की मनमोहक हरियाली में कुए की टेकरी पर वैठ मानव जीवन की सार्थकता पर चिन्तन किया करते थे। वाल्यावस्था में सहोदर भाई का वियोग एव 8 वर्ष की अवस्था म पिताश्री का साया आपके सिर से उठ गया था। हमेशा माता के साथ ही जीमना एव मातृ आज्ञा विना कोई कार्य नहीं करना आपकी मातृभक्ति को प्रदर्शित करता है। अपने चचेरे भाई और मित्र श्री कन्हैयालालजी के साथ आपने व्यवसाय प्रारम्भ किया। भोपाल सागर में जैन जगत के ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्य का पधारना हुआ। आचार्य जवाहर के तेजस्वी व्यक्तित्व की दाता ग्राम के दर्शनार्थ गये श्रावक-श्राविकाओ पर अमिट छाप पड़ी, फलस्वरूप आपको व कन्हैयालालजी को उनके अभिभावको ने गुरु धारणा दिलवा दी। इस अवस्था में भी आपकी धार्मिक भावनाएँ कितनी प्रबल थीं इसका प्रमाण आपकी जीवनचर्या थी।

मेवाड़ी पूज्य श्री मोतीलालजी म सा क प्रवचनों से प्रभावित होकर आपने कच्चा पानी नहीं पीना, चाविहार का पालन, जूते नहीं पहनना एव हरी सब्जी नहीं खाना जैसे कतिपय नियम कुछ आगारो सहित ग्रहण किये तथा निष्ठापूर्वक उनका पालन करने लगे। आपका वैराग्य पक्का था जो दूज के चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा। आपने सुना कि पूज्य जवाहराचार्य अन्न छोड़कर केवल मर्यादापूर्वक उपलब्ध दूध दही पर ही रहते हैं, आपने केवल पानी पर रहने का मानस वनाना प्रारम्भ किया, उनोदरी चालू की। शरीर कृश होने लगा, मुख तेजस्वी होने लगा। मोहमाया ने आपको आकृष्ट करना चाहा—मातश्री ने कहा तुम्हें दीक्षा लेनी है, हम आज्ञा देंगे पर सब काम समय पर होगा। भगवान् महावीर स्वामी ने माता-पिता के समक्ष दीक्षा नहीं ली, तुम मेरी वृद्धावस्था मे सेवा नहीं करोगे क्या? मेरे पीछे जैसा मन हो वैसा करना। नाना के सामने एक समस्या आई पर प्रतिभावान थे। माता से पूछा, पहले आप जाओगे या मैं—कौन कह सकता है? वड़े भाई साहिब आपकी सेवा करेंगे। अभी तो मैं खोज कर रहा हूँ मुझे कहाँ दीक्षा लेनी है। जव मेरे अत करण म जच जायेगा तव अनुमति मागूगा। अभी तो मुझे सन्तों के सपर्क म जाने दें।

> युग-निर्माण में विविध क्षेत्रों की जिन महान् विभूतियों का योग रहता है उनमें युग-प्रतिबोधक संत का महत्व सर्वाधिक एवं सर्वोपरि होता है क्योंकि जहाँ अन्य विभूतियाँ भौतिक एवं लौकिक दृष्टि से क्रियाशील होती हैं और समाज को विकास की अलभ्य ऊँचाइयों तक ले जाने में प्रयत्नशील रहती हैं, वहीं युग-प्रतिबोधक संत समाज को ऐसा प्रतिबोध देता रहता है जिससे अलभ्य ऊँचाइयों का आकांक्षी यात्री धर्म, न्याय, नीति और आत्मसंस्कार के मूल्यों के विस्मरण से रक्षित तथा सत्य, शिव और सुन्दर की स्थापना के प्रति सजग रहकर युग-निर्माण के दायित्व की पूर्ति में भी संलग्न रहे।

जिस महिमामयी आत्मा का कार्य युग को प्रतिबोधन देना होता है वह छोटी-मोटी वाधाओ एव सकटों से घवराती नहीं है, वह तो प्रतिरोधी का भी हृदय परिवर्तन कर देती है। आपका वैराग्य पक्का था, मातेश्वरी भी पिघलीं। उदयपुर मे आप पजाव केसरी आचार्य श्री आत्मारामजी म सा, युवाचार्यश्री काशीरामजी म सा के पास पहुँचे। मुनिश्री जवरीलालजी म सा ने कहा, पहले यह प्रतिज्ञा करो काशीराम म सा के पास कि, मैं आपका ही शिष्य वनूगा। आपको जमा नहीं। भीम मे मेवाड़ी चौथमलजी म सा ने आपको दीक्षा के लिए हतोत्साहित कर धन कमाने के लिए फीचर आदि वताने की वात कही। सवत् 1995 म वदनौर चातुर्मास काल मे 3-4 महीने मेवाड़ी पूज्य श्री मोतीलालजी म सा के पास आपने पच्चीस वोल, प्रतिक्रमण, दशवैकालिक श्रामण्य जीवन की क्रिया का अध्ययन किया। उनोदरी तप चल रहा था, चौथाई रोटी वाला। शरीर कृश हाता जा रहा था पर तपश्चर्या की अनूठी छाप जन-जन के मन को मोह रही थी। आपको वहाँ भी आत्म-साधना के लक्ष्य पूर्ण होते नहीं लगे, अत आप वहाँ से लौट आये।

नीतिकार ने लिखा है—'जिन खोजा तिन पाइया', आपके साथ भी ऐसा ही कुछ घटित हुआ। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा की तप साधना के विवरणों से आप प्रभावित हुए और कोटा में युवाचार्य श्री गणेशाचार्य की सेवा मे पहुँच कर आपने श्रीचरणो में सयम आराधना कर आत्मकल्याण करने की भावना प्रकट की। पर युवाचार्यश्री ने फरमाया कि साधु बनना कोई हसी-खेल नहीं है पहले ज्ञान-ध्यान सीखो। यदि सयमवृत्ति अपनानी है तो पहले गुरु का भी परीक्षण कर लो फिर साधु-दीक्षा स्वीकार कर आत्मा को तप की भट्टी पर चढा दो। ऐसा खरा और निस्पृह उत्तर सुनकर आपने उक्त महापुरुष को मन से गुरु मान लिया। गुरु की परीक्षा हो चुकी थी अब शिष्य को परीक्षा देनी थी।

तप-त्याग का वृक्ष विकासमान था, सस्कार प्रबल थे, प्रारब्ध नियति को खींच रहा था और युग उत्सुकता से आपकी ओर देख रहा था। सकल्प मनोबल से पुष्ट हो रहे थे और आत्म-प्रबोध के मार्ग से युग-प्रबोध की दिशा उन्मुक्त हो रही थी। जिन महान् आत्माओ को ससार का मार्गदर्शन करना होता है वे पथ से भटकती नहीं वरन् स्वत ही उस दिशा में बढ़ जाती हैं जिसमे सफलता उनकी प्रतीक्षा कर रही होती है। आपके साथ भी यही होना था—योग्य गुरु का सान्निध्य आपको प्राप्त हो गया।

तदुपरान्त प्रारभ हुई मुमुक्षु जीवन की वह गौरवशाली यात्रा जिसकी पूर्णता आचार्यत्व की प्राप्ति और युग-प्रतिबोधक सत के रूप में प्रतिष्ठित होने म थी। 18 वर्ष की आयु मे ज्योतिर्धर जवाहराचार्य के शासन मे आपकी भागवती दीक्षा पौष शुक्ला 8, सवत् 1996 मे तत्कालीन युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के मुखारविन्द से कपासन शहर के बाहर एक सुरम्य सरोवर के किनारे आम्रवृक्षो के निकुज के मध्य स्थित विशाल आम्रवृक्ष के नीचे हजारों की जनमेदिनी की साक्षी में सम्पन्न हुई। पूर्व रात्रि की जोरदार वर्षा यद्यपि आयोजको के लिए समस्या बन सकती थी पर प्रकृति ने एक महापुरुष की दीक्षा का पूर्वाभास करवा ही दिया। आप का वैराग्य इतना उत्कृष्ट था, आरम्भ-समारम्भ के प्रति इतने आसक्त थे कि न तो आपने परम्परा अनुसार रात्रि मे जुलूस निकलवाया, न मेहदी लगवाई, सामायिक व्रत धारण कर साधना में तल्लीन हो गये। औपचारिकताएँ सकल्पों का आवरण नहीं होतीं, न सकल्प औपचारिकताओं से निर्देशित-नियन्त्रित ही होते हैं।

दीक्षा की सार्थकता का मूल मत्र है—ज्ञान-आराधना। अत आप ने अपनी साधना के तीन बिन्दु ज्ञान-आराधना, सयम-साधना एव सेवा-भावना का लक्ष्य रखा। आपका समस्त जीवन इन तीनो साधनाओं का प्रतिरूप बन गया। आपकी मेधा, एकाग्रता एव अध्ययनशीलता से सभी चमत्कृत थे परन्तु सतों की पहिचान मात्र इन बौद्धिक क्षमताओ से नहीं होती उनकी पहचान का आधार होती हैं वे आध्यात्मिक एव आत्मिक शक्तियाँ जो उसके मन, बुद्धि एव हृदय को अनुशासित करती हैं और उसमें धृति, क्षमा, धैर्य, अस्तेय, इन्द्रिय-निग्रह और अक्रोध जैसे उन गुणों की पहचान कराती हैं जिन्हें धर्म के लक्षण माना जाता है। गुरु था भी पूरा उस्ताद। ठोक-बजा कर शिष्य स्वीकार तो किया था परन्तु उसकी परीक्षा लिये बिना वह कैसे आश्वस्त होता? अत इस शिष्य को ऐसे सतों के साथ चातुर्मास करवाया जिनकी क्रोधी प्रकृति के कारण शिष्यों का उनके साथ निभना कठिन होता है। परन्तु शिष्य भी घुटा हुआ था, अपनी विनयशीलता और सेवा भावना से उनका ही हृदय-परिवर्तन कर दिया जिस पर उनके मुँह से अनायास ही निकल पड़ा कि यह शासन का होनहार रत्न है। परन्तु यह उन्होने कोई नई बात नहीं कही थी। इस शिष्य को युग-प्रबोधक बनना ही था यही उसका अदृष्ट था और जिसकी भविष्यवाणी इस शिष्य के जन्म से पूर्व ही पचम पट्टधर आचार्य श्री श्रीलालजी म सा ने यह कह कर दी थी—'अष्टम् पट्टधर आचार्य इतने पुण्यशाली होंगे कि जिनके आचार्यत्वकाल मे धर्म की महती प्रभावना होगी और यह पाट परम्परा अत्यत दीपेगी।'

शिष्य निश्चित रूप से निष्ठापूर्वक इसी दिशा में गति कर रहा था। इस प्रकार जहाँ सतत जागरूक रहकर, प्रिय वाणी एव ऐषणीय प्रवृत्तियों से उसने आचार्यश्री का मन मोहा, वहीं 24 वर्ष की सयम अवधि मे 21 वर्ष गणेशाचार्य की

सेवा का लाभ उठाया एव 3 वर्ष वृद्ध एव रुग्ण सतो की सेवा मे रहकर उनका भी आशीर्वाद बटोरा।

आपश्री साधना काल में मौन साधक एव अल्पभाषी रहे जिससे यह धारणा बनने लग गई थी कि मुनि नानालाल विकास नहीं कर सकेगे पर प्रभु महावीर ने कहा है कि साधक साधना की उच्चकोटि पर तभी पहुँच सकता है जब इद्रिय दान्त हो। आप में किसी भी प्रकार की हसी-मजाक करने अथवा बढ़-चढ़ कर बोलने की वृत्ति परिलक्षित नहीं हुई। विनय-वृत्ति प्रचुर होने से अत्यल्प दीक्षा पर्याय मे ही गणेशाचार्य के अन्तेवासी अनन्य शिष्य बन गये और गुरुदेव का मन मोह लिया। आचार्यश्री ने आपकी प्रतिभा की विचक्षणता को परखा। उनकी दृष्टि पैनी थी, अत समस्त पत्र-व्यवहार, श्रमण सघ सबधी भी, आचार्यश्री के सकेतानुसार आप ही करते थे। आपश्री का यह समय गुरु-सेवा, स्वाध्याय, आत्मजागृति और साधना मे ही व्यतीत हुआ। इस प्रकार आपकी अन्तर्मुखता समृद्ध हुई।

दिव्य सतो के साथ चमत्कारी घटनाएँ होती ही है। आपके साथ भी एक ऐसी घटना हुई। जिस वक्त आपको आचार्यश्री ने युवाचार्य की चादर ओढ़ाई उस वक्त बादलो के बीच से सूर्य की किरणो ने आपके मुख मण्डल को प्रकाश से आलोकित किया। यह इस बात का पूर्वाभास था कि ये भानु के मानिन्द दुनिया मे प्रकाश फैलायेगे।

आचार्य श्री गणेशीलाल जी म सा कैन्सर जैसी भयकर व्याधि से ग्रस्त थे। आप छाया की तरह आचार्यश्री की सेवा मे समर्पित रहे और आचार्यप्रवर देवलोक पधारे, सारी जिम्मेदारी आपके बलिष्ठ कधो पर आ गई।

सघ-प्रतिबोधन

युग-प्रतिबोधन का कार्य आपने सघ-प्रतिबोधन से प्रारभ किया। जब आपने आचार्य पद ग्रहण किया था तब सघ मे अल्प सख्या मे ही साधु एव साध्विया थीं उनमें भी अधिकाश वद्ध एव स्थविर थे। धर्म प्रभावना मे साधु-साध्वियो की विशेष भूमिका होती है। प्रतिबोधन द्वारा इस सख्या में वृद्धि आपकी प्रथम प्राथमिकता थी।

आपके युवाचार्य बनने के पश्चात् प्रथम दीक्षा सेवन्तमुनिजी की हुई थी, वे आपके प्रथम शिष्य हुए थे। आचार्य पद ग्रहण करने के पश्चात् श्री मोतीलालजी कोठारी की सुपुत्री सुशीलाकुमारीजी एव पीपल्या मण्डी के वृद्धिचदजी स्वयमेव दीक्षित हुए फिर विधिवत् दीक्षा हुई। आपका तेजस्वी व्यक्तित्व भविक जीवों को ऐसा आकर्षित करता कि वे भगवान् महावीर के बताये हुए अनगार धर्म को ग्रहण करने हेतु स्वत ही प्रवज्जित हो जाते थे। आप के कर कमलो एव मुखारविन्द से लगभग 365 दीक्षाये सपन्न हुई। रतलाम में 25 दीक्षायें एक साथ सपन्न हुई, जो लोकाशाह के पश्चात् आप द्वारा स्थापित किया गया अनोखा कीर्तिमान था और आज तक सुरक्षित है।

समाज प्रतिबोधन

सघ की नींव सुदृढ़ कर आपने समाज प्रतिबोधन का कार्य प्रारभ किया। इस हेतु सहज ही उपयुक्त स्थिति बन गई। आचार्य पद ग्रहण करने के पश्चात् आपका प्रथम चातुर्मास रतलाम ऐतिहासिक रहा। रतलाम चातुर्मास समाप्त कर विहार करके आप नागदा पधारे। नागदा में गुजराती बलाई समाज के प्रमुख एव व्यवसायी सीतारामजी आपके प्रवचन में उपस्थित हुए। प्रवचन से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्हे लगा कि यही महापुरुष हमारे समाज का उद्धारक हो सकेगा। प्रवचन पश्चात् उन्होने कहा कि गुरुदेव हमारी स्थिति बहुत खराब है। आज लोग कुत्ते को गाड़ी मे घुमाते हैं, एयर कडीशन में रखते हैं पर हमे हुन्कारते हैं, तिरस्कृत करते हैं। समझ मे नहीं आता कि क्या करे। धर्म परिवर्तन कर ले, ईसाई बन जावें या मुसलमान बन जावे या आत्महत्या कर ले ? यह घृणित जीवन जीना हमारे वश की बात नहीं, क्या करें ? यदि आपने हमारा उद्धार नहीं किया तो हमारा कभी उद्धार होने वाला नहीं है। आचार्य प्रवर ने सान्त्वना दर्शायी और फरमाया कि आप इतने घबराओ मत, आपको न तो आत्महत्या करनी है और न धर्म ही परिवर्तन करना है। आपके जीवन में मदिरा और मास-सेवन की जो

बुराइयाँ व्याप्त हैं उन्हें आपको छोड़ना होगा। 'मरता क्या नहीं करता' यह युक्ति सफल हुई। डूबते को तिनके का सहारा मिला। गुरुदेव ने फरमाया—

'कम्मुणा बम्भुणो होई, कम्मुणो होई खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होई, सुहो हवई कम्मुणा।'

अर्थात् व्यक्ति अपने कर्म से ही क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र बनता है जन्म से नहीं। जैन धर्म में जन्म की नहीं कर्म की महत्ता मानी जाती है। यदि आपकी जाति एक सामूहिक क्रान्ति के साथ दुर्व्यवसनों से मुक्त हो जाये तो आर्थिक लाभ के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा भी बढ़ेगी। आप कर्मणा उच्च बन सकेंगे। आचार्यश्री ने सप्त कुव्यसन का विवेचन किया। आचार्य देव की मगल पीयूषिणी से प्रभावित होकर सीतारामजी एव उनके साथियो ने प्रतिज्ञा की— 'आज से हम सभी सब दुर्व्यसनो से दूर रहेंगे, आप हमे गुरु मत्र सुनाकर हमारा नवीन नामकरण कर दीजिये।' आचार्य प्रवर ने गभीर चिन्तन के पश्चात् सम्यक्त्व मत्र पाठ द्वारा उन्हे जैन धर्म मे दीक्षित किया एव 'धर्मपाल' (यानि धर्म की पालना करने वाला) नाम से सम्बोधित किया। इस प्रकार दादा गुरु श्री जवाहर की अछूतोद्धार की मशाल आपश्री ने सभाली। आपने आहार-पानी की परवाह किये बिना, एक-दो सन्तों को साथ लेकर, उस क्षेत्र के अतर्वर्ती गावों मे, ढाणियों मे पधार कर उपदेश दिया। आप के उपदेश के प्रभाव से धर्मपाल बने भाइयो ने गाव के लोगों को एकत्र कर सम्मेलन किये और एक क्रान्तिकारी युग का सूत्रपात हुआ। आचार्यश्री एव सन्तवर्य अपनी मर्यादा मे ही उपदेश दे सकते हैं फिर श्रावक सघ ने अपना कर्तव्य पहिचाना, उन लागो से सपर्क किया, प्रवास किये, सम्मेलन आयोजित किये। विवाह शादी या मोसर पर कार्यकर्ता जाते और बुराइयाँ छोड़ने के लिए आयोजित सभाओ में प्रेरणास्पद भाषण देते। इस प्रवृत्ति मे अथक प्रयत्नों से, अथक परिश्रम से, लाखों लोग व्यसनमुक्त हुए हैं। हजारो लोग धर्मपाल बने हैं। इनकी देखा देखी गूजर समाज ने भी अपनी पचायत में निर्णय लेकर शराब और मास-सेवन का त्याग किया। धर्मपाल भाइयों ने अपना सबध और बेटी-व्यवहार भी उनसे ही करने का निर्णय रखा जो मदिरा और मास का त्याग कर धर्मपाल बनेंगे, इससे दृढ़ता रहेगी। यह आचार्य श्री नानेश के प्रतिबोधन एव प्रेरणा का ही परिणाम है कि श्रावक-श्राविकाओ द्वारा समय-समय पर प्रवास, सम्मेलन, पदयात्राएँ आयोजित होती है। पदयात्राओ के साथ-साथ मेडिकल कैम्प भी लगाये जाते हैं। धार्मिक शिक्षण हेतु ग्राम-ग्राम मे शालाएँ चलती हैं। बालक-बालिकाएँ सामायिक पाटियाँ कण्ठस्थ कर लेते हैं। कई ग्रामो का धार्मिक विकास बहुत उच्च कोटि का है, अष्टमी, चतुर्दशी को उपवास भी होते हैं, बहिने गीत गाती हैं, 'हे माली, तू फूल मत तोड़ फूल मे भी बहुत जीव हैं।' प्रथम पदयात्रा मे बगाल के तत्कालीन उपमुख्यमत्री विजयसिहजी नाहर ने प्रति प्रमुदित भावों से कहा— 'लगता है नये युग का क्रान्तिकारी सूत्रपात हो रहा है।' इस प्रकार समाज-प्रतिबोधन द्वारा आचार्य नानेश ने हजारो धर्मपाल बनाये, लाखो लोगो को व्यसनमुक्त किया और जैन-धर्म के इतिहास मे एक नया गरिमामय अध्याय जोड़ा। सामाजिक-सास्कृतिक पुनर्निर्माण द्वारा सच्चे धर्म की प्रभावना तो हुई ही, आध्यात्मिक क्रान्ति का मार्ग भी प्रशस्त हुआ।

समता दर्शन आध्यात्मिक प्रतिबोधन

सवत् 2029 के जयपुर चातुर्मास में आपने एक विद्वान सुश्रावक क एक ही विषय पर चातुर्मास काल में प्रवचन के आग्रह को मान्य कर 'कि जीवनम्' इस सूत्र का गभीर विश्लेषण करते हुए स्वनिर्मित सूत्र 'सम्यक् निर्णायक समतामय चयत ज्जीवनम्' क माध्यम से जीवन दर्शन की दार्शनिक, आध्यात्मिक, पाडित्यपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करते हुए समता दर्शन का राजमार्ग प्रस्तुत किया। इसी के अतर्गत समीक्षण ध्यान साधना की भी विस्तृत विवेचना की और उसके प्रयोग की विधि बताई। यद्यपि जैन ग्रन्थों मे भी यह ध्यान विधि दी हुई है तथापि उस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा था। बौद्धधर्म की ध्यान-विधि का प्रचलन होने से आपने उसके समानान्तर जैन समीक्षण ध्यान विधि को लोकप्रिय बनाया और उस पर साहित्य उपलब्ध कराया। क्रोध-समीक्षण, मान-समीक्षण, माया-समीक्षण, लोभ-समीक्षण आदि पर जिस साहित्य की आपने रचना की वह विद्वद्-जगत् म विशेष रूप से प्रशसित हुआ है।

इस प्रकार युगानुरूप प्रतिबोध देकर आचार्य श्री नानेश ने एक अनोखी सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति का सूत्रपात तो किया ही, सच्चे अर्थो मे धर्मप्रभावना भी की और एक ऐसे मार्ग का निर्देश भी किया जिस पर चल कर समाज आध्यात्मिक प्रतिबोध प्राप्त कर सकता है।

व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन और अध्यात्म के क्षेत्रों मे आचार्य नानेश के द्वारा दिये गये प्रतिबोधा पर यदि हम विहगम दृष्टि डालें तो यह तथ्य अपनी पूर्णता मे प्रकट होता है कि उनका चिन्तन आत्म परिष्कार द्वारा जीवन परिष्कार की सुनिश्चिति करने की दिशा मे था। उन्होने देख लिया था—

अज्ञान कर्दमे मग्न जीव ससार सागरे।
वैषम्येण समायुक्त प्राप्तुमहर्ति नो सुखम्।।

ससार सागर मे अज्ञानरूपी कीचड़ मे लीन, विषमता से युक्त जीव कभी सुख को प्राप्त नहीं कर सकता। उसके विषम चिन्तन ने आत्मा पर मैल की दुर्भेद्य पर्ते चढा दी हैं। इनके रहते सुख, सतोष और शान्ति की प्राप्ति उसके लिए दुर्लभ है। उन्होंने देखा कि आवश्यकता इस बात की थी कि पहले व्यक्ति सुधरे, फिर सुधरा हुआ व्यक्ति समाज को सुधारे और सुधरा हुआ समाज जीवन का परिष्कार करे। वर्तमान युग म उन्होंने इस स्थिति की विपरीत परिणति होती देखी थी। कारण जो भी हों, विविध भौतिक आग्रहों से जीवन प्रदूषित था। इस प्रदूषण ने समाज और व्यक्ति की मानसिकता को भी भीषण रूप से प्रदूषित कर दिया था। इस प्रकार मनुष्य के सस्कार बिगड़े थे, प्रवृत्तियाँ बिगड़ी थीं और जीवनचर्या चौपट हो गई थी। भगवान् महावीर के उद्घोष—'जीओ और जीने दो' के विपरीत मनुष्य का लक्ष्य हो गया था—'सब कुछ अपने लिये बटोरो और स्वय ही सबका अधिक से अधिक उपभोग करो।' भौतिक उपभोगवादिता ने आत्मसुख के उपभोग से मनुष्य को पूर्णत वचित कर दिया था। इसलिए उन्होने कहा—आत्मसमीक्षण करो। दूसरो को तो सभी देखते है, अपने को देखो, पहचानो, तुम कौन हो और क्या हो ? उन्होने समझाया—तुम चैतन्य देव हो, प्रबुद्ध और जाग्रत हो, ज्ञाता और द्रष्टा हो, सुविज्ञ और सवेदनशील हो, समदर्शी हो, ज्योतिर्मय हो, शुद्ध, बुद्ध, निरजन हो।

युग-निर्माण की प्रमुख आवश्यकता यही है कि मनुष्य अपने इन पर्यायों को समझे और इनमे दृढ़ आस्था उत्पन्न करे। निश्चय ही उसका हृदयपरिवर्तन होगा, वृत्ति-परिष्कार होगा, आत्मतत्त्व प्रबुद्ध होगा और वह आत्म साक्षात्कार के उस मार्ग पर चल पड़ेगा जिस पर सभी आत्माएँ उसे अपनी आत्मा में समाहित दिखाई देंगी और सभी आत्माओ में वह अपनी आत्मा के दर्शन कर सकेगा। तब 'आत्मवत् *सर्वभूतेषु' की सच्ची स्थिति उत्पन्न होगी और आत्मा अपनी जय-यात्रा के पथ* पर चल पड़ेगी। मनुष्य समाज और ससार को इसी पथ पर जाना है, यही उनका इष्ट है, यही उनकी नियति। इस पथ पर अग्रसर होने मे बहुत विलम्ब हो चुका है परन्तु अभी भी समय है, बस आवश्यकता है सकल्पबद्ध हो कर चल पड़ने की। यही वह युगानुरूप प्रतिबोध है जिसे प्रदान करने के प्रयास विविध मार्गो से किये जा रहे थे परन्तु जिसका राजमार्ग केवल आचार्य नानेश ही दिखा सके। ◆

बुद्धि, धन, बल या विद्या किसी की भी शक्ति स्वय के पास हो तो उसका कर्तव्य माना जाना चाहिए कि वह अपनी शक्ति का दूसरो के हित के लिए सदुपयोग करे।

—आचार्य श्री नानेश

डॉ महेन्द्र भानावत

लोकसंत नानेश
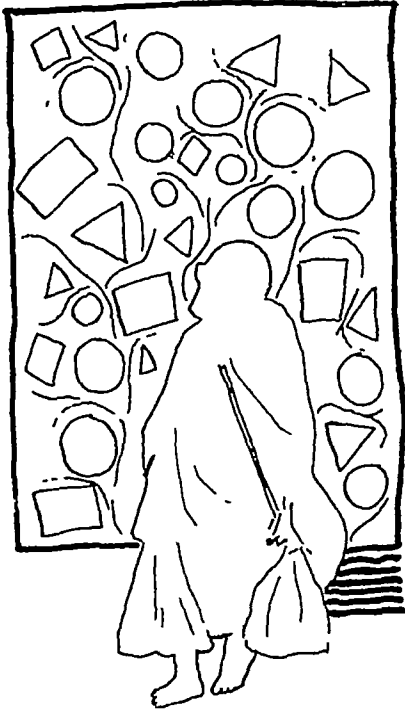
अपने आत्मकल्याण के साथ-साथ जो व्यक्ति अपनी समग्र चेतनानुभूति से ज्ञान, दर्शन एव चारित्र द्वारा लोक का पथ बुहारता हुआ जन-जन को जीवनालोक प्रदान करता है वही सच्चे अर्थो मे लोकसत कहलाये जाने का अधिकारी होता है।

रामचरितमानसकार ने ऐसे सतों के चरित्र की तुलना कपास से की है। कपास जिस प्रकार उज्ज्वल और उपयोगी होता है वैसे ही सत का जीवन शुभ्र, पावन और लोकधर्मी तानेबाने से बुना होता है। कपास का डोडा नीरस होता है, साधु-जीवन भी विषय-विकारों से रहित होता है। विषयासक्ति में जो रस होता है साधु उससे कोसो दूर रह कर नीरस जीवन जीने मे ही आत्मिक शान्ति एव जीवनानद का अनुभव करता है।

'साधु चरित सुभ चरित कपासू/निरस बिसद गुनमय फल जासू।'

कपास के फूल की एक और विशेषता है। मानसकार ने कहा है—'जो सहि दुख पर छिद्र दुरावा/वदनीय जेहि जग जस पावा।' कपास का धागा सुई के किये हुए छेद को अपना तन देकर ढक देता है वैसे ही सत स्वय कष्ट पाकर दूसरों के दोष ढकता है। कपास लाढ़ा जाता है। काता जाता है। बुना जाता है। तार-तार होकर भी, कष्ट-पर-कष्ट सहकर भी वस्त्र का रूप ले कर वह अन्य लोगों का तन ढकता है, सत भी ऐसे ही अपने को तपा-खपा कर लोगो की कल्याण कामना करता है। अपना सर्वस्व समर्पण कर सबका तारनहार बनता है।

लोकजीवन में भी दृष्टात आता है जिसमे फूलो में सबसे बड़ा फूल कपास का कहा गया है जो पूरी दुनिया को अपने रेशे के बने कपड़े से ढककर मनुष्य की लाज बचाता है। यही सत की प्रकृति है जो अनेक कष्ट पाकर भी अपने रेशे-रेशे, रोम-रोम मे उत्फल्ल रह परमार्थजीवी बना रहता है और कपास

की तरह अपने को निर्मल, शुद्ध, स्वच्छ, धवल, उज्ज्वल किये रहता है। ऐसा सत लोकसत की श्रेणी मे आता है। कबीर, मीरा, दादू, रैदास ऐसे ही सत थे। जैन सत आचार्य नानेश भी ऐसे ही सतो की श्रेष्ठ परम्परा में परिगणित होते हैं।

वैराग्य और विराग के सस्कार बचपन से ही उनमें वैराग्य और विराग के बीज सस्कारित थे। थोपा हुआ वैराग्य, पटाया हुआ वैराग्य, लोभ और लाभ-लालसा वाला वैराग्य, उम्मीदो और ऐषणाओं तथा महत्त्वाकाक्षाओ का वैराग्य वह फल नहीं देता जो स्वत स्फूर्त आत्म चैतन्य की पयस्विनी से निसृत वैराग्य देता है। इसलिए वैरागी काल से लेकर आचार्य के अतिम पड़ाव तक नानेश निरभिमानी, समदर्शी, समतावादी, अपने पराये से निर्लिप्त बन रहे। युवाचार्य और आचार्य होने की जय जयकारे उन्हे यत्किंचित भी विचलित नहीं कर पाई।

वे कभी भीड़प्रिय नहीं रहे और न कभी उन्होंने अपने चरणों की ओर श्रावक समुदाय की दृष्टि केन्द्रित करने की कोशिश की। उनकी धर्मसभा मे श्रोताओ का रेला का रेला उमड़े या वे किसी विशाल सभा की शोभा बने, ऐसी चाहना से वे सदा दूर रहे। अपने धर्मसघ को फैलाने, विदेश तक पहुचाने, कुछ नया करने, परिवर्तन लाने तथा आधुनिकता देने जैसी औपचारिकताओं के विश्वासी भी वे कभी नहीं बने। एक शास्त्रीय आत्मानुशासित और पुष्ट परम्परा का पोषण करने में ही अपने साधु-साध्वी एव श्रावक-श्राविकाओं को लगे रहने का उन्होने उपदेश दिया।

उन्होने कभी ध्वनि विस्तारक यत्र का प्रयोग नहीं किया, न बिजली की रोशनी ही स्वीकार की। भक्त श्रावक कहते, अनुनय विनय करते कि माइक्रोफोन के अभाव में बहुत सारे लोग वाणी-व्याख्यान श्रवण नहीं कर पाते, बुद्धिजीवी, प्रबुद्ध श्रोता और वैज्ञानिक तर्क देते कि माइक के प्रयोग में किसी तरह की हिंसा नहीं है किन्तु आचार्य नानेश की समयादेश के आगे सब चुप रह जाते। वे शास्त्र-सम्मत विचार से ऐसा समाधान देते कि सबकी शका निर्मूल हो जाती। फिर वे यह भी जानते थे कि वे साधु थे और साधुत्व की क्या मर्यादाए हैं। बहुत सारी लौकिकताओ से उसे बचना होता है। एक सुविधा पाली कि अन्य सुविधाओ के द्वार खुल जायेंगे जो साधुत्व के लिए साधु के आत्मोद्धार के लिए बाधक ही सिद्ध होगे।

प्रभावी व्याख्यानकर्ता आचार्य नानेश के व्याख्यान लोकशिक्षण से ओत-प्रोत, अन्तस की गहराइयो को छूने वाले, सरल, सुगम और बोधपरक होते थे। प्रभु मे अटूट विश्वास लिये वे हर व्याख्यान किसी प्रार्थना से प्रारभ करते थे। यह प्रार्थना किसी तीर्थंकर भगवान से सम्बन्धित होती थी। प्रार्थना के मर्म पर टिप्पणी करते हुए वे मनुष्य को तदनुसार आचरण करने की प्रेरणा देते थे।

पद्म प्रभु पावन नाम तिहारो
पतित उद्धारन हारो।। पद्म प्रभु

यह पद्म प्रभु की प्रार्थना है। प्रभु का नाम पावन और पवित्र है। पतितों का उद्धार करने वाला है। पतित कौन हैं? कवि ने धीवर, भील और कसाई की ओर सकेत किया है। गौ की, ब्राह्मण की, स्त्री की हत्या करने वाला पतित माना गया है। इन हत्याओं को करने वाले यदि आपके नाम की स्तुति को समझ लेते तो ये भी अपने जीवन का उद्धार कर पाते।

ऐसी किसी प्रार्थना से प्रारभ हुआ व्याख्यान जीवन के विविध सदर्भो, विभिन्न घटनाचक्रों, बात-आख्यानों, घर-परिवार से लेकर सामाजिक राष्ट्रीय समस्याओ को छूता, समेटता हुआ किसी शिक्षाप्रद धारावाहिक कथा-क्रम की सगति से इतना रोचक बनता था कि श्रोता समुदाय पूरे तन-मन से उसमे डूब जाता था। आचार्यश्री के व्याख्यान विविध आयामो और विविध विषयों का सौम्य शुभ्र वितान लिये होते थे।

अपने भक्तों के भगवान, जन-जन की आस्था के केन्द्र आचार्य श्री नानेश भगवान महावीर की पाट-परम्परा के ऐसे अनोखे सिद्धपुरुष थे जिनमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सभी दिव्य गुण अपनी सम्पूर्ण गरिमा में विद्यमान थे। ऐसे संत किसी एक वर्ग, किसी एक सम्प्रदाय और किसी एक युग के न होकर युगों-युगों की मानवता की विरासत होते हैं और अपनी उपस्थिति से लोक को धन्य कर जाते है। ये ही लोक सत होते है।

वे कभी विज्ञान की अधुनातन खोज का जिक्र करते तो कभी किसी दगे, मारधाड़ या किसी कथानक का स्मरण दिलाते हुए मनुष्य को अपने कर्तव्य के प्रति सचेत रहने का उपदेश देते थे।

जयपुर चातुर्मास की एक धर्मसभा मे बन्दरो का अचानक उत्पात होने से शान्ति व्यवस्था गड़बड़ाई तब आचार्यश्री ने परिस्थिति को भापते हुए, बदरो की तुलना मनुष्य से करते हुए मीठी चुटकी से वातावरण को शान्त कर दिया था। उन्होने कहा—'सिर्फ उन्होंने (बन्दरो ने) जीवन का ध्येय तोड़-फोड़ करना, इधर-उधर कूदना फादना या वस्तुआ को लेजाकर बिखेर देना ही समझ लिया है। आज के मानव अपने जीवन के महत्त्व को समझते हैं या बन्दरो की भाति ही इधर-उधर लोगों को आपस में लड़ा भिडाकर, कटुता फैलाकर जीवन में अव्यवस्था पैदा करते हैं ? यदि यह स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से किसी के जीवन में व्याप्त हो तो समझना चाहिये कि अभी हमारे जीवन में सुसस्कारो का कुछ भी प्रवेश नहीं हो पाया है।' इस प्रकार उनके व्याख्यान किसी उपयुक्त सदर्भ से जुड़ जाया करते थे।

अपने व्याख्यान को अधिक प्रभावी, ग्राह्य और सगत बनाने के लिए आचार्यश्री श्रोताओं के साथ सदैव तालमेल बनाये रखते थे और समय-समय पर उन्हे सम्बोधित करते रहते थे जिससे सबका ध्यान उनकी ओर बना रहे, साथ ही अपनी बात का सार-रूप प्रस्तुत कर मनन के लिए वे प्रेरित भी करते यथा—

—'बधुओ! हा तो मैं कह रहा था ।'

—'अब मैं कल के छोड़े हुए कथानक पर आता हू ।'

—'इस विषय में तो मैं अपनी साधु-मर्यादा के अनुसार ही कुछ कह सकता हू।'

—'जो कुछ आपके सम्मुख रखा गया है उसे समझने का प्रयास करिये।'

—'आज के युग में यह विषय चिन्तनीय है।'

—'आप देखिये, यह भी एक तरह की मूर्छा है।'

—'आप चितन करिये। जीवन के स्वरूप को सही अर्थ से देखे।'

—'यदि आप भी इसका अनुकरण करते हुए अपने जीवन को माजने का प्रयास करे तो आप भी अपने जीवन में चार चाद लगा सकते हे।'

व्याख्यान के बीच-बीच मे प्रसगानुसार जीवन मूल्यों से जुड़ी बहुत-सी सारपूर्ण बातो का वे समावेश करते रहते थे। जिससे सहज ही सबका ध्यान आकृष्ट रहता था। यह स्थिति यदि सोचने और ग्रहण करने को मजबूर करती थी तो साथ ही आत्मचितन के लिए प्रेरित भी करती थी। कई बार तत्काल उनका प्रभाव भी देखने को मिलता। कुछ उदाहरण—

—'मानव जीवन सभी शक्तियो के विकास का केन्द्र है। प्रत्येक मानव को जो-जो शक्तिया उसके भीतर छिपी हुई हैं उनका विकास करना चाहिए।'

—आज भौतिक विकास तो चारो ओर हो रहा है किन्तु आध्यात्मिकता की ओर कुछ कम लोगो का ही ध्यान जा पाया है। इस दृष्टि से मानव अभी परतत्र ही बना हुआ है।'

—'व्यक्ति का विकास परिवार को प्रभावित करता है। उससे समाज में चेतना आती है। वही चेतना समूचे राष्ट्र की काया पलट कर सकती है किन्तु यह समतादर्शन के द्वारा ही सभव हो सकता है।'

—'जो आत्मघात का परित्याग नहीं कर सकता उसके लिए जैन और मानव नाम तो दूर रहा, वह पशु से भी गयाबीता है।'

—'सदाचार कल्पतरु से बढ़कर है। शर्त सिर्फ यह है कि वह वास्तविक हो, आत्मप्रसूत हो, अध्यात्म के धरातल पर हो।'

आचार्यश्री की जब भी विशिष्ट व्यक्तियों, विद्वानों, राष्ट्रनेताओं तथा समाज के कर्णधारों से भेंट होती तब उन्हे उनसे विविध प्रकार के सवाल सुनने को मिलते थे। जवाब मे आचार्यश्री जो कुछ देखते, सुनते, अनुभव करते उसके आधार पर अपने विचार व्यक्त करते थे। उनके ये विचार साफ-सुथरे, स्पष्ट

तथा सारयुक्त होते। इनसे उनकी व्यावहारिक लोकदृष्टि, मौलिक चितन एव निराली सूझ-बूझ का पता चलता था। कतिपय उदाहरण अपेक्षित है—

'साधुमार्ग निष्कटक नहीं है। वह दिखता सरल है मगर है कठिन। मर्यादा पालन, आत्मानुसधान, अनवरत स्वाध्याय, सत्य की खोज, शिथिलाचार का विरोध, लोकहित के लिए कटिबद्धता, उदारता, समन्वय, विश्वमैत्री आदि साधुमार्ग के मूल आधार है।'

—'विचार, आचार और उच्चार जब तीनो की एकरूपता बनती है उस वक्त मनुष्य के स्वय के जीवन की विषमताओं की तमाम स्थितिया समाहित हो जाती है।'

—'दुनिया के सारे प्रकाश यदि जोड़ लिये जाय तो जो जोड़ बनेगा उसका नाम ईश्वर है। ईश्वर प्रकाश का कैवल्य है।'

—'फिजूलखर्ची राष्ट्रीय अपराध है और भारत जैसे गरीब देश में तो इस अपराध का आकार और अधिक गुरुतर माना जाना चाहिए।

—'खादी की पृष्ठभूमि पर अहिसा और राष्ट्रीयता दोनो है। इसमे पावनता भी है। यह त्याग का प्रतीक भी है।'

—'राजनीति क्षणभगुर है, चचल है जबकि साहित्य चिर स्थायी एव मगलमय है। उसके आधारभूत मूल्य की क्षति नहीं होती।'

—'राजनताओ ने कई गल्तिया की हैं। अपनी कुर्सिया सुरक्षित रखने के लिए बुराइयो को बढावा दिया है। पश्चिम की नकल की है जिसके दुष्परिणाम सामने हैं।'

इस प्रकार उनकी दृष्टि केवल धर्म शास्त्रों, पौराणिक कथाओ तथा सूत्रों के वचन-व्याख्याआ तक ही सीमित नहीं रह कर लोक और समाज से जुड़े विविध आयामों, व्यवहारो और अनुभव-पिडो तक विस्तृत रहती थी, जिससे जनमानस को वह गभीरता से प्रभावित कर पाती थी।

धारावाहिक कथा के प्रसगानुकूल वे अपना मतव्य भी स्पष्ट करते थे और श्रोताओं की मन स्थिति का ध्यान रखते हुए रूपक के माध्यम से भी आधुनिक जीवनधर्म के पक्ष भी उद्‌घाटित करते चलते थे जैसे—

—'वैद्यराजजी समझ गये कि मरीज ने उल्टी पुड़ियायें ले ली हैं। जो पुड़िया अन्दर मे लेने की थी उसका चमड़ी पर लेप कर दिया गया और जो लेप करने की थी उसको अन्दर ले लिया इसलिए उसका रोग बढ गया।

लेकिन हमारे पास धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चार पुड़ियायें हैं। इन चार पुड़ियाओ मे से दो जो धर्म और मोक्ष की हैं, अन्दर में लो, शहद के साथ, जिससे सारा जीवन पवित्र और सस्कारित बने और बाकी की दो पुड़ियाए अर्थ और काम की हैं उनको ऊपर लेप के रूप मे ले।

—'मैं स्त्री-शिक्षा का पक्षपाती हू परन्तु स्वच्छन्द शिक्षा का नहीं। स्कूलों के अन्दर जो शिक्षा दी जा रही है वह जीवन निर्माण की दिशा मे नहीं है। नारी अपने जीवन के स्वरूप को समझे, मै वैसी शिक्षा का पक्षपाती हू।'

—'प्राचीनकाल की जो पद्धति थी उसका जरा अवलोकन करे। पुत्रजन्म का उत्सव महाराजा ने कैसे मनाया और आप किस तरह से मनाते हैं? न मालूम कितनी रोशनी करते होंगे। बिजली के बल्व जलाते होग जिन पर वेचारे हजारों जीव मर जाते होंगे। दूसरे व्यर्थ के आडम्बरो मे, व्यर्थ की चीजो मे समय और धन का अपव्यय करते होगे लेकिन महाराजा ने इस तरह उत्सव नहीं मनाया।'

समय के पावन्द आचार्यश्री समय के बड़े पावन्द थे। उनका हर कार्य समयबद्ध हो इसके लिए वे बड़े सजग रहते थे। उनका बहुत सारा समय तो निजी साधना का रहता था जिसमे वे किचित भी कमी अथवा शिथिलता नहीं आने देना चाहते थे। वे यह कहते भी थे कि साधुत्व अगीकार करने के पीछे आत्म साधना का भाव ही मुख्य होता है।

व्याख्यान के लिए भी उनका जो समय निर्धारित रहता था उसका वे पूर्णतया पालन करते थे और कई बार महत्त्वपूर्ण विषय के प्रतिपादन के बीच भी

समय को भाप कर चाहते हुए भी वे आगे नहीं बढते थे और इसकी सूचना भी देते थे कि व्याख्यान समाप्ति की ओर है इस कारण यह प्रसग आगे नहीं बढ़ाया जा रहा है।

ऐसा समय भी आता जब कोई दिलचस्प बात चल रही होती और सभी महसूस करते कि यह चलती ही रहे किन्तु आचार्यश्री उस पर विराम लगाना ही उचित समझते। सकेत रूप मे उनके कथन इस प्रकार होते थे।

—'मैं अभी इस विषय को इतना ही कहकर समाप्त करता हू।'

—'मेरी भावना थी कि मैं इसको आगे बढाऊ लेकिन समय हो गया है।'

—'इस समय इतना ही कहकर विश्राम लेता हू।'

—'चाहता तो यह था कि इस विषय पर और अधिक कहू पर समय का चक्र आगे बढ़ने से रोकना चाहता है।'

अपने व्याख्यानों मे वे विविध विषयों का समावेश करते थे, कभी *समतादर्शन का किसी रूप मे जिक्र करते तो कभी समीक्षण ध्यान का और कभी* दलितोद्धार के प्रसग को विस्तार देते, कभी साधु जीवन मे शिथिलाचार पर प्रहार करते तो कभी रूढियों की घातक बुराइयों पर चोट करते, कभी धन की प्रतिष्ठा पर जीवन-यापन करने वालो की खबर लेते तो कभी दहेज लोलुपों को लताड़ते, कभी मासाहार के बढ़ते प्रयोग पर जैन समाज की चुप्पी तोड़ते तो कभी टीवी पर बार-बार अडो के विज्ञापन के विरुद्ध समाज के कर्तव्यबोध को झकझोरते, कभी मृत्युभोज करने वालो को कोसते तो कभी आडम्बरपूर्ण जीवन जीने वालों को आडे हाथो लेते, कभी धर्म के आडम्बर पर अपनी खीझ प्रगट करते तो कभी आत्महत्या करने वालो की नासमझी और मूर्खता का दिग्दर्शन कर बुराइयों, हिसक प्रवृत्तियो, घृणित एव निदनीय कार्यो से बचने का उपदेश देते, ऐसा नहीं करने का त्याग कराते, सौगध दिलाते तथा आजीवन सुव्रती बनाने का प्रयास करते थे।

जीवन क महत्व को समझाते-समझाते एक बार आचार्यश्री ने अपनी धर्मसभा मे बैठे सभी भाई-बहनो से कहा कि यदि वे अपने जीवन के महत्त्व को

समझते हो तो अपने हाथ ऊचे करे कि हम कभी भी आत्मघात (आत्महत्या) नहीं करेगे।

लेकिन सभी लोगों तक उनकी यह बात नहीं पहुच पाई जिससे बहुत सारे हाथ नहीं उठ पाये तब आचार्यश्री ने जोर देकर कहा कि क्या आप अपने जीवन को खत्म करना चाहते हैं? उन्होने कहा कि जीवन की परिभाषा को ठीक करना है तो सबसे पहले जीवन को समाप्त नहीं करने का सकल्प ले। हमारे जीवन मे कैसी ही अवस्था क्यो न आये हम उससे नहीं घबराये और उसे नष्ट करने (आत्महत्या करने) का प्रयास नहीं करे।

अविस्मरणीय अनुभव—मैंने आचार्य श्री नानेश के प्रथम दर्शन बीकानेर मे सन् 1955 मे किये थे तब उनका वर्षावास ठठेरा बाजार स्थित सेठियाजी की कोटड़ी में था। हम लोग इन्हीं अगरचद भैरोदान सेठिया के बोर्डिग में रहते थे जो इस कोटड़ी के बिल्कुल पास ही था। छोटी सादड़ी के गोदावत जैन गुरुकुल से हाईस्कूल की परीक्षा पास कर मैं बीकानेर आगे अध्ययन के लिए चला गया था जहा पहले से ही मेरे अग्रज डॉ नरेन्द्र भानावत अध्ययनरत थे।

उस चातुर्मास काल में प्रतिदिन ही हमे सत-दर्शन एव व्याख्यान-श्रवण का सौभाग्य मिलता रहा। तब आचार्य गणेशीलालजी महाराज के सान्निध्य के साथ-साथ नानालालजी महाराज से भी अच्छा सम्पर्क होना स्वाभाविक था। उन्हीं दिनों धाय महाराज इन्द्रचन्दजी से भी सम्पर्क हुआ जो आगे जाकर आत्मीयता की गहराई को छू सका।

सन् 1958 में बीकानेर की अपनी पढाई पूरी कर मैं उदयपुर आ गया और यहीं स्थायी रूप से बस गया। यहा सन् 1959 से लेकर 1962 तक आचार्य गणेशीलालजी महाराज बिराजे तब उनके दर्शन के साथ-साथ नानालालजी महाराज के दर्शनो से उनके नजदीक आने और जीवन जगत् को जानने-समझने के कई अवसर हाथ लगे। 1981 में आचार्य के रूप मे जब पहली बार उदयपुर मे उनका चातुर्मास हुआ तब भी कई बार नजदीक मे उनके दर्शनों का सुयोग बना।

लेकिन 1989 मे अपने गाव कानोड़ मे आचार्य नानेश का चातुर्मास हुआ तो कई दृष्टियो से अत्यत महत्त्वपूर्ण रहा। अपने आचार्य और धर्मसघ के प्रति अटूट श्रद्धा, अचूक निष्ठा और सर्वस्व समर्पण, अनुनय विनय, श्रद्धालुओ के प्रति आत्मीयता का जुड़ाव एव मेवाड़ी मनुहार का मोहक दरसाव, दूर-सुदूर के श्रेष्ठिजनों तथा समाज शिरोमणियो की उपस्थिति, धार्मिक प्रवृत्तियों के मगलाचरण, विद्वत् गोष्ठी मे वैचारिक मथन, कुछ इस तरह का समा बाध गया कि शिक्षा नगरी का यह चातुर्मास न केवल कानोड़ के लिए अपितु धर्मसघ के इतिहास के लिए और आचार्य कुल के चातुर्मासो के लिए भी एक अविस्मरणीय अनुभव बन गया।

वहीं मैंने देखा आचार्यश्री की चरण-रज को उनके श्रद्धालु भक्त इस जतन से सहेजते थे जैसे कोई अपने लोकदेवता द्वारा काजसिद्ध और आरोग्यसिद्धि के लिए दिये गये फूल-पाती अथवा आखा-भभूत आदि सहेज कर गाठ बाधता है। वचपन का कक्षा-पाठी सवाई तो इस रज को पाकर सवाया ही हो गया था। बता रहा था कि पूरे चातुर्मास के दौरान एक पोटली चरण रज प्राप्त की थी जिसे अपने झाड़-फूक के दौरान और रोगियों को ठीक करने के काम मे लेता था। कहा-कहा नहीं पहुची होगी वह रज! न जाने कौन-कौन-सी, कितनी बीमारियों का क्षरण-हरण हुआ होगा उससे!

सुना कि इस रज से कई रजतवान बन गये। असाध्य बीमारियो को झेलते कई बूढ़े-बूढ़ी हल्के हो गये। कठिन दौर का जरा-ग्रस्त जीवन जीने वाले रज क्या पा गये जैसे चिन्तामणि पा गये। सुदामा सुदामवाले और अल्प वृक्ष के सहारे जीने वाले कल्पवृक्ष के करतार हो गये। उन्होने रज के दर्शन मे नाना गुरु का विशाल जीवन वैभव और अध्यात्म का आलोक पुज देखा। सच तो यह है कि लोक ने उनमे अपना सत देखा और आचार्य नानेश ने अपने लोक को साधुत्व से भर दिया। इस साधुत्व का जिसने भी छींटा पाया वह धन्य हो गया।

अपने भक्तों के भगवान, जन-जन की आस्था के केन्द्र आचार्य श्री नानेश भगवान महावीर की पाट-परम्परा के ऐसे अनोखे सिद्धपुरुष थे जिनमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सभी दिव्य गुण अपनी सम्पूर्ण गरिमा में विद्यमान थे। ऐसे सत किसी एक वर्ग, किसी एक सम्प्रदाय और किसी एक युग के न होकर युगों-युगों की मानवता की विरासत होते हैं और अपनी उपस्थिति से लोक को धन्य कर जाते हैं। ◆

प्रतिकार करने का सामर्थ्य है किन्तु सात्विक भावना के साथ वह प्रतिकार के बारे मे सोचता भी नहीं तथा हृदय से सदा के लिए उसे क्षमा कर देता है—यही वास्तविक एव सात्विक क्षमा होती है।

—आचार्य श्री नानेश

अनुराग सक्सेना

युगपुरुष का युग-चिन्तन
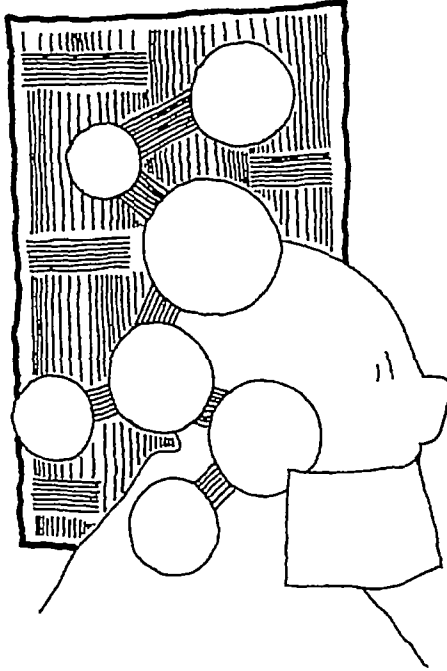
युग के अनुरूप धर्म की व्याख्या करने वाले महापुरुष को ससार युगपुरुष की सज्ञा से अभिहित करता है। यों तो धर्म की परिभाषा अपरिवर्तनीय है एव धर्म के तत्त्व शाश्वत हैं तथापि युग विशेष में धर्म के किन्हीं तत्त्वों का महत्त्व बढ़ जाता है अथवा युग की आवश्यकताओ के अनुरूप उन तत्त्वो मे से कतिपय तत्त्वों पर विशेष बल देना अपेक्षित होता है। इस प्रकार प्रत्येक युग के लिये आवश्यक चरित्र एव नीति सबधी गुणों को अपने जीवन में प्रधानता देकर तथा जन-जन को उनके अनुसरण की प्रेरणा देकर युगपुरुष समाज को उपयुक्त जीवनशैली का पाठ पढाता है। ऐसे द्विआयामी व्यवहार द्वारा वह समाज तथा व्यक्तियो की मानसिक व्याधि की चिकित्सा के रूप मे धर्म के प्रति युगानुकूल रूप में नई श्रद्धा एव चमत्कारपूर्ण भावना उत्पन्न करता है। सस्कारनिर्माण एव चरित्र सस्कार के सुप्त पड़े विचार युगपुरुष का जागृति सदेश पाकर सक्रिय हो उठते हैं और एक ऐसी अभिनव क्रान्ति की भूमिका का निर्माण कर देते हैं जो विचारों के परिमार्जन द्वारा समाज में नई जीवनी शक्ति का सचार कर देती है।

आचार्य श्री नानालालजी म सा युग की एक ऐसी ही विरल विभूति थे जिन्होंने विघटनशील समाज में नई चेतना जाग्रत कर उसके स्वस्थ एव सतुलित विकास का मार्ग प्रशस्त किया। कहते हैं कि चमत्कारी महापुरुषों के जन्म से पूर्व चमत्कारी घटनाएँ भी होती हैं जिनकी महिमा लोग बाद में ही समझ पाते हैं। गौतम बुद्ध के जन्म से पूर्व उनकी माता ने अभूतपूर्व स्वप्न देखे थे, ईसा मसीह के जन्म का सदेश एक दिव्य सितारे तथा पूर्व के ज्ञानी पुरुषों द्वारा प्रदान किया गया था, इसी प्रकार आचार्य श्री नानेश के जन्म से पूर्व ही हुक्मी सघ के पचम पट्टधर पूज्यश्री श्रीलालजी म सा ने सहज भाव से ही यह भविष्यवाणी कर दी थी कि अष्टम पट्टधर आचार्य इतने पुण्यशाली होंगे कि उनके आचार्यत्व काल में धर्म की महती प्रभावना होगी। हम देखते हैं कि धर्म की प्रभावना की यह बात युगधर्म की प्रभावना के रूप में अक्षरश सत्य सिद्ध हुई है।

हमे ज्ञात है कि धर्म आचरण की वस्तु तो है ही, आचरण करवाने की वस्तु भी है और युगपुरुष इन दोना की प्राप्ति में सफल होता है। आचार्य श्री नानेश स्वय धर्म के साक्षात् रूप थे। गौरवर्ण, उन्नत ग्रीवा, प्रशस्त ललाट, प्रभावी व्यक्तित्व, गुरु-गभीर वाणी, मुख पर सरल-सौम्य भाव, नेत्रो में अपार ममता तथा ऐसा विनम्र और मृदुल स्वभाव जो वृत्ति-परिष्कार का सफल हेतु बन सक। तभी तो ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के शासनानुगामी मुनि श्री रतनलालजी न युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा से निवेदन किया था—

'गुरुदव मरा स्वभाव कुछ तेज है। मुझे प्राय सभी पर किसी न किसी कारण क्रोध आ जाता है परन्तु मुझे बहुत ताज्जुब होता है कि इस नए मुनि नानालाल पर कभी क्रोध नहीं आता। कभी-कभी मैं क्रोध में आने जैसा प्रसग ले भी आता हूँ तो यह नवमुनि विनयभरी मुस्कान के साथ एसा उत्तर देते हैं कि मैं खुद ही पानी-पानी होकर हँस पड़ता हूँ और मेरा गुस्सा गायब हो जाता है। मैं सोचता हूँ कि आप अगर मुझ दो-चार साल इनके साथ रख दें तो शायद मेरा क्रोध ही समाप्त हा जाये।'

नवमुनि नाना के चरित्र के प्रभाव से सबधित यह सामान्य दृष्टात उसकी चारित्रिक गरिमा का ही नहीं, उत्कट धर्माचरण का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है जिससे उस भावी पट्टधर का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ओतप्रोत था।

भर्तृहरि ने धर्म के दस लक्षणों की गणना कराई है—

'धृति, क्षमा, दमोऽस्तेय, शौचम् इन्द्रियनिग्रह।
धीर्विद्या, सत्यम्, अक्रोधो दशकम् धर्म लक्षणम्।।

जैन धर्म इन्हे पाँच महाव्रतो मे समेट लेता है—अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। धृति, क्षमा और अक्रोध का अहिसा में पर्यवसान हो जाता है। परन्तु धर्म अहिसा के सैद्धान्तिक पक्ष अथवा रूढ अर्थ में ही निहित नहीं है, उस पर आचरण आवश्यक है। विचार की अहिसा भावना में किस प्रकार प्रकट होती है इसका प्रमाण आचार्यश्री ने बम्बोरा के बीहड़ प्रान्तर में मूक पशु का उद्धार कर दिया था। यही कारण था कि युवा मुनि नाना में इन तीनो ही गुणों के दर्शन मुनिश्री रतनलालजी ने सहज ही कर लिये थे। शेष चार—सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तो किसी भी दीक्षित सत की साधना का प्रमुख अग होते ही हैं और आचार्य श्री नानालालजी ने तो यह सम्पूर्ण साधना ही की थी।

जन अथवा समाज की एक विशेषता होती है—वह अपने उपकारी के लिये अनायास ही ऐसे विशेषण या सम्बोधन ढूँढ लेता है जो शायद विद्वान भी गहन चिन्तन के उपरान्त न ढूँढ सकें। जन के दिए हुए ऐसे विशेषण अथवा उपाधियाँ सीधे तथा सरल हृदय के अनुभव, आत्मा की प्रेरणा एव अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति क परिणाम होते हैं इसीलिये उपाधियाँ उपाधि-प्राप्तकर्ताओ के सम्पूर्ण चरित्र की विवेचना करने वाली भी होती हैं। जन की जिस भावना ने डॉ राजेन्द्रप्रसाद को 'देशरत्न', प मदनमोहन मालवीय को 'महामना', बालगगाधर तिलक को 'लोकमान्य' तथा मोहनदास गाँधी को 'महात्मा' कहा, उसी ने आचार्य नानेश को 'जिनशासन प्रद्योतक, धर्मपाल प्रतिबोधक, समीक्षण ज्ञानयोगी, समतादर्शन-प्रणेता, चरित्र चूड़ामणि' जैसी उपाधियो से विभूषित किया।

आचार्य श्री नानेश ने युगपुरुष के रूप में युगधर्म के अनुरूप चिन्तन कर युग की समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक सूत्र सकलित कर समाज को प्रदान कर दिये। इस प्रकार उन्होंने धर्म के शाश्वत तत्त्वों में से उन कतिपय तत्त्वों पर विशेष बल दिया जिनका अनुसरण युगीन परिस्थितियों में धर्म की स्थापना की दृष्टि से आवश्यक था।

कुविचार, निर्ममता, हिसा, घृणा, लोभ, क्रोध, वैर जैसी भावनाओ के तपते मरुस्थल पर उनका चिन्तन प्रेम, करुणा, दया, त्याग, समता जैसे शीतल वारि बिन्दुआ के रूप मे बरसा परन्तु इस क्षमता को प्राप्त करने क लिए आपने कठोर साधना की थी। बाल्यावस्था से ही धर्म के गूढ़ तत्त्वों को जीवन के सहज सत्य के रूप में वे अपने में स्थापित करने की दिशा में सलग्न रहे। कहते हैं पूत के पाँव पालने में ही दिखाई देने लगते हैं। दाता ग्राम, भादसोड़ा,

चिराकड़ा और भोपालसागर मे व्यतीत हुआ बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक का उनका जीवन उनकी मनोदशा की वे मार्मिक झाँकियाँ प्रस्तुत करता है जिन्होंने उनकी वृत्तियों का दिशा-निर्देश किया था। सरलता, स्नेह, उदारता, कल्पनाशीलता आदि से परिष्कार पाती उनकी आध्यात्मिक पिपासा पान और दान के मार्ग ढूँढती रही। और तब युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा के रूप मे उन्हें ऐसे पुण्य सरोवर की प्राप्ति हो गई जिसके अमृतवारि से वे अपनी पिपासा शान्त कर सके। परन्तु जिसका लक्ष्य मात्र आत्मकल्याण नहीं सर्वजन कल्याण हो वह इतने पर ही कैसे रुक सकता था ? ज्ञानार्जन और कठोर तपस्या के मार्ग का अनुसरण कर आपने न केवल अपनी वृत्तियो को साधा वरन् वह अतर्दृष्टि भी विकसित की जिसके अभाव मे कोई भी साधना सफलीभूत नहीं हो सकती। सामाजिक क्षेत्र मे इसी दर्शन ने समता चिन्तन तथा आध्यात्मिक क्षेत्र मे आत्म समीक्षण के रूप में अपनी पहचान बनाई। ज्ञान, दर्शन और व्यवहार को समन्वित करता हुआ उनका चिन्तन सम्पूर्ण सास्कृतिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार यह चिन्तन भर्तृहरि द्वारा प्रतिपादित धर्म के दस लक्षणों तथा जैन धर्म के पाँच महाव्रतो के समान ही है जो सास्कृतिक जीवन के निर्माण और इस प्रकार आत्मोद्धार की दिशा मे ही प्रेरित करते हैं। विघटनकारी शक्तियाँ, सवेदनहीन वृत्तियाँ, विषमतापूर्ण स्थितियाँ और भोगवादी मानसिकता जब व्यापक समाज का रोग बन गई हो तब उनसे छुटकारा दिलाने का कार्य उनकी प्राथमिक आवश्यकता बना। धर्म का यह आचरित रूप है जो सैद्धान्तिक पक्ष से परिपुष्ट होकर ही सफलता प्रदान कर सकता था। यही कारण था कि जन-कल्याण का जो व्यापक अनुष्ठान प्रारभ हुआ था उसने चरित्र-निर्माण, समाज-सुधार, व्यसन-मुक्ति एव सास्कृतिक पुनर्निर्माण के कार्यों के साथ आत्म-मथन और आत्म-परिष्कार के उस मार्ग को भी जोड़ लिया और ऐसी अनूठी सस्कार-क्रान्ति की रूपरेखा प्रस्तुत की जो जीवन-सस्कार का आधार बन सकती थी। और क्रान्ति का प्रारभ उन्होने समाज के उपेक्षित, तिरस्कृत, पीड़ित, पिछड़े वर्ग के सस्कार-सुधार के कार्य से किया। धर्मपाल-प्रतिबोधक उपाधि उनके साथ यो ही नहीं जुड गई। बलाई जाति के हजारो परिवारों को सप्त कुव्यसनो से मुक्त कराकर युगानुरूप धर्म-प्रभावना के कार्य को उन्होने गति दी। निश्चय ही सत विनोबा और महात्मा गाँधी जैसे मानवतावादी विचारक भी समाज को अपनी तरह से प्रभावित कर सामाजिक पुनरुद्धार की रूपरेखा प्रस्तुत कर रहे थे तथापि धर्माराधना के माध्यम से इस कार्य को गति आचार्य नानालालजी म सा ही दे सके थे। इस प्रकार धर्म को उन्होंने राष्ट्रवाद, समाजवाद, मानववाद, चरित्र-निर्माण, समाज-सुधार तथा सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के विविध आयामों से इस प्रकार जोड़ा कि समग्र क्रान्ति की वह आधारभूमि निर्मित हुई जो मानव जीवन के सर्वांगीण विकास के लिये अपेक्षित थी। युग-चिन्तना को युगधर्म बनाकर कोई बिरला सत ही प्रस्तुत कर सकता था और यह कार्य अत्यत सहज रूप मे आचार्य नानेश ने किया।

किसी के प्रति घृणा नहीं, किसी के प्रति दुर्भावना नहीं, सभी के प्रति प्रेम, अपनत्व, सहयोग और समभाव रखने का ही यह परिणाम है कि जैन ही नहीं जैनेतर समाज के लोगो का समर्पित सहयोग भी उन्हे प्राप्त हुआ और सम्पूर्ण देश मे घूम कर सद्चेतना का वे प्रचार कर सके।

सबके प्रति समभाव, सबके प्रति समदृष्टि यही उस सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति का मार्ग था जिसके अनुसरण की देश व समाज को आवश्यकता थी। बड़े-बड़े ज्ञानी, विद्वान, सिद्ध और विभिन्न सत कई बार जिन छोटी-छोटी बातो को महत्त्वहीन समझ कर छोड़ देते हैं और तत्त्व-ज्ञान तथा दर्शन के गूढ रहस्यों की चर्चा द्वारा धर्म-स्थापना और सस्कार-निर्माण की दिशा मे उन्मुख होते हैं वे कई बार मनुष्य की उस सहज प्रवृत्ति को सतुष्ट नहीं कर पाते जो गरिष्ट पचा सकने की क्षमता नहीं रखती और किसी छोटे-सरल मार्ग में ही सतुष्टि का अनुभव करती है। इसीलिए धर्म को सरलतम बनाकर जो प्रस्तुत कर सका वह जन-जन को प्रेरित एव प्रभावित भी कर सका। मनुष्य की इस सहज वृत्ति को लक्ष्य कर ही भक्तकवि तुलसीदास ने धर्म की व्याख्या इन सरल शब्दो में कर दी थी—*'परहित सरिस धर्म नहि भाई। परपीड़ा सम नहि अधमाई।'*

श्रूयता धर्मसर्वस्व श्रुत्वा चैवावधार्यताम।
आत्मन प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत।।

धर्मसर्वस्व अर्थात् पूरा का पूरा धर्म थोड़े में कह दिया जाय तो वह इतना ही है कि जो वात अपने प्रतिकूल हो, वह दूसरे के प्रति मत करो। धर्म की इतनी सरल व्याख्याओ के उपरान्त भी मनुष्य धर्म के तत्त्वों को गुह्य और धर्माचरण को अत्यत कठोर कर्तव्य मानता है। परिणाम यह होता है कि सच्चे-धर्म की अवहेलना होती है और औपचारिकताएँ धर्म के नाम पर चल पड़ती हैं। यही कारण है कि धर्म के नाम पर अनीति और हिसा अधिक हुई है, प्रेम और समभाव का प्रचार कम हुआ है। एक कृत्रिम जीवनचर्या को धर्मानुसरण मान लिये जाने के कारण न केवल सामाजिक विघटन का मार्ग खुला वरन् चरित्र, सस्कार और चिन्तन के क्षेत्र भी प्रभावित हुए। इस सब का मुख्य परिणाम यह हुआ कि धर्म की शाति, सुख और सतोष देने वाली क्षमताओं का ह्रास हुआ।

एक कुशल वैद्य के समान आचार्य नानेश ने रोग के मूल का अनुसधान किया और समतादर्शन एव आत्म-समीक्षण के रूप में एक ऐसी औषध समाज को उपलब्ध कराई जो सभी सामाजिक व्याधियो की चिकित्सा मे रामवाण सिद्ध हो सकती थी। ऐसा नहीं कि उन्होने कोई नई या अनूठी बात कही हो अथवा खोज निकाली हो। उन्होने तो युगपुरुष के रूप मे युगधर्म के अनुरूप चिन्तन कर युग की समस्याओं के समाधान हेतु आवश्यक सूत्र सकलित कर समाज को प्रदान कर दिये। इस प्रकार उन्होंने धर्म के शाश्वत तत्त्वों में स उन कतिपय तत्त्वों पर विशेष रूप से वल दिया जिनका अनुसरण युगीन परिस्थितियों मे धर्म की स्थापना की दृष्टि से आवश्यक था। जैसे अनेक वातो मे से आवश्यकता विशेष के अनुसार हम कतिपय विशिष्ट वातों को रेखाकित कर शेष मे से उनके विशिष्ट महत्त्व की पहचान कराते हैं, ऐसे ही आचार्य नानेश ने दर्शन की अनेक वाता में से तुरत उपयोग की दो वातो को रेखाकित कर दिया। आचार्यश्री की दृष्टि की मौलिकता, चिन्तन की गहनता और चयन की चमत्कारिता का यह अनुपम प्रमाण है। इस प्रकार छोटी-छोटी वातों के माध्यम से वड़े धार्मिक/आध्यात्मिक सत्य को सिद्ध

कर लेने का मार्ग दिखा कर उन्होंने वह कार्य किया जो काल और परिस्थितियों की दृष्टि से आवश्यक था परन्तु जिसके सामान्य होने का विचार उसके प्रति उपेक्षा भाव उत्पन्न करने मे सहायक बना हुआ था। सामान्य लोगो हेतु गूढ आध्यात्मिक चिन्तन को सरल बना कर तथा सहज रूप से उसके अनुसरण का मार्ग दिखा कर आचार्य नानेश ने मानवता की अनोखी सेवा की।

हम देखें कि आचार्यश्री की चिन्तना के ये दोनो तत्व किस प्रकार प्रभावी, सरल, प्रेरणादायी एव अनुसरणीय बने। आचार्य नानेश स्थानाग सूत्र के *'एगे आया'* को अपने चिन्तन का आधार बना कर आत्मा की एकता की वात कहते हैं, यह कोई नया विचार नहीं है वरन् सम्पूर्ण भारतीय चिन्तन का आधार रहा है। नई बात यह है कि उन्होंने इसे चरित्र-निर्माण, सस्कार क्रान्ति और न्यायपूर्ण समाज व्यवस्था का आधार बना कर प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा—

> 'इस चैतन्य तत्त्व आत्मा को आतरिक दृष्टि से देखने की कोशिश करें। इसके स्वरूप पर वर्तमान मे जितने आवरण चढ़े हुए हों—आच्छादन लगे हुए हों, उनको भी यह दृष्टि देखे तथा आच्छादनों की पर्तो में जो आलोकमय आत्मस्वरूप रहा हुआ है—उसकी झलक भी यह दृष्टि ले जव सही स्वरूप का अवलोकन होगा तभी व्यक्ति-व्यक्ति क वीच आभ्यतर समतादर्शन की प्रतिष्ठा हो सकेगी आच्छादनों से आलोक की ओर यही आत्मतत्त्व की विकासयात्रा कहलाती है। इसी विकासयात्रा का दूसरा नाम है—ममता से समता की ओर वढना। ममता के भाव क्षीण होते हैं तो विषमता मिटती है एव विषमता मिटती है तो दृष्टि, मति तथा गति में समता का सचार होता है।'

उन्ह ज्ञात था कि लोगों की कथनी-करनी में अतर होता है इसीलिये उन्होंने सचेत किया था—

> *'लोग मुँह से समता और सिद्धान्तों के वारे में ता सुन्दर-सुन्दर वाते करेंगे* परन्तु आचरण के नाम पर शून्य वन रहेंगे।'

इसी सदर्भ में समता-भाव से सादृश्य रखने वाले समाजवाद और साम्यवाद जैसे लुभावने सिद्धान्तो के पीछे आत्मावलोकन की कमी को समझते हुए तथा व्यक्ति की उलझी हुई चेतना की बात करते हुए उन्होने बताया कि 'व्यक्ति का अतर अनेकानेक परिस्थितियों मे उलझा हुआ है। भीतर की यह उलझन ही बाहर की विविध परिस्थितियों में प्रकट होती है। आन्तरिक उलझनो के परिणाम-स्वरूप ही एक ही मानव जाति के विभिन्न वर्ग, विभिन्न जातियाँ, विभिन्न सम्प्रदाय आदि पैदा होते हैं। इस प्रकार मानवता नाना अप्राकृतिक विभागो में विभक्त हो जाती है। यही कारण है कि आज परिवार, समाज, राष्ट्र और विश्व में विषमता का साम्राज्य दृष्टिगत हो रहा है।' इस स्थिति के निराकरण का मार्ग उन्होने समता के चार सिद्धान्तों मे बताया—

1 **सिद्धान्त दर्शन—**अर्थात् सम सोचे, सम जाने और सम करे जिससे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे समभाव हो।

2 **जीवन दर्शन—**जिस प्रकार एक दीपक अनेक दीपों को अपनी शक्ति से प्रज्वलित कर देता है उसी प्रकार व्यक्ति ज्ञान सहित समता-आचरण से स्वय के जीवन को निर्देशित करता हुआ अन्य लोगो के जीवन को भी निर्देशित करे तथा इस हेतु सप्त कुव्यसनों का त्याग कर जीवन को सादा, शीलवान और अहिसक बनाये रखे।

3 **आत्म दर्शन—**अर्थात् सयमित जीवन से आत्म दर्शन को प्राप्त करें।

4 **परमात्म दर्शन—**आत्म साक्षात्कार ही परमात्म प्राप्ति की अवस्था है। इस प्रकार आत्मा ससार से विरक्त होकर सर्वांगीण रूप से कर्म-जाल को हटा कर गुण स्थानो की अतिम श्रेणी मे आकर केवली की अवस्था प्राप्त कर लेती है।

समता के इन सिद्धान्तो को जीवन में उतारने के लिये उन्होंने समीक्षण ध्यान-साधना का मार्ग निर्देशित किया, अर्थात् मनुष्य बाह्यजगत् से अपने को सकुचित बनावे तथा अपने अत करण मे प्रवेश करे। समस्त जीवित एव अजीवित पदार्थो को चर्म-चक्षुओं की सहायता से सम्यक् रूप मे देखना सभव न होने के कारण ज्ञान-चक्षुओं को उघाड़ना आवश्यक है। इसके लिये विशृखलित बनी चित्तवृत्तियो को विशोधनपूर्वक नियत्रित करे। इस प्रकार अपनी ही वृत्तियो को मनुष्य सम्यक् रीति से समभाव तक पहुँचाये, निरतर उनका निरीक्षण करे और उनके शोधन हेतु सक्रिय रहे। परिणाम यह होगा कि जैसे नदियाँ समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार समस्त विकारवृत्तियाँ समीक्षण ध्यान के माध्यम से समत्व के महासागर मे विलीन होकर समता भाव मे रूपातरित हो जायेंगी। इस त्रिआयामी समीक्षण साधना की सम्पूर्णता के लिये उन्होंने जिन नव सूत्रों का निरूपण किया है उस रूप मे तथा उनकी पृष्ठभूमि मे चेतना शक्ति इस प्रकार अनुप्रेरित हो सकती है कि वह समता के सरल सद्भाव से न केवल अपने आत्मस्वरूप को ओतप्रोत कर ले वरन् समता की ऐसी रसधारा भी प्रवाहित करे कि ससार की समस्त आत्माएँ 'ऐगे आया' की दिव्य शोभा को साकार कर सकें।

प्रारभ में कहा गया था युगपुरुष का युगचिन्तन युगधर्म का प्रतिपादन करता है। आचार्य श्री नानेश की युगधर्म की यह अवधारणा समतादर्शन और समीक्षण ध्यान के पैरों पर चल कर समता समाज के निर्माण की आवश्यकता पर आकर ठहर गई है। वस्तुत इस रूप में अध्यात्म, धर्म और दर्शन एक अभिनव सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति की अवधारणा प्रस्तुत करते हैं जो भौतिकता की पीड़ा से ग्रस्त इस विश्व का कल्याण कर सकती है। समतावादी, समताधारी और समतादर्शी साधकों के माध्यम से साधना केन्द्रो द्वारा जिस अभिनव समाज रचना की दिशा मे प्रेरित करना आचार्य श्री नानेश का उद्देश्य था तथा उसके सबध में जो उन्होंने स्वय कहा, उसका सार यह है कि मनुष्य के मन से लेकर सम्पूर्ण विश्व के प्रत्येक क्षेत्र तक विभिन्न-स्वरूपी विषमता के भिन्न-भिन्न रूपों का जिस विषाक्तता के साथ विस्तार होता जा रहा है वह सम्पूर्ण मानवता के लिये भयावह बन गया है। भोगवाद, सुविधावाद, सवेदनहीनता, असहिष्णुता, आतक, हिसा आदि के रूप मे जिस अपसस्कृति का प्रवाह हो रहा है उसने सभी मानवीय मूल्यों को समाप्त कर दिया है। भौतिकवाद की आँधी ने हजारो वर्षो मे विकसित हुई धर्म, अध्यात्म, कला, साहित्य, सस्कृति आदि की परम्पराओं को तोड़कर

आस्था का ऐसा सकट उत्पन्न कर लिया है कि स्वय के प्रति ही नहीं, प्रकृति एव सम्पूर्ण प्राणिजगत् के प्रति असहिष्णु वने इस तथाकथित प्रगतिशील मनुष्य ने सर्वनाश का भीषण सकट भी उत्पन्न कर लिया है। अपने दुर्भाग्य के कारणों से अनभिज्ञ परन्तु उनकी पीड़ा से त्रस्त इस मनुष्य का मानवीय चेतना के उस स्वर्णिम आदर्श से परिचय कराना आवश्यक है जिसका आधार स्थायित्व, विकास ओर प्रगति के लिये अपेक्षित हे। इस प्रकार समता समाज की कल्पना एक ऐस मानव समाज क रूप में की गई है जिसमें जाति-पाति, धर्म-सम्प्रदाय, वर्ग-स्तर, वय, लिग, भापा, प्रदेश आदि के विविध विघटनकारी विचारो से मुक्त रहकर मानव केवल मानव होने के नाते मानवो के साथ परस्पर प्रेम, सहयोग, सद्‌भाव और समभावपूर्वक जीवन-निर्वाह के लिये कृतसकल्प हो और इस प्रकार उन स्थितिया का निर्माण हो जिनसे व्यक्ति, समाज और सम्पूर्ण विश्व का उत्थान सभव हो सके। वर्तमान के अह के सकुचित दायरे मे बन्द व्यक्ति का जव विकेन्द्रीकरण होगा और जब इस विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य बाहर-भीतर की विपमताआ से सयुक्त सघर्ष द्वारा बाह्य और आभ्यतर सतुलन का निर्माण होगा तव वह स्थिति उत्पन्न होगी जिसकी विवेचना सूत्रकृताग सूत्र में इस प्रकार की गई है—

सव्व जग तू समयाणु पेही।
पियमप्पिय कस्य वि नो करेज्जा।

अर्थात् समग्र विश्व को जो समभाव से देखता है वह न किसी का प्रिय करता है न अप्रिय। इस प्रकार समदर्शी बना व्यक्ति अपने-पराये की भेद-बुद्धि से परे हो जाता है और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की वह स्थिति सुनिश्चित हो जाती है जिसमें सर्व विश्व का कल्याण होता हैं।

यह है वह युगानुरूप चिन्तन जो उन सभी समस्याओं के सहज समाधान का मार्ग दिखाता है जिनसे विश्व समाज त्रस्त है। यह मनुष्य को मनुष्य से बाँधने के उन भावनात्मक बधनों का निर्माण करने की क्षमता भी रखता है जो सरस, कोमल, सुखकर और श्रेयस्कर होते हैं। ऐसे बधनो क सबध मे राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा है—

मानव-मन को बेधते फूल के दल केवल,
आदमी नहीं कटता वरछो से तीरों से,
लोहे की कड़ियो की साजिश वेकार हुई,
बॉधो मनुष्य को शबनम की जजीरों से।

समता समाज की यह अवधारणा सघर्ष पर नहीं, समन्वय पर, अह पर नहीं, सहिष्णुता पर, भोग पर नहीं, त्याग पर, और वैमनस्य पर नहीं, प्रेम पर आधारित है। यह समाजवाद, साम्यवाद, ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त, गुट निरपेक्षता, पचशील, सर्वधर्म समन्वय, धर्मनिरपेक्षता जैसे उन सभी आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक, धार्मिक आदि चिन्तनो से सर्वथा मुक्त है जिनका राजनीति ने निहित उद्देश्या की पूर्ति हेतु दुरुपयोग कर इतना विरूपित कर दिया है कि उनसे घृणा होने लगी है। इन सभी विविध चिन्तन पद्धतियो की यही शुद्ध, पवित्र, सरल एव कल्याणकारी अवधारणा है जो सुचिन्तित ही नहीं युगसापेक्ष भी है। इसमें उपर्युक्त उन सभी राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक और सास्कृतिक विचारधाराओं का पूर्ण पर्यवसान भी हो गया है जो विलग रहकर विघटनकारी वन सकती है परन्तु समन्वित होकर अपार शक्ति-पुज का रूप ग्रहण कर लेती हैं। इस रूप में आचार्य नानेश का चिन्तन युगव्याधियों का रामबाण इलाज प्रस्तुत करता है। कभी तुलसी ने रामकथा के सबध म कहा था—'अमिय मूरिमय चूरण चारू, समन सकल भवरुज परिवारू।' वर्तमान युग की भयावह स्थितियो में यह कथन प्रकारान्तर से आचार्य नानेश के चितन पर भी लागू होता है। यद्यपि उनके निर्वाण से भवरोगों का एक वहुत बड़ा चिकित्सक इस धराधाम से उठ गया है तथापि रामवाण औषधियों का अखूट भण्डार भवरोग से पीड़ित रोगियों के लिये वह छोड़ गया है। अव यह रोगियों का दायित्व है कि वे इसका विवेकपूर्वक उपयोग कर इस भव के अपने जीवन को सार्थक कर लें और रोगमुक्त भविष्य सुनिश्चित कर ले। ◆

डॉ राजीव प्रचण्डिया

एक दिव्य संत . एक अनुपम चरितनायक
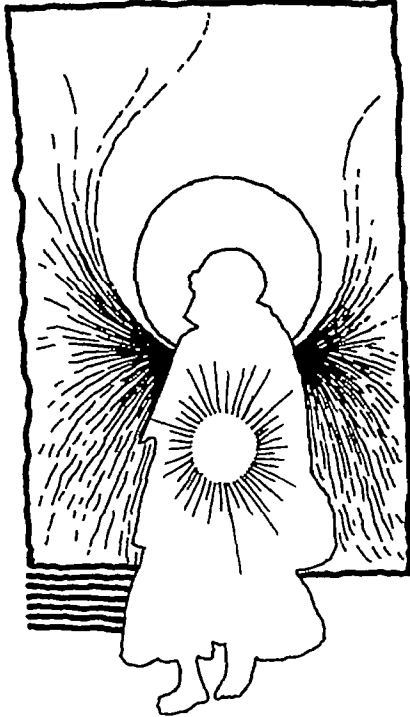
सत्य, शिव और सुन्दर के दर्शन से सवेष्टित भारतवर्ष सतो का देश रहा है। यहाँ की इस अविच्छिन्न सत परम्परा में आचार्य नानेश वर्तमान युग की एक विरल विभूति थे। वे पतितो के उद्धारक, दलितो के उन्नायक, दीन-दुखियो के हमदर्द एक अनोखे चरित नायक थे। वे चुम्बकीय आकर्षक व्यक्तित्व के धनी, एक अद्‌भुत ऊर्ध्वचेता समत्व योगी थे। इतना ही नहीं, वे अध्यात्म जगत् के अत्यत प्रज्ञावन्त सन्त भी थे।

सत 'अन्त सहित' होता है। 'अन्त' का अर्थ है 'धर्म'। धर्म जिसके जीवन का कवच हो, ऐसा व्यक्तित्व सन्त की कोटि मे स्वत परिगणित हो जाता है। सन्त परम्परा कभी भी अर्वाचीन नहीं हो सकती। वह तो चिरन्तन व शाश्वत रहती है क्योंकि धर्म स्वभावजन्य होता है और स्वभाव कभी भी बदलता नहीं है। वह शाश्वत होता है, जीवन्त होता है।

ऐसी शाश्वत परम्परा का सवर्धन करने वाले आचार्य श्री नानेश ने जनमानस मे समता का बीज वपन किया। उन्होंने लोगों के बीच पड़ी राग-द्वेष अर्थात् वैमनस्य की खाइयों को पाटने का भरसक प्रयास किया। भगवान् की वाणी को सरल-सुबोध व रोचक दृष्टान्तों के माध्यम से अपने गहन अनुभवों व तलस्पर्शी अभिचिन्तन को जन-जन तक पहुँचाया और उन्हे प्रेरणा दी कि वे स्वार्थ व सकीर्णमनोवृत्तियों से ऊपर उठते हुए मोहात्मक पर्तों को छिन्न-भिन्न करते हुए अपने लिए ही नहीं, दूसरो के लिए भी जिएँ, सोचे और समझे तथा भगवान् महावीर की 'जीओ और जीने दो' की सूक्ति को अपने जीवन में चरितार्थ करे। इसके लिए उन्होने कहा कि हम अधिकार की अपेक्षा कर्तव्य को महत्त्व दें। प्रामाणिक और अहिसामय जीवन जीने का सत्प्रयास करे। लोगो को प्रज्ञा-जागरण का सदेश दें जिससे प्रत्येक व्यक्ति की वाणी और व्यवहार मे मदान्धता, स्वार्थपरता, सकीर्णता, अनीति, कुसस्कारो आदि का जो समावेश हो रहा है उसका शमन हो सके। आचार्यश्री की धारणा थी कि

कुविचारा और कुसस्कारा से व्यक्ति स्वय तो टूटता ही है, वह समाज व देश को भी कमजार बनाने म निमित्त बनता है।

वास्तव मे जो प्रज्ञा का पुजारी होता है, वह निर्मोही होता है और सद्गुणो का उपासक हाता है। धार्मिक होता है। धर्म के साथ जागरूक होकर जो व्यक्ति जीवन जीता है वह अन्तत अपनी प्रज्ञा-चेतना का जगा लेता है। आत्मस्वरूप की उसे प्रतीति होने लगती है। उसकी दृष्टि म विराटता-अनन्तता झलकने लगती है।

जीवन से स्वार्थ के बिन्दु कैसे मिटें और समत्व के सिन्धु को हम कैसे हृदयगम करे इसके लिए आचार्यश्री ने बताया कि सबसे पहले हम अपने भीतर जमे अहकार के कचरे को बुहारें क्योकि इस अहकार से क्रोध आता है। क्राध से प्रीति नष्ट होती है और वह अशुभ घटता है जो जीवन को नरक बना देता है जिससे आर्तता और रौद्रता से समन्वित सोच उत्पन्न होने लगता है। सवेदनाओ के स्वर मन्द और निस्तेज हो जाते हैं जो विहँसते जीवन मे अशान्ति व तनाव पैदा करते हे। इसलिए स्वस्थ व सुखी समाज के लिए इन समस्त कषायों का, जो मोह-आवर्तन में अपनी विशिष्ट भूमिका निबाहते हैं, शमन करते हुए समतापरक जीवन जीने की चेष्टा करे। वास्तव मे समता शान्ति, समृद्धि एव सुख की जननी हे।

> अपने तप-त्याग के बल से धर्म और सस्कृति को जन-जन हेतु सुलभ बनाने वाले तथा सम्यक् दर्शन, ज्ञान और चरित्र की त्रिपथगा में निरतर अवगाहन करने वाले आचार्य नानेश निश्चय ही इस के अनुपम सिद्धि-प्राप्त संत थे। सरल, सहज, वात्सल्यपूर्ण व्यक्तित्व से युक्त, आगमवेत्ता, प्रत्युत्पन्नमति के धारक तथा समता दर्शन एव समीक्षण ध्यान-साधना के उद्बोधक आचार्य नानेश अपने दिव्य गुणों के कारण जन-जन के वदनीय बने।

जो जितना समतावान होगा वह उतना ही सवेदनशील होगा। वह हर प्राणवन्त जीवधारी के प्रति सवेदनशील होगा। उसम 'एगे आया' का प्राकृत सूत्र सदा जाग्रत रहेगा अर्थात् वह स्वीकार करता होगा कि आत्मस्वरूप की दृष्टि से विश्व की समस्त आत्माएँ एक हे समान हें। जब सब समान हैं फिर परस्पर व्यवहार म भिन्नता क्यों ? समत्व के इस सूत्र मे ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की पवित्र और मागलिक भावनाएँ समायी हुई हैं जो भारतीय सस्कृति की प्राण है।

यह अनुभवजन्य सत्य है कि समस्त कषायों का जब उन्मूलन हो जाता है तब मनुष्य की अन्तर्दृष्टि के साथ-साथ बाहरी दृष्टि भी समत्व से समन्वित हो जाती है। आचार्यश्री की दृष्टि मे समता के दो रूप हैं—दर्शन और व्यवहार। अन्तर के नेत्रो को प्रकाशमय दृष्टि से देखकर जीवन में गति करना समता-दृष्टि का मुख्य भाव है। इस गति मे ही समता के व्यवहार का स्वरूप निहित होता है। अत अन्तर और बाह्य दोनों दृष्टियो से समतापूर्ण जीवन का सचालन करन से सार्थक जीवन की उपलब्धि हो सकती हे। दर्शन की गति व्यापक नहीं हो तो व्यवहार मे भी एकरूपता नहीं आती है। इसलिए अन्तर्दृष्टि और बाह्य दृष्टि म सम्यक् समन्वय होना चाहिए। समता के सन्दर्भ मे आचार्यश्री प्राय यह कहते थे कि आप एक मकान देखते है। उसमे कहीं पत्थर हाता है, कहीं चूना, सीमेन्ट, लोहा, लकड़ी आदि। फिर उसमें रहने या बैठने वालों की स्थिति भी एक-सी नहीं होती। वे अलग-अलग प्रकृति, आकृति, वेशभूषा वाले होते हैं। फिर भी यदि अन्तर्दृष्टि मे सबके समता आ जाए तो इन विभिन्नताओं के बावजूद सारा समूह एकरूपता की अनुभूति ले सकता है। बाह्यदृष्टि की विषमता इसी भाव एव विचार समता के दृढ़ आधार पर समाप्त की जा सकती है। किन्तु जो अन्तर्दृष्टि मे शून्य रहकर कवल बाह्य दृष्टि में भटकता है, वह विषमता को ही अधिक बढाता है। समता की समझ एकागी नहीं, मन, वचन एव कर्म तीना का सफल सयोजन करने वाली होनी चाहिए तभी बाह्य दृष्टि पर अन्तर्दृष्टि का अकुश रहेगा। अन्तर्दृष्टि का अनुशासन ही बाह्य दृष्टि को नियन्त्रित कर उसे समतागामी बनायगा।

आचार्यश्री समता के साथ-साथ सम्यक् पुरुषार्थ पर भी बल देते थे। उनकी दृष्टि में समाज मे व्याप्त अर्थवैषम्यजनित समस्याओ का सुन्दर समाधान यह है कि व्यक्ति परिग्रह के व्यामोह से विमुक्त रहे अर्थात् अपरिग्रह के सिद्धान्त को जीवन मे अधिक से अधिक अपनाए। सग्रह करने की प्रवृत्ति आज बलवती होती जा रही है। जिसे देखो, वही कम समय में बिना पुरुषार्थ के धनपति बनने की बाट जोहता दिखाई दे रहा है। धनपति तो बने पर, वह धन किस काम का जो बिना श्रम अथवा पुरुषार्थ के अर्जित किया गया हो? वह तो जीवन को सुख और सन्तोष की अपेक्षा विभिन्न तनावों से ग्रस्त ही करेगा। ये तनाव ही तो हैं जो व्यक्ति के जीवन मे पतझड़ लाते हैं। जीवन में वसन्त हर क्षण छाया रहे इस हेतु आचार्यश्री सहज और अनासक्त जीवनचर्या को अधिक सार्थक व उपयोगी मानते थे।

आचार्यश्री ने अपने तप-त्याग के बल से धर्म और सस्कृति को जन-जन हेतु सुलभ बनाया। सम्यक् दर्शन, ज्ञान-चरित्र की त्रिपथगा में निरन्तर अवगाहन करने वाले आचार्य श्री नानेश निश्चय ही समता के एक अनुपम एव सिद्धिप्राप्त सत थे। ऐसे सहज, सरल, वत्सलता के पर्याय, आगमवेत्ता, प्रत्युत्पन्नमति के धारक तथा समता के प्रचारक-प्रसारक परम वदनीय आचार्य श्री नानेश के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जलि यही होगी कि हम सब उनके द्वारा निर्दिष्ट पथ के पथिक बने। ◆

यह ध्रुव सत्य है कि मनुष्य गिरता, उठता और बदलता रहेगा किन्तु मनुष्यता कभी समाप्त नहीं होगी, उसका सूरज डूबेगा नहीं। वह सो सकती है, मर नहीं सकती। अब समय आ गया है जब मनुष्य की सजीवता को लेकर मनुष्य को उठना होगा—जागना होगा और क्रान्ति-पताका को उठाकर परिवर्तन का चक्र घुमाना होगा। क्रान्ति यही कि वर्तमान विषमताजन्य मूल्यों को हटाकर समता के नये मानवीय मूल्यों की स्थापना की जाय। इसके लिए प्रबुद्ध एव युवावर्ग को विशेष रूप से आगे आना होगा और एक व्यापक जागरण का शख फूकना होगा ताकि समता के समरस स्वर उद्बुद्ध हो सके।

—आचार्य श्री नानेश

रत्ना ओस्तवाल

आचार्य नानेश : मानवतावाद और समता-दर्शन

ससार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है और दु ख से दूर भागता है। सुखी होना उसके जीवन की प्रमुख चिन्ता होती है— इसीलिए सुखी होने के लिये वह प्रयत्न करता है और सुखी जीवन के लिये आवश्यक सामग्री भी एकत्र करता है परन्तु इतना कुछ करने के बाद भी लक्ष्य-सिद्धि में असफल रह जाता है। आखिर ऐसा क्यो होता है ? उसके सुख-सतोष की प्राप्ति के प्रयास निष्फल क्यो चले जाते है ? कारण एक नहीं अनेक हैं जिनका सवध जीवनचर्या के तरीकों, चिन्तनविधियो तथा आचरण और व्यवहार के विविध पक्षो स है। 'सुख कैसे मिलता है' पर विचार करे तो उत्तर मिलता है–दूसरो को सुख देने से सुख मिलता है। इसका विलोम भी सत्य है–दूसरो को दु ख देने से दु ख मिलता है। भौतिक दृष्टि से भले ही यह परिणाम न दिखता हो परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से यही घटित होता है। भौतिकवाद जहाँ नश्वर वस्तुओं की प्राप्ति को सफलता मानता है वहीं आध्यात्मिक चिन्तन चिरन्तन लाभ को सफलता मानता है।

इस चिन्तन मे यदि थोडा और गहरे उतरें तो उस आध्यात्मिक सत्य से साक्षात्कार होता है जा मानता है कि आत्मतत्त्व सभी में समान रूप से व्याप्त है अर्थात् आत्मा का तत्त्व सभी प्राणियों को जोडे हुए है इसलिये यदि इस तत्त्व पर कहीं भी चोट होती है तो उसकी प्रतिक्रिया भी होती है। विज्ञान भी मानता है कि to every action there is equal and opposite reaction। इस प्रकार एक आत्मा का दु ख अव्यक्त रूप से दूसरी आत्मा को भी प्रभावित करता है। यह भिन्न वात है कि दूसरी आत्मा अर्थात् दु ख देने वाले की आत्मा का तत्काल उसका अनुभव न हो पाय। यही मोह की स्थिति है। एक अन्य उदाहरण लें। जव कष्ट सहकर भी हम किसी को सुख पहुँचाते हैं तव हमारी आत्मा अत्यत सतोष और प्रसन्नता का अनुभव करती है। हृदय-परिवर्तन होने की घटनाएँ भी खूव सुनने में आती हैं। इन तथ्यों का यही अर्थ निकलता है कि सवको अपने समान समझा और जैसा अपने प्रति नहीं चाहते हा
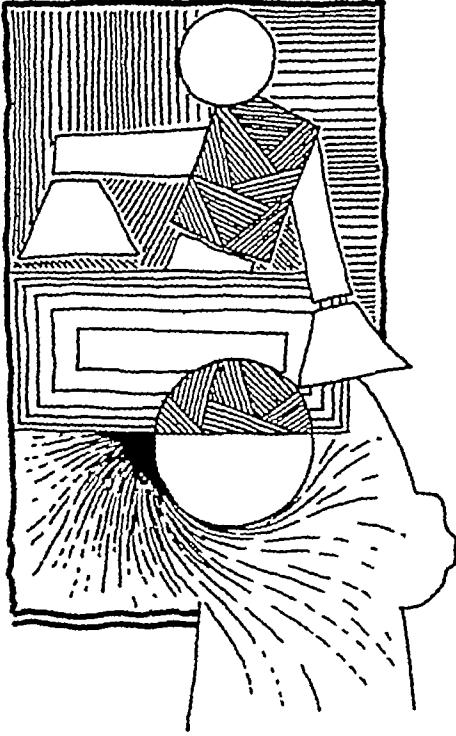
वैसा दूसरों के प्रति मत करो। गीता मे इसे धर्म कहा गया है—

श्रूयतामधर्म सर्वस्व श्रुत्वाचैवधार्यताम्
आत्मन प्रतिकूलानि परेषाम् न समाचरेत्।।

धर्म का जहाँ तक प्रश्न है, उसकी बात कहते और मानते ज्यादा हैं परन्तु उस पर आचरण बहुत कम करते हैं। 'अपने समान दूसरे को समझने' की धर्म की इस बात को भी व्यवहार मे ढालने वालो ने इसे भी एक विशिष्ट विचारधारा या 'वाद' बना दिया है–'मानववाद' अथवा 'मानवतावाद'। जैसे पूँजीवाद होता है, समाजवाद होता है, आदर्शवाद होता है, वैसे ही मानवतावाद भी एक वाद हो गया और पाश्चात्य देशों में आन्दोलन बन कर चला। वहाँ से इसे एक क्रान्तिकारी नय विचार के रूप मे भारत मे भी आयातित किया गया। इसकी बहुत वाह-वाही भी हुई और इसे मनुष्य जीवन की सभी समस्याओं के निदान के रूप मे स्वीकार कर लिया गया। यह था हमारी पश्चिमोन्मुखी दृष्टि का परिणाम।

भारत के लिये मानवतावाद चिन्तन का कोई नया विषय नहीं था भले ही इसकी नयी सुविधावादी व्याख्या कर ली गई हो। अति प्राचीनकल मे ही भगवान महावीर ने 'अनेकान्तवाद' के रूप मे जिस दर्शन का प्रतिपादन किया था वह इसी मानवतावाद का पूर्ण अथवा सर्वव्यापक रूप था। भारत के धर्मगुरुओ ने इसे अपने-अपने समय मे अपनी-अपनी तरह से व्याख्यायित किया।

वर्तमान युग में मानवतावाद को वाद के आग्रहों से मुक्त कर, सुखी मानव जीवन के आधार के रूप मे आचार्य श्री नानेश ने इसका नवीन सस्कार किया। ऐसा सस्कार किया जिसमें पाश्चात्य चिन्तको की औपचारिकता थी, न भारतीय दर्शन की क्लिष्टता। इस प्रकार उनके मानवतावाद मे विविध राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि चिन्तनों का आध्यात्मिक मूल्यो के साथ सहजता से समन्वय हो गया और इस प्रकार उसे जो अत्यत सरल व व्यावहारिक नाम मिला, वह था—समता चिन्तन। यह जितना दर्शन है उतना ही व्यवहार भी है। आचार्य नानेश की स्थापना रही कि मानव मन में समता की चाह सदा से उसी प्रकार रही है जिस प्रकार सुख की चाह रही है। समाज मे सब कहीं समता दृष्टिगोचर हो, इस दृष्टि से समाज मे समता की स्थापना के लिय किया गया उनका चिन्तन ही उनका मानवतावाद है। उनके इस चिन्तन पर किंचित विस्तार से विचार करना उपयोगी होगा।

> आध्यात्मिक जीवन के एक सत्य को जीवन का सत्य बना कर प्रस्तुत करना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि थी जिसका श्रेय आचार्य श्री नानेश को जाता है। सूत्र रूप में कहें तो—विषमता से दूर समता के करीब, हिंसा से दूर अहिंसा के करीब, मानव से दूर मानवता के करीब रहना ही, आचार्य श्री नानेश का मानवतावाद है। यह 'वाद' के विवाद से तो दूर है ही विचारधाराओं की औपचारिकताओं से भी पूर्णत मुक्त है।

मानव एक चैतन्य इकाई है और इस इकाई की शक्ति है–व्यवहार। इस व्यवहार की बदौलत ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। सभी को अपने समान समझ कर वह उनके साथ समानता के धरातल पर व्यवहार करता है। यह उसकी सामाजिकता है। यह सामाजिकता धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि आग्रहों से मुक्त होती है और समाज के प्रत्येक सदस्य की मगलकामना से अनुप्राणित होती है और उस 'वाद' वाले 'समाजवाद' से पूर्णत भिन्न हो जाती है जो बड़ी सीमा तक उपभोगवाद की राजनीति करता है। इसमे जिन सामाजिक, आर्थिक मूल्यों की बात कही जाती है उनका सहज समन्वय तो आचार्य नानेश के समता चिन्तन का आधार ही होता है।

आचार्य श्री नानेश का मानना था कि समता का भाव हृदय की गहराइयो मे से उद्भूत होकर स्वय की जागृति एव इच्छा के बल पर समदृष्टि एव समभाव की स्थितियो का निर्माण करता है। ऐसा ही आधार प्राप्त कर समता सर्वव्यापक एव सर्वदा स्वीकारयोग्य बनती है। मानवतावाद भी मानव-समाज मे समता की सृष्टि, दृष्टि और व्यवहार की बात कहता है। मानव जैसा देखता है, वैसी ही उसकी प्रतिक्रिया होती है और वैसा ही उसका आचरण बनता है। इस सिद्धान्त को आचार्य श्री नानेश ने समता-दर्शन और व्यवहार के द्वारा सिद्ध किया।

आचार्य नानेश का मानवतावाद समता के धरातल पर टिका है। मनुष्य जन्म लता है समाज मे परन्तु जीवन सघर्ष के दौरान सुख-दुख, गरीबी-अमीरी, भूख-प्यास, मैत्री- शत्रुता, अपना-पराया जैसी स्थितियो से उसका परिचय हो जाता है और जीवन का सत्य उससे विस्मृत हो जाता है। ऐसी विषम परिस्थिति मे सापेक्ष दृष्टि से जब कोई श्रेष्ठ विचार मनुष्य के मन को, वास्तविकता को समझ कर तथा ऐसी परिस्थितियो के प्रति निरपेक्ष दृष्टि रख कर अन्य मनुष्यो के साथ अपने व्यवहार को नियत्रित, अनुशासित एव व्यवस्थित रख कर एव अपने को दूसरे की स्थिति मेँ रख कर, वस्तुस्थिति का मूल्याकन करने का अवसर देता है तव उसकी जा दृष्टि वनती है, वह मानवतावाद का आधार होती है। इस प्रकार मानवतावाद मनुष्य के हृदय की शुभयाग परिणति है। शुभयोग से जव सत्कार्य का सचार मनुष्य के आचरण में होता है तव मानवता का जन्म होता है। इस मानवता को जानने, समझने तथा उसके मूल्याकन के वाद उसके अनुसार दूसरों के प्रति आचरण करने की प्रक्रिया मानवतावाद है। आचार्य श्री नानेश ने मानवतावाद के इस सिद्धान्त को अपन जीवन में गहराई से उतारा था।

मानव जीवन के कल्याण हेतु उन्होने अपने 'व्यवहार दर्शन' मे प्राणिमात्र के प्रति प्रेम, चरित्र सस्कार की आवश्यकता, नैतिकता, समाज के विभिन्न घटकों के प्रति त्यागपूर्ण समर्पण, जैसे विचारो का समावेश किया और इनकी प्राप्ति के लिये 'समीक्षणध्यान' विधि का जीवन म अनुगमन करने की आवश्यकता की बात कहीं। जीवन नें समानता के आधार पर करुणा, दया, प्रेम आदि का व्यवहार तथा दूपित हृदयो के परिवर्तन में उनका समता चिन्तन का विचार विश्वास रखता है। जीवन की किसी भी स्थिति म सतुलन न खोना, प्रत्येक जीवन के प्रति समभाव रखना तथा सभी के दृष्टिकोणो का समान रूप से आदर करना, श्री नानेश के अनेकातवाद की सच्ची निष्पत्ति है। आध्यात्मिक चिन्तन के एक सत्य को जीवन का सत्य बना कर प्रस्तुत करना अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि थी जिसका श्रेय आचार्य श्री नानेश को जाता है। सूत्र रूप में कहें *तो—विषमता से दूर, समता के करीब, हिसा से दूर अहिसा के करीब, मानव से दूर मानवता के करीब रहना ही आचार्य श्री नानेश का मानवतावाद है।*

छोटे से गाँव म जन्म लेकर आचार्य वन जाना, लाखों लोगों की श्रद्धा का पात्र बन जाना, अद्भुत योगी के रूप मे विश्वविख्यात हो जाना, सत्-चिन्तन की धारा में समतामय हो जाना, यह सब क्या था? यह सब मानवतावाद की विजय थी। उस मानवतावाद की जो अनुभूति म उतरता है, चिन्तन में जमता है और व्यवहार में प्रकट होता है। अनुसधान, चिन्तन और व्यवहार, यह शैली थी उस दिव्यपुरुष की जिसने जीव को शरीर नहीं आत्मा समझा था और उसी रूप में उसके कल्याण का मार्ग देखा और दिखाया था। इस प्रकार विश्वबघुत्व की जो भावना भगवान् महावीर के सिद्धान्तों का अनुकरण करती हुई आचार्य श्री नानेश तक पहुँची थी उसे उन्होने अपनी साधना से जीवनशैली बना दिया। यह उनका ऐसा प्रदेय है जो वादों के विवाद से तो पूर्णत मुक्त है ही, सभी धर्मो के मूल सिद्धान्ता से भी जिसकी सहिति बैठती है। इसीलिए समान स्तर पर सभी के कल्याण की चिन्ता करना, मानव को मानव के रूप मे देखना, उपभोक्ता इकाई के रूप मे नहीं, सही अर्थो मे मानवतावाद है। एसे मानवतावाद को व्यवहार के स्तर पर वे स्थापित कर सके, यह उनकी साधना की सफलता थी। ♦

साध्वी निरञ्जनाश्री

आचार्य नानेश का समता चिन्तन · आत्मोन्नयन का दर्शन
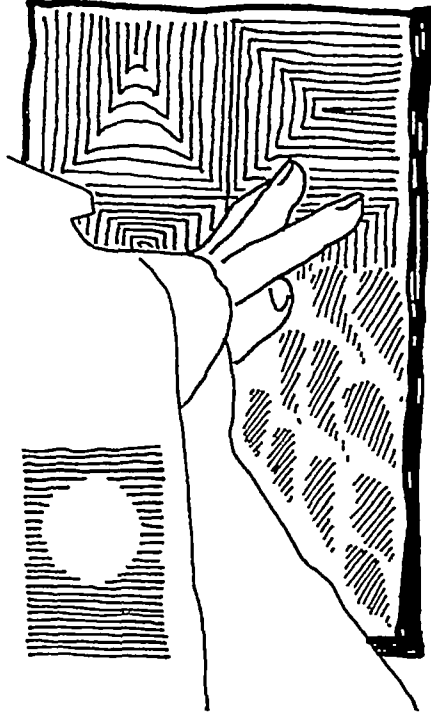
आचार्य नानेश का समतादर्शन हृदय-उत्स से फूटने वाली वह अनाविल धारा है जो विषमता-वितृष्णा और सताप-सक्लेश को उपशात कर परम आनद और शाति प्रदान करती है। आचार्य नानेश ने स्वय समता सरोवर मे आकण्ठ अवगाहन किया था और आत्मानद की अपूर्व अनुभूतियों से सराबोर हो गये थे। अपने ही 'स्व'भाव में रमण करने मे कितना सुख, कितना सतोष है, वही जान सकता है जिसने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया हो। आचार्य नानेश आत्मज्ञानी थे। वे जानते थे कि पौद्गलिक जगत् में व्याप्त राग, द्वेष, माया, मोह आदि मनुष्य को विकलता मे परिभ्रमित कराते हैं। इस प्रकार के पथभ्रष्ट मनुष्य को उन्होंने देखा था जो अपने ही नीड़ से भटक गया था तथा कण्टकाकीर्ण पथ पर चलते हुए जिसके पैर लहूलुहान हो गये थे। दिशाविहीन भटकते ऐसे मानवो की दशा देखकर उनका वात्सल्यानुरजित हृदय द्रवित हो उठा और करुणा का समुद्र उमड़ आया। इन दु खी जीवो की जर्जर अवस्था और तनावो से ग्रस्त मानसिकता से वे व्यथित हुए। उनकी पीड़ाओं और क्लेशों के कारणो का उन्होने अनुसधान किया और उनके उद्धार हेतु जो मार्ग दिखाया, वह था समता के चितन, दर्शन और व्यवहार का मार्ग।

दु खभरे काल में ऐसे महान् गुरु को पाकर उनके भक्त कृतार्थ हुए। धन्य हैं वे गुरु जिन्होंने समता की सरिता बहायी। व्यावहारिक जगत् मे समता का अमृत घुल जाये और आत्मदर्शन की दिशा में स्वानुभूति जाग्रत हो जाये तो आत्मशोधन करता व्यक्ति साधना के चरमबिंदु की ओर अग्रसर हो जाता है। आचार्यदेव ने विभिन्न रूपों मे समता को सवारा और सरलता से उसे अपनाये जाने के छोटे-मोटे मार्ग दर्शाए।

समता का सीधा अर्थ तामसिक और राजसी गुणो से ऊपर उठकर सात्विक प्रवृत्तियो का विस्तार करना, समन्वय की भावना को परिवर्द्धित करना तथा दूसरों को अपना बनाना है। सुख-दु ख की

अनुभूति के विस्तार मे कहीं कोई अपने पराये का भेद अवशिष्ट न रह जाये, यह सुनिश्चित करना ही तो धर्म है और यही मोक्ष का मार्ग। समता से हटकर कहाँ होगा धर्म ? और कहाँ होगा मोक्ष ?

सर्वप्रथम समता भाव से रग लो अपने जीवन को, हटा दो क्रोध, मान आदि विकृतियो को। विकृतियों से मुक्त होने के लिये सद्भाव ही मार्ग है। जहाँ समता का भाव है वहीं धर्म की ज्योति प्रज्वलित होती है और तब दु ख का घोर अधेरा समाप्त होकर प्रकाश की अमृतवर्षा होने लगती है।

समता सलिला मे अवगाहन श्रद्धालुओ के जीवन को स्वच्छ बनाता है। समता भाव सारे मनोमालिन्य और अकर्मो को निष्कर्म अवस्था तक पहुँचाने का सोपान है। न वाद, न कोई विवाद। इहलोक और परलोक दोनो को समरसता से सरसब्ज बनाने का निर्विवाद मार्ग है समता।

समता का कल्पतरु जिसकी भाव भूमि पर लहराता है उसका स्वामी अभीस्सित अर्थ की जब चाहे तब उपलब्धि कर सकता है। अमन चैन के साथ अनत आनद का अनुभव कर सकता है। समता के मधुवन में वसती बयार चलती है। वहाँ विषमता का पतझर कभी नहीं आता। समता अमरत्व की वह मजिल है जहाँ नश्वर तत्त्व का प्रवेश असमव है। समता धर्म की पर्याय है। यह चैतन्य का बाहर से अपने स्वरूप की ओर प्रत्यावर्तन का मार्ग है। यह मार्ग चेतना को ऊर्ध्वारोही बनाता है।

अकर्मभूमि मे कल्पतरु लहलहाते हैं। समता के कल्पतरु से आत्मक्षेत्र अकर्मभूमि बन जाता है, जहाँ फिर कर्मसयोजन की दशा नहीं रहती।

कल्पतरु इच्छाओं की पूर्ति करता है, समतातरु तो समस्त लालसाओं को समाप्तप्राय कर दता है। कल्पवृक्ष देवाधिष्ठित होता है जबकि यह समता पादप स्वय आत्माधिष्ठित होता है। कल्पवृक्ष तो दस प्रकार के बताये गये हैं मगर समता का वृक्ष तो अनत आत्मिक गुणो के रूप मे विस्तार पाता है। तब वह कल्पवृक्ष से भी कहीं अधिक गुणसम्पन्न हुआ और उस कारण उपमातीत।

> जिस समता को आचार्य श्री नानेश ने पूर्णत आत्मसात किया और सर्वतोरूपेन जिसे जिया उसे शब्दबद्ध कर पाना कठिन है परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि समता सजीवनी का उपयोग कर विश्वमानव समता दर्शन के विशाल वृक्ष की छाया में जाति, भाषा, वर्ग आदि के कृत्रिम भेदों को भुलाकर शांति, सौख्य, मैत्री और आत्मोन्नयन की मगलकारी दिशा में अनवरत बढ़ते रहने की पात्रता पा लेता है।

जिस समतादर्शन की *समियाए धम्मे* कह कर देवाधिदेव प्रभु पार्श्व और महावीर ने महिमा बखान की थी उसे ही आचार्य श्री नानेश ने जिस रूप में प्रस्तुत किया वह अपनेआप मे अनूठा और अद्वितीय है। वह समस्त विवादों से दूर ले जाने वाला दर्शन है।

समता और विवाद परस्पर विरोधी शब्द हैं। समता की शुरूआत विवाद का अतिम श्वास है। अर्थात् जहाँ पर विवाद की समाप्ति है वहाँ पर ही समता का सौंदर्य प्रस्फुटित होता है। आचार्य श्री नानेश ने अन्तर के दर्शन को समतादर्शन के रूप मे अभिव्यक्त किया जो सब प्रपचों से कोसो दूर ले जाने वाला अपूर्व धर्म है।

चतुर्विध सघ के निर्माता तीर्थकरो ने समता पीयूष का पान किया था और केवलज्ञान की ज्योति जलने पर जनमानस को आत्मकल्याणार्थ प्रदान किया था। उनका प्रतिनिधित्व करने वाले सर्वज्ञ नहीं, सर्वज्ञ सदृश णमो आयरियाण के विशिष्ट पद के अधिकारी आचार्य भगवन् ने समान भाव से झोंपड़ी से लेकर महलो तक उसकी वर्षा कर दी और घर-घर ही नहीं, घट-घट तक पहुँचाने का अथक पुरुषार्थ आजीवन करते रहे।

सघर्षो की आँधी में तर्कवितर्को के वितडावाद में भी वे समता की विभूति का सौम्यदर्शन जन-जन को कराते रहे और सम्यक् दृष्टि का वास्तविक स्वरूप आज के तथाकथित धार्मिक कहलाने वाले लोगो के समक्ष रख कर स्पष्ट करते रहे कि यह सम्यक्त्व क्या होता है। सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् जीवन शातिपथ से गुजरता है। सक्लेश की स्थिति से मुक्त ममता और मोह की अभेद्य

प्राचीरों को तोड़कर अपने सत्पुरुषार्थ से सिद्धत्व की सम्पूर्ण झलक जिसने दिखा दी वे आचार्य श्री नानेश विवादो के पक मे रहते हुए भी पकजवत निर्लिप्त विवादों से दूर ही रहे। उन्होंने अपने जीवन को जन-जन के मन को आत्मतोष प्रदान करने वाला बनाया और अपनी समता साधना से अगणित लोगो की श्रद्धा के पात्र बने।

धरती का पानी जब सूर्य के ताप से वाष्प बनकर ऊपर उठता है और कालान्तर में पुन नीरद से नीर बनकर वसुधरा पर बरसता है, तब वह किसी क्षेत्र विशेष का ध्यान नहीं रखता कि वहाँ बरसना ठीक रहेगा या नहीं। वह तो इस भेद को मिटाकर सर्वत्र, समान भाव से बरसता है। निर्धन-धनी सभी उस वर्षण की साम्यता से लाभान्वित होते हैं। गुरुभगवन्तों का, अरिहन्तों का कृपा-वर्षण भी सतत, सर्वत्र होता रहा है बिना किसी भेद के। यही तो समता का दर्शन है और यही है समत्व की आत्मा।

समतादर्शी अथवा समताधर्मी बन जाने के बाद दृष्टिसयम सध जाता है। नोक-झोंक करने का इरादा समाप्त हो जाता है। समतादर्शी हर परिस्थिति मे द्रष्टाभाव से दर्शकवत् चलचित्रों की भाति उदासीन सब कुछ देखता रहता है। अप्रभावित अवस्था में सक्लेश कहाँ? विवाद का तो कोई प्रश्न ही नहीं। जब प्रत्येक कार्य में, क्रिया और चेष्टा मे, समता की सृष्टि होती है तब मुक्ति की मजिल सन्निकट आ जाती है। विषमता के हर पहलू मे समतादर्शी समता का ही दर्शन करता है क्योंकि उसका चितन सकारात्मक बन जाता है और हृदय सरल, ऋजुभूत हो जाता है। सरल हृदय ही धर्म का पात्र है। उसी में धर्म अपनी विशुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है। मध्यस्थ अवस्था में ही समता की धारा बहती है और यह धारा निरतर विस्तार पाती है, न कभी सकीर्ण होती है न कभी शुष्क।

'मज्झत्थो निज्जरापेही' की साधना समता की साधना है। आचार्यदेव ने विकट मोडों पर भी समता को अनुप्राणित और जीवन्त रख कर श्रद्धालु और तत्त्वज्ञ श्रावको एव उपासकों के लिये अनुभूतिगम्य बनाया।

अपने जीवन के कण-कण मे समत्वभाव को गुरुदेव ने रमाया और फिर रचना के रूप मे सघ मच पर प्रस्तुत किया। परिणामस्वरूप यह प्राणवान सिद्धान्त जैन समाज की अमूल्य धरोहर बन गया। अब पीढ़ी दर पीढ़ी को इस दिव्य निधि की विरासत उपलब्ध है जिसका उपयोग कर वह कृतार्थ बन सकती है।

राजनीति के क्षेत्रो में यदि इस समता घट की 2-4 बूँदो का भी उपयोग किया जाय तो आतकवादियो, भ्रष्ट नेताओं एव स्वार्थी तत्त्वों से उसे मुक्त कर पर्यावरण का परिष्कार किया जा सकता है।

साम्यवाद और समाजवाद की लबी-चौड़ी बातें कहने वाले नेता यदि आचार्यश्री के इस समतादर्शन पर अमल करे तो सामाजिक और आर्थिक विषमता की खाइयो को पाट कर ऐसे कल्याणकारी समाज की रचना की जा सकती है जो सदा से मानव जीवन की कल्पना का विषय रहा है। इस प्रकार देश धर्म, समाज धर्म, गृहस्थ धर्म आदि समस्त धर्मों की बुनियाद समता ही है।

समता का यह स्वर्णिम सूत्र अत्यत कठिनाई से उपलब्ध हुआ है। अनतकाल से आत्मा जिन पगडडियों से एव राहो से गुजरी है वे सभी राहें ऊबड़खाबड़ तथा घोर यातनाओ से ओतप्रोत थीं। अज्ञानावस्था मे आत्मा अधकार में भटकती रही। विषमता के मोह के नागपाश मे जकड़े वैरानुबध, ऋणानुबध, पापानुबध करती रही। राग-द्वेष की कदराओं मे आयु के क्षणो को क्षीण करती रही। दिशाविहीन कृष्णपक्षीप अवस्था मे तिमिर वीथिकाओं में भटकती रही। स्वय के अस्तित्व से बेभान, दु खो से बेचैन तड़पती रही। इसी तरह पुद्गल परावर्तन की अनन्तता मे चेतना मृतप्राय रही।

फिर आया प्रात काल, अधकार छटने लगा, आलोक बिखरने लगा और जीवन में सम्यक्त्व रवि के उदय का क्षण आया, वस्तु का ज्ञान सम्यक् रूप में अनुभूत हुआ। विपर्यय से निवृत्ति हुई। हेय वस्तु के परित्याग का मानस बना। उपादेय को ग्राह्य किया गया और ज्ञेय का ज्ञान हुआ। समता के अवतरण के इस क्रम मे सुख का प्रादुर्भाव हुआ। सारे दर्शन सम्यक् हो गये। नदी सूत्र में कहा गया है कि सम्यक्त्वदर्शी के लिये मिथ्याश्रुत भी सम्यक्श्रुत है।

जो हर प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बनाकर जीने की अद्भुत कला सीख लेता है वह सारे मानसिक तनावो से मुक्त हो जाता है। उसकी आत्मा आनद से भर उठती है। यह समतादर्शन की यौगिक प्रक्रिया है।

णो हीणे णो अइरिते—कोई आत्मा हीन नहीं होती है, और कोई आत्मा उच्च नहीं होती है। जैन दर्शन का यह सूत्र योगसाधना विज्ञान का सूत्र है। अहकार, विषमता, असमानता तथा हीनता की भावना अनेक प्रकार की विकृतियाँ पैदा करती है और वे मानसिक विकृतियाँ अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करती हैं। जब व्यक्ति मे समता की भावना प्रतिष्ठित हो जाती है तब सभी प्रकार के रोग स्वत ही नष्ट हो जाते हैं।

हठयोग मे ध्यान की जो विधि बतायी गई है उसके अनुसार इड़ा और पिगला नाड़ियों में प्राण प्रवाहों का असतुलन होना विषमता है और सुषुम्ना में प्राण के प्रवाह का चालू होना समता है। हठयोग में सुषुम्ना का उतना ही महत्त्व है जितना जैन योग म समता का महत्त्व है। समता सुषुम्ना की पर्याय है। सुषुम्ना का जागरण समता का जागरण है और समता की जागृति, सुषुम्ना की जागृति है।

यदि कोई व्यक्ति समता की महिमा का अनुभव करना चाहे, उसके स्वस्थ सूत्रा से लाभान्वित होना चाहे, या अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा को परिवर्द्धित करने का जिज्ञासु हो तो उसे चाहिये कि वह आचार्य श्री नानेश द्वारा विवेचित साधना का मार्ग ग्रहण करे। व्यवहार जगत् मे समता के सिद्धान्तों का पालन करे, घर और बाहर प्रतिपल आत्मसमीक्षण करता रहे, जागरण के प्रथम क्षण से ही समभाव बनाये रखने का दृढतम सकल्प करे, बार-बार उसे दोहराये और उस पर दृढ रहे। कषाय की अवस्था का निरोध करे, उत्तेजना, आवेश, आवेग मे वचनगुप्ति करे तथा मनन-चितन के द्वारा उसके कटु परिणामो का दर्शन करे। इन क्रियाओ से गुजरते हुए अपने श्वास और हृदय की गति की ओर ध्यान को एकाग्र करे। जितना शात मानस होगा उतना सक्लेश मद, क्षीण होता जायेगा और सारी विपदाओ से छुटकारा पा लिया जा सकेगा। यह मार्ग जितना सरल है, उतना ही शाति और आनन्द से परिपूर्ण भी है।

आचार्य श्री नानेश द्रष्टा भाव से घटनाओं के चक्रव्यूह मे भी आत्मसाधना और अनवरत आराधना करते रहे यह ऐसी ही मन स्थिति का परिणाम था। क्या हम सबमे उस महायोगी के दर्शाये हुए मार्ग पर गति करने की क्षमता है? क्या हम उनके सुयोग्य उपासक हैं? उनकी पर्युपासना करने के स्वरूप का यदि हमे यत्किंचित भी ज्ञान है और उस श्रद्धा-शिखर के प्रति आस्था और श्रद्धा के रेशे यदि जीवन-वसन मे व्याप्त हैं तो समता को अपने भीतर सहज भाव से व्याप्त होने दे।

अपने आपको पहचाने और अपने अतर्जगत मे प्रवेश कर जाएँ। बाह्य पटल पर यवनिका का पटापेक्ष हो जायेगा। सारे विवाद उपशात हो जायेगे। ईर्ष्या और द्वेष की लपटें फूलो में बदल जायेगी। सहज समता की स्वाभाविक प्रक्रिया से गुजरने वाला क्रान्तिकारी युगपुरुष बनता है। सर्व समाज की चेतना को बदल कर रख देता है। ऐसे युगद्रष्टा, समत्वयोगी आचार्य श्री नानेश इस युग के विलक्षण पुरुष थे। उन महत्त्वाकाक्षाओं से कोसो दूर थे जो विषमता की विभीषिका का मूल है। महत्त्वाकाक्षा का कहीं अत नहीं आता। वह सीमा-रहित यात्रा है। उस अतहीन यात्रा को करने वाला महत्त्वाकाक्षी, पथ का अत नहीं पर स्वय का अत अवश्य पा लेता है।

समता सिर्फ कषाय का रूपान्तरण ही है। गलत दिशा मे चलने वालों को गति नहीं, सिर्फ दिशा बदलनी है। यदि हम क्रोध, अहकार, द्वेष, ईर्ष्या आदि में प्रयुक्त होने वाली ऊर्जा को रूपान्तरित कर समता प्रदीप को प्रज्वलित करने में लगा दें, अगर ऐसा पुरुषार्थ का भाव भी जाग्रत हो जाये तो भी हम अपने आपको किसी रूप मे सम्यक् गुरु का सम्यक् सुयोग्य शिष्य कह पायेगे।

जिस समता को आचार्यश्री ने पूर्णत आत्मसात् किया और सर्वतोरूपेण जिसे जिया उसे शब्दबद्ध कर पाना शक्य नहीं है परन्तु यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि (समता सजीवनी का उपयोग कर विश्वमानस समता दर्शन के विशाल वृक्ष की छाया मे जाति, भाषा, वर्ण आदि के कृत्रिम भेदो को भुलाकर शाति, सौख्य, मैत्री और आत्मोन्नयन की मगलकारी दिशा मे अनवरत बढते रहने की पात्रता पा लेता है।) ♦

प्रो रतनलाल जैन

समता दर्शन वादों के विवाद से दूर
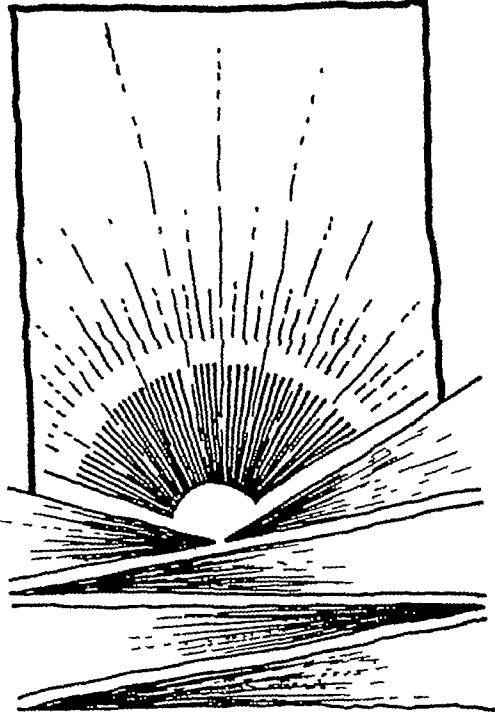
सम्पूर्ण चराचर जगत् पर यदि दृष्टिपात करे तो जो दो मूल तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं वे हैं—जड़ व चेतन। इन दो तत्त्वो पर ही सपूर्ण विश्व का स्वरूप टिका हुआ है। जड़ तत्त्व चेतन तत्त्व पर उपकार व अपकार दोनों करता है। जड़ पदार्थ से आवर्जित होने के कारण ही जीव भँवर की तरह चक्कर काटता है। जड़ पदार्थो का अलग-अलग स्वभाव है, वे अलग-अलग तरीके से जीव को यदि कभी रुलाते हैं, तो कभी हसाते हैं। आज विश्व में विषमता की जो विभीषिका दृष्टिगोचर हो रही है वह पुद्गलों के कारण ही है। इन्हीं पुद्गलों के कारण जीव अपने स्वरूप को भूल बैठा है, इससे बड़ा और क्या अनर्थ हो सकता है? मातृत्व, पितृत्व, भ्रातृत्व एव गुरुत्व आदि सभी भाव भुला दिये जाते हैं आज इन पुद्गलों के कारण।

विषमता की विभीषिकाओं से बचने के लिए सर्वप्रथम 'पढम णाण तओ दया' के चिन्तन को जीवन में उतारा जाये जिससे सम्यक् दृष्टि निर्मित हो सके। तदुपरान्त ही हम समझ पायेंगे कि आखिर यह जीवन है क्या? क्या वस्तुत इसमे अनन्त रहस्यो का खजाना भरा हुआ है? क्या यह वस्तुत कोरा कागज है जिस पर सुन्दर अक्षरो में मधुर गीत लिखे जा सकते हैं? क्या यह विश्व जितना विराट् बाहर देखा-सुना जाता है उतना ही विराट् कोई अन्तर्जगत् भी है? इन सभी बातों का उत्तर पाना है तो सर्वप्रथम ज्ञान को जगाना होगा। ज्ञान के साथ अज्ञान, दिन के साथ रात, सुख के साथ दु ख, प्रकाश के साथ अन्धकार को भी सम्यक् रूप से जानना होगा। भगवान् महावीर का उद्घोष है—'जावन्त अविज्जा पुरिसा सव्वे ते दु ख सम्भवा'—जिन जीवो के साथ अविद्या और अज्ञान जुड़ा हुआ है, उनके साथ सारे दु ख सम्भव है। परन्तु यदि सूक्ष्म ज्ञान की लौ जग जाये, एक रश्मि मात्र प्रकट हो जाये तो अन्धेरा दूर हो सकता है, अन्तर-आत्मा में उद्घोष होगा—'सम्यक् निर्णायक समतामयञ्च यत् तज्जीवनम्' अर्थात् जो जीवन सम्यक् निर्णायक और समतामय है वास्तव में वही जीवन है। यह अनुभूतिगम्य भी है।

यहाँ समता से तात्पर्य 'मध्य विन्दु' पर केन्द्रित होने से है। जहाँ न हर्ष को स्थान हे न शोक को, न पुण्य को न पाप को, न राग को न द्वेष को। इन दो छोरो के मध्य मे केन्द्रित होना ही समता है। जहाँ समता है वहाँ सम्यक् निर्णय अपने आप रहेगा, या जहाँ सम्यक् निर्णय है वहाँ समता अपने आप सधेगी। जैन आगमो मे सम शब्द को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है। 'सम' से अभिप्राय समान या सम्यक् प्रकार से है। ये दोनो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ताला चाबी से खुलेगा, इतने कथन मात्र को जैन दर्शन अस्वीकार कर देता है। जैन दर्शन कहता है—सम्यक् चाबी से ताला खुलेगा, सम्यक् तप से मुक्ति मिलेगी, सम्यक् जीवन से ही शान्ति प्राप्त होगी। यहाँ सम्यक् जीवन या सम्यक् निर्णय या समतामय जीवन को समझना आवश्यक है।

किसी व्यक्ति ने गाली दी और यदि हमने निर्णय कर लिया, कि पर पुरुष ही जिम्मेदार है तो मिथ्या हो जायेगा। उपादेय शक्ति निज की है, निमित्त पर पुरुष है, यह निर्णय सम्यक् होगा। यहाँ समता दर्शन प्रादुर्भूत होगा। ससार मे जितनी विषमताएँ हैं, वे सव मिथ्या-निर्णय से ही प्रादुर्भूत हुई है। द्रौपदी का चीर-हरण हुआ, सीताजी को अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ा, सेठ सुदर्शन को सूली पर चढना पड़ा—पर उनके सम्यक् निर्णय पर अडिग रहने से सारे दु ख सुख में परिवर्तित हो गये। समता का यही उद्घोष है कि अपने सम्यक् निर्णीत मध्य बिन्दु को न छोड़ो—चाहे चीर-हरण हो, चाहे अग्नि मे जलना पड़े, चाहे काँटों की शैया पर सोना पड़े। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो मे द्रष्टा-भाव अपनाना ही विषमताओं के नाश का महत्त्वपूर्ण सोपान है।

भगवान् महावीर ने उद्घोष किया कि व्यवहार में अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध हो फिर भी निश्चय में विषमताओ के कर्म अन्तर्जगत् में भरे पड़े हो तो उनको निकालने के लिए प्रतिकूल परिस्थितियाँ स्वय निर्मित करो, अर्थात् तप, जप, सयम से अनुरजित हो जाओ, कष्ट नहीं आता है तो निमन्त्रण दो, फिर द्रष्टा भाव से नये-नये प्रयोग करो, नये आयाम प्रस्तुत करो ताकि आत्म-नियत्रण की शक्ति का सम्यक् विकास हो सके। यह वात उचित ही है कि सिर्फ आये हुए कष्टो को समभाव-पूर्वक, द्रष्टाभाव-पूर्वक सहन करना है, पर आत्मनियन्त्रण की शक्ति बढाने के लिए तप,जप, सयम का भी उद्घोष करना है। आज का वातावरण इस स्थिति के विपरीत ही परिलक्षित हो रहा है—दूसरों को ही एकान्त दोष देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इससे विषमताएँ वढ़ती हैं।

आचार्य श्री नानेश द्वारा उपदेशित समता दर्शन और उस पर व्यवहार आज के युग की आवश्यकता है। आचार्य भगवान् ने स्वय पहले समता को अपने जीवन में उतारा था उसके उपरान्त ही उसके प्रचार-प्रसार पर बल दिया था। यहाँ तक कि जीवन की सध्या बेला में भी समता का जो परिचय उन्होंने दुनिया को दिया वह चिरस्मरणीय रहेगा। आज जितने विवाद बढ रहे हैं तथा राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एव पारिवारिक जीवन की विषमताएँ वढ़ती हुई दिखाई दे रही हैं उनका मूल हेतु मिथ्या निर्णय व द्वेषमय वातावरण ही रहा है।

स्वय भगवान् महावीर ने जातिवाद का पुरजोर खण्डन किया था तथा कर्म की प्रधानता के सिद्धान्त का प्रचार किया था। समाज मे समतामय वातावरण वनाने के उद्देश्य से कर्म के अनुसार अर्थात् गुणानुसार ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्गो का निर्माण किया गया था। समाज की कल्पना का यही आधार भगवान् ऋपभदेव का भी रहा था। उसी को पुनर्जीवित करने के लिए आचार्य श्री नानेश ने विभिन्न रूपों मे सवधित पक्षों पर समयोचित चिन्तन प्रस्तुत किया था। इस प्रकार उनके चितन के रूप मे जो एक

> आचार्य श्री नानेश द्वारा विवेचित समता दर्शन जीवन में आमूलचूल परिवर्तन करने वाला चिन्तन है। जहाँ समता है वहाँ विषमता टिक नहीं सकती और इसलिए वाद-विवाद भी नहीं रह सकते। सभी विवादों और दुर्भावनाओं को नष्ट करने वाला समता चिन्तन विचारों में सद्भाव, हृदयों में उत्साह, चेतना में आनन्दानुभूति और आत्मा में शांति की सरिता बहाने वाला अनोखा दर्शन है। इससे लाभ उठाने के लिए इसे आस्थापूर्वक आचारित, प्रचारित और प्रसारित करने की आवश्यकता है।

अनमोल निधि हमें मिली है उसके आधार पर समाज से असमानता की स्थिति को समाप्त किया जा सकता है। समता दृष्टि या सम्यक् निर्णय क्षमता का जीवन में प्रस्फुटन होते ही विचारधारा स्वय सम्यक् राह पकड़ लेगी। आचार्य श्री नानेश ने जैन धर्मावलम्बियों के प्रमुख पर्व सवत्सरी के सदर्भ मे समतापूर्ण दृष्टि अपनाये जाने की बात कही थी। उन्होंने आह्वान किया था कि जैन समाज के जितने पथ, मत या सम्प्रदाय हैं वे आग्रह छोड़कर सवत्सरी मनाने की एक तिथि निश्चित कर लें और आश्वस्त किया था कि वह तिथि उन्हे स्वीकार्य होगी। यह निश्चय ही अत्यत उदात्त चितन था जिसके अनुसार क्रिया तभी हो सकती थी जब सभी वर्ग तुच्छ अह का त्याग कर दें। निश्चय ही पर्व किसी भी दिन मनाया जा सकता है तथापि यह एकान्त चिन्तन होगा जो एक धार्मिक पर्व की महिमा के अनुरूप नहीं है। यह तथा ऐसे ही उदाहरण प्रमाणित करते हैं कि आचार्य श्री नानेश समता के मसीहा, अहिसा के पुजारी, स्याद्वाद के समर्थक और सयमीय मर्यादाओ के प्रबल समर्थक थे। सभी विवादो और आग्रहो से दूर रह कर उन्होंने निश्चित रूप से सयमित जीवन का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किया था। यह सर्वव्यापिनी समता जिस व्यक्ति या समाज के जीवन म प्रवेश कर लेती है उस व्यक्ति या समाज के जीवन मे सुख, समृद्धि और शान्ति का निर्झर प्रवाहित होने लगता है तथा आनन्द ही नहीं परमानन्द की स्थिति बन जाती है। इसीलिए सदर्भ चाहे बाह्य व्यवहार हो चाहे आभ्यन्तर जीवन, चाहे राजनीतिक हो या सामाजिक, पारिवारिक हो या अन्य कोई, समता के सिद्धान्त का व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार हो तथा वह स्थूल स्थानो से बढती हुई जीवन के सूक्ष्मतर स्थानो मे प्रवेश करे, इस हेतु प्रयास किये जाने चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि आप सपूर्ण विश्व मे समता स्थापित करने के अपने मनोरथ को पूर्ण कर ले, परन्तु स्वजीवन के अनेकानेक पहलुओ पर तो समता का ध्वज फहरा ही सकते हैं जो आपके लिए सभव भी होगा तथा व्यवहार्य भी। फिर यह वाक्य स्मृति पटल पर आये बिना नहीं रहेगा कि 'एकै साधे सब सधे'—एक जीवन को साध लिया तो दुनिया में सर्वत्र समता का वातावरण बनने की स्थितियाँ बनने लगेंगी। आप स्वय अपने को ग्रन्थिरहित, विषमतारहित एव सहज महसूस करेगे और बुझे हुए दिलों मे भी समता का स्पदन उत्पन्न कर पायेगे। तब आप देखेगे कि कैसे समाज में फैली कुरीतियाँ, रूढियाँ, परम्पराएँ आदि नष्ट हो जाती हैं तथा अपनत्व का आनदकारी वातावरण बन जाता है। परन्तु पहले स्वजीवन सम्यक्-निर्णायक व समतामय बने, तभी समाज की और विश्व की विषमताओ और विद्रूपताओं को दूर किया जा सकेगा।

आचार्य श्री नानेश द्वारा विवेचित समता दर्शन जीवन में आमूलचूल परिवर्तन करने वाला चिन्तन है। जहाँ समता है वहाँ विषमता टिक नहीं सकती और इसलिए वाद-विवाद भी नहीं रह सकते। सभी विवादो और दुर्भावनाओं को नष्ट करने वाला समता चिन्तन विचारो में सद्भाव, हृदयो मे उत्साह, चेतना मे आनन्दानुभूति और आत्मा में शाति की सरिता बहाने वाला अनोखा दर्शन है। इससे लाभ उठाने के लिए इसे आस्थापूर्वक आचारित, प्रचारित और प्रसारित करने की आवश्यकता है। ❖

शब्द अनत विचारों के वाहक हैं। विचार शब्दो पर आरूढ होकर बाहर आते हैं।
शब्द कैसे भी हो, वाहन का महत्व नहीं है, महत्व सवार का है।

—आचार्य श्री नानेश

डॉ सुरेन्द्र वर्मा

समता : एक व्यवहारपरक विश्लेषण
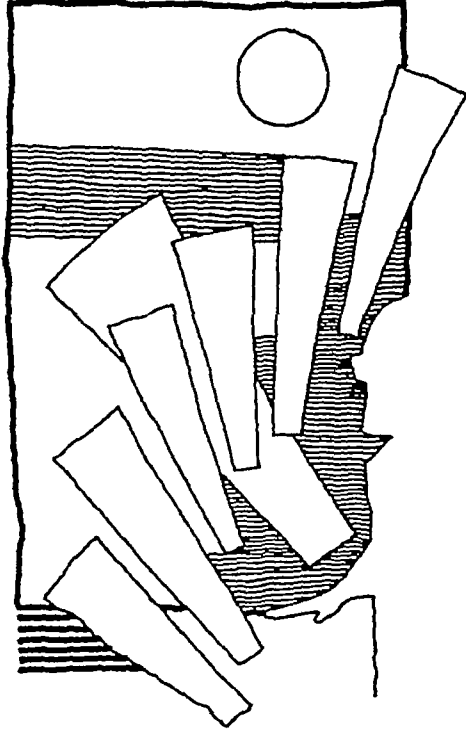
'समता' (स्त्री) या 'समत्व' (पु) एक भाव है। किन्तु इसके अनेक और विभिन्न आयाम हैं। शब्द-कोश के अनुसार समता के चार अर्थ किए गए हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(1) समतलता, समस्थलता

(2) निष्पक्षता, भेदभावहीनता

(3) धीरता, उदारता

(4) अभिन्नता, पूर्णता

यदि हम ध्यान से देखे तो ये चारो अर्थ समता के चार पक्षों या पहलुआ की ओर सकेत करत हैं। समता के ये चार आयाम हैं—(1) भौतिक आयाम, (2) सामाजिक आयाम (3) मनोवैज्ञानिक आयाम और (4) आध्यात्मिक आयाम। हम ऊबड़-खाबड़ भूमि को समभूमि नहीं कहते। समस्थल समतल होता है। यह समतलता ही भौतिक अर्थ में समता है। समता का दूसरा पहलू उसका सामाजिक पक्ष है। जब हम अपने साथियो से बराबरी का व्यवहार नहीं करते, उनसे भेदभाव रखत हैं तो हमारा आचरण निष्पक्ष नहीं कहा जा सकता। निष्पक्षता ही समता है। समत्व आचरण सम-व्यवहार है। बराबरी के भाव के साथ जो व्यवहार किया जाता है वही समत्व-व्यवहार है। समता का यह व्यावहारिक पक्ष या कहें, सामाजिक आयाम है। समता का एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। यह व्यक्ति की सद्वृत्तियों की ओर सकेत करता है। जो व्यक्ति धीर और उदार है, वही समत्वभावी है। ऐसे व्यक्ति में समचित्तता होती है। वह सुख-दु ख में, मान-अपमान मे समभाव रखता है।

भौतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं के अतिरिक्त समता का एक अन्य पक्ष, जो इन सबसे अधिक गहन और गम्भीर है, उसका आध्यात्मिक आयाम है। यह वह समत्वभाव है जो आत्मा

की पहचान है। भगवती सूत्र के अनुसार 'आचाए सामाइए आया सामाइस्स अट्ठे' अर्थात् आत्मा समत्व रूप है और समत्व ही आत्मा का साध्य है। इसीलिए यह कहा गया है कि समता में धर्म है—समियाए धम्मे।

आत्मा की पहचान समत्व है और आत्मा समत्व-रूप है, समत्व ही आत्मा का साध्य है। आखिर इन कथनो का भावार्थ क्या है? यदि हम ध्यान से देखे तो पाएगे कि हम प्राय उन वस्तुओ और वृत्तियों से अपना तादात्म्य कर लेते हैं जो अनात्म्य है—आत्मा की दृष्टि से 'स्व' न होकर जो 'पर' हैं। मनुष्य स्वय का अपने घर अपन बच्चो, उपयोग मे आने वाली अपनी वस्तुओं से इतना जुड़ाव महसूस करने लगता है कि वह उनसे अपने को अलग नहीं कर पाता। वह अपनी पहचान बनाने के लिए उन्हीं का सहारा लेता है। जब मुझ से पूछा जाता है कि मैं कौन हूँ, तो मेरा उत्तर होता है कि मै एक अमुक नामधारी व्यक्ति हूँ, मेरे दो बच्चे है, मेरा एक बगला है, मेरे पास एक मोटरकार है, इत्यादि। क्या ये विवरण वस्तुत मेरी अपनी पहचान हैं? स्पष्टत ये मेरी पहचान नहीं हैं। यहाँ मै अपनी पहचान 'स्व' से न करके 'पर' से कर रहा होता हूँ। मेरी वास्तविक पहचान 'स्व' मे स्थित होना है, 'पर' से अलग होना है। 'पर' से अपना तादात्म्य कर मैं कभी स्वय को पहचान नहीं सकता। आत्मा का अपने स्वभाव मे अवस्थित होना ही वस्तुत समत्व-भाव है। इसे हम दूसरे शब्दो में यों भी कह सकते हैं कि आत्मा का 'विभावों' से अलग होना ही समत्व प्राप्त करना है। आत्मा का साध्य बस यही है कि वह अपने स्वभाव में अवस्थित हो। जब धर्मग्रथ कहता है कि आत्मा समत्व रूप है और समत्व ही आत्मा का साध्य है तो उसका तात्पर्य यही है कि व्यक्ति की पहचान उन सब वस्तुओ, व्यक्तियों, स्थितियो से जुड़ने में नहीं है जो अनात्मन् हैं, जो आत्मा की दृष्टि से 'पर' हैं, बल्कि उसकी वास्तविक पहचान 'स्व' से जुड़ने में ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समत्व की खोज वस्तुत अपनी निजी पहचान की खोज है—आत्मा की खोज है। सभी दर्शनो का प्रमुख उद्देश्य यही है कि मनुष्य अपने आपको पहचाने। यूनानी दर्शन से भारतीय दर्शन तक यही भाव रेखाकित किया गया है। सुकरात ने कहा था—नो दाईसेल्फ, इसी प्रकार भारतीय दर्शन भी कहता है—'आत्मानाम विधि'।

> समता आत्मा का भाव है। 'स्व' का आत्मा से तादात्म्य है किन्तु आत्मा जिस प्रकार अमूर्त है, आत्मा का यह भाव भी अमूर्त है। इसे हम अपने व्यवहार, विशेषकर सामाजिक व्यवहार से मूर्त रूप दे सकते हैं। अत समता का व्यवहारपरक विश्लेषण परम आवश्यक है।

समता, इस प्रकार आत्मा का भाव है। 'स्व' का आत्मा से तादात्म्य है। कितु आत्मा जिस प्रकार अमूर्त है, आत्मा का यह भाव भी अमूर्त है। परन्तु इसे हम अपने व्यवहार मे—विशेषकर सामाजिक व्यवहार मे—मूर्त रूप दे सकते हैं। अत समता का व्यवहारपरक विश्लेषण करना परम आवश्यक है।

सामाजिक रूप से समता समानता की तलाश है। यह समानता हम प्रकृति मे भी देख सकते है और अन्य व्यक्तियो मे भी पा सकते है। हमें केवल सजग रहना होगा।

प्रकृति की अवधारणा एक व्यापक अवधारणा है। इसमे न केवल प्राकृतिक नियम और वनस्पति जगत् निहित है, बल्कि पशु-जगत् भी सम्मिलित है। वनस्पति जगत् एक विकलाग व्यक्ति की तरह होता है। यह अध, बधिर, मूक, पगु और अवयवहीन है। वनस्पतियों को भी उसी तरह कष्टानुभूति होती है जिस प्रकार शस्त्रो के भेदन-छेदन से मनुष्यो को दु ख होता है। वस्तुत कई बातो मे मनुष्य और प्रकृति, विशेषकर वनस्पति जगत्, एकरूप हैं, समान हैं। जिस प्रकार मनुष्य जन्म लेता है, बढ़ता है, चैतन्ययुक्त, छिन्न होने पर म्लान होता है, आहार ग्रहण करता है, विकास और क्षय होने वाली विविध अवस्थाओ को प्राप्त होता है, उसी तरह वनस्पति जगत् भी है। इसी 'समत्व' को ध्यान में रखते हुए मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह, जिस तरह स्वय चाहता है कि मानवी-नियमों मे कोई हस्तक्षेप न करे, प्रकृति को भी उसके नियमानुसार उसे कार्य करने दे। प्रकृति के कार्य-कलापों मे अनावश्यक हस्तक्षेप प्रकृति के सतुलन को बिगाड़ता है। आज अपने स्वार्थ और अहम्-तुष्टि के लिए मनुष्य जिस तरह प्रकृति का शोषण कर

रहा है, उससे प्रकृति का समत्व (प्रकृति का अपनी स्थिति में अवस्थित रहना) पूरी तरह गड़बड़ा गया है। प्रकृति की इस समत्व अवस्था को मनुष्य विचलित कर न केवल वह प्रकृति को हानि पहुँचा रहा है बल्कि स्वय अपने आप के लिए भी वह खतरा उत्पन्न कर रहा है।

अत प्रकृति के सदर्भ में समत्व व्यवहार से दोहरा आशय है। एक तो यह कि प्रकृति और मनुष्य में कई समानताओं के चलते मनुष्य के लिए प्रकृति को हानि पहुँचाना, उसक मानवी कर्तव्य क विरुद्ध है और दूसरे यह मनुष्य का कर्तव्य है कि वह प्रकृति को उसकी अपनी अवस्था मे अवस्थित रहने दे, ठीक उसी तरह जैसे वह स्वय अपने में अवस्थित रहना चाहता है। इसी में प्राकृतिक सतुलन और पर्यावरण-सरक्षण सभव है। बिना इस सरक्षण के स्वय मनुष्य की स्थिति भी स्वस्थ (अपने आप में स्थित) नहीं रह सकती।

मनुष्य के लिए जिस तरह प्रकृति के साथ सतुलन बनाए रखना आवश्यक है, उसी तरह पशुजगत् के साथ भी सामजस्य बनाए रखना बड़ा ज़रूरी है। यहाँ भी मनुष्य और पशुओ में समानता स्पष्ट देखी जा सकती है। जीवो को शस्त्र से भेदन-छेदन करने से उन्हें वैसा ही कष्ट होता है जैसा स्वय मनुष्य को होता है। अत हमें एक ही मापदड अपनाना होगा और समस्त प्राणियों के सुख-दु ख को अपनी ही तरह का सुख-दु ख समझना होगा। यदि हम यह समझ विकसित कर लेते हैं तो स्वत हम समत्वभाव में अवस्थित हो जाते हैं। ऐसे में, ज़ाहिर है, हम किसी भी जीव के साथ हिसावृत्ति नहीं अपना सकते। अहिसक व्यवहार समत्व-भाव की पहचान है। ठीक मनुष्य की तरह ही—उसी क समान—सब प्राणियों को आयुष्य प्रिय है। वे सुख का आस्वाद करना चाहते हैं। उन्हें दु ख प्रतिकूल लगता है। उन्हें वध अप्रिय है। वे जीवित रहना चाहते हैं। यदि हम इस समत्व की अनुभूति कर लें तो मनुष्य को अन्य प्राणियों के साथ रह पाने में कोई कठिनाई हागी ही नहीं।

समत्व के व्यावहारिक पक्ष की बात यहीं सामाजिकता से जुड़ती है। मनुष्य कभी अपने मद में और कभी अपने स्वार्थ में यह भूल जाता है कि अन्य व्यक्ति भी उसी की तरह मनुष्य है और उनम भी वही भावनाएँ हाती हैं जो किसी भी अन्य मनुष्य मे हो सकती हैं। पुरुष अपने ही प्रमाद स नाना रूप योनियो में आता है और बार बार जन्म लेता है और मृत्यु को प्राप्त होता है। इस प्रकार मनुष्य अनेक रूपों में अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त कर चुका होता है। अत उसे यह समझना चाहिए कि न तो कोई हीन है और न ही कोई महान् है। यदि इसे ठीक-ठीक जान लिया जाय तो मनुष्य का अहकार, जिस से वह अन्य सभी व्यक्तिया को कमतर आँकता है, स्वत समाप्त हो जाए। इसलिए मनुष्य को अन्य व्यक्तियों के प्रति समानभाव रखना ही होगा। लेकिन प्रश्न यह है कि प्राणी मात्र के साथ इस आत्मतुल्य व्यवहार को किस प्रकार अर्जित किया जाए और यही बात हमें समत्व के मनोवैज्ञानिक पक्ष की ओर लाती है।

मनोवैज्ञानिक रूप से समत्व जहाँ एक ओर अनुकूल प्रतिकूल स्थितियों में सम रहने का अभ्यास है वहीं दूसरी ओर यह 'शम' अर्थात् कषायो का उपशमन करना है। दु ख-सुख, मान-निदा आदि मे अतिरेक से बचने के लिए कई तरीके अपनाए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए हम अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियों में प्रतिक्रिया करने से बचें, स्थितियों में भागीदार न बनकर केवल द्रष्टा बने रहने का प्रयत्न करें। अनुकूल स्थितियो में राग और प्रतिकूल परिस्थितियो में द्वेष को त्यागने का अभ्यास करें। धैर्य बनाए रखे।

मनोवैज्ञानिक रूप से समत्व भाव धारण करने के लिए यह भी आवश्यक है कि 'कषायो' का उपशमन किया जाए। क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय हैं जिनसे मनुष्य ग्रस्त रहता है। इनका शमन कैसे सभव बनाया जाए यह एक जटिल समस्या है। जैन दर्शन के अनुसार क्षमाशीलता और आत्मस्वरूप के चिंतन से क्रोध को शात किया जा सकता है, विनय द्वारा मान (अभिमान या अहकार) पर विजय प्राप्त की जा सकती है, माया (दुष्टता या असहजता) को सरल आचरण द्वारा परास्त किया जा सकता है और लोभ के नाश के लिए सतोष आवश्यक है।

उवसमेण हेण कोह माणोमछ्वया जिणे।
माया उज्जवयावण, लोहो सतापओ जिणे।।

डॉ जिनेन्द्र जैन

समता दर्शन और विश्वशान्ति-चिन्तन

मानव की प्रकृति ही ऐसी हो गई है कि सभी प्रकार की एव पर्याप्त भौतिक सम्पन्नता के बावजूद उसमे कुछ न कुछ और प्राप्त करने की आकाक्षा बनी रहती है तथा यह आकाक्षा तब तक बनी रहती है, जब तक कि उसे परम-सत्य की प्राप्ति न हो जाये। यह एक आध्यात्मिक सत्य है जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। इसीलिए व्यक्ति के जीवन मे आध्यात्मिक परम्पराओ का अपना महत्त्व है। अच्छे जीवन और सुसभ्य सामाजिक व्यवस्था के लिए आध्यात्मिक मूल्यो की सर्वोच्चता को स्वीकार करना ही होगा। आध्यात्मिक साधकों के लिए जगत् की सत्ता भी असत्य व मिथ्या प्रतीत होती है। आज वही धर्म व दर्शन हमारी समस्याओं का समाधान कर सकता है, जो स्वतन्त्र व उन्मुक्त दृष्टि से विचार करने की प्रेरणा दे सके।

वर्तमान समय की प्रजातात्रिक शासन व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक दृष्टि से समान सवैधानिक अधिकार प्राप्त हैं फिर भी उस व्यवस्था मे विषमता देखने को मिलती है। श्रमण परम्परा में मानव को उसके असली रूप (मानव रूप) मे देखा गया है। इसी परम्परा को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए यदि व्यक्तिगत स्वार्थो को समाप्त किया जाये तथा सामाजिक हितों को बढ़ावा दिया जाये तो व्यक्ति और समाज के सम्बन्धो मे और भी निकटता व मधुरता आ सकेगी। इस दृष्टि से आचार्य नानेश द्वारा प्रतिपादित समता दर्शन का विशेष महत्त्व है क्योकि उसी का अनुसरण ऐसी स्थिति सुनिश्चित कर सकता है। अत उस पर विस्तार से विचार आवश्यक है।

समता का स्वरूप

महावीर द्वारा उपदिष्ट अहिसा सिद्धान्त की व्याख्या को यदि एक शब्द मे समायोजित करें, तो उसे 'समता' नाम से अभिहित किया जा सकता है। समता दर्शन के समसामयिक व्याख्याता आचार्य
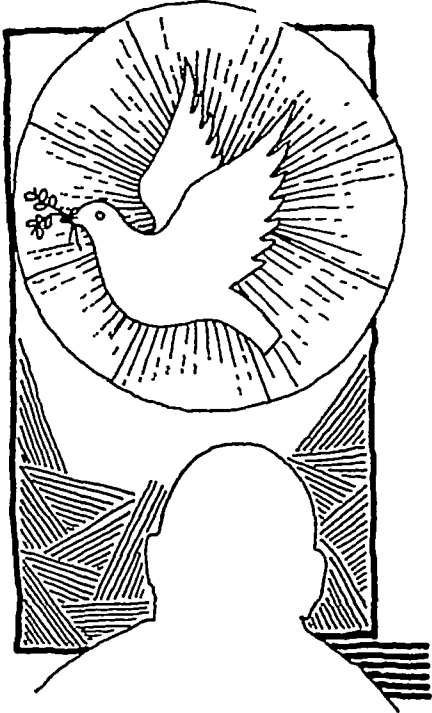
पू श्री नानालालजी म सा क अनुसार समता शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न रूपो म जेसे समान, बराबर, एकरूपता आदि लिया जाता है। समता मे मूल शब्द 'सम' है जिसका अर्थ है—बराबरी (समान)।[1] इस दृष्टि से समता का अर्थ है—बराबरी, समानता या एकरूपता आदि। सस्कृत एव प्राकृत ग्रन्था मे 'सम' शब्द सज्ञा के साथ-साथ धातु (अक एव सक) और विशेषण के रूप मे भी प्रयुक्त हुआ है। सज्ञा के रूप मे शान्ति, क्रोध आदि का निग्रह तथा धातु रूप (अक /सक) मे शान्त होना/करना, उपशान्त होना/करना अर्थ लिया जाता है। जबकि विशेषण के रूप मे समान, तटस्थ, राग-द्वेष का अभाव या मध्यस्थ भाव होना ही समता है।[2]

'समियाए धम्मे'[3] अर्थात् 'समता ही धर्म है' कहकर समता को विभिन्न रूपो, जैसे—आत्मदृष्टि, अहिसा, सहिष्णुता आदि, म आत्मसात् किया गया है। श्रमण परम्परा का लक्ष्य राग-द्वेष को नष्ट कर समत्व को प्राप्त करना रहा है। इसलिए 'समण' (श्रमण) को समत्व (समता भाव) का साधक कहा गया है।[4]

प्रवचनसार[5] की गाथा सख्या 7 मे मोह के विकार से रहित आत्मा के भाव को समता कहा गया हे। शौरसेनी साहित्य[6] मे भी इसी भाव को प्रकट करते हुए समता के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है। भगवती आराधना[7] मे भी जीवन-मरण, लाभ-अलाभ, सयोग-वियोग, सुख-दु ख आदि मे राग-द्वेप नहीं करना, समभाव कहा है, उग्मी को समता कहते हैं। मूलाचार[8] नामक आचार ग्रन्थ मे साम्य भाव का समता कहा अथवा राग-द्वेष से रहित त्रिकाल पच नमस्कार करना समता है। समता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए वीरसेन स्वामी ने धवला[9] में कहा है—शत्रु और मित्र, मणि और पाषाण, सोना और मिट्टी इन सब पर राग-द्वेप न होना ही समता है।

जैनेन्द्र सिद्धात कोष[10] मे भी सामायिक (सयम-विशेष) एव एकत्व को समता कहा है। 'सम' उपसर्गपूर्वक 'तल' धातु मे टाप् प्रत्यय लगने पर समता शब्द बना है। स्व प्रत्यय विकल्प से भी लगाया जा सकता है। (सम+तल+टाप स्व वा)[11] समता के अन्य समानार्थी शब्द है—एकसापन, एकरूपता, समानता (एक जैसापन) बराबरी, निष्पक्षता (न्याय, समान व्यवहार करना), पूर्णता, सामान्यतया, आदि। समता को गीता[12] में याग कहा गया है।

समता के इस स्वरूप का विभिन्न अर्थो मे प्रयोग हुआ है। भारतीय सस्कृति के इतिहास पर यदि दृष्टिपात किया जाये तो यह स्पष्ट हो जाता है कि मानवीय सद्गुणो का धीरे-धीरे ह्रास-सा होता जाता है। सामान्यतया भारतीय जनजीवन मे हृदयहीन, गुणहीन एव कर्तव्यहीन रूप विषमता का जहर घुलता जा रहा है। व्यक्ति विशेष के दायरे से निकली इस विषमता से समूचा समाज, राष्ट्र एव विश्व भी अछूता नहीं बचा है। समता के दोना पहलुओ (आन्तरिक एव बाह्य) में मन, वचन एव काय की गहराइयो तक विषमता ने अपनी जड़े जमा ली हैं। विज्ञान की प्रगति जहाँ सर्वांगीण विकास एव निर्माण की द्योतक है, वहीं यह प्रगति उसके दुरुपयोग से विनाश एव महाविनाश का साधन बनती जा रही है।

समता के दो रूप है—दर्शन और व्यवहार।[13] 'मनसावाचाकर्मणा' स्वरूप समतापूर्ण जीवन के सचालन मे इन दोनों रूपों का विशेष महत्त्व है। दर्शन समता से हम समभाव चिन्तन-मनन या वैचारिक प्रवृत्ति को उद्घाटित करन की प्रेरणा मिलती है। इसी समता-मूलक चिन्तन या वैचारिक प्रवृत्ति का जब व्यावहारिक स्वरूप दे दिया जाता है, अथवा उसे आचरण मे ढाल दिया जाता है,

> वर्तमान युग की वैज्ञानिक सफलताओं के कारण विश्व आज बड़ी सीमा तक सिकुड़ गया है इस कारण केवल परस्पर निर्भरता ही नहीं बढी है, परस्पर प्रभावशीलता भी बढ़ी है। किसी एक भाग की समस्याओं अथवा घटनाओं से अन्य भाग प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इसलिये आज स्थानीय उपचारों और सीमित सुरक्षा-उपायों की बात बेमानी हो गई है। अब शाति के उपाय भी विश्व-स्तर पर ही किये जाने चाहिये। तब मार्ग केवल एक ही है—समता दर्शन को आस्था और व्यवहार का विषय बनाना। इस सत्य को विश्व समाज भली प्रकार समझ चुका है और इसकी प्राप्ति की ओर उसके कदम उठ भी चुके हैं। आवश्यकता है, ये कदम अधिक दृढ़ हों और अधिक त्वरित गति से बढ़ें।

तब वह व्यवहार समतापूर्ण कहा जाता है। समता के इन दो रूपो को अन्तर्दृष्टि (दर्शन) तथा बाह्यदृष्टि (व्यवहार) भी कहा गया है।

समता का क्षेत्र

समता मानव-मन के मूल में है इसलिए इसे मानव-जीवन एव मानव समाज का शाश्वत दर्शन कहा गया है। अत आध्यात्मिक, धार्मिक, आर्थिक सामाजिक या राजनीतिक आदि कोई भी क्षेत्र क्यो न हो, सभी का लक्ष्य समता है। इनमें व्याप्त कृत्रिम विषमताओ को समता रूप के सुदृढ एव स्वस्थ सयमपूर्ण नियमों द्वारा समाप्त किया जा सकता है।

समता मानव के आचरण के प्रत्येक चरण में होनी चाहिये तथा जो भी पक्ष, दृष्टिकोण या व्यवहार उससे सबधित हो उस में भी समता समागत होनी चाहिये। इसी दृष्टि से समता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक, धार्मिक एव वैचारिक आदि क्षेत्र माने गये है। इन सभी क्षेत्रो से मानव-जीवन का किसी न किसी तरह सम्बन्ध स्थापित है ही अत मनुष्य को हर सभव प्रयास करना चाहिए कि वह सभी क्षेत्रों मे समता-युक्त सम्बन्ध स्थापित कर सके।

समता दर्शन को अपने नवीन परिप्रेक्ष्य मे समझने के लिए आचार्य श्री नानेश[14] ने निम्न चार सोपान प्रस्तुत किए हैं

1 जीवन दर्शन

2 आत्म दर्शन

3 सिद्धात दर्शन

4 परमात्म दर्शन

उक्त चारो सोपानो के गहन चिन्तन एव अध्ययन से समता को दर्शन और व्यवहार, इन दोनों रूपों में प्रस्तुत किया जा सकता है। विषमता की साधना का सोपान हिसा एव समत्व की साधना का सोपान अहिसा है। अहिसा धर्म को पालने वाला मानव अपने जीवन में समता को अच्छी तरह उतार सकता है। समतामय जीवन मे सब जीव एक समान होते हैं। सब जीवों के प्रति उसका मैत्री भाव होता है। अत समता के प्रभाव से ही सिह का गाय के प्रति, साप का नेवले के प्रति तथा बिल्ली का चूहे के प्रति समभाव हो सकता है।

जातिवाद, वर्णवाद, रगभेद से सबधित विचारो में विषमता ही निहित रहती है। समतारूपी चेतन अस्त्र से इस विषमता को सहज ही समाप्त किया जा सकता है। समता के भाव को प्रकट करते हुए कबीर[15] ने कहा है कि 'निन्दक/आलोचक के प्रति द्वेष, वैर या विरोधी भाव न रख कर समतायोगी अपनी आत्मशुद्धि मे स्वय साधक बनता है।' इस उक्ति से स्पष्ट होता है कि समतायोगी वैरियो और बन्धुओं दोनो के प्रति समत्व भाव रखे। गीता मे भी कहा गया है कि 'समतायोगी, शत्रु और मित्र के प्रति सम रहे।'[16] समता धारक के हृदय म न तो मित्र के प्रति राग और न ही विरोधियो के प्रति द्वेष भाव होना चाहिए।

भगवद्गीता[17] का यह सदेश समतायोगी जनों के जीवन को श्रेष्ठतर बना देता है—

सुहृन्मित्रार्युदासीन मध्यस्थ-द्वेष्य बन्धुषु।
साधुष्वपि पापिसु समबुद्धिर्विशिष्यते।।

अर्थात् जो व्यक्ति सुहृत् (नि स्वार्थ हितैषी) मित्र, शत्रु, उदासीन (तटस्थ भाव), मध्यस्थ (दोनो पक्षों की भलाई चाहने वाला), द्वेषी और बन्धुजनों के प्रति तथा सज्जनों (साधुओ) एव पापियों के प्रति समबुद्धि रखता है वही श्रेष्ठ है।'

समता जातिवाद के दायरे से भी ऊपर शुद्ध भाव मे स्थित होती है। भगवान् महावीर क्षत्रिय थे, परन्तु उनके अनुयायियो में ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र आदि जाति के लोग भी सम्मिलित थे। हरिकेशी जैसे शूद्रकुलोत्पन्न उनके साधु-सघ म थे। चन्दनबाला जैसी नारी को न केवल उन्होंने दीक्षित किया वरन् साध्वी सघ का पूर्ण नेतृत्व भी सौंपा।[18]

समता सयोग और वियोग, दोनो परिस्थितियों में होती है। समतायोगी के लिए बुरी परिस्थितियो के सयोग और अच्छी (शुभ) परिस्थितियो के वियोग में भी समत्व रखना बहुत आवश्यक है। पाश्चात्य विद्वान् श्री ह्यूम परिस्थिति समभावी

के विषय मे कहते है— He is happy whose circumstances suit his temper but he is more excellent who can suit his temper to any circumstance

'वह व्यक्ति प्रसन्न रहता है, जिसकी परिस्थितियाँ उसकी मानसिक स्थिति के अनुकूल हों किन्तु वह व्यक्ति और अधिक प्रसन्न एव उत्कृष्ट है, जो अपनी मन स्थिति को परिस्थिति के अनुकूल बना लेता है।'[19]

अत समतायोगी को विश्व की शाति-सरक्षणा के सदर्भ मे राग और उसके परिवार (मोह, आसक्ति, तृष्णा, पक्षपात, स्वार्थ, अहकार आदि) तथा द्वेष और उसके परिवार (घृणा, द्रोह, ईर्ष्या, छल, धोखेबाजी, निन्दा, अमान, वैर-विरोध, असहिष्णुता, शत्रुता आदि) का त्याग अवश्य करना चाहिए क्योकि ये सब साधक को कर्मबन्धनों में जकड़ लेते हैं।

विश्व-समस्याएँ आधुनिक परिप्रेक्ष्य

भौतिक सम्पन्नता एव विलासी जीवन से मानव के उद्विग्न एव उत्कण्ठित मन को सुख, शाति एव सुरक्षा का वातावरण प्राप्त नहीं हो सका है। सम्पत्ति एव सत्ता की प्राप्ति मानव का मुख्य ध्येय बनकर रह गये हैं। पूजीवादी व्यवस्था को प्रोत्साहन, सामाजिक समस्याओ (जैसे—जातिवाद, वर्णभेद एव रगभेद) की वृद्धि, भाषागत असमानता, नैतिक एव आध्यात्मिक मूल्यो एव सुसस्कारों का पतन, अहिसा, अपरिग्रह, सयम और त्याग स्वरूप समता के अपर रूपो का ह्रास आदि, व्यक्ति विशेष से विश्व स्तर तक की कुछ प्रमुख समस्याएँ हैं जिनका समता दर्शन के सरल एव सहज प्रयोग द्वारा समाधान किया जा सकता है। अत इसके लिए हमे समता को जीवन के दर्शन (आन्तरिक) एव व्यवहार (बाह्य) दोनो रूपा मे सर्वोच्च स्थान दना होगा।

समता दर्शन और विश्वशान्ति

धर्म निरपेक्षता एव सर्वधर्म समन्वय, सभी समाजों के बन्धुओ का सम्मान, सभी प्रकार के वर्ग वर्ण वेशभषा एव सस्कृति विषयक स्वतत्रता की आचरणगत

शुद्धता का मूल्य आकना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। त्रिरत्न एव सयम से सदासद् का अतर समझते हुए गृहस्थ धर्म का पालन करना सामाजिक समता का ही रूप है। सामाजिक विषमता का सबसे बड़ा कारण जातिवाद है। इसी आधार पर हमे समाज विभिन्न वर्गो मे बटा हुआ दिखाई देता है। महावीर ने 'एक्का मणुस्सजाई'—मानव जाति को एक ही माना है। सामाजिक समता की सार्थक्ता तभी है जब मानव उसके पालन में उसे व्यक्तिगत दायरे में न बाधे तथा उसकी सीमा समाज, राष्ट्र व विश्व तक बढ़ा दे।

वर्तमान सामाजिक जीवन भय एव उत्कण्ठा से भरा हुआ है। समता के अभाव में अनैतिकता को बढ़ावा एव सबलों द्वारा निर्बलो का शोषण अधिक हुआ है। समता क साथ-साथ उसके अन्य गूढ सिद्धातो जैसे—सयम, त्याग, अपरिग्रह, अहिसा आदि का पालन वर्तमान सामाजिक जीवन मे आवश्यक है। नारी को शोषण एव बधनयुक्त जीवन से मुक्त कराने के लिए समता की साधना ही एकमात्र उपाय है।

समता को जिस अन्य क्षेत्र मे विस्तृत रूप मे अपनाया जाना चाहिए वह है—आर्थिक क्षेत्र। धन या अर्थ, विषमता का प्रमुख कारण है। चूकि सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार 'अर्थ' है इसलिए अर्थ का अधिकाधिक सचय ममत्व रूप आसक्ति को जन्म देता है और यही आसक्ति समता पर प्रहार करक उसे समाप्त कर देती है। अर्थ-मूल्यो पर आधारित वर्तमान जीवनचर्या को जब तक हम श्रम एव नैतिक मूल्यों पर नहीं तौलेंगे, तब तक समतामूलक समाज की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती। 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की धारणा को चरितार्थ करने के लिए वर्तमान सदर्भ मे नये नैतिक मूल्यों को व्यवहार मे लाना होगा।

काल मार्क्स समूचे अध्ययन एव चिन्तन के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि विषमता और शोषण पूजीवादी व्यवस्था की देन है। अत विषमता क स्थान पर समता (समानता) की स्थापना करनी होगी। अपनी जीवनचर्या अर्थ पर नहीं, वरन आध्यात्मिकता की पृष्ठभूमि पर टिकी होनी चाहिए। सदाचार एव

अपरिग्रह विषयक जीवनमूल्यों की सहायता से समतामूलक नये समाज की स्थापना की जा सके।

समतायुक्त शासन-व्यवस्था साम्यवादी साम्राज्य का ही एक रूप है, जबकि तानाशाही एव कुलीनशाही राज-व्यवस्था कभी भी समतापरक नहीं हो सकती। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ प्लेटो द्वारा प्रतिपादित आदर्श राज्य के स्वरूप—जो न्याय दे सके—का आधार समता पर ही आधारित बताया गया है। अरस्तू ने राज्यों में होने वाली क्रातियों का मूल कारण विषमता बताया है। यह विषमता, असमानता की मानसिक दशा से उत्पन्न होती है। आज समाज का अधिकारी-नौकर, शासक-शासित, देशी-परदेशी, शोषक-शोषित आदि वर्गो में विभाजन स्वय में एक समस्या बन गया है।

धर्म एव आध्यात्मिक साधना के क्षेत्र में समता को आदर्श एव केन्द्र बिन्दु माना गया है। 'समयाधम्ममुदाहरेमुणी' मुनियों ने समता को ही धर्म कहा है। व्यावहारिक आदर्शवादियो का सारा चिन्तन समता पर ही आधारित है। आत्म-दृष्टि एव समता की भावना से व्यक्ति के राग-द्वेष की सीमाएँ टूटनी आरभ होती हैं। धर्म द्वारा अहिसा, सयम, त्याग, अपरिग्रह आदि प्रवृत्तियो के विकास से समाज के हर एक वर्ग एव जाति के लोगो के मध्य परस्पर सद्भाव एव प्रेम उत्पन्न होता है।

मनुष्य का हृदय मूलत भावनाप्रधान है। शोषण की इस वैषम्यमूलक व्यवस्था मे धनिक वर्ग और भी धनी एव गरीब और भी गरीब होता जाता है। ऐसे मे व्यक्ति अपनी भावनाशील प्रवृत्ति का उपयोग करते हुए मानसिक कुण्ठा से ग्रस्त हो जाता है। वैचारिक असमानता के कारण परिवार के स्तर से लेकर राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक आन्तरिक कलह व गृहयुद्ध की स्थिति बनी हुई है। एक देश दूसरे देश के प्रति जो अनैतिक नीतियो सहित राजनैतिक चाल चलते हैं वे अत्यत घातक हैं। शील, समभाव, आचार, विचार एव व्यवहार मे भिन्नता होने के कारण मनुष्य अपने साथ रहने वाले भाइयों से ही जाति, धर्म, सम्प्रदाय, प्रान्त या राष्ट्र के नाम पर तिरस्कृत एव घृणा का पात्र बनता आया है। वैचारिक समता के अभाव मे मानव छोटी-छोटी बातों पर आपसी मनमुटाव एव टकराव कर लेता है। अत हमे राष्ट्र, जाति, धर्म और सम्प्रदाय मे मैत्रीपूर्ण व्यवहार को बढ़ावा देकर यह प्रमाणित करना चाहिए कि समता रूप धर्म ही राग और द्वेष को क्षीण कर आपसी प्रेम एव सद्भावना की वृद्धि करता है।

वैचारिक असमानता मिटाने के लिए यह आवश्यक है कि आचार एव विचार में समता हो। 'समता दर्शन आधुनिक परिप्रेक्ष्य मे' नामक अपने लेख मे आचार्य श्री नानेश ने कहा है कि—समदृष्टि एव समभाव के साथ जब एक बहुत बड़े समूह का चिन्तन एव आचरण होगा तब समता का व्यापक रूप प्रस्फुटित होगा।[20] आचार-विचार की समता के मूल में उन्होने पाच महाव्रतो की भूमिका का भी उल्लेख किया है।

समता के उक्त सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एव वैचारिक क्षेत्रो के अतिरिक्त जीवन में और भी ऐसे पहलू हैं, जिनमे समता प्रासगिक है। दैनिक जीवन के विभिन्न पहलुओं, जैसे—भाषा, व्यवहार, चारित्र, आत्मशुद्धि, परिग्रह, सयोग-वियोग, सुख-दु ख, विश्व-मैत्री-भावना तथा परस्पर विचारो आदि में समता का पालन आवश्यक है। विश्वशाति की दृष्टि से यदि इन सभी पहलुओ को समतामय बना दिया जाये, तो आज जो भ्रष्टाचार, गरीब-अमीर का अतर, विचारों में असमानता एव तनाव और आदिम व्यवस्था की प्रवृत्ति की पुनरावृत्ति होती दिखाई दे रही है, उसे समाप्त किया जा सकता है।

वर्तमान युग की वैज्ञानिक सफलताओ के कारण विश्व आज बड़ी सीमा तक सिकुड़ गया है, एक वृहत् परिवार जैसा बन गया है। इस कारण केवल परस्पर निर्भरता ही नहीं बढ़ी है, परस्पर प्रभावशीलता भी बढ़ी है। किसी एक भाग की समस्याओ अथवा घटनाओ से अन्य भाग प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। इसलिए आज स्थानीय उपचारो और सीमित-सुरक्षा उपायों की बात बेमानी हो गई है। अब शाति के प्रयास भी विश्व-स्तर पर किये जाने चाहिये। यहीं समता दर्शन के विश्वव्यापी प्रचार-प्रसार की आवश्यकता की बात समझी जा सकती है। सभी की सुरक्षा, सभी की शाति, सभी के सतोष और सभी क विकास मे ही राष्ट्र,

समाज और व्यक्ति की शाति, सुरक्षा, सतोष और विकास निहित है। इसका विलाम भी इतना ही सच है क्याकि किसी एक इकाई का विचलन वैश्विक अशाति का कारण वन सकता है। तव मार्ग केवल एक ही है—समता दर्शन को आस्था ओर व्यवहार का विपय वनाना। इस सत्य को विश्व-समाज भली प्रकार समझ चुका है और इसकी प्राप्ति की ओर उसके कदम उठ भी चुके हैं—आवश्यकता है य कदम अधिक दृढ हा और अधिक त्वरित गति से वढें। ◆

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 सम्ता दर्शन और व्यवहार–आचार्य श्री नानेश पृ 27
(श्री अखिल भारतवर्षीय जैन सघ वीकानेर 1985)

2 प्राकृत-हिन्दी कोश (पाइयसद्दमहण्णव का सक्षिप्त रूप)
सम्पा –डॉ के आर चन्द्रा, पृ 811 (प्राकृत जैन विद्या विकास फण्ड अहमदावाद 1987)

3 आचारागसूत्र 1/8/3/31

4 उत्तराध्ययनसूत्र 25/32

5 चारित्त खलु धम्मो-धम्मो जो सो समोत्ति णिदिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणा हु समो।।
—प्रवचनसार 1/7

6 (क) पचास्तिकाय-107
(ख) नियमसार-109
(ग) वोधपाहुड-46
(घ) मोक्षपाहुड-72

7 भगवती आराधना (विजयोदया टीका) गाथा 76 सोलपुर

8 मूलाचार (वृत्ति) 1-22

9 सत्तुमित्त-मणिपाहाणि-सुवण्णमट्टियासु
रागद्देसाभावो समदाणाम-11 धवला 8/3 41/84/1

10 जिनेन्द्रवर्णी, पृ 327 भारतीय ज्ञानपीठ 1985

11 सस्कृत-हिन्दी कोश वी एस आप्टे पृ 1073

12 समत्व योगमुच्यते भगवद्गीता-2/48

13 समता दर्शन और व्यवहार आचार्य श्री नानेश पृ 32

14 समता दर्शन और व्यवहार आचार्य श्री नानेश पृ 65

15 निन्दक नियरे राखिए आगन कुटी छवाय।
विन पानी सावुन विना निर्मल करे सुभाय।।

16 भगवद्गीता 12/18

17 भगवद्गीता 6/18

18 भगवान महावीर आधुनिक सदर्भ में' नामक पुस्तक में सकलित डॉ (श्रीमती) शान्ता मानावत का विश्वशान्ति के सदर्भ में भगवान महावीर का सन्देश' लेख पृ 133

19 समतायोग—पू रतनमुनि, पृ 149-150

20 भगवान महावीर-आधुनिक सन्दर्भ में' सम्पा डॉ नरेन्द्र भानावत, पृ 42

प्रवचन मूल रूप मे आगमो-शास्त्रो के ज्ञान-प्रकाश मे अपनी आत्म-साधना के धरातल पर निसृत श्रेष्ठ एव विशिष्ट वचन होता है।

—आचार्य श्री नानेश

डॉ उदयचन्द जैन

आचार्य नानेश और उनका समता-चिन्तन

भारतीय सत परपरा मे अनेक सत हुए हैं जिन्होने अपने-अपने समय पर समन्वय, शान्ति, अहिसा, प्राणिमात्र के प्रति करुणा आदि के आदर्शो का प्रतिपादन किया है। सम्पूर्ण सत्ता के रहस्योद्घाटन में उनकी अहम भूमिका रही है। उन्होने आत्मा से परमात्मा के स्वरूप का प्रतिपादन किया। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी के माध्यम से बौद्धिक जगत् को नई दृष्टि प्रदान की और अध्यात्म साधना के मार्ग पर चलकर अपने विचारो और आचार-धर्म से विश्व के सामने आदर्श प्रस्तुत किये। उन्होने इस ओर भी सकेत किया कि प्राणिमात्र का लक्ष्य एक है, सभी जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, सभी सुख चाहते हैं, सभी को अपना जीवन प्रिय है। दु ख प्रतिकूल है एव वध भी अप्रिय है—

सव्वे जीवा वि इच्छति जीविउ न मरिज्जिउ।
सव्वे पाणा पियाउया सुहसाया दुक्खपडिकूला अप्पियवहा।।

अर्थात् प्राणिमात्र जीने की कामना करता है। यही दृष्टि मुक्ति और मोक्ष की बनती है। जैन दर्शन के अनुचिन्तको ने इसे सर्वोपरि मानकर साधना की और उसी के अनुसार जीवन और जगत् के लिये नई दिशा दी।

आचार्य श्री नानेश इसी परम्परा की एक विरल विभूति थे। उन्होंने महावीर के महासन्देश को जीवन मे उतारा, उसका साक्षात्कार किया, फिर विषमतावादी दृष्टि के विरुद्ध समभाव के दर्शन का उपदेश दिया। व्यवहार मे उसकी उपादेयता को सिद्ध करने के लिए उन्होंने जीवन की कसौटी पर उसे कसा। परिवार की सहृदयता को बनाये रखने के लिए समन्वय, स्नेह और सद्भाव की स्थापना का उपदेश दिया। अध्यात्म के क्षेत्र मे प्रवेश के लिए महावीर की समीक्षा पद्धति को समझा और फिर उसी

क अनुसार अहिसा, सत्य आदि का विवेचन किया। इस विवचन में भी उन्होंने समता का विशप महत्त्व दिया और सूत्रकृताग की अमूल्य विधि सामने रखकर उन्होन कहा कि भव्य आत्मा का चाहिए कि वह समस्त ससार के सभी जीवो को समतानुप्रेक्षी बनकर देख। समभाव से देख और समभाव से ही उसके महत्त्व को प्रतिपादित करें जिसस वह किसी को प्रिय और किसी को अप्रिय न लगे। कहा है—

सव्व जग तु समयाणुपेही।
पियमप्पिय कस्सइ नो करेज्जा।। सूत्र 1/10/7

अर्थात् विपमता की दूरियाँ कम करने के लिए अच्छा और बुरा न कहे, न करें, अपितु समभाव की दृष्टि बनाये रखें यही वास्तविक सत्य है और यही समता का धर्म है।

आचार्य नानेश ने वर्तमान युग की विषम परिस्थितियों के सदर्भ म शत्रु-मित्र का भेद समाप्त करने का उपदेश दिया। उन्होने इसकी शाखाओं को पनपने से पहले ही हटाने पर वल दिया। इसके लिए उन्हाने ज्ञान, दर्शन और चारित्र की महिमा का ज्ञान कराया। दर्शन की दृष्टि से विश्वास जगाया एव समदर्शी वनने की वात कही। ज्ञान से तत्त्ववोध पर वल दिया और उसमें भी ग्रन्थिया का खालन के लिए सम्यक्त्व पर विशप वल दिया। उन्होंने श्रावकत्व और साधुत्व की पहिचान के लिए व्रतों पर वल दिया अर्थात् श्रावकों के लिए उन वारह व्रता की वात कही जिनका पालन करने वाला श्रावक अपने जीवन को सयमित करता है, सम्यक् चिन्तन और सम्यक् चरित्र के निर्माण के प्रति उन्मुख हाता है और सम्यक् रूप से जीवन-निर्वाह की स्थितियों को सुनिश्चित करता है।

> आचार्य नानेश आत्मा के परमात्मदर्शन पर वल देते हैं। वे गुणों की पहिचान को महत्त्व देते हुए आत्मसाधना की दिशा निर्धारित करने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। वे कहते हैं कि आत्मा और परमात्मा का अंतर ही विषमता है। यह स्वरूप की विषनता है। अंतर मिटता है तो स्वरूप समतामय हो जाता है। समस्त मैल कट जाता है और निर्मलता अपनी सम्पूर्णता में प्रकट हो जाती है। यह आत्मा की परम स्थिति है जो उसे परमात्मा वनाती है।

साधुत्व क लिए महाव्रत, पच समिति एव आवश्यक कर्मो की पालना पर उन्होने वल दिया। श्रमण की आचार समता के लिए व श्रमणो के गुण, मूलगुण या उत्तरगुण-निर्ममत्व भाव की ओर ले जाते हैं। आचरण की उज्ज्वलता चिन्तनमय समभाव होने पर आती है। अत श्रमणचर्या के आदर्श म चारित्र की प्रधानता को भी उन्होने आवश्यक वताया है। चारित्र से अर्थात् आचार की मर्यादा से स्थाई स्थिति बनती है। यही जीवन को प्रगतिशील एव उन्नायक बनाती है। इससे मानवीय, वैचारिक और सामाजिक विपमताओ पर विराम लगने की स्थिति बनती है और इसी से जीवन की साधना निर्मल रूप धारण करती है।

आचार्य नानेश आत्मा के परमात्म दर्शन पर वल दते हैं। वे गुणों की पहिचान को महत्त्व देते हुए आत्मसाधना की दिशा निर्धारित करने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हैं। वे कहते हैं कि आत्मा एव परमात्मा का अन्तर ही है—विषमता। यह स्वरूप की विपमता होती है। अन्तर मिटता है तव स्वरूप समतामय हो जाता है। समस्त मैल कट जाता है और निर्मलता अपनी सम्पूर्णता में प्रकट हो जाती है। यह आत्मा की परम स्थिति है, जो उसे परमात्मा बनाती है।

स्वरूप की दृष्टि से सभी आत्माएँ एक हैं, समान हैं, सभी को समता प्रिय है। इसलिए जो व्यक्ति एक आत्म स्वरूप को जान लेता है वह सव कुछ जान लेता है और जो सव कुछ जान लेता है वह एक को जान लेता है। आचार्य श्री नानेश ने जीवन के समस्त पहलुओं पर चिन्तन किया तथापि आत्म-नियन्त्रण करने के लिए उन्होने दशवैकालिक सूत्र के प्रथम सूत्र पर विशप वल दिया—

'धम्मो मगलमुक्किट्ठ अहिसा सजमा तवो।'

अर्थात अहिसा सयमी का जीवन है। सयम और तप उस आत्म-साधना स मनुष्य के आराधक कारण हैं। इससे उत्कृष्ट मगल भावना उत्पन्न होती है

जो स्वार्थ से हटाकर परमार्थ की ओर ले जाती है। यही आत्म-नियत्रण की रेखा जब जीवन मे उतरती है तब विकारो का शमन होता है और समत्व की भावना फैलती है।

आचार्य श्री नानेश का स्वय का जीवन समता-साधना का आदर्श था। यही कारण था कि वे श्रद्धा के केन्द्र बने और बने रहेगे। समता के उनके चितन को आगमों के परिप्रेक्ष्य मे आज प्रचारित करने की महती आवश्यकता है। इस प्रचार

क परिणामस्वरूप लोगों में जो चेतना जाग्रत होगी उससे जहाँ व्यक्ति के चरित्र का रिष्कार होगा वहीं सामाजिक-आध्यात्मिक क्रान्ति की भी एक लहर चलेगी जो वेषमतामूलक दृष्टि का परिमार्जन कर समता समाज की स्थापना में सहायक नेगी। यह सस्कार क्रान्ति की स्थिति होगी जो भौतिकवादी चितन से प्रसूत अपसस्कृति की विभीषिका से ससार का त्राण कर सकेगी।

◆

व्यक्ति अपने जीवन पर, अपने यौवन पर, अपनी शक्ति और सम्पन्नता पर एव अपने शरीर पर अभिमान करता है—मैं ऐसा कर रहा हूँ, मेरे अन्दर ऐसी शक्ति आ गई है, इस प्रकार अहवृत्ति जब आत्मा पर छा जाती है तब वह आत्मा अपने विकास को अवरूद्ध कर डालती है।

—आचार्य श्री नानेश

साध्वी विपुलाश्री

आत्मसमीक्षण . आत्मशुद्धि का मार्ग

आनन्द की अनन्त गहराइयो मे गोते लगान वाले अपनी यात्रा को आखिरी मजिल की ओर गतिमान बना देते हैं। वे उन गहरी पर्तों में खो जाते हैं जिनमे तेरे मेरे का कोई भेद नहीं होता[1], केवल स्वय की अनुभूति के आलोक मे ज्ञाता-द्रष्टा बनकर नव तत्त्वो को निहारते हैं और रमण करते हैं आत्म-तत्त्व मे। आत्म तत्त्व मे रमण करने से शाश्वत सुख की उपलब्धि होती है।[2] यह उपलब्धि विकटतम घाटियों को पार करते हुए आत्मसमीक्षण करने वाली भव्य आत्मा को ही होती है। आत्मसमीक्षण ही आत्मशुद्धि का सम्यक् मार्ग है।[3] जितने भी तीर्थंकर हुए है उन्होंने आत्मसमीक्षण से ही आत्मज्ञान को उपलब्ध किया था। दीक्षा से पूर्व तीर्थंकर देव तीन ज्ञानयुक्त रहते हैं।[4] दीक्षा लेते ही उन्हें चतुर्थ मन पर्याय ज्ञान हो जाता है।[5] चार ज्ञान होने पर भी परिपूर्ण आत्म स्वरूप प्रकट नहीं होता[6] अत सम्पूर्ण आत्म ज्ञान को उपलब्ध करने के लिए वे छद्मस्थावस्था मे प्राय मौन रहते हैं[7] और मौन रहकर निरन्तर आत्मसमीक्षण करते हैं।

आचाराग सूत्र मे जहाँ प्रभु महावीर की सयमचर्या का उल्लेख है वहाँ उनकी त्राटक ध्यानचर्या का भी सुन्दर वर्णन मिलता है। वहाँ उल्लेख किया गया है कि प्रभु महावीर किसी भी पौद्गलिक पदार्थ पर दृष्टि टिकाकर घण्टो अपलक नेत्रो से उसे निहारते थे।[8] तात्पर्य यह है कि पुद्गल पर घण्टो दृष्टि लगाकर स्वय की आत्मा का अवलोकन करते थे, अपने आपको देखने का स्तुत्य प्रयास करते थे। दूसरो को देखना बहुत सरल है किन्तु स्वय को देखना बड़ा कठिन है।[9] अनादिकाल से दूसरों को देख रहे है लेकिन एक बार भी अपने को नहीं देखा। एक बार भी स्वय को देख ले तो फिर ससार भ्रमण नहीं हो। प्रभु महावीर 12½ वर्षों तक अपने आपको देखते रहे।[10] चौमासी, छ मासी, मासखमण, अर्धमासखमण की तपश्चर्या करके मात्र आत्मसमीक्षण ही करते रहे।[11] इसी आत्मसमीक्षण द्वारा उन्होने आत्मशुद्धि की और वैशाख शुक्ला दशमी के दिन सुव्रत दिवस मुहूर्त मे उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के
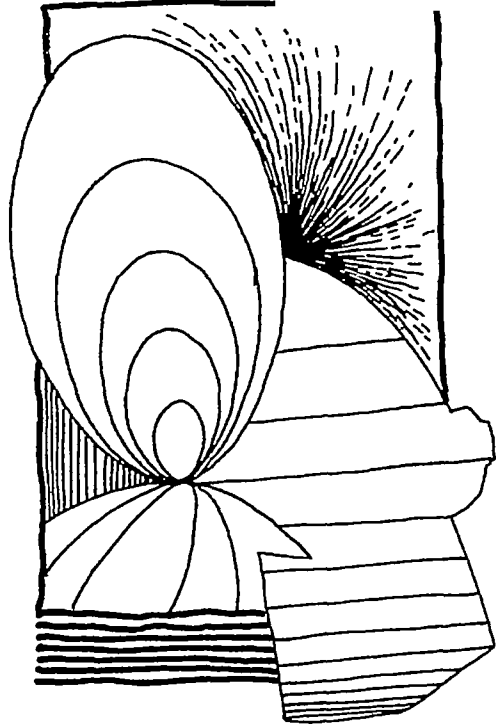
साथ चन्द्रमा का योग आने पर चतुर्थ प्रहर में जृभिका ग्राम के बाहर ऋजुबालिका नदी के तट पर श्यामाक गाथापति के क्षेत्र में शाल वृक्ष के नीचे गोदूह आसन से आतापना लेते हुए केवल ज्ञान प्राप्त किया।[12]

सभी भव्य आत्माएँ इसी आत्मसमीक्षण से आत्मशुद्धि का पथ प्रशस्त करती हैं। आज के इस दुषमकाल में[13] आत्मसमीक्षण के उस मार्ग पर कैसे गमन किया जाए यह जटिल समस्या है। ससार मे रहते हुए अथवा सयम मे रहते हुए, तनावो से सघर्षो से कैसे मुक्ति मिल, कैसे आत्मसमीक्षण करें, यह एक गम्भीर प्रश्न था। समताविभूति, समीक्षणध्यान योगी आचार्य श्री नानेश के सामने भी यह प्रश्न उपस्थित हुआ तब उन्होने आत्मसमीक्षण से आत्मशुद्धि तक की यात्रा का हृदयस्पर्शी विश्लेषण कर भव्य आत्माओं के लिए पावन पथ का निर्देश किया। उन्होने समीक्षण का जिस तरह विश्लेषण किया है उस पर किञ्चित विस्तार से विचार आवश्यक है।

समीक्षण आचार्य श्री नानेश की दृष्टि मे—सम्यक् रीति से समतापूर्वक अपनी वृत्तियो को देखना समीक्षण है। समीक्षण शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ईक्ष प्रेसणे धातु से बना है जिसका अर्थ है सम्यक् रीति से, समता पूर्वक देखना, निरीक्षण करना। इस समीक्षण को अपनाने के लिए सर्वप्रथम चित्त वृत्तियो का निरीक्षण करे, निरीक्षण के पश्चात् यह चिन्तन करें कि कौनसी वृत्तियाँ अशुभ है और कौनसी शुभ। निष्पक्ष रूप से अशुभ को अशुभ स्वीकार करने पर भी साधना बलवती बनती है। जब अशुभ, अशुभ दिखने लग जाये तब दृढ सकल्पपूर्वक अशुभ को शुभ मे बदलने का प्रयास ही समीक्षण की भूमिका है।[14]

> आत्मतत्त्व में रमण करने से शाश्वत सुख की उपलब्धि होती है। यह उपलब्धि विकटतम घाटियों को पार करते हुए आत्मसमीक्षण करने वाली भव्य आत्मा को ही होती है। आत्मसमीक्षण ही आत्मशुद्धि का सम्यक् मार्ग है। जितने भी तीर्थंकर हुए हैं उन्होंने आत्मसमीक्षण से ही आत्मज्ञान को उपलब्ध किया था।

समीक्षण का द्वितीय चरण—जब साधक शुभता की ओर चरण गतिमान करे तो अपना लक्ष्य निर्धारित कर ले कि उसे कैसा बनना है। उसे आदर्श इन्द्रियारामी नहीं आत्मारामी होना चाहिए।[15] जो-जो भव्य आत्माएँ अपना सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करके कृतकृत्य बन गयीं, अधकार को मिटाकर प्रकाशमयी बन गयीं, वही आदर्श यदि साधक का रहे तो वह एक न एक दिन समस्त दुर्गुणो से मुक्त बन जायेगा।[16]

तृतीय चरण—आदर्श स्थापित करने के पश्चात् अपने व्यवहार मे वैसा ही बनने का प्रयास ही समीक्षण का तृतीय चरण है। व्यवहार मे विषमता पैदा करने वाले कारणो के उपस्थित होने पर भी समभाव मे रमण करना अब इष्ट होगा। स्व-पर कल्याण की भावना प्रबल बन जायेगी। अपनी दिनचर्या का निर्धारण करके आत्मालोचन पूर्वक उसका निरन्तर परिमार्जन ही अभीष्ट होगा। इसके लिए तल्लीनता की आवश्यकता होगी। बिना एकाग्रता के यह प्रक्रिया साध नहीं पायेगा। जो कार्य कर रहा है उसी मे उपयोग रखने से एकाग्रता सहज सध जाती है। इसी प्रक्रिया को साधने के लिए शास्त्रों में साधक को निर्देश दिया गया है कि जो कार्य कर रहा है उस समय वही चिन्तन करे। यथागमन करते हुए केवल ईर्यावृत्ति में ध्यान रखे।[17] इस प्रकार प्रत्येक क्रिया का सूक्ष्मतापूर्वक अवलोकन करने से वृत्तियो के परिमार्जन की प्रक्रिया बन जायेगी। कदाचित् ऐसा करते हुए थकान अनुभव होने लग जाये तो किञ्चित् विश्रान्ति लेकर धैर्यपूर्वक पुन इस दिशा मे कदम रखा जा सकता है।

साधना करते समय अनादिकाल से चली आ रही दूषित वृत्तियाँ भी अपना प्रभाव जमाने का भरसक प्रयास करेगी लेकिन उस समय साधक उन दूषित वृत्तियों का अपनी आत्म शक्ति से शोधन करके उनका परिमार्जन करेगा तो आगे की दिशा में कदम बढ़ेगा।[18] साधना करते हुए दूषित वृत्तियो का शोधन निरहकारी वृत्ति से सभव है। सगमदेव ने प्रभु महावीर को एक ही रात्रि में 20 उपसर्ग दिये।[19] निरतर छ मास तक उपसर्ग देता रहा और जब वह जाने लगा तब निरहकारी वृत्ति का परिचय देते हुए प्रभु ने कहा—सगम! मेरे कारण तेरा कितना ससार बढ़ गया है मुझे इस बात का

दु ख है।[20] ऐसी निरहकारी वृत्ति जाग्रत होने से ही साधना का हर क्षण विजयी बन सकता है। निरहकारी व्यक्ति मे आत्म शक्तियाँ जाग्रत रहती हैं तथापि उन सिद्धियो का प्रयोग यशलिप्सा हेतु कदापि नहीं करता, वह तो निरतर मनोमालिन्य को धोने का प्रयास करता है। ऐसे प्रयास में वीतराग देवों की वाणी ही परम सहायक होती है। जब उसकी इस वाणी पर प्रगाढ श्रद्धा बनती हुई चली जाती है तभी वह सम्यक् ज्ञान ओर सम्यक् आचरण के प्रति उत्सुक बनता है।[21] इसके पश्चात् ही सत्सकल्प जागता है कि विभाव पर विजय प्राप्त कर स्वभाव में रमण करना है। बस यही सकल्प विभाव को प्रभावहीन बनाता चला जाता है।

विभाव को प्रभावहीन बनाने और आत्मसमीक्षण को सफल बनाने वाली दो भुजाएँ है—एक एकाग्रता, दूसरी समता। इन दोनों भुजाओं का सहयोग लेकर आत्मसमर में कूद पड़ने वाला योद्धा विजयी बनता है।[22] वह दूषित चित्त-वृत्तियों को पछाड़कर मोक्ष के राजमार्ग पर कदम रख देता है। इस मार्ग पर आगे बढते समय अनेक प्रकार के रग-बिरगे चमचमाते दृश्य दिखाई देते हैं। साधक इन सबके चक्कर में रिद्धियों और सिद्धियों के प्रलोभन मे फँस जाये तो प्रगति का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। अपन आपको उच्च मानने के चक्कर में अह की ग्रथि से ग्रसित होकर जिन कल्पीवत् अपने आगे का मार्ग अवरुद्ध कर लेते हैं। इसलिए सावधानी रखने की आवश्यकता है कि मनोवृत्तियो को अनुशासन में रखकर एकाग्रता और दृढतापूर्वक बिना किसी प्रलोभन में फसे निरतर आगे बढते रहा जाये।

एकाग्रता को साधने के लिए ध्वनि-उच्चारण भी अत्यन्त उपयोगी बन सकता है। ध्वनि का उच्चारण पहले तीव्र फिर मध्यम और मन्द होता है। इसक बाद मानस और तत्पश्चात् भावप्रधान अर्थ स्वर की स्थिति में ध्वनि परिणत हो जानी चाहिए। आत्म समीक्षण मे इसी बात को बतलाते हुए कहा गया है कि णमो अ रि ह ता ण इस तार स्वर का उच्चारण ग्यारह बार, फिर णमो अ रि ह ता ण इस मध्यम स्वर का उच्चारण ग्यारह बार, तदनन्तर णमो अरिहताण इस जघन्य स्वर का उच्चारण ग्यारह बार करना चाहिए। तत्पश्चात् कर्णगोचर न हो ऐसे मानस स्वर से ग्यारह बार जाप करना, फिर मत्र के अर्थ का भावो में ही उच्चारण करना चाहिए। इसी प्रकार प्रयोग करने से एकावधानता सधती है। क्योकि इस प्रक्रिया मे पहले तार स्वर से जब उच्चारण किया जाता है तब सभी दिशाओं मे ध्वनि तरगे फैल जाती है। यह ध्वनि अन्तरग को प्रभावित करती है। मानस स्वर में यह ध्वनि मन को प्रभावित करने वाल क्रिया केन्द्रों, ज्ञान केन्द्रो को प्रभावित करती है।[23] भाव ध्वनि का सूक्ष्मतम प्रकम्पन स्थूल केन्द्र के मानस तत्र की सूक्ष्म परिधि के पास सूक्ष्म तथा बहुरगी केन्द्रों को प्रभावित करता हुआ, सूक्ष्म केन्द्र के अग्रिम मोर्चे तक पहुँचने की शक्ति को प्राप्त करने में सक्षम बन जाता है। इसके माध्यम से सूक्ष्म ग्रथियों को सुलझाने में साधक प्रवीण बन जाता है। कदाचित यह प्रक्रिया कठिन लगे तो श्वास प्रक्रिया के द्वारा भी समीक्षण ध्यान की साधना साधी जाये। इसमें शरीर को शिथिल करके श्वास समीक्षण करना चाहिए कि श्वास किसमे से आ रहा है किसमे जा रहा है। यदि दाहिने रध्र में से श्वास का आवागमन हो रहा हो तो समझिए पिगला नाड़ी सक्रिय है।[24] जब तक एक एक स्वर सक्रिय रहे तो मानना चाहिए कि राग द्वेष की परिणति चल रही है क्योकि दाया स्वर राग का और बाया स्वर द्वेष का प्रतिनिधित्व करता है। जब दोनो स्वरो की गति समान रूप में हो तब सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय बनती है। इससे समता की अवस्था बनती है।[25]

सुषुम्ना के सक्रिय बनने के पश्चात् शक्ति केन्द्र, आनन्द केन्द्र, शुद्धि केन्द्र और ज्ञान केन्द्र को सचालित करने की योग्यता प्राप्त होती है और इन केन्द्रो से सम्बन्धित ग्रन्थियाँ रसो को प्रवाहित करती हैं इससे समीक्षणध्यान की पूर्व भूमिका सध जाती है। इन सबको साधने के साथ-साथ शरीर को साधना भी आवश्यक है। बाह्य शरीर को साधे बिना भीतरी तत्र को साधना मुश्किल है। अत शरीर के अन्तरग तक पहुँच कर फिर आत्मा के प्रवेशद्वार तक पहुँचा जा सकता है। श्वास प्रणाली से ही यह सारी विधि समव है। श्वास की विकृति से शरीर अस्वस्थ बनता है। अत श्वास को सम्यक् बनाकर पहले शरीर को स्वस्थ बनाना चाहिए।[26]

श्वास भीतरी जीवन की गतिविधियो को बताने वाला मापक यत्र है। श्वास के द्वारा व्यक्ति चाहे तो भीतर में मलिनता भर सकता है, चाहे तो श्वास के द्वारा भीतर की मलिनता को विसर्जित कर सकता है। इसी से वह काम, क्रोध आदि की दुर्गध मिटाकर समता की सुन्दर धारा में स्वय को निमज्जित कर सकता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहे तो साधक अपने जीवन को समीक्षण द्वारा शुद्धि के पथ पर ले जाता है।

इस अनादिकाल से चली आ रही विकृति को दूर करने के लिए दृढ सकल्प-शक्ति का जाग्रत रहना निरन्तर आवश्यक है। सकल्प इतना दृढ होना चाहिए कि किसी भी परिस्थिति मे डोलायमान नहीं बने। यह सकल्प तभी स्थायित्व प्राप्त कर सकता है जब प्रत्येक कार्य और प्रत्येक परिस्थिति मे समता आ जावे।

समता की साधना बहुत कठिन है। इस साधना से विचलित करने के लिए अनेक झझावात, तूफान उठते हैं, उन सब का डटकर मुकाबला करना चाहिए। समत्व योग के धरातल पर ही समीक्षण का आसन सुदृढ रहता है। यह सब तभी सभव है जब हमारा विवेक जाग्रत रहे क्योंकि विवेकपूर्वक सारी क्रिया करने पर ही आत्मा ऊर्ध्व लक्ष्य की ओर गतिमान होती है, भगवान् ने ऐसा फरमाया है।[27] विवेकपूर्वक समत्व योग की साधना करने वाला अपनी समस्त विकृत वृत्तियो को समत्व के महासागर में उडेल कर अनिर्वचनीय आनन्द की समुपलब्धि करता है।

इस प्रकार मन शोधन, मनो विश्लेषण और आत्म सयम रूप त्रिविध सुदृढ स्तम्भों पर आरूढ हुआ साधक इतना गहरा उतर जाये कि उसका आचरण समत्व समन्वित ही नजर आये। आचरण के प्रत्येक चरण में इसको उतारने पर ही लक्ष्य प्राप्ति सभव है। इसी पथ पर बढ़ते हुए निरीक्षण-परीक्षण-सशोधन करते रहने से जीवन स्वय समीक्षण बन जायेगा। इसी क्रम में आत्मा के तीन प्रकार—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—को जान लेना भी आवश्यक है। बहिरात्मा से उपरत बनकर अन्तरात्मा की ओर निरन्तर पदाधान करते हुए परमात्मा स्वरूप वरण करने की अवस्था बन सकती है। ऐसी स्थिति में सासारिक बाह्य कार्यों के प्रति भाव सुषुप्ति और आत्महितसर्जन कार्यो के प्रति भाव जागरण का नाद गुजायमान होने लगता है। तब क्रमश आत्मावलोकन, आत्मालोचन, आत्मनियन्त्रण, आत्मचिन्तन तथा आत्मदमन का चक्र आत्मा मे प्रवाहित होता है[28] और चिन्तन उद्‌भूत होता है नव-सूत्रो का। ये नौ सूत्र इस प्रकार हैं—

(1) मै चैतन्य देव हूँ।

मुझे सोचना है कि मैं कहाँ से आया हूँ, किसलिये आया हूँ?

चार गति चौरासी लाख जीव योनियो में भटकते हुए मुझे समझना है कि यह दुर्लभ मानव जीवन आदि किस पुण्योदय से प्राप्त हुआ है तथा जड़ चेतन सयोग, सुख-दु खानुभव एव ससार के ससरण का क्या रूप है। यह समझकर मैं मूर्छा और ममत्व को हटाऊँगा, राग-द्वेष और प्रमाद को मिटाऊँगा तथा अपने जीवन को सम्यक् निर्णायक, समतामय व मगलमय बनाऊँगा।

(2) मैं प्रबुद्ध हूँ, सदा जाग्रत हूँ।

मुझे सोचना है कि मेरा अपना क्या है और क्या मेरा नहीं है?

प्रबुद्धता की वेला में मुझे विदित होगा कि मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या ज्ञान एव मिथ्या आचरण मेरे नहीं हैं, परन्तु पर पदार्थो के प्रगाढ़ मोह ने मुझे पाप कार्यो में फसा रखा है। मैं मिथ्यात्व को त्यागूगा, नवतत्त्व की आधारशिला पर सम्यक्त्व की अवधारणा लूगा एव आत्मनियत्रण, आत्मालोचना व आत्मसमीक्षण से अपने मूल गुणो को ग्रहण करता हुआ ससार की आत्माओं मे एकरूपता देखूगा।

(3) मैं विज्ञाता हूँ, द्रष्टा हूँ।

मुझे सोचना है कि मुझे किन पर श्रद्धा रखनी है और कौनसे सिद्धान्त अपनाने है?

मेरी दृष्टि लक्ष्याभिमुखी होते ही जान लेगी कि मैं सत्य, श्रद्धा और श्रेष्ठ सिद्धान्तो से कितना दूर हूँ। मैं सुदेव, सुगुरु एव सुधर्म पर अविचल श्रद्धा रखूगा, श्रावकत्व एव साधुत्व के पालन मे सत्सिद्धान्तों के आधार पर अपना समस्त

आचरण ढालूगा और ज्ञान व क्रिया के सयोग से निर्विकारी बनने मे यत्नरत हो जाऊँगा।

(4) मै सुज्ञ हूँ, सवेदनशील हूँ।

मुझे सोचना है कि मेरा मानस, मेरी वाणी और मेरे कार्य तुच्छ भावो से ग्रस्त क्यो हैं। अनुभूति के क्षणा में मुझे ज्ञात होगा कि जड़ग्रस्तता ने मेरी मूल महत्ता किस रूप मे ढक दी है, मेरे पुरुषार्थ को कितना दबा दिया है और मेरे स्वरूप को कैसा विकृत कर दिया है। यही मेरी तुच्छता हीन-भावना का कारण है जिसे मैं तपाराधन से दूर करूगा। मन, वाणी व कार्यो में लोकोपकार की महानता प्रकटाऊँगा और 'एगे आया' की दिव्य शोभा को साकार रूप दूगा।

(5) मै समदर्शी हूँ, ज्योतिर्मय हूँ।

मुझे सोचना है कि मेरा मन कहाँ-कहाँ घूमता है, वचन कैसा-कैसा निकलता है और काया किधर-किधर वहती है? अन्तरज्योति क जागरण से मुझे प्रतीति होगी कि अधकार की परतों मे पड़ा हुआ मेरा मन भौतिक सुख-सुविधाओ की ही प्राप्ति हेतु विषय कषायो में उलझकर कितना मानवताहीन, वचन कितना असत्य-अप्रिय तथा कर्म कितना विद्रूप अधर्ममय हो गया है। मैं दृढ सकल्प के साथ मन, वचन एव काया के योगो को सम्पूर्ण शुभता की ओर माड़ दूगा तथा भावना क धरातल पर समदर्शी बनने का प्रयास करूगा।

(6) मै पराक्रमी हूँ, पुरुषार्थी हूँ।

मुझे सोचना है कि मैं क्या कर रहा हूँ और मुझे क्या करना चाहिए? मरा आत्मस्वरूप मूल रूप में सिद्धात्माओ जैसा ही है। मुझे देखना और परखना है कि यह मूल स्वभाव कितना विस्मृत हुआ है तथा विभाव कितना बढ़ गया है। अपने आन्तरिक स्वरूप एव जागतिक वातावरण का द्रष्टा बन कर मैं शुभ परिवर्तन का पराक्रम दिखाऊँगा, आत्मशुद्धि का पुरुषार्थ प्रकट करूगा एव अहिसा, सयम व तपरूप धर्म को धारण करके विश्व के समस्त प्राणियों के साथ समभाव बनाऊँगा तथा उनमें समभाव जगाऊँगा।

(7) मै परम प्रतापी, सर्वशक्तिमान हूँ। मुझे सोचना है कि मै वधनो मे क्यो वधा हूँ? मेरी मुक्ति का मार्ग किधर है?

अपनी अपार शक्ति से समीक्षण ध्यान में मुझे आत्म साक्षात्कार होगा कि मैं अष्ट कर्मों क सारे बधन कैसे तोड़ सकता हू और मुक्ति के मार्ग पर वीतराग देवों की आज्ञा में रहता हुआ कितनी त्वरित गति स प्रगति कर सकता हूँ। मैं अपनी अनन्त शक्ति की अनुभूति लूगा, उसे लोककल्याण की दृष्टि से सक्रिय वनाऊँगा तथा सर्वशक्तिमान् होने का उपक्रम करूँगा।

(8) मै ज्ञानपुँज हूँ, समत्वयोगी हूँ।

मुझे सोचना है कि मुझे अमिट शान्ति क्यो नहीं मिलती, अक्षय सुख क्यों नहीं प्राप्त होता? ज्ञान के प्रकाश मे मैं अनुभव करूगा कि मेरा आत्मसमीक्षण एव विश्वकल्याण का चरण कितना पुष्ट और स्पष्ट हा गया है? तब मैं एकावधानता से सम्यक् दर्शन, ज्ञान व चरित्र की आराधना करूगा, गुणस्थान के सोपानो पर चढ़ता जाऊँगा और समत्व योग के माध्यम से अमिट शान्ति व अक्षय सुख को प्राप्त कर लूगा।

(9) मै शुद्ध, बुद्ध, निरजन हूँ।

मुझे सोचना है कि मेरा मूल स्वरूप क्या है और उसमें मैं दीर्घ, ह्रस्व, स्त्री, पुरुष या नपुसक कहाँ हूँ और वर्ण, गध, रस, स्पर्श के आकार वाला भी कहाँ हूँ? मै तो अशरीरी, अरूपी, शाश्वत, अजर, अमर, अवेदी, असेदी-अलेशी आदि गुणो से सम्पन्न हूँ। इससे मैं गुणाधारित जीवन का निर्माण करूगा, मनोरथ व नियम चिन्तन के साथ ज्ञानी व ध्यानी बनूगा और अपने मूल स्वरूप को समाहित करने की दिशा में अग्रसर होऊँगा।

इन नौ सूत्रो का चिन्तन करते हुए आत्मा सचमुच जान लेता है कि सम्यक् निर्णायक और समतामय जीवन ही जीवन है। वह समता के तीन चरण और 21 सूत्रों को आधार बनाकर समता की जय यात्रा करता है। इसी क्रम म क्रमश चौदह गुण स्थानो पर आरूढ़ होकर समीक्षण से सिद्धि को प्राप्त कर निराकार, निरजन बनकर शाश्वत आत्म रमणता करते हुए अव्याबाध सुख को प्राप्त कर लेता है। ◆

सदर्भ

1 औपपातिक सूत्र युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज मधुकर' प्रका आगम प्रकाशन समिति ब्यावर 1982 पृ 181 गाथा 20-21

2 वही पृष्ठ 180 गाथा 14-20

3 आचार्य श्री नानेश समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान प्रका अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर प्र स 1987 पृ 53-65

4 भगवान् महावीर का आदर्श जीवन प मुनि श्री चौथमलजी महाराज प्रका दिवाकर दिव्यज्योति कार्यालय ब्यावर तृतीय सस्करण वि स 2034 पृ 113

5 आचाराग सूत्र (भाग 2) युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज मधुकर' प्रका आगम प्रकाशन समिति ब्यावर सन् 1980 पृ 391

7 (क) भगवान् महावीर का आदर्श जीवन प मुनि श्री चौथमलजी महाराज वही पृ 154
(ख) आचाराग टीकाकार शीलाकाचार्य पत्र 302 प्रका आगमोदय समिति
(ग) आचार्य श्री हस्तीमल म सा जैन धर्म का मौलिक इतिहास प्रथम भाग प्रकाशक जैन इतिहास समिति जयपुर तृतीय स 1988 पृ 575

8 आचाराग सूत्र प्रथम श्रुत स्कन्ध युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज वही पृ 3 नवम अध्ययन पृ 305-342, सन् 1980

9 वही

10 जैन धर्म का मौलिक इतिहास प्रथम भाग वही पृ 610

11 वही

12 (क) आचाराग सूत्र द्वितीय श्रुत स्कन्ध वही पृ 396
(ख) प दलसुख मालवणिया गणधरवाद प्रका राजस्थान प्राकृत भारती सस्थान जयपुर प्रथम स 1982 पृ 20

13 श्री नवीनऋषिजी, जैन दृष्टि में मध्यलोक प्रका मनसुखलाल छगनलाल देसाई मुनि सुव्रत दर्शन, नवरोजी लेन, घाटकोपर 1978 पृ 92

14 (क) मुनि सुशीलकुमार, जैनधर्म का इतिहास प्रका सरदारमल काकरिया, मत्री सम्यक् ज्ञान मन्दिर 87 धर्मतला स्ट्रीट कलकत्ता स 2016 पृ 82-109
(ख) आचार्य श्री नानेश आत्मसमीक्षण प्रका अ भा साधुमार्गी जैन सघ बीकानेर पृ 7-8

15 आनन्दघन चौबीसी श्री श्रेयासनाथ भगवान की प्रार्थना।

16 आत्म समीक्षण वही पृ 9

17 उत्तराध्ययन सूत्र युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी महाराज वही सन् 1984 पृ 412

18 आत्मसमीक्षण वही पृ 13-14

19 (क) आवश्यक चूर्णि पृ 311-12
(ख) जैन धर्म का मौलिक इतिहास भाग 1 वही पृ 599-600

20 आत्मसमीक्षण वही पृष्ठ 16-17

21 उत्तराध्ययन युवाचार्य श्री मिश्रीलालजी महाराज 1984, पृ 67

22 आत्मसमीक्षण वही पृ 18

23 (क) आत्म समीक्षण वही पृ 19-20
(ख) श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ प्रका श्री पुष्कर मुनि अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशक समिति बम्बई सन् 1979 पृ 137

24 आत्म समीक्षण पृ 21

25 वही

26 (क) समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान वही पृ 131-44
(ख) आत्मसमीक्षण, पृ 22-23

27 दशवैकालिक युवाचार्य श्री मिश्रीलालजी महाराज सन् 1993 पृ 125-30

28 आत्मसमीक्षण पृ 33

साध्वी सुयशप्रभाश्री

आत्मसमीक्षण समता की जययात्रा

आत्मसमीक्षण से अर्हता का बोध कैसे होता है, यह समझने की बात है। व्यक्ति स्वय के जीवन की कमजोरियो को बखूबी जानता है, यह बात अलग है कि जानकर भी वह अनजान बना रहे। इस स्थिति के प्रति सम्यक् दृष्टि निर्मित करने का साधन 'आत्मसमीक्षण' है। आत्मसमीक्षण अर्थात् आत्म+सम+ईक्षण=सम्यक् प्रकार से अपने भीतर देखो। जो कुछ भी अपने भीतर है उसे आवृत मत रखो। अपने भीतर कमिया है तो योग्यता, क्षमता, अर्हता भी है। अपूर्णताओं को दूर करने हेतु अपनी क्षमताओ को क्रियाशील किया जाये तो अभीष्ट भी सिद्ध हो सकता है। अर्हता का बोध होने पर ही व्यक्ति अपने लिये लक्ष्य का निर्धारण कर सकता है। आत्मा की दृष्टि पैनी हो जाय और वह अपने अवगुणो पर दृष्टि टिका ले तो फिर उनमे हलचल पैदा हो जाती है। दिव्य दृष्टि का प्रक्षेप उनके लिये असह्य होता है उनमें भगदड़ मच जाती है। कहा भी है चोर के पैर कच्चे होते है। जब काषायिक वृत्तियो पर गहरी दृष्टि जमती है तब वे पलायन करती हैं, प्रतिफल में आत्म शक्ति के द्वार उन्मुक्त होने लगते हैं। शक्ति का जागरण होने पर ही पुरुषार्थ सक्रिय होता है। देखने की शक्ति की इसीलिए बड़ी महिमा है। शास्त्रकारों ने जगह-जगह इस शब्द को प्रयुक्त किया है 'मइम पास' मतिमान देख। देखे गये विषय पर विश्वसनीयता जम जायेगी। जब आत्मसमीक्षण करते हुए अपने स्वरूप को देखेंगे तब यथार्थ की भूमिका को पहचान पायेगे परन्तु यह देखना यथार्थ हो, सम्यक् हो, आत्मसाक्षीपूर्वक हो। सम्यक् निर्णय ले सकने की क्षमता का होना भी आवश्यक है क्योकि कई बार मनुष्य अपनी अर्हता को नहीं पहचान पाने के कारण हताश-निराश हो जाता है। किंकर्तव्यविमूढ बनकर रह जाता है। भविष्य के विषय मे चितित हो जाता है। लेकिन जिसके भीतर उत्साह है, निर्भयता है, कुछ कर गुजरने की ख्वाहिश है, वह परेशान-निराश नहीं होता। वह अपनी शक्तियों को केन्द्रित करता है और नवीन पथ का चयन कर बढ जाता है लक्ष्य की ओर और उसे प्राप्त कर लेता है, जैसा आचार्य श्री नानश ने किया

था। उन्होंने जान लिया था कि विषम वृत्तियो मे जीने वालो का भविष्य अधकारपूर्ण बनता है इसीलिए वे अपनी यात्रा मे मोड़ लाये, लक्ष्य की ओर बढ़े, उनमें प्रतिभा थी, पुरुषार्थ था। चाहते तो भौतिक सुख-सुविधाओ की दिशा मे अग्रसर हो सकते थे लेकिन उन्हे अपनी अर्हता का ज्ञान था और वे सम्यक् निर्णय ले सकते थे इसीलिए वे उधर नहीं भटके। इतिहास मे उल्लेख मिलता है कि सत्ता सम्पन्न सम्राट अपने शक्तिबोध से साम्राज्य विस्तार के लिये प्रयत्नशील होते रहे हैं। चक्रवर्ती नरेश भी 6 खड का एकछत्र आधिपत्य प्राप्त करने हेतु प्रस्थित होते रहे हैं। सम्राट सिकन्दर ने भी विश्व-विजय का स्वप्न सजोया था। भौतिक ऋद्धि एव सुख-सम्पदा के अभीप्सु तो प्रचुर हो सकते है, किन्तु इनसे भिन्न शाश्वत, अविनाशी सुख साम्राज्य की ललक विरल चेतनाओ में ही उद्भूत होती है। कोई घटनाक्रम भी जीवन में नया मोड़ ला सकता है, बशर्ते उसे माध्यम बनाया जाय।

आत्मसमीक्षण के उपरान्त ऐसी सम्यक् निर्णय क्षमता के उदाहरण से हम परिचित हैं। उदाहरण है किशोर नाना का। बियावान अरावली मे अश्व पर आरूढ़ वह बढा चला जा रहा था, अपने घर की ओर। यात्रा चल रही थी पर कोई विशेष लक्ष्य नहीं था। निर्जन पथ और नीरव प्रकृति में आत्मचिन्तन मुखर हो उठा। कहा जाता है यदि मनुष्य स्वय की आत्मा को साक्षी रखकर स्वय के सद्विवेक से निर्णय करे तो वह सुन्दर भविष्य का निर्माण भी कर सकता है। यही हुआ। अतीत का कल्मष पश्चात्ताप के अश्रुओ से धो डाला। सद्विचार का अकुर फूट पड़ा, अकुर-अकुर ही नहीं रहा। उसके सवर्धन हेतु प्रयत्नशील बन गये गोवर्धन। बढ़ना भी है तो उचित राह पर क्योंकि उत्पथ पर बढ़ने वालों की सफलता सदिग्ध होती है और गोवर्धन उचित राह पर बढने को कृतसकल्प था। स्वर्ण तो कान्तिमय होता है पर मृत्तिका के ससर्ग से उसका मूल स्वरूप आच्छादित हो जाता है। हमारा मौलिक गुण समता भी कर्ममृत्तिका से

> समीक्षण ध्यान द्वारा जब आत्मशक्ति का अनुसधान कर लिया जाता है तब चित्त सम पर आ जाता है, अतर का सारा मैल धुल जाता है, सभी विकार और विषमताएँ समाप्त हो जाती हैं और समता की जय-यात्रा प्रारभ हो जाती है।

नानालालजी म सा ने। समता का तात्पर्य गुड़-गोबर को एक मान लेने में नहीं है। गुण व कर्म की महिमा तो होती ही है, उनका ध्यान रखकर यदि श्रेणियाँ बनायी जाये ता कभी सघर्ष नहीं हो। उन्नत लक्ष्य के अनुरूप पुरुषार्थ की तैयारी से ही कुछ हासिल किया जा सकता है। रणक्षेत्र मे उतरने से पहले योद्धा को तदनुरूप अभ्यास करना होता है। अपनी शारीरिक क्षमता को न तौले, कुर्बानी का साहस न हो तो वह युद्धक्षेत्र मे टिक नहीं पाता। किन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र मे साधक को अपनी मानसिक शक्ति को प्रबल बनाना होता है। प्रभु महावीर साधना पथ पर चल रहे थे। उपसर्ग व परिषह आते रहे पर क्या शारीरिक शक्ति से उन्होंने प्रतिकार किया? नहीं। मन मे भी प्रतिक्रिया नहीं उभरी। तन ही नहीं मन भी अडोल रहा, अकप रहा। कैसा भी प्रहार हुआ, अप्रभावी रहा। इन्द्र ने सहयोग के लिये निवेदन भी किया परन्तु उन्होने सहायता की अपेक्षा ही महसूस नहीं की थी। कितने वीर थे वे! वीरता सिर्फ बाह्य हथियार उठाने मे ही नहीं है। उनका हथियार आतरिक था, क्षमा का अचूक अस्त्र जिसका वार कभी निष्फल नहीं जाता। क्षमा के हथियार का उपयोग करने वाला अजेय होता है। उन्होंने मानसिक दृढ़ता के सहारे ही प्रतिद्वद्वियो को परास्त कर दिया। प्रतिद्वद्वी लोहा मान गये। यह है आतरिक शौर्य जिसके सामने कोई टिक नहीं सकता। यह तब ही उत्पन्न होता है जब समीक्षण द्वारा आत्मा ने अपनी शक्तियो और क्षमताआ का सम्यक् आकलन कर लिया होता है।

समीक्षण ध्यान द्वारा जब आत्मशक्ति का अनुसधान कर लिया जाता है तब चित्त सम पर आ जाता है, शत्रु-मित्र का अतर समाप्त हो जाता है और अनोखा मनोबल निर्मित हो जाता है जैसा सुदर्शन मे हुआ था। अर्जुन मालाकार यक्षाधिष्ठित होने से दैविक शक्ति से युक्त था। सशस्त्र था। सुदर्शन निहत्था था। परन्तु उसके हृदय में समता की किरणें अठखेलियाँ कर रही थीं जिन्होने

था वह भी अनुयायी बन गया। यह होती है आतरिक शक्ति जिसका अहसास आत्मसमीक्षण करा देता है। ऐसा हो जाने पर व्यक्ति अपनी शक्ति का प्रयोग सामने वाले का धराशायी करने के लिये नहीं करता। उसका लक्ष्य तो आत्मसुरक्षा का रहता है। उसे विश्वास होता है कि सामने वाला उसका अहित नहीं कर सकता, वह तो यात्रा का सहयोगी है। शत्रु नहीं, हितैषी, मित्र है। यह विश्वास हो जाने पर अपना हित ही होता है। शत्रुता के भाव इस स्थिति मे पनप ही नहीं सकते। यदि शत्रुता के भाव होते तो प्रभु महावीर का हृदय करुणा से आप्लावित नहीं होता। अहो! मेरे निमित्त से इसने अपना अहित कर लिया। यह है आत्मवत् सर्वभूतेषु के भाव। कहना बहुत आसान है लेकिन इसे जीने वाले समता साधक ही जगत् के लिये प्राण-भूत होते हैं। वे शत्रु पर भी मैत्रीभाव की सन्धि जोड़ने वाले बन जाते हैं, इस मैत्री के सूत्र से उन्हे अधीनस्थ बना लेते हैं।

महासाधक आचार्य श्री नानेश ने आत्मसमीक्षण द्वारा अपनी आत्मशक्ति का पता लगा लिया था और उसी के बल पर जीवन का कण-कण समता के लिये समर्पित कर दिया था। क्षमा, मृदुता, सहजता, नम्रता, सत्य, सयम, तप, त्याग, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य, ये 10 यतिधर्म कहे गये हैं। जैसे क्षत्रिय में क्षात्रोचित गुणो का होना नितान्त आवश्यक होता है क्योंकि उन गुणों के सहारे ही उसका क्षात्रतेज प्रदीप्त होता है वैसे ही साधक के ये दस गुण उसकी तेजस्विता की वृद्धि करने वाले बनते है। इन गुणो के बल पर ही वह डटा रह सकता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि आचार्य श्री नानेश के जीवन में इन मे से एक भी गुण एक क्षण के लिए भी तिरोभूत न हो सका। चाहे जैसे परीक्षण के क्षण आये, पर उनकी समीक्षणप्रज्ञा आत्म अन्वेषण मे लीन रही। उनकी तो साधना का मूल मन्त्र ही समीक्षण था। भीषण विघ्न-बाधाओ के बीच भी वे निर्द्वद्व-भाव से बढ़ते रहते, क्योंकि उन्हें लक्ष्य को पाना था। ऐसे सधे हुए साधक की सफलता असदिग्ध होती है। हर मोर्चे पर वह सफल होता है।

समता का साम्राज्य पाने के लिये अपना जीवन सर्वतोभावेन लगा देना पड़ता है। सच्चा शासक वही होता है जो पालक बनकर प्रजा के हित, सुख के लिये प्रयत्नशील रहता है, क्योकि वह आत्मा के उस निर्देश से प्रेरित होता है जो बताता है कि सभी प्राणी समान हैं—कोई बडा-छोटा नहीं है। अपनी सुख-सुविधाओं मे गुलछर्रे उड़ाने वाला स्वार्थान्ध कभी जनता के दिल को नहीं जीत सकता। प्रभु महावीर की शासन प्रणाली का आचार्य के नेतृत्व से निर्वहन होता है क्योंकि वह चतुर्विध सघ का शासक ही होता है। इसी कड़ी में वे सघ की सारणा, वारणा, धारणा करके हर साधक की साधना का पोषण करने मे सहयोगी बनते हैं। शासन-साम्राज्य का स्वामित्व पाकर अपने दायित्व का कुशलतापूर्वक निर्वाह करने वाले ऐसे ही एक आचार्य थे—आचार्य श्री नानेश। आत्मसमीक्षण के नौ सूत्रो की सिद्धि कर के ही उन्होने अपनी समता की जययात्रा पूर्ण की थी और आत्मतत्त्व मे स्थित हो गये थे। उन्होने विषमता के प्रतिफल और आधार का सम्यक् निर्णय कर तथा उसके छेदन द्वारा कर्मो से रहित अवस्था प्राप्त कर ली थी। इस प्रकार समतामयी आत्मा के साक्षात् दर्शन कर वे अनन्यदर्शी बन गये थे, ऐस अनन्यदर्शी जिसके सबध में आचाराग सूत्र म स्पष्ट कहा गया है—

जे अण्णणदसी, से अण्णणरामे,
जे अण्णणरामे, से अण्णणदसी।

अनत प्रसन्नता मे रमण करने वाले, समतामयी आत्मा के दर्शन करने वाले समीक्षणध्यान योगी आचार्य श्री नानेश निश्चय ही 20वीं सदी की एक विरल विभूति थे। आत्मसमीक्षण का मार्ग दिखा कर उन्होंने समता की जययात्रा का ही नहीं, आत्मा की जययात्रा का मार्ग भी प्रशस्त कर दिया गया था।

इस प्रकार उनका जीवन समीक्षणध्यान साधना के समता की जययात्रा में रूपान्तरित हो जाने का आदर्श उदाहरण है। ◆

डॉ विश्वास पाटील

समीक्षणध्यान का मनोविज्ञान
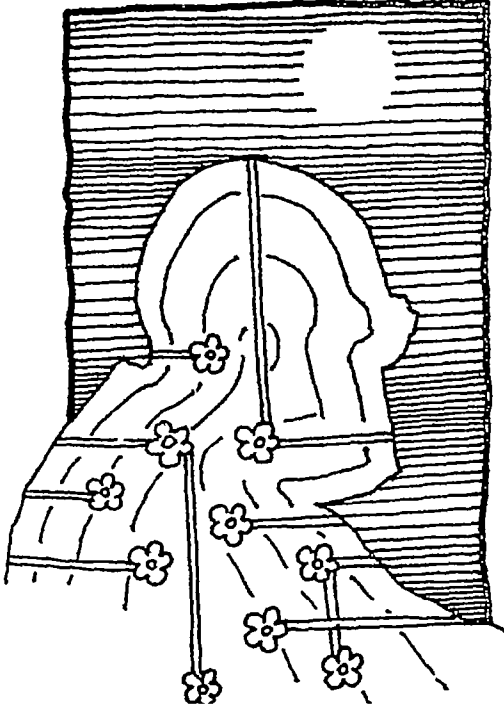
आचार्य श्री नानालालजी म सा का नाम किसी प्रकार के स्वतत्र परिचय का मोहताज नहीं है। जिन-चितन परपरा का पुष्ट करने वाली सम्माननीय प्रतिभाओ मे उनका स्थान वरेण्य है। आचार में समताबोध, विवेक में ममता का भाव, तर्क म विचक्षणा की प्रखरता, शासन मे अनुशासनबद्धता और धर्म मे प्रतिपालक रूप की स्थापना उनकी कतिपय विशिष्ट मुद्राएँ है। उन्होने अपनी वाणी और लेखनी से जन-जन का जो उपकार किया है वह किसी पथ या विचारशैली के बाड़े मे आबद्ध नहीं रहा, उससे समस्त मानवजाति लाभान्वित हुई। उन के चितन के अमृत ने मूर्त-अमूर्त, तमाम भावराशियो को स्पदित किया।

धरती पर धर्म का फूल तो एक ही खिला—मानवधर्म के रूप में, लेकिन भिन्न-भिन्न चितन प्रणालियो ने युगानुकूल आवश्यकताओ के अनुसार उस का अर्थ-विस्तार किया और धर्म के क्षितिज पर नाना रग-गधो का सप्तरगी इद्रधनुष खिल उठा। धर्म का बाह्यपक्ष आचार से नियत्रित रहा और आतरिक पक्ष पर सदा व्यवहार की प्रभुसत्ता रही। ध्यान-साधन के सबध मे भी मत-मतातरों का कोलाहल पाया गया लेकिन ध्यान की महत्ता एव उपादेयता के सबध मे तमाम धर्मो में एक समान सूत्र अनुस्यूत हैं। साधना धर्म-प्रक्रिया का सुमधुर फल है। इस्लाम की नमाज, या ईसाइयो की प्रेयर या हिदू की प्रार्थना एक ही तत्त्व के अलग-अलग नाम हैं। भगवान् पतजलि ने अष्टागयोग साधन का विचार रखा, भगवान् बुद्ध ने विपश्यना की बात कही तो जैन परपरा ने सहजयोग समीक्षण को ध्यान का दर्जा दे कर स्थापित किया।

समीक्षण ध्यान की साधना पद्धति आगमो म वर्णित सहजयोग साधना-पद्धति का ही मूल रूप है। आगम, ध्यान के चतुर्मुखी रूप का विवेचन करते है—'चउविहे ज्झाणे पण्णततेतजहा'—इस का अर्थ विस्तार यों करते हैं—

अट्ट ज्झाण	आर्त ध्यान
रुद्र ज्झाणे	रौद्र ध्यान
धम्म ज्झाणे	धर्म ध्यान
सुक्क ज्झाणे	शुक्ल ध्यान

इनके अतिरिक्त ध्यान के विभाजन का एक और रूप दिखाई देता है— पदस्थ, पिडस्थ, रूपस्थ और रूपातीत।

समभाव की अवस्था की सम्यक् ईक्षण ही समीक्षण है। वैदिक आर्ष परपरा के ऋषि ने कभी कहा था—'मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।' मित्र की आँख से समीक्षा करो। समीक्षण ध्यान अतर्यात्रा है। अतर्यात्रा के प्रदेश में रागद्वेष का बोझ साधक के लिए हिमालय का बोझ है। अत उससे विनिवृत्त हो कर चलना जरूरी है। लेकिन ध्यानदृष्टि इन का दमन नहीं, शमन सिखाती हैं। दमन का भाव समीक्षण दृष्टि को स्वीकार्य नहीं है।

समीक्षण साधना का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण मन को नश्वर से अनश्वर सत्ता में स्थापित करता है। इस मे सहजयोग साधन का अमृत छलकता है, बलात् हठयोग की दमनकारी प्रक्रिया नहीं मन को प्रशिक्षित करने की यह विधि है, वासना पर विवेक की विजययात्रा है। समीक्षण अविवेक से जबरन मन पर दबाव डालन की सलाह नहीं है। इस ध्यान का उद्देश्य ता परमानद की उपलब्धि है तथा यह परम अध्यात्म सागर मे अपने अस्तित्व को समर्पित करने की प्रक्रिया है। आचार्य नानेश के शब्द है—'समीक्षण की इस प्रक्रिया के द्वारा साधक अपने मन का पद से पिड, पिड से रूप और रूप से रूपातीत चितन की ओर गतिशील करता है तथा अपनी चरम परिणति में पहुँच कर आत्म-साक्षात्कार एव परमात्म-साक्षात्कार का अनुपमय आनद प्राप्त कर सकता है। यही तो समीक्षण-ध्यान की चरम उपलब्धि है। इस के प्राप्त होने के पश्चात् कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। वही मन अपनी पूर्णता में विश्राति ले पाता है जिसमें आत्मा अपने स्वरूप मे प्रतिष्ठित हो जाती है।'

मन को स्थिर करने की सचोट विधि समीक्षण ध्यान है। मन की शुद्धि कोयले की शुद्धि के समान कठिन प्रक्रिया है। कोयले को स्वच्छ करने के लिए दुनिया का सारा जल और तमाम साबुन निरर्थक सिद्ध होंगे। कोयले को उस की उत्पत्ति स्थली में फेंको, कोयले को आग में झोक दो तो वह गुलाबी हो जाएगा, ठीक वैसे ही मन का भी हाल है। जिस परमात्मा से मन-मति मिली है, उसी में उस का सलग्नीकरण शुद्धता की प्रक्रिया है। आत्मनिग्रही को नियमित साधना-क्रम की आवश्यकता है।

वीतराग प्रभु श्री सुपार्श्वनाथजी की प्रार्थना में एक अद्भुत सबोधन का प्रयोग मिलता है—'ललना।' ललना अर्थात् रूपसी नारी। ललना को सबोधित करने का एक गहन रहस्यपूर्ण अर्थ है। 'ललना' अर्थात् बुद्धि या चेतना का समीक्षण। नारी का पर्याय है आत्मा, समग्र आत्माओ का यह सबोधन है। आत्मा के भीतर की चेतना शक्ति का रूप स्त्रीलिगी है अत 'ललना' सबोधन का प्रयोग किया गया है। इस प्रज्ञा क जागरण का स्वरूप ही समीक्षण ध्यान है।

> आज के तनावग्रस्त वातावरण में मुक्ति का एकमात्र साधन ध्यानयोग है। मन की विजय ही विश्व-विजय है। सम्यक् प्रकार से द्रष्टाभावपूर्वक देखना समीक्षण है। 'बोलना' गृहस्थ धर्म है जबकि देखना सन्यस्त धर्म है। देखते रहो, साक्षी भाव से ही, तो सन्यस्तवृति का गुलाब खिल उठता है।

जीवनयात्रा के अतरग रूप को समझना, परखना, आत्मलक्ष्य को स्थिर करना, समीक्षण की समुज्ज्वल साधना पर दृढ आस्था रखना तथा आत्मोत्कर्ष की दिशा मे प्रगति करना कठिन है। कठिन तपस्या है। जीवनयात्रा का महत्त्वपूर्ण यात्री ता आत्मा ही है। आत्मा मन के अश्व पर आरूढ़ हो कर सुखद-शीघ्र यात्रा करती है। आगमिक भाषा के अनुसार यो कहा जा सकता है—

सरीर माहु णानावुत्ति जीवो वुच्चई णा वि ओ।
ससारो अण्णवो वुत्तो जतरति महेसिणो।। (उत्तराध्ययनसूत्र अ 23)

अर्थात् शरीर नौका और जीवात्मा नाविक है, यह समस्त ससार एक सागर है, जिसे महर्षि आत्माएँ पार करती है।

इस वाहन पर सवार होने की कला समीक्षणध्यान योग द्वारा प्राप्त होती है आत्मसमीक्षण अथवा अपने विराट् सामर्थ्य के समीक्षण की भावधारा।

समीक्षणध्यान की साधना का स्वरूप अतर्दर्शन की साधना है। इसका प्रतिफलन उभयमुखी होता है। वह जीवन सरिता के अतर्बाह्य तटो को स्पर्श करता है। आत्मसमीक्षण की वृत्ति तथा उसका अभ्यास सजगता और सर्वतोमुखी पवित्रता का विकास करता है। मन की वृत्तियाँ निर्मल और बुद्धि सदाशय सपन्न होती है। स्व-विकास और परकल्याण मे मन-बुद्धि का सहज सयोजन होता है। अतराय कर्म का क्षयोपशम होकर अन्य कर्म टूट बिखर जाते हैं। गृहस्थाश्रम की प्रवृत्तियाँ निर्मल बनती हैं। समीक्षणध्यान साधना आत्मा की अतद्रावस्था है, ज्ञानपूर्ण प्रक्रिया है, जीवन शुद्धि की दिशा है।

मन की विपरीत गति से दड मिलता है। भगवान महावीर ने कहा है कि आत्मा सत्य वस्तुस्थिति को प्राप्त न कर स्वय को दडित करती है, स्वय पर ही प्रहार करती है। तीन प्रकार के दड होते है— *'मण दडे'* अर्थात् मन दड, *वय दडे* अर्थात् वचन दड और *काय दडे* अर्थात् काय दड, काया को दिये जाने वाले दड। इस मे मूलभूत भूमिका मन की होती है। मन के अशुभ विचारो का दड वचन और शरीर को भी भुगतना पड़ता है। गीता मे स्पष्ट शब्दों मे उद्घोषणा की है—

मन एव मनुष्याणा कारण बध मोक्षयो ।

अर्थात् मन ही मनुष्य के कर्मबध एव कर्मक्षय का कारण होता है।

आज के तनावग्रस्त वातावरण मे मुक्ति का एकमात्र साधन ध्यानयोग है। मन की विजय ही विश्व-विजय है। सम्यक् प्रकार से द्रष्टाभावपूर्वक देखना समीक्षण है, 'बोलना' गृहस्थधर्म है जबकि 'देखना' सन्यस्तधर्म है। कुछ नुकसान हुआ तो समझो कि कुछ कटा ही लेकिन देखते रहो साक्षी भाव से ही, तो सन्यस्तवृत्ति का गुलाब खिल उठता है। हनुमानजी मनोजयी होने के कारण आत्मवान, सकल्पसमृद्ध और विजयी हैं। हनुमानजी के खाते मे कोई पराभव की कहानी है ही नहीं। इतना सम्मान उन्होने कैसे पा लिया? जहाँ भी कहीं रामजी का मदिर है वहाँ-वहाँ हनुमानजी की मूर्ति का होना जरूरी है ही, लेकिन हनुमानजी के किसी भी मदिर मे रामजी की मूर्ति का कोई प्रावधान ही नहीं है। यह भक्त की विजययात्रा है जो भगवान् से भी महान् बन गए है। हनुमानजी मानवी उत्कर्ष की अद्‌भुत कहानी और जागती मिसाल हैं। साधक के लिए एक आत्मप्रत्ययी उदाहरण के रूप मे सदा उन्हे स्मरण करना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के मन में वानरवृत्ति से नरवृत्ति जगाने का अभियान ही समीक्षणध्यान है। मनोयोगपूर्वक इसे करने से मन की विकृतियो से बचा जा सकता है। ऊर्जस्वल साधना की यही राह है।

◆

आगम उन वीतराग देवो की उस वाणी का सग्रह है जो उन्होने अपने ज्ञान और चरित्र की परिपक्वता की अवस्था मे सर्वज्ञ व सर्वदर्शी के रूप मे ससार के कल्याणार्थ उच्चरित की। इसी पवित्र वाणी मे विश्व-निर्माण का अमोघ उपाय छिपा हुआ है।

—आचार्य श्री नानेश

साध्वी रजनाश्री

अंतर्जगत् की यात्रा और आत्मसमीक्षण
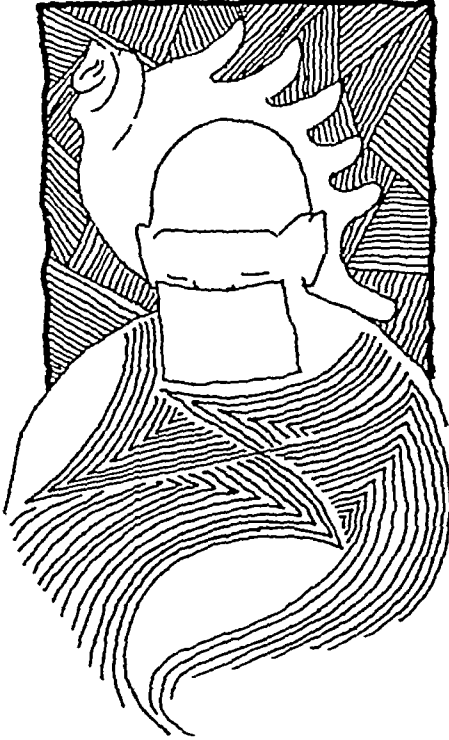
अनत का यात्री आत्ममजिल की ओर जब उन्मुख होता है तब आतरिक भूमिका पर जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होते है वे बाह्य जगत् से एकदम भिन्न और अपूर्व होते हैं। साधक-आत्मा आतरिक सूत्रों के बिंदुओ की उपासना में तन्मय हो जाता है और समस्त पौद्गलिक जगत् से हटकर एक प्रकाशमय जगत् में प्रवेश करता है। अब तक वह निगोद से लेकर नरक तक की यातनाओं से ही नहीं, अपनी आत्मा के आनद से भी दूर एव अपरिचित हो गया था। देवलोक के दिव्य सुखों में आकठ डूबा, वहाँ पर भी भीतरी झलक की देखी-अनदेखी अवस्था मे रहा।

मनुष्य का पर्याय भी एक बार नहीं, अनकानेक बार धारण कर चुका। पर हर बार चूकता रहा। जैसे ही जागरण की स्थिति बनी सम्यक्त्वस्पर्शी होते ही दिशा के साथ दशा बदल गयी। प्रकृति के साथ आकृतियों का परिष्कार हुआ। पर्त-दर-पर्त खुलती गयी। हेय, ज्ञेय, उपादेय के रहस्य उद्घाटित हुए। अज्ञान की कादबिनी मे ज्ञान की सौदामिनी से सत्य की झलक मिली। पूर्व की अन्तहीन यात्रा के यायावर के लिए विश्राति क क्षणो की उपलब्धि के आसार बन गये। अब नहीं भटकेगा अधिक समय तक। बहुत भटक चुका। अनत-अनत पुद्गल परावर्तन तक, जन्म-मरण की दीर्घ शृखला बनायी पर सत्य का प्रकाश पाते ही यात्रा सीमित हो गयी, मर्यादाओ के तटो मे आवद्ध हो गयी। उसी सीमित परिमित काल में धीरे-धीरे साधना के पथ पर गति प्रारभ हो गई। इस स्थिति मे जीवन के हर पहलू मे कितना परिवर्तन हो जाता है, आहार से लेकर सारी चर्याएँ कैसे बदल जाती हैं, उपासक साधक इसके जीते-जागते प्रमाण बनते हैं।

दिव्य साधना पथ पर बढने वाले अलौकिक अवधूत आचार्य श्री नानेश ने समता का अद्वितीय अमृत उपलब्ध कराया। यह वह अमी है जिसका पान करके मुमुक्षु आत्मा मजिल की ओर स्फूर्ति के साथ अग्रसर हो जाती है। प्रतिपल, प्रतिपग मजिल तय हाती रहती है। वर्तमान की स्थिति विभिन्न

आतको से ग्रस्त है। बाहरी प्रदूषण की तरह आतरिक प्रदूषण भी अपनी सीमा का स्पर्श कर रहा है। विज्ञान के नित्य नूतन आविष्कारो ने जहाँ सुविधाओ के अबार लगाये हैं वहीं उद्दाम लालसाओं के द्वारा मानसिक तनाव में वृद्धि भी की है। मनुष्य के जीवन मे शाति की लहर कहीं नहीं दिखती। वह खोया-खोया-सा जिदगी गुजार रहा है।

तनाव और दु ख आवेग पैदा करते हैं जिनसे शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं और व्यक्ति में चिड़चिड़ापन आ जाता है। मानसिक तनाव शारीरिक सतुलन तक को बिगाड देते हैं फलस्वरूप बीमारियाँ पैदा हो जाती है। शारीरिक तनाव से हृदय की धड़कन ही नहीं बढ़ती ग्रथियाँ भी प्रभावित होने लगती हैं और सारा सतुलन बिगड़ जाता है। अत तनाव ही सारे दु खों का मूल है। इसका उद्‌गम स्थल है कषाय। कषाय से तनाव और तनाव से कषाय—यह चक्र चल पड़ता है। इस चक्रव्यूह मे फसा आदमी दु ख पीडाओ से घिर जाता है।

दु ख-मुक्ति के लिये कषाय-मुक्ति आवश्यक है। क्योंकि कषाय तनाव उत्पन्न करते हैं और तनाव पुन कषाय भड़काता है। सारी आधि-व्याधियों को आमत्रण ही तनाव से मिलता है। इसलिए कषाय से मुक्त होना आवश्यक है। लेकिन आज का मानव कषाय-मुक्ति के उपाय बाहर खोज रहा है और बाहर के सारे उपचार निरर्थक सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी विचित्र परिस्थिति मे फसे हुए मनुष्य को त्राण का पथ जिन महापुरुषों ने दिखाया उनमे आचार्य श्री नानेश का नाम प्रमुख स्थान पर है। उन्होंने चितन की गहराइयों में डूबकर समता की सीपियों में गर्भित समीक्षण मुक्ताओं को खोज निकाला और आज की ज्वलत समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रस्तुत किया। उन्हे ज्ञात था कि इन भौतिक समस्याओ का अध्यात्म के मार्ग से ही वास्तविक उपचार हो सकता है। तनाव आभ्यन्तरिक सदर्भों से अनुवेष्टित होते है अत उनके समाधान भी अन्तर से ही होने चाहिये। शोध हुई और उपाय भी उपलब्ध हुए। कुछ उपलब्धियाँ अल्प समय तक तो सफलता प्रदान करने वाली रहीं मगर पूर्ण सफलता कोई नहीं दे सकीं। ऐसी खोज की विधियाँ अध्यात्म के मुखौटे मे तथा ध्यान-योग के रूप मे व्यवसाय बन कर चल रही हैं और मनोरजन के रूप में धड़ल्ले से बढ़ रही हैं। ऐसे सतही प्रयोगो से अल्प समय के लिए तो शाति मिल जाती है परन्तु विशेष कुछ लाभ नहीं होता क्योंकि उनमे आत्मशुद्धि द्वारा तनावमुक्ति के लिए कोई स्थान नहीं होता। गहराई मे उतर कर सयम-साधना-सापेक्ष उपासनाओं से ही स्थायी तनावमुक्ति की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। यह समझ कर ही आचार्य श्री नानेश ने समतादर्शन पर गहन चितन किया, उसे अपने जीवन मे उतारा, उसके प्रत्येक पहलू को अपने जीवन मे प्रकट किया, स्वय अतरावलोकन किया तत्पश्चात् ही समता का अनूठा सूत्र आत्मसमीक्षण समाज को दिया। जब मनोमस्तिष्क से विषमता का सारा विषैला धुआँ बाहर निकल जायेगा, तब ही समभाव की निर्धूम अग्नि जीवन का नया सस्कार कर पायेगी। तब समता व्यवहार के स्तर पर विस्तार प्राप्त करेगी, आत्मीय सबधो को मधुर रूप प्राप्त होंगे और तनाव की जजीरे तड़क कर स्वत ही टूट जायेगी। तब आत्मदर्शन का क्षण दूर नहीं रहेगा। स्वस्थ मन स्वस्थ तन के निर्माण में सहायक होता है और स्वस्थ मन एव स्वस्थ तन अन्तर्जगत् की यात्रा में सहायक बन कर आध्यात्मिक जीवन के निर्माण मे सहायक बनते हैं। समत्व की तलहटी से चलते कदम आत्मदर्शन के शिखर तक पहुँच सकते हैं। इस

> नवभौतिकवादियों तथा पाश्चात्य चिंतकों ने हमें अनेक वस्तुएँ प्रदान कीं किंतु हमें अपने आपसे अलग भी कर दिया। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में काफी उन्नति हुई है किन्तु मानवीय मूल्य खो गये हैं। ऐसे विकट समय में यदि हम आचार्य श्री नानेश के यथार्थ चिंतन तथा स्वानुभूति से अनुरजित आत्म तत्त्व की ओर ध्यान दें और समता चिन्तन तथा समीक्षणध्यान साधना का मार्ग अपनाएँ तो बहिर्जगत् की विषमतापूर्ण स्थितियों और तनावों से तो सहज ही मुक्ति प्राप्त कर लें, अन्तर्जगत् की असीम शान्ति में रमण करने की स्थिति भी सुनिश्चित कर लें।

सिद्धि की प्राप्ति की समीक्षणध्यान साधना की जा विधि आचार्य श्री नानेश ने वताई है वह समता चिन्तन की भी चरम उपलब्धि है।

हमे ज्ञात है कि समता चिन्तन आत्मक्षमता को प्राणवान बनाता है और ऊर्जा का प्रवाह बाहरी क्षेत्र से भीतर की ओर मोड़ देता है। ससार मे सिद्धि सौध की ओर जाने वाला अगर कोई मार्ग है तो वह समता है। समभावो के पथ से गुजरता हुआ अध्यात्म पथिक चरमबिन्दु को पा लेता है। कषाय कर्म के चक्रव्यूह का भेदन करने की क्षमता समता मे है। *'सम्मतर्दसी नकरेइ पवि'* समतावान अथवा समदर्शी जानबूझ कर पापक्रिया कभी भी नहीं कर पाता। जिसकी पापो में रुचि अथवा पाप कार्यों में रस की अनुभूति समाप्त हो गयी हो वह आत्मा पाप पक मे भी निर्लिप्त बनी रहती है।

समता साधक योद्धा की तरह आत्मअरियो के साथ जूझता है। अन्तर मे वसित अनत मोह, जो विभिन्न रूप धारण किये आत्मा को परिभ्रमित करते रहते हैं, उन रूपो को समझकर उन्हे अलग करने का वह दृढ सकल्प कर लेता है। समता के आयुध के उपयोग द्वारा ही वह विजय को पाने का सकल्प कर लेता है और प्रतिपल समभाव मे रहने का निश्चय कर लेता है। इस समता की महायात्रा मे सहयोगी बनता है आत्मसमीक्षण। समीक्षण और समता की साधना दोनो *अन्योन्याश्रित हैं। समीक्षण सम+ईक्षण अर्थात् सम्यक् प्रकार से देखना।* जहाँ समता होगी वहीं शात मानस मे समीक्षण की प्रक्रिया चल पायेगी। हर ध्यानी के लिए पहले आत्मशुद्धि एव अन्तरावलोकन अनिवार्य है क्योंकि भूमिका की विशुद्धि के विना साधना नहीं हो पाती। समीक्षण साधना नश्वर तत्त्व से हटकर अनश्वर अथवा शाश्वत तत्त्व की ओर ले जाने वाली साधना है। यह साधना विषमता के मूल का अनुसधान करती है, उसकी समीक्षा करती है और समता के मौलिक स्वरूप को अभिव्यक्ति देती है। आत्मसमीक्षा की इस पवित्र धारा मे अवगाहन करने वाला ही आत्मानद की अनुभूति कर पाता है। इस ध्यान की विधा को पूर्णता देने वाला मख्य घटक है समता।

समता-साधना सहज साधना नहीं है। यह अति दुष्कर अवश्य है पर असभव नहीं है। पद-पद पर विषमताआ और प्रतिकूलताओ का सामना करना पड़ता है। आत्मधरा पर फैली रागद्वेष की गहरी जड़ें, सस्कार का गभीर सकट उत्पन्न करती है। पर इन अकल्याणकारी आत्मशत्रुओ को हटाये बिना, अपने चैतन्य देव के दुर्लभ दर्शन नहीं हो सकते। अजस्र शक्तियो के स्रोत, अनन्त आनद का केन्द्र तथा अगणित गुणो के पुज आत्मदेव को यदि उपलब्ध करना है तो इस कठिन कटकाकीर्ण मार्ग पर सत्सकल्पों के साथ चलना होगा।

आचार्य श्री नानेश ने आत्मसमीक्षण साधना के लिए जो तीन आयाम *प्रस्तुत किये उनके पहले चरण में मन का शोधन एव मन का नियत्रण करना होता* है। मन की वृत्तियों को बाहर के भटकाव से अदर की ओर मोड़कर उसकी गतिविधियो को समझना नितात आवश्यक है। मन एक ऐसा अश्व है जो बेलगाम हो जाये तो सवार को बीहड वन मे भटका सकता है और यदि नियत्रित रहे तो इच्छित समय मे अभीप्सित गतव्य को प्राप्त करवा सकता है। चचल मन आत्मा *को कषाया और विकारो की ओर दौड़ाता है। अगणित समस्याएँ उत्पन्न करके* साधक को विपथगामी बनाने वाला यह मन ही है। यदि मन की दशा वदल पाये, सम्यक् मार्ग मिल जाये, तो वह प्रचड ऊर्जा का सवाहक बन कर आत्मसयम और तद्द्वारा चरम एव परम शाति तक पहुँचकर विश्राति दिला देता है। एक वार मन की *शक्ति की थाह मिल जाये, तो सारे भटकाव दूर हो जाये। बहिर्दर्शी चेतना* अन्तर्मुखी हो जाये तथा सर्जनात्मक शक्ति की प्राप्ति हो जाये। अत इस चचल-चपल मन को सम्यक् बोध के साथ सम्यक् दिशागामी बना दिया जाय तो यह परमात्मा का साक्षात्कार करवाने में अति सहायक हो सकता है। इसके लिए आत्मसमीक्षण की गहराइयों में अवगाहित होने की सलाह एव प्रेरणा दी जाती है।

अशुभ प्रवृत्तियो का सशोधन कर शुभ प्रवृत्तियो में सलग्न होता हुआ समीक्षण ध्यानी अपने प्रथम चरण मे अपने मन की साधना करता है। दूसरे चरण मे लक्ष्य की स्मृति अर्थात् आत्मलक्ष्य को निर्धारित करता है। जव मनोवृत्तियो का समायाजन हो जाता है तव किसी न किसी धुरी पर केन्द्रित होना अनिवार्य है।

बाहर पौद्गलिक उपलब्धियो की प्राप्ति मे यदि अथक पुरुषार्थ किया तो नश्वर पदार्थ क्षणिक सुख ही दे सकते हैं। पूर्व में ऐसे सुखो की कई बार पुनरावृत्ति हो चुकी है। अब तो शाश्वत सुख की प्राप्ति हेतु प्रयत्नशील होना चाहिए। मनुष्य का शरीर, कुलोत्पत्ति, अध्यात्म-ऊर्जा और सत पुरुषो का सत्सान्निध्य पा लेना अपने आपमे महत्त्वपूर्ण सयोग हैं। इन दुर्लभ सयोगो मे भी आत्मविकास के यात्री नहीं बन पाये तो फिर कैसे मिलगे ये स्वर्णिम सयोग? अनुकूल स्थितियाँ प्राप्त हो तो इन साधनों का उपयोग आत्मसाक्षात्कार की दिशा में किया जाये जिससे अपने लक्ष्य की अविलब प्राप्ति हो सके।

तीसरे आयाम मे पुन साधक अन्तरावलोकन कर अपने व्यावहारिक जीवन में लौटता है, अपनी अन्तर्मुखी साधना को व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक क्षण मे उतारने के लिये। अब वह अल्पसामयिक साधना के पश्चात् सपूर्ण साधना हेतु प्रयत्नशील होता है। उस आशिक साधना का प्रवाह कहीं तिरोहित न हो जाये अत उसे स्थायित्व देने के लिए व्यावहारिक जीवन को सजगता से जीना आवश्यक है, तभी साधना को मूर्त रूप मिल सकता है। शारीरिक, पारिवारिक, सामाजिक इत्यादि से सबधित कर्तव्यो के निर्वाह में अप्रमत्त होकर ही साधना को सफलीभूत किया जा सकता है। किसी भी कार्य मे प्रमाद न हो। इस हेतु अपने लक्ष्य को सदैव सम्मुख रख और जागृति के साथ शुभ योगपूर्वक क्रिया करते रहे तो अनत शक्ति के उस स्रोत को अभिव्यक्ति मिल सकती है जो अनतकाल से अदर प्रसुप्त अवस्था मे पड़ा हुआ है।

सत्सकल्पी, एकावधानी, जागरूक साधक ही समीक्षण और समत्व की साधना के योग्य होता है। ऐसी अनुशासित चेतना से उपर्युक्त तीन चरणों में अपने जीवन को परिष्कृत करें। प्रत्येक चरण के अभ्यास के लिए एक वर्ष की अवधि बतायी गयी है। इस सावत्सरिक साधना में अपने व्यवधानों का और उन्नयन का लेखा-जोखा करते रहे फिर आगे के चरणो में पदन्यास करें। प्रत्येक चरण में समर्पण भाव से अहाभाव के साथ तन्मय हो जायें। आकठ इतना डूब जाये कि बाहरी दुनिया की कोलाहलपूर्ण घटनाओं से बेखबर हो जायें तब ऐसी क्षमता उत्पन्न हो सकती है कि भीतर कुडली मारे बैठी ऊर्जा स्फुरित हो आत्मा को ऊर्ध्वशिखर तक पहुँचा दे।

आज की दुनिया भौतिकता की चकाचौंध मे अध्यात्म और दर्शन को प्राय भूल चुकी है। लोग कर्मकाण्डो और सप्रदायों में उलझकर अध्यात्म के मूल सिद्धातों को विस्मृत कर चुके हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में समीक्षण ध्यानसाधना और समतादर्शन के यथार्थ प्रकाश से पुन लोगों को अवगत कराने का महत्त्वपूर्ण कार्य आचार्य श्री नानेश ने किया।

नवभौतिकवादियों तथा पाश्चात्य चितको ने अनेक वस्तुएँ हमे प्रदान की किंतु हमें अपने आपसे अलग कर दिया। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में काफी उन्नति हुई है किन्तु मानवीय मूल्य खो गये हैं। ऐसे विकट समय मे हम उस महामानव के यथार्थ चितन तथा स्वानुभूति से अनुरजित उस आत्मतत्त्व की आर यदि ध्यान दें और समता चिन्तन तथा समीक्षण ध्यानसाधना का मार्ग अपनाये तो हम अपनी अस्मिता की रक्षा मे सफल हो सकते हैं।

मुक्ता पाने के लिए समुद्र की अतल गहराइयो में डुबकी लगानी पड़ती है। हीरे की तलाश में अत्यत गहरी खानो में पैठना पड़ता है। मगर योग की मुक्ताओं और हीरों का ढेर समक्ष हो तो सिर्फ उठाने का या स्वीकार करने का श्रम तो करना पड़ता है। बिल्कुल वैसे ही आत्मसमीक्षण की अनमोल विधा क्रान्तपुरोधा आचार्य देव ने हमारे समक्ष स्वय गहरी खोज कर प्रस्तुत कर दी है। उस अभिनव सुपरीक्षित, सुपरिष्कृत विधि को समभाव के साथ जीवन के प्रत्येक क्षण और चेतना के प्रत्येक कण में समाहित करने की आवश्यकता है। यदि हम ऐसा करने में सफल होते हैं तो बहिर्जगत् की विषमतापूर्ण स्थितियो और तनावों से तो मुक्ति प्राप्त कर ही लेंगे, अतर्जगत् की असीम शाति मे रमण करने की स्थिति भी सुनिश्चित कर लेगे।

◆

प्रो एच एस वर्डिया

समीक्षणध्यान साधना . युगीन आवश्यकता

पूज्य श्री नानशाचार्य ने धर्म को अपनी आत्मा पर लगे कषायो को हटाने एव आगामी जीवन को श्रेष्ठ बनाने का ही साधन नहीं माना वरन् धर्म के द्वारा व्यक्ति व समाज को व्यवस्थित, सयत एव अनुशासित बनाने का भी प्रयास किया। इस प्रकार इहलोक एव परलोक के लिये धर्म सकारात्मक भूमिका का निर्वहन करे, यह स्व आचार्यश्री का मानना था। इस लक्ष्य को प्राप्त करने तथा समाज में व्याप्त कुरीतियो को दूर करने हेतु उन्होंने अथक प्रयास किये। उन्होंने अनुसूचित जाति एव अनुसूचित बहुल क्षेत्रो में वर्षों विहार एव वर्षावास किया, वहाँ के निवासियो को शाकाहारी बनाया एव मद्यपान-विसर्जन के लिये उन्हे प्रेरित किया जिससे उनकी अनेक आर्थिक व सामाजिक समस्याए दूर हो सकीं।

वैसे तो स्व आचार्य श्री नानेश का सम्पूर्ण जीवन ही सतत एव सजग आध्यात्मिक साधना का था परन्तु धर्म को सामाजिक परिवश मे उद्घाटित करके उन्होंने जैन धर्म को अनूठी मौलिकता प्रदान की। उनका यह दृढ मत था कि सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन मे धर्म की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। इसी उद्देश्य से आप मध्यप्रदेश एव राजस्थान के उन क्षेत्रो म विहार करते रहे जहाँ मासाहार, मदिरापान, हिसा आदि अनेक बुराइयाँ व्याप्त थीं। आपने अपने प्रभाव द्वारा उन आदिवासियों एव अनुसूचित जातियो के लोगो से मास, मदिरा, हिसा आदि बुराइयाँ छुड़वा कर उनमें जैन धर्म के सस्कार डाले तथा उन्हे जैन जीवन पद्धति के अनुरूप रहने की प्रेरणा प्रदान की।

यहाँ यह कथन प्रासगिक होगा कि जहाँ इमारइल दुर्खाइम ने धर्म को सामाजिक नियत्रण ही माना, मार्क्स ने सामाजिक परिवर्तन का कारण आर्थिक कारका में देखा और ऑगबर्न ने तकनीकी परिवर्तन मे सामाजिक परिवर्तन का कारण ढूँढा वहीं आचार्य श्री नानेश ने धर्म को सामाजिक परिवर्तन का एक सशक्त एव प्रभावी कारक बतलाया। साथ ही उन्होने धर्म को सामाजिक परिवर्तन अथवा पुनर्रचना के साथ-साथ व्यक्तित्व (Personality) के निर्माण का भी सशक्त माध्यम माना एव इस
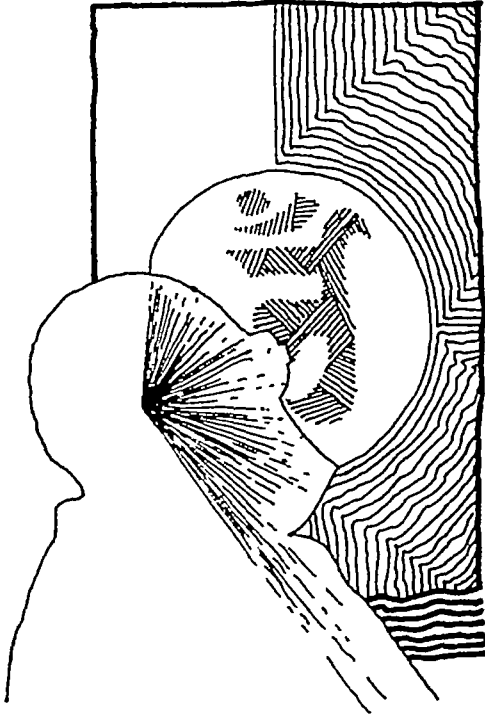
दिशा मे वे जीवन पर्यन्त चिन्तन मे व्यस्त रहे कि किस प्रकार मानव के सतुलित व्यक्तित्व का निर्माण किया जाए।

व्यक्तित्व के निर्माण, सतुलित विकास एव कषायो के बध से आत्मा को मुक्त करने हेतु आचार्य श्री नानेश ने समीक्षणध्यान के रूप में जैन व जैनेतर समाज को ऐसी रामबाण औषध प्रदान की है जिसका सेवन मनुष्य की वर्तमान समस्याओ का निराकरण करके उसकी आत्मा को राग-द्वेष रहित बना सकता है।

'समीक्षणध्यान' मे प्रयुक्त ध्यान शब्द पर विचार आवश्यक है। प्राचीन काल से ही धर्म मे ध्यान पर विशेष जोर दिया जाता रहा है। ध्यान के प्रमुख प्रयोक्ताओ मे महावीर, बुद्ध एव पातजली का नाम लिया जाता है। महावीर का मूल सूत्र है 'अप्पा अप्पामि रओ' अर्थात् तुम अपने आप मे (भीतर) रमण करो। इसी प्रकार बुद्ध कहते हैं 'अप्प दीपो भव' अर्थात् अपने दीप स्वय बनो। दोनों का आशय है कि ध्यान द्वारा शरीर के भीतर सूक्ष्म शरीर मे रमण करके अपनी शक्ति को पहचानो, उनका सम्यक् उपयोग करो एव आत्मा एव परमात्मा के मध्य सम्बन्ध स्थापित करो। इस प्रकार ध्यान आत्मा व परमात्मा के मध्य एक सुदृढ सेतु है जिस पर चल कर आत्मा स्वय परमात्म स्वरूप प्राप्त कर लेती है। बौद्ध धर्म मे प्रचलित ध्यान पद्धति को विपश्यना ध्यान-पद्धति कहा जाता है। जैन धर्म में स्व आचार्य तुलसी ने भी प्रेक्षाध्यान पद्धति का प्रचार किया। इन दोनों ध्यान-पद्धतियो मे साधक श्वासानुश्वास की शरीर के विभिन्न अवयवों पर अनुभूति करता है जिससे मस्तिष्क विषय विशेष पर केन्द्रित हो जाता है एव चिन्तन-प्रक्रिया गतिशील हो जाती है जबकि समीक्षणध्यान पद्धति का लक्ष्य आत्मशक्ति को जाग्रत करना, आत्मशक्ति को पहचानना एव कषायो के आवरण को हटाना है। श्री शान्ति मुनि के अनुसार 'विपश्यना सक्रिय ध्यान एव प्रेक्षाध्यान जैसे विभिन्न मनोरजक, सागर की सतह पर तैरने के समान कुछ उथले प्रयोग चले। कुछ लोगो को सामयिक शान्ति मिली, एक आकर्षण बढ़ा किन्तु इन सभी प्रयासो मे देह एव श्वास-प्रश्वास पर ही अधिक बल दिया गया, आत्मशक्ति को प्राय ओझल ही रखा गया। परिणामत क्षणिक स्नायविक विश्रान्ति के अतिरिक्त इससे अधिक लाभ नहीं मिल सका।'[1]

> आचार्य श्री नानेश ने समीक्षणध्यान के रूप में जैन व जैनेतर समाज को एक ऐसी रामबाण औषध दी है जिसका सेवन मनुष्य की वर्तमान समस्याओं का निराकरण करके उसकी आत्मा को राग-द्वेषरहित बना सकता है। चेतना को ग्रहण करने, आध्यात्मिकता में प्रवेश पाने, वर्तमान जीवन को तनावमुक्त रखने तथा भविष्य को सुखद एव शांतिपूर्ण बनाने का सर्वोत्तम साधन समीक्षणध्यान साधना ही है।

समीक्षणध्यान साधना सम्प्रदायो से ऊपर विश्व के सभी मानवो के लिये की जाने वाली साधना भी कह सकते हैं क्योकि यह आत्मिक आनन्दपूर्ति एव आत्मानुभवता प्रदान करने वाली क्रिया है। समीक्षण शब्द दो शब्दो से बना है सम+ईक्षण अर्थात् सम्यक् भाव से अपने अन्दर देखना। इसे मनोवैज्ञानिक Introspection *(आत्म-विश्लेषण)* कहते हैं, परन्तु समीक्षणध्यान मात्र Introspection नहीं है, इसकी परिधि इससे कई गुना अधिक व्यापक, विस्तृत एव विशाल है। समीक्षणध्यान साधना का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य साधक को जड़ के आकर्षण से विमुक्त करके उसे चैतन्य मे गतिमान बनाना है क्योंकि चैतन्य अनश्वर एव शाश्वत है। समीक्षणध्यान मे साधक की समस्त ऊर्जा चैतन्य के साथ आत्मसात हो जाने मे लगती है एव जड़ पदार्थों मे उसको रस की अनुभूति नहीं होती है। इस शब्द की व्याख्या में ऊपर कहा गया है कि समीक्षण का अर्थ सम्यक् दृष्टि से अपने भीतर देखना है क्योकि ध्यान जब सम्यक् ज्ञान से अनुप्राणित हो तो वह व्यक्ति को आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँचाने में सहायक होता है। समीक्षणध्यान के साधक का भाव व ज्ञान दोनों ही सम्यक् होने चाहिए क्योकि इस ध्यान प्रक्रिया का उद्देश्य है कि हम अपनी आध्यात्मिक यात्रा स्थूल से सूक्ष्म की ओर करे। इसमें व्यक्ति आत्मा पर पड़े विभिन्न कषायों का अपनी ध्यानस्थ मुद्रा में निरीक्षण करता है, कषायों के कारणो को खोजता है एव उनसे मुक्त होने का निरन्तर प्रयास करता है।

समीक्षणध्यान प्रक्रिया—समीक्षणध्यान मे सर्वाधिक आवश्यकता चेतनता अथवा जागरूकता की है। इस प्रक्रिया के द्वारा अचेतन मस्तिष्क (Unconscious Mind) चेतन हो उठता है एव समस्त कलुषित प्रवृत्तियो से सघर्ष कर शुचिता को ग्रहण करने का प्रयास करता है। समीक्षणध्यान के द्वारा साधक अपने भीतर की गहराइयों में स्थित समस्त कलुषित कामनाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है क्योकि इस ध्यान प्रक्रिया के माध्यम से व्यक्ति अपने भीतर स्थित अलौकिक आत्मशक्ति से परिचित होता है। यह ध्यान पद्धति अन्य ध्यान पद्धतियों के समान ही श्वासोनुश्वास की प्रक्रिया से प्रारम्भ होती है। समीक्षणध्यान मे साधक अपने हाथ को नाक के पास रख कर यह अनुभूति करता है कि श्वास के गमनागमन की प्रक्रिया किस रन्ध्र से हो रही है। श्वास का गमनागमन यदि दाहिने रन्ध्र से हो रहा है तो यह मानना चाहिए कि इड़ा नाड़ी सक्रिय है एव यदि बाये रन्ध्र से हो रहा है तो यह माना जाएगा कि पिगला नाड़ी सक्रिय है। साधक यह प्रयास करता हे कि दोनो रन्ध्रों की गति समान अवस्था मे हो सके क्योंकि ऐसा होने पर सुषुम्ना नाड़ी सक्रिय बनती है। सुषुम्ना नाड़ी का सक्रिय बनना साधना की सफलता का प्रथम पड़ाव है क्योकि सुषुम्ना नाड़ी के जाग्रत होने पर ही एकाग्रता रखने के सामर्थ्य में वृद्धि होती है एव हमारा मन जो बाह्य जगत् (जड़ जगत्) मे रमण कर रहा होता है, ध्यान के क्षणो में वह (मन) आन्तरिक शरीर एव सूक्ष्म शरीर में स्थिर हो जाता है, जिससे हमारे शक्ति केन्द्र, आनन्द केन्द्र, शुद्धि केन्द्र, दर्शन केन्द्र एव ज्ञान केन्द्र सचालित होते हैं। समीक्षणध्यान का उद्देश्य हमारे शरीर के भीतर विराजित आत्मा को देखना, सुनना एव उसे कषायरहित बना कर परमात्मा के निकट ले जाना है। उसे हम आत्मा की निकट से, सूक्ष्मता से अनुभूति करने की प्रक्रिया भी कह सकते है। सामान्य-जीवन मे हम श्वास के द्वारा प्राणवायु को फेफड़ो मे ले जाते हैं एव दूषित वायु को वाहर निकालते हैं। सामान्य भाषा मे प्राण वायु (Oxygen) का गमनागमन फेफड़ो तक सीमित रहता हे परन्तु समीक्षणध्यान क्रिया के माध्यम से प्राणवायु का शरीर के महत्त्वपूर्ण अगा-प्रत्यगों के साथ सम्पर्क साधा जाता है और अन्तत साधक श्वास-प्रश्वास की क्रिया के माध्यम से आत्मा के साथ सम्पर्क स्थापित कर लेता है।

श्वासानुश्वास के माध्यम से साधक अपनी आत्मा पर आच्छादित कषायों (क्रोध, मान, माया एव लोभ) को बाहर निकाल कर आत्मा को स्वच्छ, निर्मल व पवित्रतम बनाने का उपक्रम करता है। उदाहरण के तौर पर यदि क्रोध के भाव भीतर उमड़ रहे हो, तो उस समय साधक क्रोध के भावों मे उलझ कर वाणी व शरीर के अन्य अवयवो द्वारा प्रकट नहीं करे। वह (साधक) श्वासविधि के माध्यम से शान्त प्रशान्त श्वास वर्गणा के स्कन्धो को भीतर खींचे, जितना खींचा जा सके। एक-दो क्षण श्वास का भीतर कुम्भक करे और फिर लयबद्ध भीतरी श्वास को बाहर निकालने का प्रयास करे। ऐसा कुछ समय तक करने पर क्रोध का प्रभाव क्षीण होता हुआ बाहर निकल जाएगा। शान्त वर्गणाओ से सम्बन्धित श्वास-प्रश्वास वर्गणाओ के बार-बार सूक्ष्म शरीर के पास प्रवेश पाने से क्रोध रूपी कषाय का भाव स्वत समाप्त होता हुआ प्रतीत होगा। कोध के समान ही साधक इसी प्रकार की प्रक्रियाओं के माध्यम से आत्मा पर आवरण के रूप मे अवस्थित अन्य कषायो—मान, माया एव लोभ से भी अपने आपको मुक्त कर सकता है। यहाँ यह कहना प्रासगिक होगा कि ये चारो कषाय स्वतन्त्र व स्वायत्त नहीं है वरन् ये परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धो मे एक-दूसरे से वैसे ही गुथे हुए हैं जैसे रग-बिरगे वस्त्र के तार गुथे होते हैं। क्रोध का कारण भी मान, माया, लोभ को ही कहा जा सकता है और इसी प्रकार मान (अह) की तुष्टि हेतु क्रोध, माया व लोभ को व्यक्ति पकड़े रखना चाहता है। इसलिए एक कषाय पर विजय प्राप्त करते ही अन्य कषायो पर स्वत सहज रूप से विजय प्राप्त की जा सकती है। अत कहा जा सकता है कि समीक्षणध्यान साधना वह विलक्षण पद्धति है जिससे कषायो को आत्मा से दूर करके आत्मा को निर्मल व पवित्र बनाया जाता है। यह प्रक्रिया साधक में भौतिक या जड़ पदार्थो के प्रति निष्काम प्रवृत्ति (Detached attitude) को विकसित करने वाली प्रक्रिया बन सकती है। इस प्रकार समीक्षणध्यान प्रक्रिया म श्वास-प्रश्वास के द्वारा साधक अपनी इच्छाओं पर नियत्रण प्राप्त कर लेता है।

समीक्षणध्यान वाह्य वातावरण—जैन तत्त्व विवेचना पद्धति में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना गया है। समीक्षणध्यान साधना

तभी शुद्ध व प्रभावशाली बनेगी जब उसमे द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की शुद्धता हो। इनमे से प्रत्येक का सक्षिप्त विवरण अपेक्षित है।

द्रव्य की शुद्धता—बैठने के स्थान पर ऊनी या सूती सादे वस्त्र (बैठके) का उपयोग करना चाहिये। इसी प्रकार समीक्षणध्यान योगी को शुद्ध सात्विक हल्का भोजन करना चाहिये। कहा गया है कि 'जैसा अन्न, वैसा मन' अत एकाग्रता के लिये शुद्ध सात्विक आहार खाना चाहिये।

क्षेत्र की शुद्धता—ध्यान के लिये यथासभव एकान्त स्थान हो जो शोरगुल से मुक्त हो जिससे साधक की एकाग्रता नष्ट नहीं होती हो। यदि मकान मे ही ध्यान साधना की जाय तो ध्यान रखना होगा कि कोई भी परिवारजन अथवा पड़ोसी एकाग्रता को कम तो नहीं करेगा। यदि ऐसी सभावना हो तो जगल में जाकर भी साधना की जा सकती है।

काल—ध्यान साधना में समय का बड़ा महत्त्व है। ध्यान साधना का सर्वोत्तम समय रात्रि तीन बजे से पाच बजे तक का है। इस समय वातावरण शुद्ध-शान्त होता है।

भाव—ध्यान का उद्देश्य आत्मा व परमात्मा के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके आत्मा को परमात्मा मे आत्मसात करना है। ध्यान के विभिन्न प्रकारो की अपेक्षा समीक्षणध्यान इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अधिक प्रभावशाली है। पूर्व में स्पष्ट किया जा चुका है कि समीक्षण का अर्थ है—सम+ईक्षण अर्थात् सम्यक् भाव से देखना। सम्यक् भाव से देखने हेतु साधक को राग-द्वेष की भावना से मुक्त होकर 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को प्रबल बनाना होगा। विश्व के सभी प्राणियों के प्रति दया, करुणा, प्रेम व स्नेह का भाव विकसित करना होगा और यह तभी सभव है जब व्यक्ति अहिसा व समता को अपनी जीवनशैली का अभिन्न अग बना ले। समीक्षणध्यान के साधक में भावो की पवित्रता होनी ही चाहिये।

वर्तमान सामाजिक व्यवस्था मे समीक्षणध्यान का महत्त्व वर्तमान समय को असन्तोष का समय कहा जा सकता है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के द्वारा समस्त सुख-सुविधाएँ उपलब्ध होने के कारण व्यक्ति जड़ पदार्थो की ओर आकर्षित हो रहा है एव उन्हे प्राप्त करने मे असफल होने पर वह (व्यक्ति) तनावपूर्ण जीवन जीता है अथवा हत्या व आत्महत्या जैसे निकृष्ट कदम उठाता है। गत दो-तीन शताब्दियों से वैज्ञानिक व तकनीकी विकास के साथ-साथ मानवमूल्यों का भी ह्रास हो रहा है। आज भौतिकवादी शिकजे में व्यक्ति पिसा जा रहा है। इस भौतिकवादी सस्कृति की विशेषता का ही परिणाम है कि हम उपभोक्तावादी सस्कृति एव वैयक्तिकतावादी मूल्यो (Individualism) को महत्त्व देने लगे हैं। परिणामत मानव का लक्ष्य आज मात्र अपने और मात्र अपने लिये, ही अर्जित करना व उपभोग करना रह गया है। परिणाम यह हुआ है कि हमारी सामाजिक सस्थाऍ यथा परिवार, जाति व वर्ग, विघटित हो रहे हैं। समय दूर नहीं है, जब सयुक्त परिवार इतिहास के पन्नो मे सिमट जायेगा। सामाजिक सस्थाओं में विघटन एव मानवमूल्यो मे ह्रास के कारण चारो ओर हिसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है, आतकवाद का घिनौना स्वरूप उभर रहा है और आर्थिक साम्राज्यवाद का विस्तार हो रहा है। इस प्रकार व्यक्तिवाद, भौतिकवाद एव उपभोक्तावाद ने सामाजिक विषमता के विकराल रूपों को जन्म दिया है। कॉर्ल मार्क्स के अनुसार विश्व दो वर्गो (i) Haves एव (ii) Have nots अर्थात् धनी और गरीब, मे विभक्त है। इस विषमता के कारण ही चारो ओर व्यक्ति सामाजिक व भावात्मक स्तर पर तनावपूर्ण जीवन जी रहा है और यह तनाव अनेक मानसिक व शारीरिक गभीर बीमारियो का कारण बनता जा रहा है यथा—हृदय रोग, रक्तचाप, अल्सर, डायबिटीज, केन्सर, टी बी आदि एव मनुष्य अल्पावधि के लिये ही सही पर तनावरहित होने के लिये घातक ड्रग्स का प्रयोग करने लग गया है जिससे सामाजिक व वैयक्तिक विघटन के साथ-साथ नैतिक मूल्यों का पतन भी हो रहा है। आज की यह महती आवश्यकता है कि विश्व को तनावरहित बनाने के प्रयास हों। ऐसे प्रयासो की शृखला में समीक्षणध्यान साधना का अपना विशिष्ट स्थान है क्योकि यह आध्यात्मिक स्तर के साथ-साथ व्यक्तिगत व सामाजिक विघटन तथा तनावों से मुक्ति का सफलतम सहज उपाय है। समीक्षणध्यान योगी उपभोक्तावादी सस्कृति के मोहपाश में अपने आपको नहीं बाधता। वह तो सरल,

सादे व सात्त्विक विचारो का पोषक होता है। आज विश्व को तनावरहित बनाने के लिये समस्त राजनेता, आध्यात्मिक गुरु, समाजसेवी व्यक्ति एव सभी प्रबुद्ध व्यक्ति चिंतित है कि किस प्रकार वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के कारण उत्पन्न विकासधारा के नकारात्मक पक्षो को कम किया जाय एव सास्कृतिक मूल्यो को जीवन्त रखा जाय, यह उनकी प्रमुख चिंता है। ऐसी स्थिति मे समीक्षणध्यान पद्धति व्यक्ति को तनावमुक्त करने का एक सफलतम साधन बन सकती है। श्वास-प्रश्वास की विशिष्ट ध्यान पद्धति व्यक्ति को तनावरहित बना कर उसे नवस्फूर्ति प्रदान करती है जिससे वह नवचेतना और नवआशा के साथ अपने सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक व धार्मिक दायित्वो की पूर्ति के प्रति अधिक सजग हो जाता है।

आत्म-निरीक्षण (Introspection) व्यक्ति यदि अपने गुणात्मक-अवगुणात्मक पक्षों को देखने का अभ्यास करे तो वह सुधार की ओर उन्मुख हो सकता है तथा दूसरो की व्यर्थ म निन्दा करने की आदत से भी उसे मुक्ति मिल सकती है। कहा भी गया है—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझ सा बुरा न कोय।।

दूसरा के गुण-दोषो की चर्चा करने से पूर्व हम अपनी बुराइयाँ खोजने का अभ्यास करना चाहिये। आत्मनिरीक्षण को एलफ्रेड एडलर, जुग, फ्रायड, जिन्सवर्ग व यग जेसे प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व निर्माण व विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना है। आत्मनिरीक्षण मे व्यक्ति की दृष्टि भौतिक जगत् से हट कर अपने भीतर केन्द्रित हो जाती है जिससे व्यक्ति अपने अच्छे-बुरे पक्ष का सामाजिक-सास्कृतिक-पारिवारिक-आर्थिक सदर्भो मे निरीक्षण करता है, अपने बुरे पक्ष का त्यागने का सकल्प करता है एव अच्छे पक्ष का अधिक सुदृढ बनाने का प्रयास करता है। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिको का तर्क है कि आत्मनिरीक्षण का अभ्यास वैयक्तिक व सामाजिक विघटन से बचाने का सफलतम प्रयोग है।

अत निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि चेतन्य को ग्रहण करने, आध्यात्मिकता मे प्रवेश पाने, वर्तमान जीवन को तनावमुक्त बनाने तथा भविष्य को सुखद व शान्तिपूर्ण बनान का समीक्षणध्यान सर्वोत्तम उपाय है। यह मनुष्य को तनावो से छुटकारा दिला कर तथा उसके मन को हल्का करके उसके लिये सहज रूप में जीवन जीने की स्थितियो का निर्माण करने मे सहायक होता है। यह अह विसर्जन का योगाभ्यास है तथा विश्व म व्याप्त समस्त समस्याओ (साम्राज्यवाद, शोषण, आर्थिक विषमता, अपराध, हिसा आदि) को दूर करने का सफलतम साधन है। आज विकसित राष्ट्रों म, जहाँ उपर्युक्त समस्याएँ बढ रही हैं एव भौतिकवादी व उपभोक्ता प्रधान जीवन-पद्धति ने मानव को मात्र एक वस्तु बना कर रख दिया है, वहाँ समीक्षणध्यान का विशेष महत्त्व है। क्याकि उनकी प्रकृति के परिष्कार का यही सर्वाधिक उपयुक्त व परिणामदायी साधन है। अत सम्प्रेषण के विभिन्न साधनों द्वारा समीक्षणध्यान की प्रक्रिया और महत्त्व का एसे राष्ट्रों मे विशेष रूप से तथा अन्यत्र सामान्य रूप से प्रसार-प्रचार किया जाना आवश्यक है। यदि इस दिशा मे हम कुछ कर सके तो नि सन्देह यह हमारी, उस भव्य आत्मा के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी। ◆

सदर्भ

1 आचार्य श्री नानेश विचार दर्शन शान्तिमुनि
2 समीक्षण ध्यान विधि विधान शान्तिमुनि
3 सामाजिक विचारक दोषी एव जैन
4 Elements of Social Psychology B Kuppu Swamy
5 *The Psychology of Society* Mons Ginsberg
6 Marxist Sociology Tom Bottomore

मगनलाल मेहता

समीक्षणध्यान साधना और वृत्ति-संशोधन
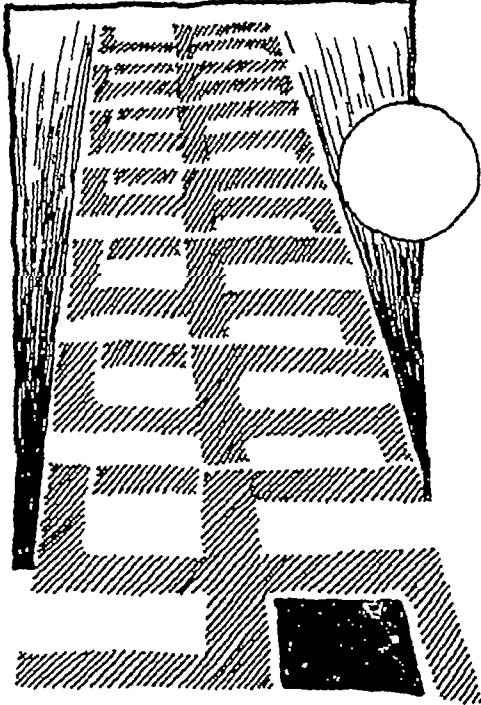
ससार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है लेकिन मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने प्रयास से उस सुख को प्राप्त कर सकता है। हमारी सबकी दौड़ इसी एक दिशा में चल रही है—सुख की प्राप्ति। लेकिन हम जब गहराई से चितन करते हैं तो हमें लगता है कि हमारी दिशा सही नहीं है—हम जहाँ सुख की कल्पना कर रहे हैं, भौतिक साधनो मे, सासारिक रिश्तो मे, वहाॅ वास्तव मे सुख है नहीं। सच्चा सुख और शाति हमारे स्वय के भीतर विद्यमान है और हमारा प्रयास यदि सही दिशा म हो तो हम उसे प्राप्त कर सकते हैं।

वह सही दिशा क्या है, इसे जानन के लिये हमें सबसे पहले यह देखना होगा कि हमारे लिये ससार परिभ्रमण का मुख्य कारण क्या है। वह कारण है हमारे द्वारा किये गये कर्म। हमारी मन, वचन और काया की प्रवृत्ति जिनके कारण कर्मबध होता है। इन्हीं कर्मबधो के कारण मनुष्य कभी नरक गति मे, कभी तिर्यंच मे, कभी मनुष्य में और कभी देवगति में भटकता रहता है। सदा दुख की घाणी में पिलता रहता है। अपने इन्हीं पूर्वकृत कर्मो क कारण मनुष्य कभी क्षणिक सुख की अनुभूति करता है और कभी दुख की। एक साधक का लक्ष्य होता है इस क्षणिक सुख अथवा दुख की अनुभूति से ऊपर उठकर एक ऐस सुख की प्राप्ति करना जिसका कभी अत न हो—अव्याहत बाधारहित सुख, जिसकी प्राप्ति केवल माक्ष में ही हो सकती है।

लक्ष्य निर्धारित होने के बाद हमें उस प्रक्रिया पर चितन करना होगा जिसके द्वारा हम अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ सके। हमने बहुत अच्छी तरह समझ लिया है कि हमारे कर्म ही हमारे लिये लक्ष्य प्राप्ति में बाधा बने हुए है। इसलिए पहले इन कर्मो की उत्पत्ति के कारण और उनसे मुक्त होने की प्रक्रिया हमें समझनी होगी। इस कर्मबध की प्रक्रिया का मुख्य कारण है हमारी वृत्तियाँ। हमारी ये वृत्तियाँ

क्या हैं, कैसे उत्पन्न होती हे और कैसे हम इनसे छुटकारा पा सकते हैं इसका सरलतम साधन है समीक्षणध्यान साधना।'

आचार्य श्री नानश ने अपनी साधना के निचोड़स्वरूप यह सरलतम प्रक्रिया हमारे सामने प्रस्तुत की है। इसी के आधार पर अपने जीवन में अनेक विषम परिस्थितियों म भी विजय प्राप्त की और अपने समभाव को कभी विचलित नहीं होने दिया।

वृत्तियों से तात्पर्य है—मनुष्य का स्वभाव, उसकी आदते, जो उसे कोई भी कार्य करने के लिये सदैव प्रेरित करती रहती हैं। ये वृत्तियाँ मनुष्य को इतनी बुरी तरह से जकड़ लेती हैं कि कई बार मनुष्य चाहते हुए भी इनसे मुक्त नहीं हो पाता है। ये वृत्तियाँ शुभ भी होती हैं और अशुभ भी। जिनके कारण हमें पुण्य और पाप रूपी कर्मबध होते रहते हैं। क्रोध की वृत्ति, अहकार की वृत्ति, लोभ की वृत्ति, छल-कपट, हिसक वृत्ति, झूठ, चोरी, व्यभिचार, जुआ, नशाखोरी आदि की भावनाआ से प्रेरित होकर कार्य करना, ये सब मनुष्य की दूषित वृत्तियाँ होती हैं जो उसके लिये पाप कर्मबध का कारण बनती हैं। इनके विपरीत करुणा, सेवा, दया, दान, परोपकार, गुण-दाप, सदाचार, क्षमा आदि शुभ वृत्तियाँ होती हैं जो हमारे लिये पुण्य कर्मबध का कारण होती हैं। प्रत्येक मनुष्य में इनमे से एक अथवा अनेक वृत्तियाँ होती हैं जो समय-समय पर निमित्त के अनुसार उभरती रहती हैं। हमारा पूरा जीवन इन्हीं से सचालित होता रहता है।

इन वृत्तियों के बनने के दो प्रमुख कारण होते हैं। एक तो अपने पूर्वजन्म म किये गये कर्मो के अनुसार जो बध हो जाता है उसके कारण, लेकिन इन वृत्तियों के निर्माण होने का दूसरा प्रमुख कारण है मनुष्य के वर्तमान जीवन के ससर्ग। जिस परिवार मे वह उत्पन्न हुआ है उसका वातावरण कैसा है, लोगा की मनोवृत्ति कैसी है, घर का खान-पान, रहन-सहन, चाल-चलन कैसा है इस पर बहुत कुछ निर्भर होता है। कुछ बड़ा होने पर जब उसका बाहरी लोगों से सपर्क होता है—समाज में, व्यवसाय में, तो जिस तरह के लोगों के साथ उसका अधिक सपर्क होता है वैसी ही उसकी वृत्तियाँ बनती रहती है। जुआरी के साथ रह कर व्यक्ति जुआ खेलना सीख जाता है, चोर के साथ रहकर चोरी करना और किसी सत के साथ रहकर सादा-सरल जीवन जीना सीखता है। मनुष्य धीरे-धीरे अपने ससर्ग के कारण इन वृत्तियो से इस तरह जकड़ जाता है कि कई बार प्रयास करने पर भी वह इनसे मुक्त नहीं हो पाता है।

> संसार का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है लेकिन मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो अपने प्रयासों से उस सुख को प्राप्त कर सकता है। अपने सारे प्रयासों के बाद भी यदि वह सुख प्राप्त नहीं कर पाता तो इसका कारण है। सुख हमारे भीतर विद्यमान है और यदि हमारे प्रयास सही दिशा में हों तो हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। यह सही दिशा है वृत्तियों से छुटकारा पाने की जिसकी सरलतम विधि आचार्य श्री नानेश ने समीक्षणध्यान साधना के रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत की है।

हमारी ये वृत्तियाँ ही हमारे लिए ससार-परिभ्रमण का मुख्य कारण बनी हुई हैं और इनस पूर्ण रूप से मुक्त होना ही एक साधक के जीवन का लक्ष्य हाता है। हमें शुभ और अशुभ दोनो ही प्रकार की वृत्तियों से मुक्त होना होगा। पिजरा चाहे सोने का हो अथवा लोहे का, पिजरा ही होता है। लेकिन व्यवहार मे हम दखते हैं कि अशुभ वृत्तियाँ हमे अधिक जकड़े हुए हैं बजाय शुभ के और अशुभ वृत्तियों को छोड़ना और उनसे मुक्त होना भी अत्यधिक कठिन है बजाय शुभ वृत्तिया क। अत हमारा पहला कर्तव्य होता है कि हम अपनी इन अशुभ वृत्तियो को शुभ की ओर मोड़ने का प्रयास करें। एक बार हमारी ये अशुभ वृत्तियाँ हमसे छूट गई तो फिर शुभ वृत्तिया का छोड़ना तो बहुत आसान हो जाएगा।

हमारी इन अशुभ वृत्तियों को अशुभ से शुभ की ओर माड़ने की साधना का नाम ही है 'समीक्षणध्यान साधना।' इस साधना पद्धति के द्वारा हमारा प्रयास होता हे कि हमारी जो भी अशुभ वृत्तियाँ हैं चाहे वे क्रोध, मान, माया, लोभ रूप कपायो की हो अथवा हिसा, झूठ, चारी, व्याभिचार आदि की हों अथवा राग या द्वेष की हा, इन्हे अशुभ से शुभ की ओर मोड। एक बार यदि

हमारी ये अशुभ वृत्तियाँ हमसे छूट गई तो शुभ वृत्तियो को छोड़ना तो अत्यधिक आसान हो जायेगा।

ध्यान शब्द का अर्थ है मन को किसी एक दिशा मे केन्द्रित करना और इसीलिये अशुभ चिन्तन को भी, जब वह एक ही दिशा में केन्द्रित हो, ध्यान ही कहा है। आर्तध्यान और रौद्रध्यान इन्हीं अशुभ दिशाओं के चितन का बोध करवाते हैं। ये अशुभ ध्यान एक साधक के लिये वर्जित हैं। ये भी एक तरह की अशुभ वृत्तियॉ ही हैं। हमारा लक्ष्य है धर्म-ध्यान की ओर अग्रसर होना। ध्यान को साधना की ओर अग्रसर होने के लिये कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती है। मन को एकाग्र करना इतना आसान नहीं है। मन को अतिचचल कहा है। वह एक मिनट में हजारो मील की यात्रा कर लेता है। हम बहुत अच्छी तरह जानते है कि एक सामायिक तो दूर की बात है एक माला भी हम एकाग्रतापूर्वक नहीं गिन सकते हैं। उतने समय में भी हजारों विकल्प हमारे मन में उत्पन्न होते रहते हैं।

अत ध्यान साधना के आवश्यक तत्त्वों का चितन और अभ्यास हमारे लिये प्रथम आवश्यकता होगी। सबसे पहले आसन की दृढता। किसी भी आसन पर चाहे वह सुखासन हो अथवा और कोई आसन, उस पर कुछ समय तक बैठे रहने का अभ्यास हमे करना होगा। ध्यान साधना के समय हमारे नेत्र बद होने चाहिये ताकि हमे बाहरी दृश्य विचलित न कर सकें। साधना के लिये समय और स्थान का चयन भी अत्यत महत्त्वपूर्ण है। साधना ऐसे समय हो जब हमारा मस्तिष्क अधिक से अधिक शात और ताजा हो। प्रात सूर्योदय से पूर्व का समय अथवा रात्रि में सोने से पूर्व का समय इसके लिये काफी उपयुक्त रहता है। स्थान एकदम कोलाहलरहित, शात और एकान्त होना चाहिये। इसीलिये पूर्व में सघन पर्वत की गुफाओ में, श्मशान मे अथवा जगलो में एकान्त स्थान पर साधना की जाती थी। साधना में बैठने के पश्चात् भी मन को एकाग्र करने के अनेक उपाय विभिन्न साधना पद्धितियों मे बताये गये हैं। जैसे ***प्राणायाम की क्रिया,*** श्वास पर मन को केन्द्रित करना, ***रूपस्थ ध्यान,*** किसी रूप अथवा आकृति पर मन को केन्द्रित करना और ***पदस्थ ध्यान,*** किसी पद पर मन को एकाग्र करना। जिस क्रिया के द्वारा हमारा मन आसानी से और अधिक देर तक एकाग्र रह सके वह क्रिया हमारे लिये श्रेष्ठ है। मन को इस तरह एकाग्र करने के पश्चात् हम अपनी 'समीक्षणध्यान साधना' की मुख्य क्रिया—***वृत्ति सशोधन*** की ओर अग्रसर होत हे।

वृत्ति सशोधन मे हम अपनी एक-एक दूषित वृत्ति का चितन करते है। उसकी उत्पत्ति के कारण, और तत्पश्चात् उससे होने वाली हानियों का चितन करते हुए उससे छुटकारा पाने का सकल्प करते हैं। जैसे हमारी क्रोध की वृत्ति—उसकी उत्पत्ति के प्रमुख कारण किसी के द्वारा अपमानित होना, आर्थिक हानि, स्वार्थ पर चोट लगना, इच्छा के विपरीत कोई कार्य होना आदि प्रमुख हैं। क्रोध के आवेश में अनेक प्रकार के तोड़-फोड़ के कार्य हम से हो जाते है जिनके द्वारा आर्थिक हानि होती है। मारपीट से अग-भग तक हो सकता है। हमारे स्वय के मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की अपूरणीय क्षति हो सकती है। घर का वातावरण दूषित, अशान्त और क्लेशमय हो सकता है और क्रोध करने के उपरात भी जिस कारण से स्थिति बिगड़ी वह पुन ठीक नहीं हो सकती। सिवाय नुकसान के लाभ तो कुछ भी नहीं होता है। क्रोध का अत सदैव पश्चात्ताप मे ही होता है। इन सबका चितन करते हुए हमे भविष्य में कभी भी किसी भी परिस्थिति में क्रोध न करने का सकल्प करना होता है। इसी तरह हमारी अहकार की वृत्ति, लोभ की वृत्ति, अभक्ष्य खान-पान की वृत्ति, झूठ अथवा चोरी की वृत्ति जैसी वृत्तियो की उत्पत्ति के कारणों और उनसे होने वाली हानियो का चितन और उनसे मुक्त होने के सकल्प हमें इस साधना मे करने होते हैं। साधना के अत मे हम अपने वास्तविक स्वरूप, अपनी आत्मा की शुद्धता की स्थिति और उसकी शुद्धतम अवस्था, सिद्ध अवस्था प्राप्त करने की क्षमता का चितन करते हुए अपनी आत्मा के पवित्रतम स्वरूप का दर्शन करते हैं।

निश्चय ही एक दिन की साधना से हम अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। हमारी ये दूषित वृत्तियाँ अनेक बार साधना करने के बाद भी पुन -पुन उत्पन्न होती रहती हैं फिर प्रतिदिन के अभ्यास, साधना के प्रति दृढ़ सकल्प और उससे होने वाले लाभो के प्रति पूर्ण विश्वास हमारी साधना की सफलता की कुजी होते हैं। ◆

सुबोध मिन्नी

समीक्षणध्यान-साधना : चारित्राचार व ध्यानयोग का अनुपम समन्वय
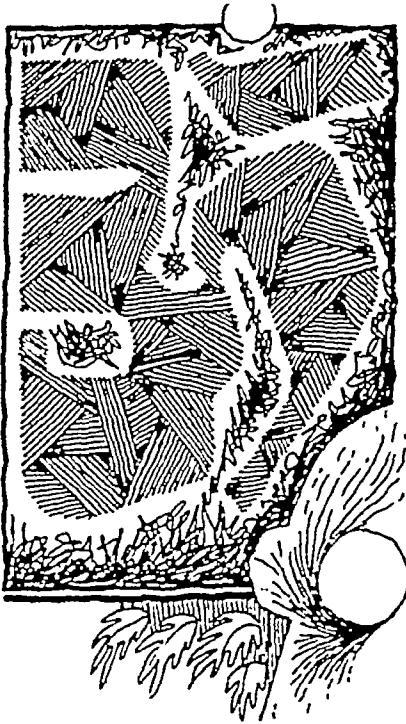
ज्ञान व दर्शन की जिस दृढ़ नींव पर कोई भव्य भवन खड़ा होता है वह है चारित्र। 'आचारो प्रथम धर्म ' की सुक्ति आचार की महत्ता को भलीभाँति स्पष्ट करती है। यद्यपि ज्ञान भी महत्त्वपूर्ण है, किन्तु ज्ञान मात्र से अनुभूति का रस उपलब्ध नहीं होता। उस के रसास्वादन के लिए चारित्र आवश्यक है। वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थकरो की जो जनहितैपी वाणी प्रवाहित हुई थी और गणधरा ने द्वादशागी के रूप मे जिसे सगृहीत किया था उसमें सर्वप्रथम स्थान है 'आचाराग सूत्र' का, जिसमे आचार का निरूपण किया गया है। इसके अतिरिक्त भी जैन सिद्धान्तों मे आचार पक्ष की गाभीर्यपूर्ण विवेचना उपलब्ध होती है। आचार के द्वारा ही सिद्धान्त प्रभावपूर्ण वनता है। मौखिक विवेचना से श्रोत्रेन्द्रिय और मन तृप्त हो सकते हैं किन्तु वही विषय जव आचरण मे व्यक्त होता है तव वह आत्मा को भी तुप्ट करन वाला बन जाता ह। स्थानाग-सूत्र म पाच आचारों का उल्लेख है—'ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार।' चारित्राचार आचारा का केन्द्र विदु है। देहली-दीपक की भाँति यह पूर्व व पश्चात्वर्ती आचारों के लिए प्रकाशपुज की तरह है। चारित्ररहित जीवन नीरस फल की तरह समझा जा सकता है।

चारित्राचार की उपस्थिति से पूर्व साधक को जा दा सोपान और पार करने होते हैं वे हैं—ज्ञानाचार और दर्शनाचार। ज्ञान के विना आचरण सम्यक् नहीं वन सकता है अत सर्वप्रथम आचरण के नियमो का परिज्ञान किया जाय। ज्ञान क साथ ही उस ज्ञान पर विश्वास होना परमावश्यक है। नीतिकारों ने भी कहा है—'विश्वासा फलदायक ।'

ज्ञान व दर्शन की पटरी पर भी चारित्र की गाडी गति कर सकती है। जैन सिद्धान्त म चारित्राचार के आठ भद उल्लिखित हैं जिन्हे पाच समिति और तीन गुप्ति के नाम से जाना जाता है। मोक्षार्थी साधक अपने जीवन को आचार मार्ग पर अग्रसरित करता है तव उसे वहाँ कोनसी प्रवृत्ति करनी है और

किन से निवृत्ति करनी है, इसका ही सकेत समिति-गुप्ति का प्रयोजन है। यदि इसमें एकमेकता बन जाय तो जीवन ऊर्ध्वारोही बन सकता है। इसी के साथ ध्यान साधना भी जुड़ी हुई है क्योकि शास्त्रकारों ने उल्लेख किया है—जब साधक ईर्यासमिति में उपस्थित होता है अर्थात् गमन क्रिया कर रहा होता है तब वह उसमें तन्मय, तद्रूप हो जाय। उसका ध्यान मात्र मार्ग-शोधन मे प्रवृत्त होना चाहिए। यही ध्यान का स्वरूप है। ध्यान मे अपने आप को एकाग्र करना है, एक लक्ष्य पर केन्द्रित रहना है। हर क्रिया के साथ उसकी सजगता जुडी रहे, यह ध्यान रखना है। एक क्षण भी चारित्राचार ध्यान से अलग नहीं रह सकता है। किन्तु जब हम चारित्राचार और ध्यानयोग के समन्वय की बात करते हैं तब हमारा तात्पर्य ध्यान के वैशिष्ट्यपूर्ण स्वरूप से होता है। इस बाह्य स्थूल शरीर का पोषण करने हेतु प्रत्येक प्राणी आहार लता है। किन्तु इसके साथ ही साथ वह शरीर को समय-समय पर बलवर्द्धक पदार्थ भी देता है ताकि शरीर की शक्ति सम्यक् बनी रहे। चारित्राचार भी हमारी साधना को स्वस्थ रखता है किन्तु उसमे विशिष्ट प्राण/अर्थ के सचार हेतु ध्यान के उपयोग की आवश्यकता होती है।

जैन साधना में ध्यान योग की महत्ता कोई नवीन नहीं है। भद्रबाहु स्वामी ने सर्व सवर योग एव महाप्राण ध्यान की साधना की थी। आचार्य उमास्वाति, जिनभद्रमणि, देवनदी आदि ने ध्यान योग का विशद वर्णन किया है। आठवीं शताब्दी में आचार्य हरिभद्र सूरि ने अभिनव विद्या के रूप में प्रस्तुत कर जैन योग को नवीन आयाम दिया। अन्यान्य जिन आचार्यो ने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान इस क्षेत्र मे प्रदान किया उनमे इस शताब्दी के महान् अध्यात्म योगी, समीक्षणध्यान के सूत्रधार आचार्य श्री नानेश का नाम प्रमुख है। स्वविश्लेषण की यह 'समीक्षण पद्धति' आत्म चेतना का साक्ष्य कराती है। साथ ही अन्तस् की कटुता, वक्रता एव ग्रथियाँ भी नष्ट करती है।

> *चारित्राचार और ध्यानयोग का समन्वय करने वाली समीक्षण-ध्यान-साधना की विधि सुपरीक्षित एवं सुपरिष्कृत ध्यान-साधना विधि तो है ही आगम वर्णित विधियों का निचोड़ है तथा आचार्य श्री नानेश की दीर्घकालीन साधनात्मक अनुभूतियों का सदोह है।*

वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे देखें तो मनुष्य अपने शरीर के ममत्व मे उलझा हुआ है आत्मदर्शन की ओर उसकी दृष्टि भी नहीं बन पाती। सामाजिक स्तर पर अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए दिन-रात दौड़ लगाता है। वैचारिक मतभेद सहिष्णुता का अभाव, जिम्मेदारियो के बोझ से उसकी मानसिकता सत्रस्त हो जाती है फलत अशाति व तनाव के कारण वह घुटन महसूस करता रहता है। सुख की सरिता जिसके अतर मे प्रवहमान है लेकिन वह तृषातुर होकर बाहर ही बाहर भटक रहा है। समीक्षणध्यान उसे अन्तर्मुखी बनाकर उस निर्मल सलिल से तृषा उपशाति का मार्ग दिखाता है। आचार्य श्री नानेश ने इसका स्वरूप या इसके विविध आयाम ही नहीं बताये, किन्तु दीर्घकाल तक इस साधना-पथ पर स्वय गतिशील रहे और अपनी अनुभूतियो से अमृत-रस उपलब्ध किया। कभी-कभी व्यक्ति भ्राति मे पड़कर यह कहने लग जाता है कि ध्यान योग से चारित्राचार मे शैथिल्य आ जाता है। मानना होगा वह इस विषय से अनभिज्ञ है। इस भ्राति का कारण भी सर्वथा निर्मूल नहीं है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य मे ही देखा जाय तो ध्यान की विविध पद्धतियाँ दिखाई देती हैं लेकिन उनका सबध शारीरिक क्रिया से अधिक जुड़ा हुआ है। प्राणायाम आदि की प्रक्रिया से वे शरीर तक ही रह जाते है और आत्मोन्नति का अभीप्सु इन प्रक्रियाओ के कारण सशय मे पड़ जाता है।

आचार्य श्री नानेश ने जिस साधना का सूत्रपात किया वह आत्मदर्शन-अन्तर्दर्शन के लक्ष्य की आर बढ़ाने वाली है। अनादिकाल से बाह्य ससर्ग के कारण आत्मा में जो मालिन्य आ गया है उसे दूर करते हुए अह का विसर्जन कर एक दिन वह सच्चे अह का दर्शन कर सकती है। अप्पा सो परमप्पा के अनुसार आत्म दर्शन करते हुए वह अपने चरम स्वरूप परमात्म स्वरूप को प्राप्त कर लेती है।

चारित्र के साथ जितना स्वाध्याय का महत्त्व है, उतना ही ध्यान का भी है। साधक की दैनिकचर्या का जो स्वरूप भगवान् ने बताया है, उसमें दिन व रात्रि के

प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय व द्वितीय प्रहर मे ध्यान का कथन किया है। इस प्रकार ध्यान योग साधक की मौलिक आवश्यकता कही जा सकती है।

ध्यान साधना चारित्र का प्राण है। चाहे साधु हो या श्रावक, जो इसमे लीन होता है उसके अन्तर्चक्षु खुल जाते हैं। ध्यान-साधना आत्मा की तृषा बुझाने वाली है पर वह हो चारित्र रूपी गिलास के साथ। वीतराग देवो ने ध्यान को महत्त्वपूर्ण बताया है, प्रभु महावीर ने सूत्रकृताग सूत्र मे साधक के लिए कहा है—

'झाण जोग समाहट्टु काय विउसेज्ज सव्वसो,
तितिक्ख परम नच्चा आमोक्खाए परिवएज्जासि।'

हे साधक! तू ध्यान योग को ग्रहण कर, काया सबधी चचलता से सर्वथा दूर होता हुआ, परम तितिक्षा को धारण कर, जब तक मोक्ष को प्राप्त न हो, ध्यान योग की साधना मे साधनारत रहना। विश्व विभूति आचार्य श्री नानेश इसके जीवन्त रूप थे और आगम के सूत्र आपश्री के जीवन-सूत्र थे। आपश्री अर्द्धरात्रि के पश्चात् अक्षरश ध्यान साधना मे विराज जाते थे और आत्म स्वरूप की अतल गहराइयों में डूब जाते थे। शिथिलीकरण, आत्म-परमात्म के गहन चितन में आप इतने लीन हो जाते थे कि 3-4 घटे कब व्यतीत हुए पता ही नहीं चलता था। आपश्रीजी का पूरा जीवन ही ध्यान से ओत-प्रोत था।

राणावास चातुर्मास मे सुश्रावक श्री भवरलालजी कोठारी की देखरेख मे ध्यान शिविर चल रहा था, उस समय श्रद्धेय आचार्य भगवन् से जो अन्तर के चितन बिदु मुखरित हुए वे अपूर्व एव अलौकिक ही थे। शिविरार्थियो को ऐसा अनुभव होता था जैसे वे आत्मलोक मे पहुँच गये हों। उस समय के क्षण जिन साधु-साध्वियो, श्रावक-श्राविकाओ को प्राप्त हुए वे भाग्यशाली हैं। ऐसा लग रहा था कि प्रत्येक व्यक्ति जीवनगत हर दुर्गुण को सहज दूर कर सकता है।

वस्तुत ध्यान साधना शारीरिक एव मानसिक समस्याओं का सबल समाधान है। एक विख्यात हार्ट स्पेशलिस्ट का कहना है कि 'यदि आधा घटा ध्यान की प्रक्रिया की जाय तो व्यक्ति कभी भी हार्ट का रोगी न बने।' अध्यात्म के क्षेत्र में प्रभु महावीर ने कहा है—

'अहो! वीर्योऽयमात्मा विश्व प्रकाशक
त्रैलोक्य चालयत्येव ध्यान शक्ति प्रभावत ।'

अर्थात् यह आत्मा अनतवीर्य सम्पन्न एव विश्व के अणु-अणु का प्रकाशक है, जब इसमे ध्यान ऊर्जा का जागरण हो जाता है तो वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को चलित कर सकता है अर्थात् शक्ति का महास्रोत जो भीतर पड़ा है, आवृत है, वह निरावृत हो जाता है।

आचार्य श्री नानेश ने अपने जीवन मे इसे स्थान देकर इसका प्रयोगात्मक स्वरूप व्यक्त किया। ध्यान के द्वारा आतरिक शक्तियों का जागरण होता है। यह ऐसा सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा साधक अतिशीघ्र आत्मानुभूति कर सकता है। अपनी चिरपोषित वृत्तियो का सहजता से सशोधन एव रूपान्तरण कर सकता है।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि ध्यान-साधना की अन्यान्य विधियों में समीक्षणध्यान-साधना की विधि सुपरीक्षित एव सुपरिष्कृत विधि तो है ही, आगमवर्णित विधियो का निचोड़ है तथा आचार्य श्री नानेश की दीर्घकालीन साधनात्मक अनुभूतियों का सदोह है। ◆

इन्द्रलाल बाबेल

कुव्यसनों से संघर्ष का अप्रतिम नायक
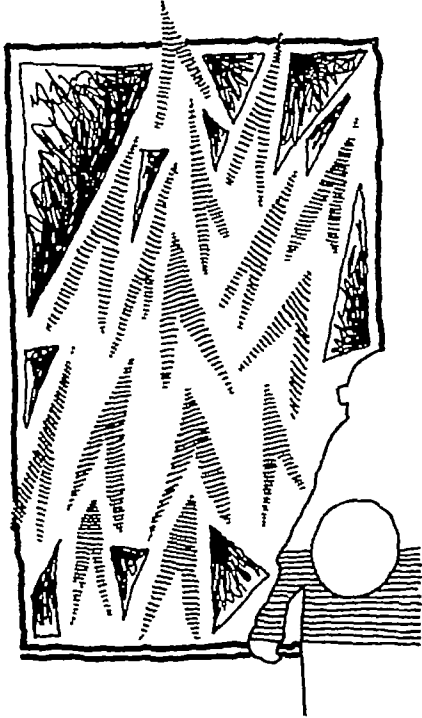
धर्म और दर्शन की इस उर्वरा भारतभूमि पर जिन अनेक सन्तो, मनीषियों एव दिव्य प्रतिभाओ ने जन्म लिया और हमारे पथ को आलोकित किया उनमें हुक्म सघ के अष्टमाचार्य श्री नानेश का नाम बीसवीं शताब्दी की शीर्ष प्रतिभाओं मे परिगणित होता है।

निरन्तर 23 वर्ष तक निश्चल भाव से अपने गुरु शान्त क्रान्ति के जन्मदाता आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा की उत्कृष्ट सेवा साधना के परिणामस्वरूप आज से लगभग 37 वर्ष पूर्व माघ कृष्णा द्वितीया के दिन उदयपुर के राजमहल-प्रागण मे आपको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

अपने आचार्य काल के प्रारभ से ही व्यसनग्रस्त एव समाज में हीन व तिरस्कार की दृष्टि से देखे जाने वाले बलाई जाति के लोगो को अपने अथक प्रयासो से व्यसनमुक्त कर सस्कारित जीवन जीने की प्रेरणा प्रदान कर आपने सामाजिक क्रान्ति का श्रीगणेश किया और कुव्यसनों से सघर्ष के अप्रतिम नायक बने। यह एक विलक्षण प्रयोग का शुभारम्भ था।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् रतलाम (मध्यप्रदेश) के अपने प्रथम चातुर्मास मे आपने एक व्यसनमुक्त, सस्कार-युक्त समतावादी समाज की स्थापना की कल्पना की। आचार्यश्री की यह दृढ धारणा थी कि सुसस्कारित हुए बिना सामाजिक पुनरुत्थान समव नहीं है और व्यसन सुसस्कारिता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। व्यक्ति के समाज व्यवस्था का केन्द्र होने के कारण उसका चरित्र, उसकी मानसिकता व उसके सस्कार अपेक्षित समाज-रचना का आधार बनते हैं। अत व्यक्ति का सुसस्कारित होना समाज सुधार की प्राथमिक आवश्यकता है। इस सामयिक सत्य को आचार्यश्री ने गहराई से समझा एव एक त्रि-आयामी कार्ययोजना द्वारा सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया। इस त्रि-आयामी योजनान्तर्गत समाज को व्यसनमुक्त कर सस्कार क्रान्ति द्वारा समाज का निर्माण करना प्रमुख लक्ष्य था,

एक ऐसे समाज का जिसमे व्यक्तित्व का मूल्याकन पद, प्रतिष्ठा व पैसा न होकर सादगी, सरलता, कर्तव्यनिष्ठा व गुण-कर्म के आधार पर हो। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् अपनी इस कल्पना को मूर्त रूप प्रदान करने के लिये आपके चरण अस्पृश्य मानी जाने वाली बलाई जाति से आबाद क्षेत्र की ओर बढे।

इसी अवधि म तत्कालीन बलाई जाति के अग्रगण्य श्री सीतारामजी से आपका मिलना हुआ। उन्होंने छुआछूत से आहत अपने मन की गॉठे खोलते हुए आचार्यश्री से निवेदन किया 'क्या हम अब गौरक्षक से गौभक्षक बन जाएँ? क्या हम ईसाई या मुसलमान बन जाएँ? लोग हमसे छुआछूत करत है। हम तो चाहते हैं कि मानसिक धरातल पर हम सबको एक साथ जीने का अधिकार हो। हम नहीं चाहते कि लोग हमे अछूत समझ कर हमसे घृणा करे एव हमारा तिरस्कार करते रहे।'

आचार्यश्री ने निष्णात वैद्य की भाति नब्ज पर हाथ पडते ही रोग के मूल कारण का निदान कर लिया। आचार्यश्री ने कहा कि लोग आपसे घृणा तथा आपका तिरस्कार क्यो करते है? कारण है आप लोगो के दुर्व्यसन—मास, मदिरा, अण्डे, तम्बाकू आदि से आपका ग्रस्त रहना। कारण दूर करने पर प्रभाव स्वत ही मिट जाएँगे। अत यदि आप लोग मास, मदिरा, तम्बाकू आदि दुर्व्यसनो का परित्याग कर सात्विक एव सस्कारित जीवन जीन का अभ्यास करेगे ता सभी लोग घृणा व तिरस्कार के स्थान पर आपसे प्रेम करने लग जाएगे।

आचार्यश्री क विस्तार से समझाने पर सीतारामजी व उनके सहयोगियो ने दुर्व्यसनो का सेवन न करने की प्रतिज्ञा कर ली। साथ ही उन्होंने आचार्यश्री से गुराड़िया ग्राम में, जहा पर विवाह प्रसग से अनेक गावों के पच व व्यक्ति, सैकड़ों की सख्या में एकत्र थे, पधारने हेतु निवेदन किया। आचार्यश्री ने अपने साथ एक सन्त लेकर शेष को बड़े कस्बों मे विहार करा दिया। आपके मर्मस्पर्शी उद्बोधन से प्रेरित होकर गुराड़िया ग्राम मे एकत्र हुए सैकड़ों व्यक्तिया ने मास, मदिरा, शिकार आदि का त्याग कर सात्विक एव सस्कारित जीवन जीने का व्रत अगीकार कर लिया। इस तरह उस क्षेत्र मे व्यसनमुक्ति व सस्कारक्रान्ति का शुभारभ हुआ।

> आचार्य श्री नानेश द्वारा कुव्यसनों के प्रति छेड़ा गया अभियान उस संस्कार क्रान्ति का ही एक भाग था जिसकी अत्यत व्यापक स्तर पर उन्होंने परिकल्पना की थी और चरित्र, सस्कार, समाज, परिवेश आदि के सुधार के अभियान जिसकी कतिपय अन्य दिशाएँ थीं। आज जब भौतिकता हमारे सम्पूर्ण चिन्तन और व्यवहार जगत् पर पूरी तरह हावी हो चुकी है, अपसस्कृति का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार हो रहा है और जब सभी नैतिक, सामाजिक, धार्मिक, आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों का भीषण रूप से पतन हो चुका है तब कितनी दृढता, साहस और आत्मविश्वास के साथ सामाजिक पुनर्निर्माण की दिशा में कदम बढ़ाने की आवश्यकता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

गुराड़िया ग्राम से आपने मालवाचल के अनेक गावो मे विचरण किया। लगभग 4 माह की अवधि मे आपने क्षेत्र के बड़खेड़ा, बड़ावदा, लोद, लम्बोदिया, गुजरवाड़िया, तास, आकमा, आलोट, महिमपुर, डेलची, बोरखेड़ा, रानी, पीपलिया, रठड़ा, धमाहेड़ा आदि ग्रामों में प्रेरक प्रवचन तथा उद्बोधन देकर व्यसनमुक्ति व सस्कारक्रान्ति का आन्दोलन छेड़ दिया। कई बार आचार्यश्री को आहार पानी के लिये भी दूसरे गॉवों तक जाना पड़ता था।

इस सदर्भ में आचार्यश्री के क्षेत्र में पाद विचरण व धर्मपाल प्रतिबोधक के रूप मे स्थविर प्रमुख, ओजस्वी वक्ता श्री ज्ञानमुनिजी म सा का निम्न कथन महत्त्वपूर्ण है—

'आचार्य बनने के पश्चात् स्व आचार्यश्री ने अपने प्रथम रतलाम चातुर्मास की समाप्ति पर मालवा में विचरण कर बलाई जाति के लोगो का, जो गौ-भक्षक बनने का निम्नतम जीवन जीने की ओर अग्रसर हो रहे थे, उद्धार किया। उन्हे निष्णात बुद्धि वाले आचार्यश्री का सान्निध्य क्या मिल गया मानो कगाल के हाथ कोहिनूर लग गया।'

आचार्यश्री अपने मार्मिक व हृदयस्पर्शी उद्बोधनो मे फरमाते थे कि— चिन्तन करिए कि एक-एक परिवार का एक-एक व्यक्ति कितनी शराब पीता है, कितना मास खाता है, कितनी तम्बाकू पीता या खाता है? इन सब दुर्व्यसनो के सेवन से कितने जीवों की हिसा होने के साथ कितने धन का अपव्यय होता है? इस सबका आपके स्वास्थ्य पर कितना हानिकारक प्रभाव पड़ता है जिससे आपको, आपके परिवार, राज्य व देश को चिकित्सा पर भारी व्यय करना पड़ता है तथा समाज मे भी आपको अछूत की भाति घृणा व तिरस्कार का सामना करना पड़ता है।

आचार्यश्री अपने उद्बोधनो द्वारा उन्हे समझाते थे कि वीतराग देव के उपासको को गुण व कर्म मे विश्वास रख कर सभी मानवों के साथ आत्मीय दृष्टि से व्यवहार करना चाहिए। उन्हे छुआछूत के भूत को दूर रख कर सभी के साथ आत्मिक भाईचारे का व्यवहार करना चाहिए क्योकि मानवमानव के प्रति क्षुद्र या क्षुद्रता, ऊँच-नीच का व्यवहार करना एक मानवीय अपराध है।

वीतराग देव के सिद्धान्त तो हमे यह प्रेरणा देते हैं कि—

'सव्व भूयप्प भूयस्य, सम्म भूयाइ पास ओ।'

सभी प्राणियों को अपनी आत्मा के समान देखने वाला साधक उनकी हिसा से उपरत रह कर सब पाप कर्मों के बधन से मुक्त हो जाता है।

आपके मार्मिक व हृदयस्पर्शी उद्बोधनो से प्रभावित होकर उपस्थित जन समुदाय खड़ा होकर मास, मदिरा, अण्डे, तम्बाकू आदि दुर्व्यसनों को त्यागने की प्रतिज्ञा करता था। आचार्यश्री ने लगभग 4 माह तक मालवा के इन छोटे-छोटे गाँवों में पाद-विचरण कर अपने उद्बोधनो से समूहो मे लोगों के मानस-परिवर्तन का अद्भुत कार्य किया। आप इस अवधि मे लगभग 18 हजार लोगो में दुर्व्यसनो के प्रति घृणा उत्पन्न कर सात्विक व सस्कारित जीवन व्यतीत करने का क्रान्तिकारी परिवर्तन लाए। वे लोग आज भी आचार्यश्री द्वारा ग्रहण कराये गये त्याग-प्रत्याख्यान का यथावत पालन कर रहे हैं।

इन लोगों ने व्यसनरहित, सदाचारी, सात्विक एव सस्कारित जीवन अगीकार कर नया जीवन जीना प्रारम्भ किया। आगे जाकर ऐसे लोगो की सख्या एक लाख तक पहुच गई। स्वय आचार्यश्री ने उस समय ऐसे युगान्तरकारी परिवर्तन की कल्पना भी नहीं की थी।

स्व आचार्यश्री ने अपने सदेश मे कहा था 'आप लोगो को अपनी प्रतिज्ञाए आजीवन निभाते हुए दुर्व्यसनो से रहित सादा, सरल एव सात्विकतापूर्ण जीवन जीने का प्रयास प्रारभ रखना चाहिए। इससे आपके वर्तमान जीवन का रहन-सहन, खान-पान एव आचरण अच्छा बनने से आत्मसाधना सरल व सुगम बन जाएगी।'

इस प्रकार दलित, पीड़ित एव अछूत माने जाने वाले बलाई परिवार के लोगो को दुर्व्यसनमुक्ति व धर्माचरण की ओर प्रेरित कर समाज मे उन्हे 'धर्मपाल' नाम से प्रतिष्ठित करने का अनुष्ठान मध्यप्रदेश के मालवाचल मे आचार्यश्री के मार्मिक, हृदयस्पर्शी, प्रेरक उद्बोधनो स फलीभूत हुआ। आचार्यश्री के अथक प्रयासों के परिणामस्वरूप क्षेत्र मे अभूतपूर्व सामाजिक क्रान्ति आई जिससे इन धर्मपालको के घरो से गरीबी का उन्मूलन होकर इन्हें सम्पन्नता, स्वच्छता व सुविधापूर्ण सात्विक जीवनयापन के स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुए।

स्व आचार्यश्री के इन्दौर चातुर्मास मे मध्यप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री पाटस्करजी आए थे और उन्होंने कहा था कि—'आचार्यश्री आपकी धर्मपालो के रूप में की गई सामाजिक क्रान्ति बहुत ही श्रेष्ठ है।' तब आचार्यश्री ने कहा था कि 'मेरा काम है मन को परिवर्तित करना, वह मैंने किया। अब इसे सुरक्षित रखने का कार्य आपका है।' यह 'आप' शब्द विचारणीय है। 'आप' कौन? 'आप' वे सब जो किसी भी रूप मे इस देश की मिट्टी और उसके पानी से जीवन सत्त्व प्राप्त करते है क्योंकि यदि सामाजिक क्रान्ति के मार्ग पर आगे गति नहीं हुई तो हानि इस देश के प्रत्येक व्यक्ति की होगी और प्रकारान्तर से सम्पूर्ण विश्व-समाज की होगी, क्योकि विश्वस्तर पर आज मनुष्य परस्पर परनिर्भर हो चुका है। श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ आचार्य श्री नानेश के चिन्तन के अनुरूप निश्चय

विक्रम सवत् 2021 की चैत्र शुक्ला नवमी दिनाक 23 मार्च, 1964 वह पुनीत दिवस था जिस दिन आचार्य श्री नानेश गुराड़िया (नागदा जक्शन से 8 कि मी दूर) ग्राम मे एक शिला पट्ट पर विराजमान थे। सामने उपस्थित थे 70 गॉवों की पचायत के 333 बलाई जाति के परिवार जो हिन्दू सस्कृति मे जन्म लकर भी अस्पृश्यता का जीवन जी रहे थे। हिन्दुओ क इस व्यवहार से कई किनारा कर चुके थे, कई करने को तत्पर हो रहे थे। इनकी व्यथा भाई सीतारामजी व धूलजी भाई ने आचार्यश्री के चरणों म रखी थी। उन्हीं के आग्रह से आचार्य देव वहाँ पधारे थे। गुरुदव के साथ ही बीकानेर आदि दूरस्थ शहरों और गॉवो के श्रेष्ठीवर्य भी वहाँ पहुँच गये थे।

आचार्य देव ने नमस्कार महामत्र का उच्चारण करके धर्मनाथ भगवान की स्तुति के साथ ही उत्तराध्ययन सूत्र के 35वे अध्ययन की 33वीं गाथा—कम्मुणा बभणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ। वइस्सो कम्मुणा होइ, सुद्दो हवइ कम्मुणा' का उच्चारण करते हुए फरमाया—

प्रिय आत्मीय बधुओ! आप और हम सबको यह पवित्र मनुष्य जीवन प्राप्त हुआ है जिससे इस आत्मा को ऊँचा उठाकर राम, हनुमान, महावीर की तरह परमात्म पद प्राप्त किया जा सकता है। नर से नारायण बना जा सकता है। यह जीव शिव बन सकता है, यह महाशक्ति प्रत्येक मनुष्य मे है। आवश्यकता है इसको समझकर जाग्रत करने की। जन्म स न तो कोई नीच होता है, न ऊँच। भगवान महावीर ने तो इस ऊँच-नीच का थर्मामीटर कर्म बताया है न कि जाति और कुल। यदि उच्च कुल मे पैदा होकर भी कोई नीच कर्म करता है तो वह नीचा है, और निम्नक़ल व जाति में पैदा होकर भी कोई यदि व्यसनमुक्त बनकर सदाचार अपनाता हुआ सुदेव, सुगुरु व सुधर्म के स्वरूप को समझकर उनकी शरण प्राप्त कर लेता है तो उसे ऊँचा उठने मे देरी नहीं लगती। लोग उसे भी महाजन कहने लग जाते हैं जैसे कि आप ओसवाल, पोरवाल, अग्रवाल आदि समाज के लोगा को देख रहे है। इन्होने अथवा इनके पूर्वजो ने महापुरुषो के सत्सग द्वारा सात्त्विक जीवन जीने का सकल्प किया तो ये महाजन कहलाने लगे। यदि आप भी व्यसनमुक्त होकर सुदेव, सुगुरु और सुधर्म की शरण ग्रहण कर लेते हैं तो एक दिन इन्हीं महाजनों की श्रेणी मे आ सकते हैं।

> आचार्य देव ने कहा था कि आप और हम सब को यह पवित्र मानव-जीवन प्राप्त हुआ है जिसमें इस आत्मा को ऊँचा उठाकर परमात्म पद प्राप्त किया जा सकता है। नर से नारायण बना जा सकता है। यह महाशक्ति प्रत्येक मनुष्य में है, आवश्यकता है इसको समझ कर जाग्रत करने की। जन्म से न तो कोई नीच होता है, न ऊँच। भगवान् महावीर ने इस ऊँच-नीच का थर्मामीटर कर्म बताया है। यदि निम्नकुल और जाति में पैदा होकर भी कोई व्यसनमुक्त बन कर सदाचार अपनाता हुआ सुगुरु, सुधर्म और सुदेव के स्वरूप को समझ कर उनकी शरण प्राप्त कर लेता है तो उसे ऊँचा उठने में देर नहीं लगती।

बस फिर क्या था! आचार्य देव के इस सहज, सरल, सुबोध प्रवचन का ऐसा चमत्कार हुआ कि सभी ने सप्त-व्यसनो का त्याग करके शुद्ध सम्यक्त्व को ग्रहण कर लिया। आचार्य देव न आशीर्वचनरूप इन्हे धर्मपाल विशेषण से सबोधित किया। उसी समय सघ प्रमुख जुगराजजी सा सेठिया आदि ने साधर्मी भाई के रूप मे गले लगाकर उनके विकास में सहभागी बनने का आश्वासन दिया।

चारो तरफ इस क्राति का सुवास पहुँच गई। आचार्य देव ने भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी की परवाह किये बिना इस क्राति को ग्राम-ग्राम म प्रसारित करने हेतु चरण बढ़ा दिये। वनवना, बड़खेड़ा, वड़ावदा, तिम्बोदिया, गुजरवादिया आदि गॉवों के सैकड़ों व्यक्तियो ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। आक्या में 81 गाँवों के 773 परिवारों के प्रमुखों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। महावीर जयती के प्रसग पर नागजिरी सम्मेलन मे 70 गाँवो के 750 परिवारों ने सम्यक्त्व ग्रहण किया। इस प्रकार आचार्य देव ने उज्जैन पदार्पण तक 141 दिनों में 87 गाँवों का विचरण किया, एक आन्दोलन ही चल पड़ा। आचार्य दव चीखली, मक्सी, शाजापुर, देवास आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए इन्दौर

चातुर्मासार्थ खालसा स्कूल मे पधारे। वैष्णव, सिक्ख, सिधी, मुसलमान, जिसने भी सुना, पत्र-पत्रिकाओ में पढ़ा, वे सभी आचार्यश्री का स्वागत करने उमड़ पड़े। स्वय मध्यप्रदेश शासन के खाद्य मत्री श्री गौतम शर्मा, योजना मत्री श्री गगवाल, गृहमत्री श्री प्रकाशजी सेठी आदि ने आचार्य देव का स्वागत करते हुए हर्ष व्यक्त किया और पूर्ण सहयोग की भावना के साथ आभार माना। पाटस्कर महोदय की सन्निधि में एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमे गुजराती बलाई समाज के उज्जैन, रतलाम, इन्दौर, देवास, मन्दसौर, धार, बड़नगर, शाजापुर आदि जिलों के प्रमुखों ने सैकड़ो व्यक्तियो के हस्ताक्षर सहित लगभग चार सौ गॉवो में सूचना प्रसारित की कि हमने आचार्य श्री नानालालजी म सा से जैनधर्म स्वीकार कर लिया है, अब से हमारा समाज धर्मपाल जैन के नाम से जाना जायेगा। हम सबसे यही प्रार्थना करते है कि वे भी धर्मपाल जैन बनकर इस गिरे हुए समाज की उन्नति में सहयोग प्रदान करें। आचार्यश्री के ऐसे प्रयासों से इस क्राति को बहुत बल मिला और धर्मपाल जैनो की सख्या एक लाख तक पहुँच गई।

इस क्राति को व्यवस्थित करने हेतु एक 'धर्मपाल प्रचार समिति' का गठन हुआ जिसके गोकुलचदजी सूर्या, गेन्दालालजी नाहर, समीरमलजी काटेड़ अगुआ थे। धर्मपाल समाज के विकास हेतु उनको 6 जिलों मे विभाजित करके, उपसयोजक व समितियाँ भी बनाई गई है। जैनत्व के सस्कार हेतु पदयात्राओ का आयोजन भी किया जाता है जिनसे वातावरण मे नयी चेतना का सचार होता है। धार्मिक पाठशालाएँ खोली गई हैं, शिविर आदि के आयोजन तथा साधु-साध्वियो के समय-समय पर विचरण क कार्यक्रम किये जाते हैं। चलचिकित्सालय एव समता भवन निर्माण के कार्यो के साथ ही उच्च शिक्षाभिलाषिया के लिए प्रेमराज गणपतराज बोहरा जैन धर्मपाल छात्रावास, रतलाम, श्री सघ द्वारा सचालित किया जा रहा है। इस प्रकार इस आदोलन क विस्तार मे साधुमार्गी जैन सघ का तन-मन-धन से पूर्ण योगदान मिल रहा है।

फिर भी मेरे अन्तरमन में यही विचार प्रस्फुटित होते रहते हैं कि जब तक यह समाज खुद अपना गौरव समझ कर अपने विकास का बीड़ा नहीं उठायेगा तब तक इसका अपेक्षित विकास नहीं हो पायेगा। इसके बारे में चर्चा-विचर्चा चलते-चलते सयोगत सन् 1979 के इन्दौर चातुर्मास के पूर्व धर्मपाल क्षेत्रों मे विचरण की भावना बनी। मैंने अपना विचार प्रवृत्ति-प्रमुखो के सामने रखा, सबकी रुचि जगी और रठडा में एक विशाल सम्मेलन रखा गया। 26 जनवरी को सम्मेलन म मैंने अपने विचार रखे कि अब सख्या के लोभ का सवरण करके गुणवत्ता की ओर ध्यान देना है जिसका सहज उपाय है—धर्मपाल समाज-रचना।

धर्मपाल जैन वही होगा जो अरिहत सिद्ध भगवान को इष्टदेव के रूप मे मानेगा और गुरु के रूप में परमोपकारी धर्मपाल उद्धारक आचार्य श्री नानालालजी म सा एव पच महाव्रतधारी सत सती जनों को ही मानेगा, धर्म के रूप मे जिनेश्वर देव द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म पर ही आस्था रक्खेगा व महामत्र नवकार को ही मत्र रूप में बोलेगा। साथ ही मैंने यह प्रस्ताव भी रखा कि—

1 धर्मपाल समाज शुद्धिकरण को अपनावे और भविष्य में उन्हीं के साथ सबध बढ़ावे जो दुर्व्यसनों से मुक्त हो।

2 विवाह अ।दे में भी दुर्व्यसनी लोगो से सम्बन्ध न रखा जाय।

3 प्रतिवर्ष चैत्र सुदी नवमी को धर्मपाल दिवस के रूप मे मनाया जाय तथा प्रति नवमी को अगता रखा जाय।

4 गाँव-गाँव मे धर्मपाल पचायत कायम की जाय।

5 समाज के सुन्दर भविष्य को ध्यान म रखकर सारे कार्य जैन विधि से किये जायें।

मेरे विचारों स सभी ने पूर्ण सहमति व्यक्त की और दृढ़ सकल्प के साथ ही इन्हे अमली रूप देने हेतु धर्मपाल समाज के अध्यक्ष के रूप में सर्वानुमति से शकरलालजी जैन उमरना, मत्री सीतारामजी धर्मपाल जैन नागदा और कोषाध्यक्ष

श्री धूलजी भाई गुराड़िया नियुक्त किये गये। रुड़की, तिलावदा आदि मे भी ऐसे सम्मेलन रखे गये। इसी क्रम में विहार करते हुए हम गोलवा पहुँचे, वहाँ प्रवचन चल रहा था। उसी के बीच एक भाई खड़ा होकर बोला—'महाराज साहब! हमारा झगड़ा मिटा दीजिए?' मैंने पूछा—'भाई! क्या झगड़ा है?' वह बोला—'ये पत्नी मुझे चौके मे नहीं आने देती—आप समझाइये।' उनसे बात हुई तो वह बोली—'महाराज साहब! आपने रठड़ा सम्मेलन मे त्याग कराया था कि जो धर्मपाल नहीं बने उसके साथ सबध न रखा जाय।' भाई को पूछा गया—उसने कई तर्क प्रस्तुत किये, आखिर दो घटे की मेहनत के बाद समाधान होने पर शपथ ग्रहण की—व्यसनमुक्त बना। तब उनकी पत्नी से कहा—'अब तो य धर्मपाल बन गये।' उसने कहा—'महाराजश्री! अभी छ महीने देखूगी—यदि ये शुद्ध रहे तो ठीक, नहीं तो चौके में नहीं आने दूगी।' सब यह सुनकर बड़े प्रभावित हुए कि काश सम्पूर्ण समाज मे ऐसी दृढ़ता आ जाये तो समाज का कायाकल्प हो जाये। इस अल्प प्रवास मे कई बार भूख-प्यास के परीषह आये जिसको देख-देखकर बार-बार मन यही कहता कि आचार्य श्री नानेश ने उस समय कितने कष्ट उठाये होंगे जब ये लोग समझते ही नहीं थे।

धर्मपाल प्रवृत्ति आचार्य देव का महान मिशन है जो आने वाली पीढियों के लिए इतिहास बन जायेगा। हम सबका कर्तव्य है कि हम इसका अधिक से अधिक सवर्धन करे और समता-समाज की आचार्य देव की कल्पना को साकार करें।

◆

वर्तमान विषमता की कर्कश ध्वनियो के बीच आज साहस कर समता के समरस स्वरो को सारी दिशाओ में गुजायमान करने की आवश्यकता है। समस्त जीवन के सभी क्षेत्रो मे फैली विषमता के विरुद्ध मनुष्य को सघर्ष करना होगा क्योंकि इस विषम वातावरण में मनुष्यता का निरतर ह्रास होता जा रहा है।

—आचार्य श्री नानेश

अर्चना वर्मा

आचार्य नानेश का साहित्य और उसकी प्रकृति
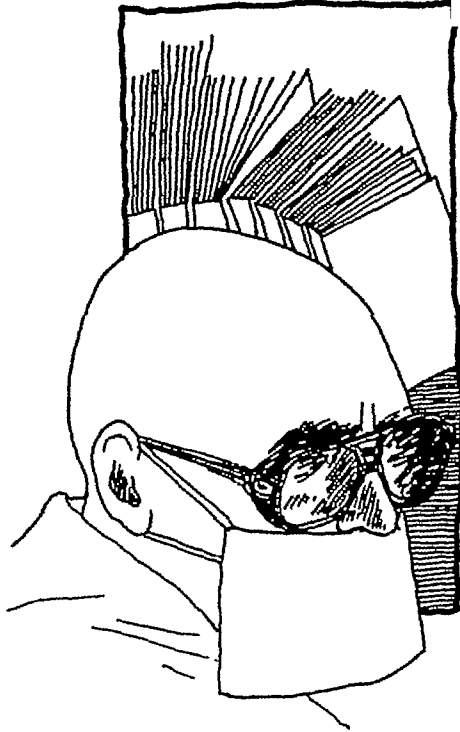
भारतीय सतो के जीवन की यह एक प्रमुख विशेषता रही है कि उन्होंने अपनी साधना के पथ को साहित्य-सर्जन द्वारा भी सँवारा और इस प्रकार मानव कल्याण हेतु एक अमूल्य निधि अपने प्रदेय के रूप मे आगामी पीढ़ियो के लिए निस्पृह भाव से छोड़ी। सतों द्वारा रचा गया ऐसा साहित्य प्रभूत मात्रा मे उपलब्ध है और अपने सर्जक सतों की ज्ञान-गरिमा और चितनधारा से हमें परिचित कराता रहता है। आचार्य श्री नानेश भी इन्हीं सतों की गौरवशाली परम्परा के एक शलाका पुरुष थे और उन्होंने भी अपने साहित्यिक प्रदेय से मानव समाज को कृतकृत्य किया। उनकी इस साहित्य साधना को समझने के लिए यह भी ध्यान मे रखना आवश्यक है कि अन्य सत साहित्यकारों के समान ही आचार्य नानेश भी प्रमुख रूप से सत थे, साहित्य-निर्माण तो उनकी सत-साधना का मात्र एक पक्ष था ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार समीक्षण-ध्यानयोग सत साधना का एक अन्य पक्ष था। हिन्दी मे सत-साहित्य की यह परपरा जो 15वीं शताब्दी में आरभ हुई थी किसी रूप में लगातार चलती रही। यह भिन्न बात है कि उसके रूप मे बड़ी सीमा तक परिवर्तन होता गया। मध्ययुगीन सत साहित्य की कतिपय अपनी विशेषताएँ थीं। प्रमुख रूप से वह साहित्य भावनात्मक एव अनुभूति प्रवण था। सरल भाषा-शैली में सत्य का निरूपण, सत्य का विवेचन एव सत्य का प्रचार-प्रसार, उसका प्रमुख लक्ष्य होता था। इस प्रकार उस साहित्य का प्रमुख उद्देश्य साहित्य-रचना नहीं, जन-जन को उद्बोधन देना होता था। वह सही अर्थो में जन-साहित्य था क्योकि वह जन भावनाओ को जाग्रत करने तथा लोगो को प्रेरित करने के लिए रचा गया था। यही कारण था कि उसमे जन-भावनाओं, सहज प्रवृत्तियो, परिस्थितियों, विकृतियो और विडम्बनाओ का चित्रण हो सका जिसने उसे लोकप्रिय बनाया। आज भी सतों की वाणी अथवा पदों का जन-जन में कितना प्रचार है, बताने की आवश्यकता नहीं। वस्तुत अपने साहित्य के माध्यम से सतों ने मानव की क्षुद्रताओं, सीमाओ, स्वार्थपरता, असत्यवादिता, सकीर्णता, अर्थलोलुपता, कामुकता आदि का विवेचन और

विश्लपण किया। इस प्रकार सत चाहे नानकदेव हों या कबीर, सुदरदास हो या दादूदयाल, सभी ने जन-चेतना को जाग्रत कर मनुष्य को परिज्ञान प्रदान करने का कार्य किया। यही कार्य आचार्य नानेश ने भी किया और आधुनिक जीवन मे पनपी भ्रष्टाचार, पर्यावरण-प्रदूषण, आतकवाद जैसी समस्याओ को जाड़ कर किया। यह सत्य है कि प्राचीन सत-साहित्य काव्यात्मक था जबकि आचार्य नानेश का साहित्य गद्यात्मक है। परन्तु ऐसा इस कारण है कि तब तक साहित्य के गद्यरूप का विकास नहीं हो पाया था जबकि आज गद्य साहित्य लेखन की प्रमुख विधा है। सत-साहित्य के साथ एक अन्य सीमा भी जुड़ी थी, वह प्रमुख रूप से मौखिक होता था तथा वाणी के माध्यम से प्रचार पाता था। आचार्य नानेश के साहित्य के साथ भी यह सीमा एक बड़ी सीमा तक जुड़ी हुई है। वे एक विशिष्ट धर्मधारा के आचार्य थे और प्रवचन देना उनकी दैनिक जीवनचर्या का एक अनिवार्य अग था। उनका साहित्य भी वाणी द्वारा प्रचारित-प्रसारित होता रहा, यद्यपि वर्तमान जीवन में उपलब्ध लेखन सुविधाओ के कारण वह लिखित रूप में सुरक्षित भी होता रहा। इस लिखित साहित्य की अपनी सीमाएँ भी हैं और ऐसा साहित्य जो या ता लिखा नहीं जा सका है या प्रकाशित नहीं हो पाया है, किसी भी दृष्टि से प्रकाशित साहित्य की तुलना मे कम प्रभूत नहीं है।

साहित्य रचनाकार की दृष्टि से ही नहीं सत की दृष्टि से भी आचार्य नानेश की विशिष्ट स्थिति है। वे एक ऐसे सत थे जो 'सत्' रूपी परम सत्य का अनुभव कर चुका था, अपने व्यक्तित्व स ऊपर उठकर उसके साथ तद्‌रूप हो चुका था तथा अपरोक्ष की उपलब्धि के फलस्वरूप अखण्ड सत्य म प्रतिष्ठित हो गया था। ऐसा सत ही लोकमगल की कामना करता हुआ मोक्ष-सिद्धि का मार्ग प्रशस्त कर सकता था, जो उन्होंने किया। उनकी साधना की इस सिद्धि से उनका साहित्य भी अछूता नहीं रहा था।

आचार्य श्री नानेश के साहित्य पर विचार करते समय जो एक बात तीव्रता से अनुभव होती है वह यह है कि उन्होंने सांसारिक जीवन के सत्यों को गहनता से समझा था और चिरंतन जीवन अथवा मोक्ष के संदर्भ में उनकी सम्यक् विवेचना की थी। धर्माचरण की शिक्षा की दृष्टि से तो इसका अपना महत्त्व है ही, सुसस्कारित समाज की स्थापना और जन-कल्याण सुनिश्चित करने का भी यह उपयुक्त साधन है।

आचार्य नानेश के साहित्यकार रूप को समझने के लिए उन कतिपय अन्य तथ्यो पर भी दृष्टिपात आवश्यक है जिनका सबध उनके व्यक्तिरूप से था और जिसक निर्माण में युगीन परिस्थितियो का बहुत बड़ा हाथ रहा था। उनके साहित्य की बात करते समय यह भी नहीं भूलना चाहिये कि वे एक धर्मविशेष के सत थे, उसी मे दीक्षित हुए थे और उसके सिद्धान्तो का मानव हित मे प्रचार-प्रसार करने मे जीवनभर लगे रहे थे। परन्तु यह उनके चिन्तन की सीमा नहीं थी। उन्होने ससार के प्रमुख धर्मो के सिद्धान्तो का ज्ञान प्राप्त किया था और धर्म क शाश्वत तत्त्वो को पहिचानकर ही वे धर्म प्रभावना के कार्य मे प्रवृत्त हुए थे। अत यह सयोग नहीं था कि जैन धर्म के साथ उनकी सहिति बैठ जाती और वे एक ऐसे विश्वधर्म क रूप मे जैन धर्म की भूमिका की बात कह सकते जिसके सिद्धान्तों की अनुपालना की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। इस प्रकार उनका साहित्य धर्म के इसी रूप की प्रतिष्ठा का प्रयास है।

आचार्य नानेश के सम्यक् मूल्याकन के लिए यह भी आवश्यक है कि उन्हें उन युगीन परिस्थितियों के सदर्भ में देखा जाये जिनकी चिन्ता कोई सत ही कर सकता था। आचार्य नानेश न जीवन की उन परिस्थितियों को उनके व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखा और समझा था जो पश्चिम से आयातित भौतिकवादी चिन्तन का परिणाम थीं और चूँकि उनकी सवेदना का क्षेत्र अति व्यापक था इस कारण राजनीति, समाज व्यवस्था, ऐतिहासिक उथल-पुथल तथा ज्ञान के विकासमान क्षेत्रो को उन्होने उचित परिप्रेक्ष्य में देखा और समझा था तथा उनक प्रति स्वस्थ एव सतुलित दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया था यद्यपि उनकी प्रमुख चिन्ता धर्म, अध्यात्म और सस्कृति थे। समाज में लिप्त न होकर भी उन्होने सामाजिकता के विकृत रूपों की पहिचान की, उनके कारणा

को समझा और उनके सुधार एव जीवन के नवनिर्माण के सूत्रों की खोज की। यही कारण है कि उनका साहित्य आध्यात्मिक अनुभूतियों का लेखा-जोखा मात्र नहीं है, उसमे युगीन जन-जीवन का प्रतिबिम्ब भी विद्यमान है। सम्प्रदाय एव जातिगत विषमताओ, मनोवेगों के निरोध, सदाचारादि गुणो की प्रतिष्ठा तथा आत्मज्ञान की प्राप्ति की अनिवार्यता आदि पर उन्होने विशेष बल दिया। इस प्रकार उन्होंने वृत्तियों के समीक्षण की दिशा और उसके मार्ग का प्रदर्शन किया तथा इस हेतु समाज के सभी वर्गो—सामान्य, अशिक्षित, असस्कारित पिछड़े वर्ग से लेकर उच्च, कुलीन, सत्ता एव धन सम्पन्न लोगो तक के लिए ऐसा साहित्य प्रदान किया जो सरलता, जीवनदर्शन की गभीरता तथा तत्त्वबोध की गहनता के कारण अत्यत प्रभावशाली एव प्रेरणादायी बना।

आचार्य नानेश जैन धर्म और दर्शन के मर्मज्ञ ही नहीं थे, जैन धर्म के सिद्धान्तों को आत्मसात् कर उन्होंने उन्हें श्रावकाचार का आधार भी बनाया था अत यह स्वाभाविक था कि व उनकी मूल प्रेरणा से अनुप्राणित भी होते। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के सिद्धान्तों के पालन एव तीर्थकरों द्वारा मोक्ष-प्राप्ति हेतु निर्देशित मार्ग के अनुसरण को वे आदर्श जीवनचर्या के रूप में देखते थे। उनका साहित्य उनकी इस आस्था के प्रमाण प्रस्तुत करता है। इस दृष्टि से वे प्राचीन जैन सतो की उस परम्परा के इस युग के कीर्तिपुरुष बन जाते हैं जिसका प्रारभ हिन्दी साहित्य के आदिकाल से हा गया था। तब भी जैन सतों ने साहित्य को सामाजिक क्राति के एक उपादान के रूप में ग्रहण किया था और इस युग मे भी आचार्य श्री नानेश ने उसे सस्कार क्राति के साधन के रूप में प्रयुक्त किया। इस प्रकार बात चाहे समीक्षण ध्यान-साधना की हो, चाहे धर्मपाल दृष्टि की, चाहे समता दर्शन की, सबके पीछे जो एक ही चिन्तन था, एक ही चिन्ता थी वह थी विषमतापूर्ण परिस्थितियो और अपसस्कृति के बीच समाज के पुनर्निर्माण की और उसमे आध्यात्मिक मूल्यो की स्थापना की। यह वह युगीन आवश्यकता थी जिसकी ओर कोई सत ही ध्यान दे सकता था। इस रूप में आचार्य नानेश ने अपने आपको देश की उस अविच्छिन्न सत परम्परा से जोड़ा जो मध्ययुग से उन तक चली आई थी और जिसे हुक्म गच्छ के ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने अपनी तरह से पुष्ट और समृद्ध किया था।

मध्ययुगीन जैन सतों के साहित्य सर्जन के प्रयास काव्य के माध्यम से प्रारम हुए थे। ऐसा इस कारण था, जैसा पूर्व मे भी बताया गया है, कि तब तक साहित्यिक विधा के रूप मे गद्य अपनी पहिचान नहीं बना पाया था और काव्य ही साहित्य रचना की प्राचीनतम परिपाटी के रूप मे चला आ रहा था। इन काव्यात्मक प्रयासो मे उपदेशात्मकता को प्रमुखता प्रदान की जाती थी। इसलिए उनकी शैली चाहे फागु की रही हो या चरित काव्य की, विषयवस्तु की दृष्टि से उनमे एकरूपता थी। अत यह स्वाभाविक था कि सन् 933 के प्रसिद्ध जैन आचार्य श्री देवसेन के काव्य ग्रथ का नाम 'श्रावकाचार' हाता जिसके 250 दोहो मे श्रावक धर्म का प्रतिपादन तो था ही गृहस्थ के कर्तव्यों पर भी विस्तार से विचार किया गया था। 1184 मे रचित शालिभद्र सूरि के ग्रन्थ *'भरतेश्वर-बाहुबली रास'* का विषय भी इसी परम्परा को आगे बढ़ाने वाला था जिसमे भरतेश्वर तथा बाहुबली का चरित वर्णित है। कवि ने दोनो राजाओ की वीरता, युद्धों आदि का विस्तार से वर्णन करने के पश्चात् विरक्ति और मोक्ष का भाव प्रतिपादित किया है। यही स्थिति आसगु कवि द्वारा सन् 1200 में रचित *'चदनबाला रास'* और सन् 1209 में जिनभद्र सूरि रचित *'स्थूलिभद्र रास'* की भी है। प्रथम में चम्पानगरी के राजा दधिवाहन की पुत्री चन्दनबाला अपने सतीत्व पर अटल रह कर तथा अपार दु ख सह कर अत मे भगवान महावीर से दीक्षा लेकर मोक्ष को प्राप्त हाती है और द्वितीय मे कोशा वेश्या के पास भोगलिप्त रहने वाले स्थूलिभद्र जैनधर्म की दीक्षा लेकर मोक्ष मार्ग प्रशस्त करते हैं। 1231 मे विजयसेन सूरि द्वारा रचित *'रेवतगिरि रास'* तथा 1213 में सुमति गणि रचित *'नेमिनाथ रास'* भी धर्म सबधी कथाओ पर आधारित कृतियाँ हैं।

इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य मे जब हम आचार्य श्री नानेश की कथा-कृतियो पर दृष्टिपात करते हैं तब उनमे और पूर्ववर्ती प्राचीन जैन साहित्य की रचनाओ मे प्रकृति और विषय निरूपण की दृष्टि से गभीर समानता दिखाई देती है। इस

स्थिति पर किचित विस्तार से विचार करने की आवश्यकता है। आचार्य श्री नानेश की प्रमुख कथात्मक रचनाएँ है—*अखड सौभाग्य, कुकुम के पगलिये, ईर्ष्या की आग, लक्ष्यवेध, आदर्श भ्राता* और *नल दमयन्ती*। *'अखण्ड सौभाग्य'* में महाराज चन्द्रसेन अपनी तेरह रानिया, राजकुमारी चम्पकमाला, कई मत्रियो, सामन्तों आदि के साथ भागवती दीक्षा अगीकार करने के पथ पर चल पड़ते हैं। *'कुकुम के पगलिये'* में श्रीकान्त, मजुला और कुसुमकुमार की भव्य आत्माएँ दीक्षा का मार्ग ग्रहण कर अपना जीवन सार्थक करती हैं। *'नल दमयती'* में महाराज नल राजपाट छोड कर अपनी रानी दमयती क साथ जिनसेन नामक अनगार के चरणो मे पहुँच कर दीक्षा ग्रहण कर अपना जीवन सफल बनाते हैं। *'लक्ष्यवेध'* और *'आदर्श भ्राता'* (खण्ड काव्य) म मानसिह और प्रतापसिह के उपरान्त अमयसिह भी भागवती दीक्षा के मार्ग पर चल कर आत्मकल्याण की दिशा में अग्रसर होता है। *'ईर्ष्या की आग'* के सुधेश और भामिनी का जीवन बदल जाता है और अवधेश तथा यामिनी आत्म-साधना का मार्ग ग्रहण करने चल पड़ते हैं।

आचार्य नानेश की कथा-कृतियों की प्रकृति की इस विशिष्टता को समझने के लिए जैन धर्म की उस मूल प्रकृति पर दृष्टिपात करना आवश्यक है जो विशाल जैन धार्मिक साहित्य का आधार रही है।

जैन धर्म प्रमुख रूप से निवृत्तिमूलक धर्म है जो ससार के आकर्षणों से आत्मा को मुक्त कर उसे मोक्ष की दिशा म प्रवृत्त करने का लक्ष्य रखता है। ढाई हजार वर्ष बीत जाने के बाद भी इस धर्म के सिद्धान्तों में न कोई परिवर्तन आया है और न ही इस धर्म के अनुयायियों की जीवनचर्या या जीवनदृष्टि मे किसी प्रकार का बदलाव आया है। इस निवृत्तिमूलक धर्मोन्मुखी दृष्टि को इस प्रकार सुरक्षित एव जीवन्त बनाये रखने का सम्पूर्ण श्रेय जैन धर्म के सतों और आचार्यो को जाता है जिन्होंने अपनी उत्कट साधना, उपदेशो तथा साहित्य के माध्यम से धर्म के मूल तत्त्वो से किसी भी प्रकार की छेडछाड अथवा समझौते की स्थिति ही उत्पन्न नहीं होने दी और इस प्रकार अपने अनुयायियों को धर्म के मूल स्वरूप से मनसा, वाचा और कर्मणा, जोडे रखा। इस दृष्टि से आचार्य श्री नानेश के प्रदेय की यह अपनी विशेषता रही कि उन्होने वर्तमान जीवन की विभीषिकाओं, समस्याओं, आग्रहो और प्रभावो की प्रकृति को समझा, उन पर सम्यक् चिन्तन किया और अपने प्रवचनो तथा साहित्य के माध्यम से उनके कुप्रभावो का परिमार्जन करते हुए प्रस्तुत किया। इस रूप म उन्होने शुद्ध धर्माचरण के मार्ग को आलोकित तो रखा ही, उसे युगीन प्रवृत्तियो से जोड़ा भी। उनका यह कार्य कुवृत्तियो के सिन्धु में से सुवृत्तियो का नवनीत निकाल कर समाज के लाभ के लिए उसे अर्पित कर देने का ही था। उनके ऐसे प्रयास उनके प्रवचन साहित्य में अपनी पूर्ण प्रखरता में देखे जा सकते हैं जो प्रभूत तो है ही, जीवन की विविध वृत्तियों को अपने में समेटने वाला भी है और जिसके उदाहरण उपर्युक्त वर्णित कथा साहित्य अपनी तरह से प्रस्तुत करता है।

आचार्य नानेश मूलत सत थे और जैन धर्म की सत परम्परा के अनुसार सतो का प्रथम तथा प्रमुख कर्तव्य प्रतिदिन प्रवचनों के माध्यम से अपने अनुयायियों को उद्वोधन देना होता है। भगवान महावीर द्वारा परिपुष्ट की गई *इस परम्परा का अपना महत्व भी है क्योकि प्रवचनो के माध्यम से ही सत उस* ज्ञान का जनहित मे प्रचार करते हैं जो अपनी कठोर तपश्चर्या और साधना द्वारा उन्होने अर्जित किया होता है। स्वय भगवान महावीर ने 12½ वर्ष की कठोर साधना के उपरान्त जो प्रथम उपदेश दिया था उसे गणधरो ने सकलित किया और वह आचाराग सूत्र बना। जैन धर्म में प्रवचनो की महिमा इस एक तथ्य से ही स्पष्ट हो जाती है कि उसमे शास्त्रो को *'जिण पवयण'* अर्थात् जैन प्रवचन की सज्ञा से ही अभिहित किया जाता है। जैन दर्शन की जो परम्परा प्रवचन के माध्यम से प्रारभ हुई वही गणधरो के माध्यम से व्यवस्थित एव सगृहीत होती हुई हम तक पहुँची है। आचार्य नानेश ने अपने 60 वर्षो के साधु जीवन में इसे अपनी तरह से सम्पन्न किया। इस प्रकार स 1997 मे साधु जीवन अगीकार करने और सवत् 2020 में आचार्य पद की प्राप्ति के बाद स 2056 तक अर्थात् अपने निर्वाण के समय तक तथा ईस्वी शताब्दी के अत तक वे अपने अनुयायियों से प्रवचनो के माध्यम से जुड़े रहे। इतना लम्बा प्रवचनकाल सम्पूर्ण ससार में और

विशेष रूप से भारत में, अत्यत उथल-पुथल का रहा था। इस काल ने न केवल द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान हुई भीषण हिसा का साक्षात्कार किया था वरन साम्यवाद के उदय और अस्त के दर्शन भी किये थे। परमाणु शक्ति के प्रसार तथा अतरिक्ष यात्राओ के विविध रूपो के विकास का भी यह युग साक्षी रहा था। इसी युग में भारत सहित ससार के अनेक देश स्वतत्र हुए और विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी के चमत्कारी युग का श्रीगणेश हुआ। इसके साथ ही गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, अपराध, आतकवाद, पर्यावरण-विनाश, जनसख्या विस्फोट, अशाति, असतोष आदि की स्थितियाँ अपने विकरालतर रूप में समाज के सम्मुख उपस्थित हुईं। कोई सामान्य व्यक्ति भी इन स्थितियों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था फिर आचार्य नानेश तो सिद्धि-प्राप्त सत थे। अत यह स्वाभाविक था कि समसामयिक जीवन के विविध पक्षो पर वे अपने विचार प्रकट करते और लोगो को उनके प्रति शिक्षित करते। ऐसा उन्होंने पूरी निष्ठा के साथ किया—कभी पूरे प्रवचनों के माध्यम से और कभी प्रवचन शृखला के माध्यम से। फुटकर रूप में तो समय और परिस्थितियों के अनुसार वे उन पर टिप्पणी करते ही रहते थे और लोगों को सचेत, जाग्रत और प्रेरित करते रहते थे। परन्तु उनके प्रवचनों का विषयानुसार सकलन न किया जाने के कारण किसी भी एक विषय से सबधित उनकी चिन्तनधारा से उसकी सम्पूर्णता में परिचित होने म कठिनाई होती है। एक अन्य कठिनाई यह भी है कि उनके अप्रकाशित प्रवचनों से परिचय पाना, जिनकी सख्या प्रकाशित प्रवचनों से कम नहीं है, सभव नहीं है। निश्चय ही ऐसा भी हुआ है कि उन्होने किसी विशिष्ट विषय पर शृखलाबद्ध प्रवचन दिये, जैसे मुम्बई वर्षावास के दौरान, जो *'समता निर्झर'* मे सकलित किये गये हैं। जहाँ ऐसा हुआ है वहाँ निश्चय ही गभीर ज्ञान सामग्री पाठको को एक ही स्थान पर मिल जाती है। इस सकलन की भी ऐसी ही उपयोगिता है क्योंकि ये प्रवचन प्रमुख रूप से सामायिक साधना से सबधित हैं जो जैन साधना पद्धति की आधारशिला है परन्तु अधिकाश श्रावक इसकी सम्यक् विधि से अनभिज्ञ होने के कारण अपेक्षित लाभ से वचित रह जाते है। इसीलिये आचार्यप्रवर ने इस विषय को

चुनकर 13 प्रवचनों मे विषय की गभीर मीमासा की। यही नहीं ससार में व्याप्त विषमता के निवारण हेतु मार्गदर्शन करने के लिए समता को निष्कर्ष के रूप में भी प्रस्तुत किया। इन प्रवचनो के शीर्षका के कतिपय उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि कर सकेगे—सामायिक साधना, सामायिक में हिसा वर्जन, सामायिक अमृतबूँटी, सामायिक साधना बनाम इन्द्रियविजय आदि। इसी प्रकार आत्म-समीक्षण साधना से सबधित प्रवचनो के भी कई सकलन प्रकाशित हुए है जो आचार्य श्री नानेश द्वारा खोजी गई, विकसित की गई तथा प्रयुक्त की गई साधना पद्धति का साँगोपाँग विवरण प्रस्तुत करते है। समीक्षणध्यान-साधना चाहे वह किसी भी रूप में हो, आचार्य श्री नानेश की साधना की चरम उपलब्धि है। सत्य तो यह है कि उनके चिन्तन का समाहार ही समीक्षण ध्यान चिन्तन मे हुआ है। अपनी वृत्तियों को समभावपूर्वक देख पाना अभ्यास द्वारा ही सभव है। आचार्य नानेश ने इन मे स्पष्ट किया है कि क्रोध, मोह, लोभ, मान आदि प्रवृत्तियाँ मनुष्य के अन्तर्मन को असतुलित कर देती है। इस मन को सतुलित करने का एक ही मार्ग है—समीक्षण ध्यान-साधना। इसी समीक्षण ध्यान-साधना को समता के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचाने वाली विधि है आत्मसमीक्षण, जिसके सभी अगों का विस्तृत विवेचन आचार्यश्री ने अपने जिन प्रवचनों मे किया। उनके कतिपय प्रमुख सकलन है—*समता दर्शन और व्यवहार, समीक्षण ध्यान मनोविज्ञान, समीक्षण ध्यान एक प्रयोगविधि, क्रोध समीक्षण, माया समीक्षण, आत्म समीक्षण* आदि। परन्तु ऐसा नहीं है कि ये अथवा ऐसे विषय सकलनों तक ही सीमित हैं। अन्य सकलनो मे, जिनका आधार सामान्यत वर्षावास का स्थान है, उनमें भी धर्म, दर्शन, अध्यात्म आदि से सबधित ऐसी गभीर सामग्री तो है ही, चिन्तन, मनन और प्रेरणा से सबधित सामग्री भी प्रचुर मात्रा में सकलित है। इसीलिए वे नीति, दर्शन और व्यवहार की कसौटी बन गये हैं।

आचार्य नानेश एक उदार दृष्टि-सम्पन्न चिन्तक ही नहीं थे, उनके अनुभव का क्षेत्र भी अत्यत व्यापक था। जीवन और जगत् की समस्याओं को उन्होंने निकट से देखा और समझा था तथा जनजीवन की व्याधियों से वे भलीभाति

परिचित थे और चूँकि वे धर्माचार्य भी थे इसलिए उन्हाने इन सब को धर्म की दृष्टि से देखा, इनकी सम्यक् विवेचना की और उनके निराकरण हेतु सटीक एव सार्थक टिप्पणियाँ कीं। उनकी खुली मानववादी दृष्टि न ऐसे प्रवचनो को महत्त्वपूर्ण बनाया। परिणामस्वरूप उनको दो दर्जन से भी अधिक सकलनों में निबधात्मक रूप म सकलित किया गया। जीवन के सभी क्षेत्रों मे मार्गदर्शन करने की अपनी उपयोगिता के कारण ये प्रवचन/निबध अत्यत लोकप्रिय हुए। इन प्रवचना के विषय इतने वैविध्यपूर्ण हैं कि उन्हे निश्चित वर्गो म नहीं बाँटा जा सकता। धर्म, अध्यात्म, दशन, राजनीति, राष्ट्रीयता, विज्ञान, शाकाहार, प्रदूषण, विश्व-शाति, सस्कृति, कुव्यसन तथा मानव जीवन से सबधित विविध विषयो का तो अपने प्रवचनो म समेटा ही, मनुष्य के अन्तर्मन से लकर भौतिक चिन्तन तक के विविध विषयो पर भी अपने विचार प्रकट किये। सकलनकर्ताओं/सम्पादको ने सकलित प्रवचना की प्रकृति पर ध्यान रखकर इन्हे जो शीर्षक दिये वे भी अपनी तरह से अर्थपूर्ण हैं। इस प्रकार *'अपने को समझे'* भाग 1, 2 व 3 म सकलित प्रवचनो के विषय अपने-आप को समझने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसे कतिपय विषय है—*अतर्चक्षुओं का आपरेशन, क्या पानी को मथ कर मक्खन निकाल सकेंगे, दिल और दिमाग की दुर्गन्ध निकाले सीमित घेरो से विराट् की ओर, देखे कि क्या कर रहे हैं, क्या करना चाहिए, एक साधे सब सधे, सुसस्कारो के निर्माण का पथ,* आदि। यही स्थिति अन्य सकलनो के शीर्षको की भी है जिनमें कतिपय प्रमुख है—*प्रवचन पीयूष, सुख और दु ख सर्वमगल सर्वदा, प्रेरणा की दिव्य रेखाएँ, ताप और तप, अमृत सरोवर, आध्यात्मिक ज्योति, ऐसे जीयें, सच्चा सौन्दर्य,* आदि। इन तथा ऐस सकलनों की सामग्री मनुष्य की धर्मबुद्धि को जाग्रत करती है, उस धर्माचरण की दिशा दिखाती है और उसकी आध्यात्मिक जिज्ञासाओं को शात करती है।

शृखलाबद्ध प्रवचनो की दृष्टि से सस्कार क्राति सकलन का अपना महत्त्व है क्याकि इसम सकलित प्रवचन आधुनिक जीवन के उस अभिशाप पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जा कुसस्कारो नैतिक विचारा के अवमूल्यन और अपसस्कृति के व्यापक प्रसार का परिणाम है। विकृत मूल्यो के इस पतनोन्मुखी युग मे सस्कार क्रान्ति की प्रेरणा देने हेतु प्रवृत्त हाना एक ऐसा पुनीत कर्तव्य था जिसकी पूर्ति आचार्य नानेश जैसा कोई सिद्ध सत ही कर सकता था। सस्कार क्रान्ति को मानव मात्र के दायित्व तथा सामाजिक पुरुषार्थ का प्रतीक मान कर ही उन्होंने अप्रमत्त भाव से अपने इन्दौर चातुर्मास के 17 सप्ताहो मे प्रवचनो द्वारा आबालवृद्ध नर-नारी वर्ग को प्रेरणा देने का जो कार्य किया और श्रावकों ने भी उत्साह, रुचि तथा जिज्ञासापूर्वक जो सहयोग दिया वह आचार्य नानेश के सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रयासो की सफलता का एक अनुपम उदाहरण है। इन 17 सप्ताहों के 51 प्रवचनो के शीर्षकों पर यदि दृष्टिपात करे तो आचार्य नानेश के क्रान्तिकारी युगनिर्माता स्वरूप का सहज ही पता चल जायेगा। ऐसे कतिपय विषय थे—*महामत्र नमस्कार का जाप, स्वभाव सतुलन से हृदय परिवर्तन, बधनमुक्ति का साधन कर्तव्य पालन ब्रह्मचर्य प्रतिरोधक शक्ति-स्रोत, पर्यावरण सुरक्षा सर्वजीव सुरक्षा, सुसस्कार, सद्व्यवहार तथा सहकार की त्रिवेणी, रक्तरजित सौन्दर्य प्रसाधनो का उपयोग क्यो, गर्भपात एक महापाप, वन्दना की अपराजेयता, आत्मघाती कषाय-विसर्जन, विषमता बनाम कुरीतिया, आतिशबाजी समय, शक्ति व धन की बर्बादी,* आदि। इन प्रवचनो द्वारा व्यक्ति क भीतर बैठी शक्ति को जाग्रत एव सक्रिय करने के प्रयास किये गये जिससे सुमति तथा कर्तव्यबुद्धि विकसित हो सके और सस्कार क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इस कठिनाई के उपरान्त भी कि आचार्यश्री के प्रवचनों का सकलन विषय के आधार पर नहीं चातुर्मासो के स्थानों के आधार पर किया गया है, सत-सती वर्ग के प्रयासों स कतिपय विषयो पर स्वतत्र पुस्तकों का निर्माण हो सका है। एसी एक पुस्तक है—*गुणस्थान स्वरूप और विश्लेषण,* जिसमे सबधित विषय पर आचार्यश्रीजी क प्रवचनों को श्रमणीरत्ना विदुपी साध्वी विपुलाश्रीजी म सा तथा श्री विजेताश्रीजी म सा ने एक स्थान पर सगृहीत किया है। इस प्रकार आत्म विकास क उन 14 सोपानों का विधिवत वर्णन सभव हो सका है जिन पर चढ कर

ही जीव मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुच सकता है। दूसरी पुस्तक है—*निर्ग्रन्थ परम्परा मे चैतन्य आराधना।* इसमे आचार्यश्रीजी के तत्सबधी प्रवचनो को उनके आज्ञानुवर्ती सत-सती वर्ग ने एक स्थान पर सगृहीत किया है। यह पुस्तक जैन धर्म मे चैतन्य की आराधना को निरूपित करनेवाली एक विशिष्ट रचना है।

एक क्रान्तिकारी धर्माचार्य की चिन्ता समाज और अध्यात्म तो होते ही है धर्मशास्त्रों और धर्म-सिद्धान्तों की जनहित की दृष्टि से विवेचना करना भी वह अपना कर्तव्य समझता है। आचार्यश्री आगमा के गभीर विद्वान थे तथा उस ज्ञान को लोगों के लिए सुलभ बनाने की आवश्यकता अनुभव करते थे। यद्यपि अपने दैनिक प्रवचनो मे भी वे धर्मशास्त्र सबधी विषयो की विवेचना करते रहते थे तथा श्रोताओ की जिज्ञासाएँ शान्त करने का पूरा प्रयास करते थे तथापि स्वतत्र रूप से धर्मशास्त्रों की विवेचना का कार्य आवश्यक समझ कर उन्होने जिन ग्रन्थो की सामग्री प्रदान की उनमे प्रमुख है—*जिण धम्मो, आचाराग सूत्र, भगवती सूत्र, अतकृद्दशाक सूत्र* और *कल्प सूत्र*। धर्मशास्त्रो की विवेचना से सबधित यह कार्य साधु-साध्वियों के लिए जितना उपयोगी है उतना ही सामान्य श्रावकों के लिए भी है।

आचार्य नानेश के साहित्य पर विचार करते समय जो एक बात तीव्रता स अनुभव होती है वह यह है कि उन्होंने सासारिक जीवन के सत्यो को गहनता से समझा था और चिरतन जीवन अथवा मोक्ष के सदर्भ मे उनकी सम्यक् विवेचना की थी। इस प्रकार एक कुशल चिकित्सक के रूप में उन्होंने भवरोगो के कारणों की मीमासा की थी तथा अपने ज्ञान और अनुभव से उनके उपचार हेतु आवश्यक सूत्र प्रस्तुत किये थे। इन सूत्रो को समझ कर इन पर आचरण करने की आज महती आवश्यकता है। इस दिशा में सम्यक् गति हो सके इसके लिए उनके साहित्य का वर्गीकरण और विषयानुसार सकलन आवश्यक है। यह भी अपेक्षित है कि जो साहित्य प्रकाशित नहीं हुआ है और सघों तथा श्रावकों के पास किसी भी रूप में उपलब्ध है, उसे भी प्राप्त कर जनहित म प्रकाशित किया जाये। निश्चय ही यह श्रमसाध्य कार्य है परन्तु आवश्यक है क्योकि इसी प्रकार उस युगद्रष्टा सत की धरोहर को भावी पीढियो के लिए सुरक्षित किया जा सकेगा। साहित्य के माध्यम से धर्माचरण की शिक्षा देने मे निश्चय ही इससे अनोखी सहायता मिलेगी और धर्माचरण की सुनिश्चिति ही भावी अनिष्ट को टालने और जनहित को साधने का एकमात्र मार्ग बचा है। यही साहित्य का मार्ग भी है—हित सन्निहित तत् साहित्यम्। आचार्य श्री नानेश के साहित्य की तो यह मूल प्रकृति ही है। ◆

साधना के पथ पर अकेले है तो अकेले ही चल पड़िये, किसी साथ या सहायता की अपेक्षा मत कीजिये। स्वाश्रय ही सबसे बड़ा आश्रय होता है।

—आचार्य श्री नानेश

सज्जनसिह मेहता 'साथी'

आचार्य नानेश का अनुपम प्रदेय : समता प्रचार संघ
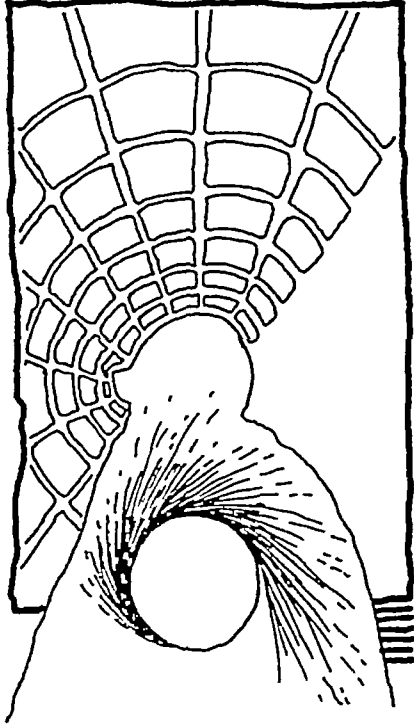
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दु ख-समूह को हरते हैं।।

परम तीर्थकर भगवान् महावीर की श्रमण परम्परा मे विगत वर्षो मे कुछ शिथिलता का अनुभव किया जा रहा है। सत समुदाय परिवर्तित परिस्थितियों मे अपनी मर्यादाओं को विस्मृत कर सामाजिक कार्यो में रुचि लेने लगे है। ऐसी परिस्थितिया मे ज्योतिर्धर स्व आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने श्रमण सस्कृति को अक्षुण्ण रखने के लिए समाज के समक्ष श्रमण एव श्रावक वर्ग के मध्य एक तृतीय वर्ग की स्थापना की योजना प्रस्तुत की थी जिससे श्रमण वर्ग अपनी मर्यादा को सुरक्षित रखते हुए आत्म-साधना एव धर्म-प्रचार कर सके। परन्तु तत्कालीन समाज इस योजना को मूर्त रूप नहीं दे सका।

स्व आचार्य श्री नानेश ने ज्योतिर्धर जवाहर की इस योजना को क्रियान्वित करने हेतु 'वीर सघ' एव 'समता प्रचार सघ' नामक दो योजनाओं की प्रेरणा प्रदान की। जैन धर्मानुयायी देश-विदेश मे विभिन्न क्षेत्रो मे निवास करते हैं। भारत देश मे ही ऐसे अनेक दुर्गम स्थान हैं जहाँ सयमित जीवन की मर्यादाओ को सुरक्षित रखते हुए जैन श्रमण-श्रमणिया का पहुँचना सभव नहीं है। अनेक सुगम स्थान भी सत मुनिराज-महासतियाँजी म सा के चातुर्मास से वचित रह जाते हैं क्योकि क्षेत्रो की सख्या की तुलना में सत-सतियों की सख्या अल्प है। ऐसी स्थिति मे अनेक क्षेत्र पर्यूषण पर्व मे भी धर्माराधना से वचित रह जाते हैं।

समता प्रचार सघ का शुभारम्भ

स्व आचार्यदेव श्री नानेश न सम्पूर्ण परिस्थितियो का समझकर एसे क्षेत्रो में धर्म-गगा के प्रवाह हेतु 'समता प्रचार सघ' की प्रेरणा प्रदान की। आचार्य श्री नानश की सद्प्ररणा से श्री अखिल

भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन सघ, बीकानेर ने सन् 1979 में उदयपुर में समता प्रचार सघ की स्थापना की एव स्व श्री गणेशीलालजी सा बया को सयोजक पद प्रदान किया। इसके पूर्व देशनोक, नोखा, गगाशहर, भीनासर आदि स्थानों पर स्वाध्यायी शिविरों का आयोजन कर प्रशिक्षण दिया गया। समय-समय पर व्याख्यानो मे एव व्यक्तिगत रूप से भी आचार्य श्री नानेश ने अनेक व्यक्तियो को स्वाध्यायी बनने की प्रेरणा प्रदान की।

पर्यूषण पर्व मे स्वाध्यायी की सेवा धर्मदान है—

आचार्य श्री नानेश ने अपने व्याख्यानो में कई बार कहा कि समता प्रचार सघ के स्वाध्यायी पर्यूषण पर्व में बाहर जाकर जो धर्माराधना करवाते हैं, वह धर्मदान है। ऐसे अनेक गणमान्य, समाज सेवी, प्रभावशाली प्रबुद्ध व्यक्ति हैं जो आपकी सद्प्रेरणा से प्रेरित हो स्वाध्यायी बने तथा समय समय पर पर्यूषण पर्व मे सेवा प्रदान की। उद्योगपति श्री गणपतराजजी बोहरा, सुश्रावक श्री गुमानमलजी चोरड़िया, श्री भवरलालजी कोठारी, श्री मोहनलालजी मूथा, श्री पी सी चौपड़ा, श्री सागरमलजी चपलोत, वीर सघ धर्म प्रचारक श्री कन्हैयालालजी भूरा, श्री प्यारेलालजी भण्डारी एव मेरे जैसे अनेक व्यक्तियों ने आचार्य श्री नानेश से प्रेरणा प्राप्त कर पर्यूषण पर्व के पावन प्रसग पर समता प्रचार सघ के स्वाध्यायी के रूप मे विभिन्न क्षेत्रों में जाकर सेवा-कार्य किया है।

> धर्म प्रभावना, सघ सेवा एवं स्वाध्याय हेतु 'समता प्रचार संघ' की नयी दिशा दिखा कर आचार्य श्री नानेश ने भगवान् महावीर की श्रमण परम्परा को सम्पुष्ट एव सुदृढ करने का जो अनुपम कार्य किया है वह निश्चय ही उनकी ऐसी देन है जिसके लिये समाज एवं धर्मसंघ उन्हें युगों युगों तक याद रखेगा।

विभिन्न सघों से दर्शनार्थ आने वाले सघ प्रमुखो को भी स्व आचार्यदेव यह प्रेरणा प्रदान करते थे कि चातुर्मास स्वीकृत नहीं होने की स्थिति में समता प्रचार सघ के स्वाध्यायियो को पर्यूषण पर्व के अवसर पर आमन्त्रित किया जावे। परिणामस्वरूप अनेक नये-नये स्थानो से समता प्रचार सघ को स्वाध्यायियो के लिए माँग प्राप्त होने लगी। देश के विभिन्न क्षेत्रो मे तथा नेपाल, भूटान में समता प्रचार सघ के स्वाध्यायी पहुँचने लगे। आचार्य श्री नानेश की सद्प्रेरणा से समता प्रचार सघ को नये-नये क्षेत्रो से माग भी प्राप्त होने लगी तथा नये-नये स्वाध्यायी भी तैयार हुए हैं। स्व आचार्यदेव एव उनके ही पदचिह्नो के अनुगामी परमश्रद्धेय, शास्त्रज्ञ, प्रशान्तमना वर्तमान आचार्य 1008 श्री रामलालजी म सा की सद्प्रेरणा का प्रतिफल है कि गत वर्ष समता प्रचार सघ के 250 से अधिक स्वाध्यायियो ने 118 स्थानों पर पर्यूषण पर्व मे पहुँच कर सेवा प्रदान की। सघ का लक्ष्य है गुरु आपके मन्त्र को घर-घर पहुँचायेगे। गुरु के मन्त्र को घर-घर पहुँचाने का सर्वोत्तम मार्ग है—समता प्रचार सघ के स्वाध्यायी के रूप में पर्यूषण पर्व मे सेवा प्रदान करना क्योंकि मात्र नारों से काम नहीं चलेगा। गुरु की आज्ञाओं को शिरोधार्य कर, समता प्रचार सघ के सक्रिय स्वाध्यायी बनकर एव स्वाध्याय-सामायिक को जीवन का अग बना कर धर्म प्रचारार्थ पर्यूषण पर्व मे सेवा करना अपेक्षित है। इसस दोहरा लाभ होगा—प्रथम, जिस क्षेत्र में स्वाध्यायी पधारेंगे वहाँ पर्यूषण पर्वाराधना होगी तथा क्षेत्र लाभान्वित होगा। द्वितीय, पर्यूषण पर्व के पावन प्रसग पर स्वय को भी धर्माराधना का लाभ प्राप्त होगा।

तन-धन कचन-राज सुख सबहि सुलभ कर जान।
दुर्लभ है ससार में, एक यथारथ ज्ञान।।
धर्म करत ससार सुख, धर्म करत निरवान।
धर्म पथ साधे बिना नर तिर्यच समान।।

धर्म प्रभावना, सघ-सेवा एव स्वाध्याय हेतु नयी दिशा दिखा कर आचार्य श्री नानेश ने भगवान् महावीर की श्रमण-परपरा को सम्पुष्ट एव सुदृढ़ करने का यह जो अनुपम कार्य किया है वह निश्चय ही उनकी ऐसी देन है जिसके लिए समाज एव धर्म सघ उन्हें युगों-युगों तक विस्मृत नहीं कर पायेगा। ◆

श्रीमती रजना प्रचडिया 'सोमेन्द्र'

आचार्य श्री नानेश द्वारा उद्‌बोधित संघ-सेवावृत्ति
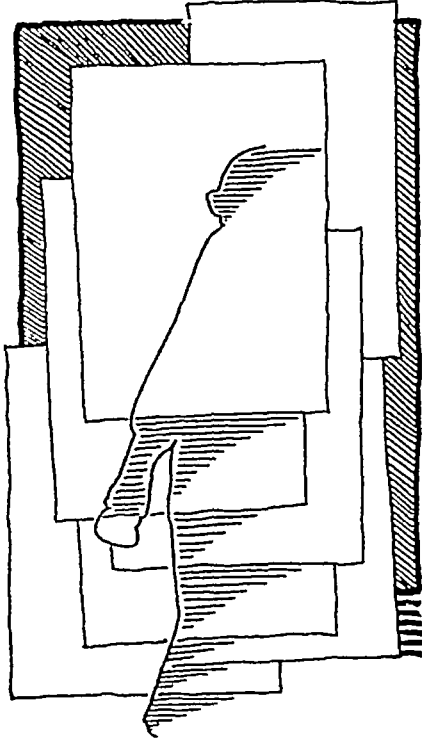
आचार्य श्री नानेश बहुविध कलाओ के धनी थे। वे आचार्य थे। धर्मनिष्ठ सत थे। साहित्यकार थे। तत्त्वदर्शी थे। धर्म-दर्शन के प्रणेता थे। सेवाभावी थे। इतना सव होते हुए भी वे सरल व सौम्य स्वभावी थे। सघ-सेवावृत्ति पर उनके अपने मौलिक विचार थे।

आचार्य श्री नानेश का मत था कि प्रत्येक चतुर्विध सघ के सदस्य को यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रमण सस्कृति को सुरक्षित रखना उसका व्यक्तिगत दायित्व है और इस सुरक्षा के स्वरूप पर ही सेवा का मूल्याकन किया जाएगा। अत यह समझ ले कि कार्य और हम स्वय—दो अलग-अलग चीज नहीं है। दोनों एक-दूसरे से जुडे हैं। कर्तव्यबोध हो जाने पर सेवा का भाव अपने आप ही उत्पन्न हो जाता है। तब फिर इस बात की फिक्र ही नहीं रहती कि दुनिया हमारी की गई सेवा को सत्कार देगी या दुत्कार। वह सेवा का मूल्याकन करेगी या नहीं। व्यक्ति यदि इस सम्पूर्ण व्यावसायिक चितन से ऊपर उठकर आत्मशुद्धि क पथ पर अग्रसर हो जाये ता जो सघ-सवा का कार्य है वह श्रद्धा व समर्पण से मुक्त हो जाये।

सघ-सेवावृत्ति

आचार्य श्री नानेश ने सघ-सेवावृत्ति को वैयावृत्ति तप माना है। यह सही भी है क्याकि सेवा का दूसरा नाम ही तप है। मनुष्य मस्तिष्क से या शरीर से सेवा करता है तो उस सेवा के रूप पृथक् हो सकते हैं किन्तु उसके मूल मे अपनत्व, स्नेह, सरलता और सहजता सदैव विद्यमान रहते हैं। कठोर व्यक्ति सेवक कैसे हो सकता है ? सरल व्यक्ति का हृदय भी सरल होता है। अत जो हृदय से जुड़कर कार्य करत हे वे सही अर्थो मे प्रभु क पुजारी होते हैं। इसीलिए यदि आचार्य प्रवर यह कहते हैं कि सघ-सेवावृत्ति तप है ता गलत नहीं है। मन की शुचिता होने पर ही सेवा की स्थिति प्रारम्भ होती है। इसीलिए

उन्होने कहा, 'सघ-सेवा के लिए काई कहे या नहीं, व्यक्ति को स्वत ही करते रहना चाहिए। जो जिस योग्य है वह उसी रूप मे रहकर सघ-सेवा वृत्ति से जुड़ सकता है।' इसलिए उन्होंने एक जगह कहा था कि—'आत्म-शुद्धि के लिए सघ-सेवा भी एक सशक्त साधना है।'

सघ-सेवा कैसे की जाए, इस सबध मे भी आचार्यश्री की दृष्टि स्पष्ट थी। उनका मानना था कि सघ-सेवावृत्ति के लिए व्यक्ति को सेवा ढूँढनी नहीं पड़ती। उसने जो काम हाथ मे लिया उसे पूर्ण करके ही दम लेने की वृत्ति में सफल सेवावृत्ति मानी जाती है। अत उन्होंने कहा कि सघ-सेवा की दृष्टि से प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ सकल्प लेना चाहिए। यह सकल्प कितने भी समय का हो सकता है। एक घटे से लेकर दिन, मास या वर्षो तक का। जैसी भी साधक में शक्ति और क्षमता मौजूद हो उसके अनुसार कोई भी सकल्प लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त आचार्य श्री नानेश का मानना था कि सस्कार सुधार भी एक प्रकार से सेवा का ही क्षेत्र है। सस्कार व्यक्ति के जीवन को परिवर्तित कर सकता है। वे उसे पतित स्थिति से मुक्ति के पथ पर अग्रसर भी कर सकते हैं। माता-पिता, गुरु, साधु-सत इनके मध्य रहकर सुसस्कार प्राप्त किये जा सकते है। 'समता प्रचार सघ' और 'वीर सघ योजना' द्वारा जो सेवाकार्य किया जा रहा है वह धर्म सेवा ही है। समता प्रचार सघ की प्रेरणा आचार्यश्रीजी ने धर्मसेवा के रूप मे ही दी थी। इस प्रकार उन्होने श्रमण एव श्रावक वर्ग के बीच एक तृतीय वर्ग की स्थापना का कार्य सम्पन्न किया जिसकी परिकल्पना ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा ने स्वाध्यायी उपलब्ध कराने की दृष्टि से की थी।

> आचार्य श्री नानेश कहते थे, 'चतुर्विध सघ के नाते संत-सती वर्ग और श्रावक-श्राविका वर्ग को अपने-अपने कर्तव्यों का सम्यक् रीति से निर्वाह करना चाहिए और यह भी आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिए कि उनके द्वारा की गई सेवा वृत्ति में उनका कहीं कुछ स्खलन तो नहीं हुआ है। आत्म-निरीक्षण और आत्म-आलोचन करते हुए यदि निश्छल भाव से सघ सेवा की जाय तो जीवन की साधना भी स्वत ही सफल हो जाती है।

सघ-सेवावृत्ति ही सफल जीवन की साधना

उनका मानना था कि सघ-सेवावृत्ति प्रत्येक व्यक्ति मे विद्यमान होनी चाहिए। यह वृत्ति सस्कार के माध्यम से सृजित होती है। यह वृत्ति बोझ के रूप मे नहीं होनी चाहिए। सफल जीवन की यह साधना भी स्वत ही निसृत होती है और उस स्थिति में की गई आत्मकल्याणार्थ सेवा मुक्ति के मार्ग का प्रशस्त करती है। अत आचार्य श्री नानेश कहते हैं कि 'चतुर्विध सघ के नाते सत-सती वर्ग और श्रावक-श्राविका वर्ग को अपने-अपने कर्तव्यो का सम्यक् रीति से निर्वाह करना चाहिए और यह भी आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए कि उनके द्वारा की गयी सेवा-वृत्ति मे उनका कहीं कुछ स्खलन तो नहीं हुआ है। आत्म-निरीक्षण या आत्म-आलोचना करते हुए यदि निश्छल भाव से सघ सेवा की जाए तो जीवन की साधना भी स्वत ही सफल हो जाती है।' ◆

ईर्ष्या राक्षसी होती है, इसका जिसके मन पर असर हो जाता है वह जीवन के स्वरूप को बिल्कुल नहीं देख पाता। वह जीवन का अपव्यय कर उसे नष्ट कर डालता है।

—आचार्य श्री नानेश

प्रो प्रेम सुमन जैन

आचार्य नानेश : समाधि मरण और शास्त्रीय संदर्भ
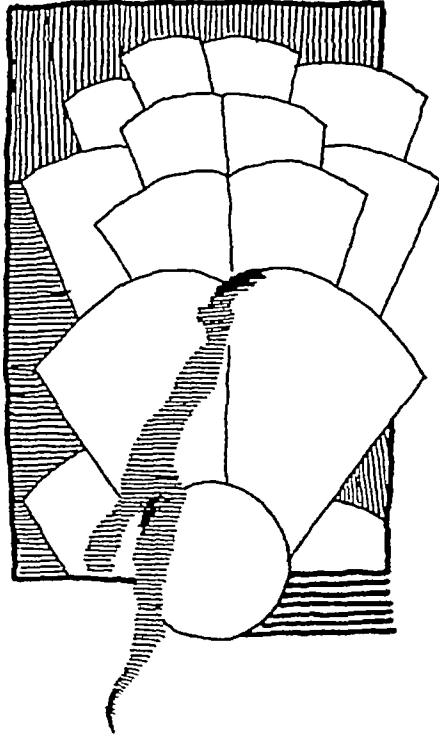
आचार्य श्री नानेश ने सल्लेखना सथारापूर्वक समाधिमरण का जो मार्ग अपनाया वह वर्तमान युग की एक दिव्य घटना थी। अपने जीवन मे कठोर तप-साधना द्वारा उन्होने जहाँ यह दिखा दिया कि जीवन क्या होता हे और उसे जीने की कला क्या है वहीं समाधिमरण का मार्ग अपना कर उन्होने यह भी दिखा दिया कि मरण क्या होता है, उसकी क्या कला है और कैसे वह महोत्सव बन सकता है ? इस प्रकार की मृत्यु स्वीकार कर उन्होने जहाँ अपनी साधना के भव्य प्रासाद को स्वर्णकलश से मण्डित किया वहीं जीवनपर्यन्त आतरिक एव बाह्य शत्रुओ के साथ सघर्ष कर सग्राम मे अतिम रूप से विजय भी प्राप्त कर ली। आचार्य श्री नानेश की इस विजय-यात्रा के सदर्भ मे समाधिमरण की किचित् शास्त्रीय विवेचना कर लेना उपयुक्त होगा।

जैन नैतिक चितन मे केवल जीवन जीने की कला पर ही नहीं वरन् उसमें जीवन की कला के साथ मरण की कला पर भी विचार किया गया हे। नैतिक चितन की दृष्टि से किस प्रकार जीवन जीना चाहिए यही महत्त्वपूर्ण नहीं है वरन् किस प्रकार मरना चाहिए, यह भी महत्त्वपूर्ण है। मृत्यु का अवसर ऐसा अवसर हे जब हममे से अधिकाश अपने भावी जीवन का चुनाव करते हैं। गीता का कथन है कि मृत्यु के समय जीव की जेसी भावना होती है वह वैसी ही योनि प्राप्त करता है। सस्तारक प्रकीर्णक में उपलब्ध स्कन्धक मुनि की कथा यही बताती है कि जीवन भर कठोर साधना करने वाला महान् साधक, जिसने अपनी प्रेरणा एव उद्बोधन से अपने सहचारी चार सो निन्यानव साधक शिष्यो को उपस्थित मृत्यु की विषम परिस्थिति म समत्व की साधना के द्वारा निर्वाण का अमृतपान कराया था, वही साधक स्वय की मृत्यु के अवसर पर क्रोध के वशीभूत हो किस प्रकार अपने साधनापथ स विचलित हो गया। मृत्यु इस जीवन की साधना का परीक्षा काल है। मृत्यु इस जीवन में लक्षोपलब्धि का अन्तिम अवसर और भावी जीवन की कामना का आरम्भ बिन्दु हे। इस प्रकार वह अपने म दो जीवनो का मूल्य सजोए

होती है। मरण जीवन का अवश्यम्भावी अग है जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती है। वह जीवन का उपसहार है, जिसे सुन्दर बनाना हमारा कर्तव्य है।

ससरण-शील ससार मे जन्म लेने वाले जीव का मरण निश्चित है। यद्यपि आत्मा अजर, अमर और अजन्मा है। वस्तुत उसका न जन्म है और न मरण। फिर भी ससरावस्था मे शरीर-प्राप्ति, जन्म और शरीर-छूटना, मरण कहा जाता है। मरण को अज्ञानी बुरा मानता है। अज्ञानी पर्याय-दृष्टि प्रधान होने से प्राणवियोग रूप मरण पर दु ख करता है। किन्तु ज्ञानी द्रव्यदृष्टि की प्रधानता से प्राण वियोग या शरीर छूटने से भी प्रसन्न रहता है। सदा समरस रहता है। वह विचार करता है कि मैं त्रिकाल सत्य हूँ इस शरीर से पूर्व भी मेरी सत्ता थी, इस शरीर में है और शरीर छूटने पर भी रहेगी। मैं सुकृताचरण से कृतकृत्य हो चुका हूँ अत मुझे मरण से क्या भय है? ऐसा चिन्तन करता हुआ साधक शास्त्रोक्त समाधिमरण या सल्लेखना की विधिपूर्वक शरीर छोड़ने मे प्रयत्नशील होता है।

सल्लेखना शब्द सत् और लेखना इन दो शब्दो के सयोग से बना है। सत् का अर्थ सम्यक् और लेखना का अर्थ तनुकरण अर्थात् कृश करना है। बाह्य शरीर और आभ्यन्तर कषायों के कारणों को निवृत्ति पूर्वक क्रमश भली प्रकार क्षीण करना सल्लेखना है। इस मारणान्तिक सल्लेखना को प्रीतिपूर्वक सेवन करना चाहिए। आचार्य पूज्यपाद ने सल्लेखना की परिभाषा बताई है—सम्यक् प्रकार से काय और कषाय का लेखना करना। अर्थात् बाह्य सल्लेखना शरीर की और आभ्यन्तर सल्लेखना कषायों की, भली-भाँति लेखन करना, धर्मरक्षार्थ अन्तरग और बहिरग परिग्रह का त्याग करके जीवनमरण की आशा से रहित क्रमश कृश करते हुए शरीर को छोड़ना सल्लेखना है।

पचास्तिकाय में द्रव्य-भाव सल्लेखना का सुन्दर लक्षण दिया गया है कि आत्मसस्कार के अनन्तर उसके लिए ही क्रोधादि-कषाय रहित अनन्तज्ञानादि गुण लक्षण परमात्म पदार्थ मे स्थित होकर रागादि विकल्पो का कृश करना भाव सल्लेखना है और उस शरीर को कृश करना द्रव्य सल्लेखना है। इन दोनों प्रकारों का आचरण करना सल्लेखना काल है। आचार्य शिवकोटि काय और कषाय की कृशता मुख्य रूप से भक्त प्रत्याख्यान के माध्यम से ही स्वीकार करते हैं। भक्त प्रत्याख्यान ही सल्लेखना है। सल्लेखना को ही समाधिमरण कहा है। सल्लेखना के दो भेद हैं—आभ्यन्तर सल्लेखना और बाह्य सल्लेखना। क्रोधादि कषायो का त्याग करना आभ्यन्तर सल्लेखना है और शरीर का कृश-क्षीण करना बाह्य सल्लेखना है। इस बाह्य सल्लेखना का निरूपण करते हुए आचार्य कहते हैं कि शरीरेन्द्रियों को पुष्ट करने वाले समस्त रसयुक्त आहारों का त्याग कर नीरस रूखा आहार करते हुए क्रमश शरीर को क्षीण करना शरीर सल्लेखना है। इसका दूसरा अर्थ है—जीवन के अन्तिम समय में सर्व प्रकार के बाह्य परिग्रह का त्याग कर अपने आप मे लीन होकर साम्यभाव से मृत्यु को स्वीकार करना। रागद्वेष का स्वस्वरूप समझने से आधि (मानसिक पीड़ा), शरीर को अपना समझने से व्याधि (शारीरिक पीड़ा) और पर-पदार्थ, घर, पुत्र, पौत्रादिक को अपना समझने से उपाधि होती है। यह आधि, व्याधि और उपाधि समाधि की घातक हैं। अत

> आचार्य श्री नानेश ने सल्लेखना सथारापूर्वक समाधिमरण का जो मार्ग अपनाया वह वर्तमान युग की एक दिव्य घटना थी। अपने जीवन में कठोर तप-साधना द्वारा उन्होंने जहाँ यह दिखा दिया कि जीवन क्या होता है और उसे जीने की कला क्या है वहीं समाधिमरण का मार्ग अपना कर उन्होंने यह भी दिखा दिया कि मरण क्या होता है, उसकी क्या कला है और कैसे वह महोत्सव बन सकता है? इस प्रकार की मृत्यु स्वीकार कर उन्होंने जहाँ अपनी साधना के भव्य प्रासाद को स्वर्णकलश से मण्डित किया वहीं जीवनपर्यन्त आंतरिक एवं बाह्य शत्रुओं के साथ सघर्ष कर सग्राम में अतिम रूप से विजय भी प्राप्त कर ली। आचार्य श्री नानेश की इस विजय-यात्रा के शास्त्रीय सदर्भ भी महत्वपूर्ण हैं।

इस सल्लेखना के पात्र मुनि और श्रावक दोना ही होते हैं। वाह्य और आभ्यन्तर व द्रव्य और भाव के भेद से सल्लेखना के दो भेद हैं। द्रव्य सल्लेखना और भाव सल्लेखना भेद स दो प्रकार की है। क्रोधादि कषायरहित अनन्त ज्ञानादि गुण लक्षण परमात्म पदार्थ मे स्थित होकर रागादि विकल्पो को कृश करना भाव सल्लेखना है और उस भाव सल्लेखना की प्राप्ति के लिए कायक्लेश रूप अनुष्ठान करना, भोजन आदि का त्याग करके शरीर को कृश करना द्रव्य सल्लेखना है। मरण अनेक प्रकार के हैं परन्तु उनमे पाँच मरण मुख्य माने गये हैं। वाल-वालमरण, वालमरण, वाल पडितमरण, पडितमरण और पडित पडितमरण।

मिथ्यादृष्टि का मरण वाल-वालमरण है, इसमे सल्लेखना नहीं हो सकती क्याकि इसम आत्मा और अनात्मा का भेद ज्ञान नहीं होता है। वालमरण चतुर्थ गुणस्थानवर्ती का होता हे, जहाँ ऐसी पर्याय है कि त्याग करने का सामर्थ्य ही नहीं है जैसे देव, नारकी चतुर्थ गुणस्थानवर्ती अथवा जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था में नरकायु, तिर्यचायु या मनुष्यायु का वन्ध कर लिया है। ऐसे प्राणी चतुर्थ गुणस्थान मे मरण करते हैं, वह वालमरण है। पचम गुणस्थानवर्ती मरण वाल पडितमरण है वयाकि इसम एकदेश वत हैं एकदेश अव्रत हैं, सम्यग्दर्शन सहित है, अत वाल पडितमरण है। सकल सयमी का मरण पडितमरण है। केवली का मरण पडितमरण है। सल्लेखना मरण के अधिकारी दो ही हैं—वाल पडितमरण और पडितमरण वाले। पडितमरण के तीन भेद हैं—1 प्रायोपगमनमरण 2 इगिनीमरण और 3 भक्त प्रत्याख्यान।

प्रायोपगमनमरण—दुष्कर असाध्य रोग के उत्पन्न होने पर, श्रामण्य की घातक अतिशय वृद्ध अवस्था आ जाने पर, निष्प्रतिकार्य देव, मानव और तिर्यच कृत उपसर्ग आन पर व आँख, कान, जघा वल के अत्यन्त क्षीण होने पर, साधक क्रमश सम्पूर्ण आहार-पानी का त्याग करके समाधिमरण हेतु तत्पर होता है। इस प्रायोपगमनमरण म स्व-पर के द्वारा सश्रुषा का परिहार करता है। वह जिस स्थान मे खडगासन या पदमासन से स्थित हाता है, वैसे ही मरणपर्यन्त रहता है।

इगिनीमरण—आहार का त्याग तो प्रायोपगमन के समान ही है परन्तु इस मरण में अपन द्वारा किये गये उपकार की अपेक्षा रहती है अर्थात् व्यक्ति अपनी वैयावृत्य स्वयमेव करता है, चलना, बैठना, मल-मूत्र आदि क्रिया में दूसरे का सहारा नहीं लेता है, परन्तु स्वयमेव आहारादि क्रियाओ मे प्रवृत्ति करता है।

भक्त प्रत्याख्यानमरण—भक्त का अर्थ खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय चार प्रकार का आहार है। प्रत्याख्यान का अर्थ त्याग है। मरण का समय निकट जानकर चारो प्रकार के आहार का त्याग करके समता भाव से शरीर छोड़ा जाता हे, वह भक्त प्रत्याख्यानमरण है।

सल्लेखना, श्रावक के 12 व्रता में एक व्रत है। उपासकाध्ययन, शिवकोटि आचार्य की रत्नमाला, वसुनन्दिश्रावकाचार और प्रतिक्रमण में श्रावक के चार शिक्षाव्रतों में देशव्रत का वर्णन न करके चतुर्थ व्रत सल्लेखना बताया गया है। रत्नकरण्डश्रावकाचार, सागारधर्मामृत तत्त्वार्थ सूत्र आदि मे 12 व्रतों का फल अन्त मे समाधिमरण करना कहा है।

समाधिमरण या सल्लेखना जीवन की अन्तिम वेला मे की जाने वाली एक उत्कृष्ट साधना है। जीवन भर कोई साधक उत्कृष्ट तप की साधना करता रह पर अन्त समय मे यदि वह राग-द्वेष के दलदल में फस जाये तो उसका जीवन निष्फल हो जाता है। उसकी साधना विराधना में परिवर्तित हो जाती है। आचार्य शिवकोटि ने यहाँ तक कहा है कि ज्ञान, दर्शन, चरित्र रूप धर्म मे चिरकाल तक निरतिचार प्रवृत्ति करने वाला साधक यदि मरण के समय मे धर्म की विराधना करता है, तो वह अनन्त भव धारण करने वाला देखा गया है। किन्तु जो मरण-काल में सल्लेखना ग्रहण करता है वह लोक के समस्त सारभूत सुखों को प्राप्त करता है। मूलाचार के वृहत्प्रत्याख्यानसस्ततरस्तव नामक द्वितीय अधिकार मे सल्लेखना का निरूपण है। सल्लेखनाधारी सकल्प करता है कि जा कुछ भी मेरा दुश्चरित है, उस सभी का मैं मन, वचन, काय से त्याग करता हूँ और तीन प्रकार क सामायिक (मन, वचन, कायागत अथवा कृत, कारित, अनुमोदन रूप) का निर्विकल्प रूप में करता हूँ (क्षत्र आदि) वाह्य तथा (मिथ्यात्व आदि) अभ्यन्तर परिग्रह को, शरीर आदि

को और भोजन सभी का मन-वचन-काय पूर्वक (कृत, कारित, अनुमोदना रूप) तीन प्रकार से त्याग करता हूँ। समस्त प्राणिवध, असत्यवचन, सम्पूर्ण अदत्त ग्रहण, मैथुन तथा परिग्रह को मैं छोड़ता हूँ। सभी जीवो को मै क्षमा करता हूँ, सभी जीव मुझे क्षमा करे, सभी जीवों के साथ मेरा मैत्रीभाव है, मेरा किसी के साथ वैर नहीं है। मेरा सब जीवों के प्रति समता भाव है, मेरा किसी से वैर नहीं है, समस्त आशा को छोड़कर मैं समाधि को स्वीकार करता हूँ। मैं केवल वैर का ही त्याग नहीं करता हूँ, किन्तु वैर के निमित्त जो भी है, उन सबका त्याग करता हूँ।

समाधिमरण के समय दर्शन, ज्ञान, चरित्र और तप इन आराधनाओ को सुनाने का विधान है। दर्शन आराधना में उसे बताया जाता है कि सारे कर्मबन्ध असम्यग्दर्शन से उत्पन्न होते है। देह को आत्मा मानना भी असम्यग्दर्शन है। वास्तव मे तो चना और चने का छिलका पृथक्-पृथक् हैं पर पदार्थ मे रति असम्यग्दर्शन से होती है। ज्ञानाराधना से मोहनीय कर्मो का क्षय किया जाता है। ज्ञान आत्मा का महत्त्वपूर्ण गुण है। उसी से समस्त लोक-अलोक उद्भासित होते है। केवलज्ञान आत्मा के परम विशुद्ध स्वरूप मे सुरक्षित होता है। आत्मज्ञान के बिना मोक्ष अप्राप्य है। आत्मा के इस ज्ञानगुण का चिन्तन करने से पुनर्जन्म पर विजय प्राप्त होती है। इसी प्रकार चारित्राराधना से समाधिमरण प्राप्त करने वाले को बार-बार समझाया जाता है कि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान का प्रयोगक्षेत्र सम्यक्चारित्र है। आत्मा की विशुद्धि चारित्र से होती है। चारित्रपालन किये बिना दर्शन तथा ज्ञान की बाते करते रहने से कृतार्थता नहीं मिलती। सयम का शास्त्रीय ज्ञान ही अपेक्षित नहीं, उसका व्यावहारिक आचरण भी प्रयोजनीय है। पच महाव्रत, पच समिति और तीन गुप्ति, चारित्र के ही भेद हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र से जीवन मे तप का आविर्भाव होता है। जैसे सूखी हुई समिधाओ से यज्ञाग्नि को प्रज्वलित किया जाता है, वैसे ही त्रिरत्न द्वारा तपोमय जीवन को उज्ज्वल किया जाता है।

निराकुलभाव से समाधिमरण को पूर्ण करना जीवन की सम्पूर्ण सचित साधनाओं को सफल बनाना है। मनित्व की यदि सर्य से उपमा दी जाए तो दीक्षाग्रहण उसका उषाकाल है, सम्यक्चारित्र-पालन तपोमय मध्याह्न वेला है और सल्लेखना सध्या काल है। जैसे सूर्य का बिम्ब उषाकाल मे प्रसन्न-अरुण होता है वैसा ही सध्या समय में भी होता है। जीवन और मरण दशाओं में साम्यवृत्ति रखना मुनियों का आभूषण है। जैसे वर्ष भर पूर्ण परिश्रम करने वाला छात्र वार्षिक परीक्षा मे अच्छे अक लेकर उत्तीर्ण होता है वैसे ही जीवन में मुनिव्रतों का अप्रमत्त पालन करने वाले को समाधि परीक्षा मे विचलित होने की आवश्यकता नहीं होती। वह सहज भाव से उसको उत्तीर्ण कर जाता है।

समाधिमरण व्रतों की रक्षा के प्रति सावधान रहने की प्रतिज्ञा का निर्वाह आवश्यक है। जो व्रत भग करके जीवित रहता है, उसका जीवन क्या अनन्तकाल तक के लिए सुरक्षित होता है? मृत्यु उसे भी आकर पूछ लेती है। तब, व्रतो की पालना करते हुए ऊर्ध्वगति को प्राप्त करना सर्वोत्तम पक्ष है। शाश्वत धर्मपालन को नश्वर देह के लिए नष्ट नहीं करना चाहिए, क्योंकि देह तो फिर मिल सकता है, धर्म की प्राप्ति दुर्लभ है।

अर्धमागधी साहित्य के 'आचाराग' एव 'उत्तराध्ययन' ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमे समाधिमरण के सबध मे विस्तृत विवरण मिलता है। आचाराग के प्रथम श्रुत स्कध का विमोक्ष नामक अष्टम अध्ययन विस्तार से समाधिमरण के तीन प्रकारों—भक्तप्रत्याख्यान, इगिनीमरण एव प्रायोपगमन की चर्चा करता है। इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र का पचम अकाममरणीय अध्ययन भी अकाममरण और सकाममरण (समाधिमरण) की चर्चा से सम्बन्धित है। सातवें अग उपासकदशाग सूत्र मे भगवान् महावीर के 10 गृहस्थ उपासको के द्वारा लिये गये समाधिमरण और उनमें उपस्थित विघ्नो की विस्तृत चर्चा मिलती है। आठवें अग आगम अन्तगडदशा एव नवे अग आगम अनुत्तरोपपातिक दशा मे भी अनेक श्रमणों एव श्रमणियों के द्वारा लिए गए समाधिमरण का उल्लेख मिलता है। अन्तकृत्दशा की विशेषता यह है कि उसमे समाधिमरण लेने वाले की समाधिमरण से पूर्व की शारीरिक—स्थिति कैसी हो गई थी, इसका सुन्दर विवरण उपलब्ध है।

समाधिमरण देह के प्रति निर्ममत्व की साधना का ही प्रयास है। यह न त
आत्महत्या है ओर न जीवन से भागने का प्रयत्न अपितु जीवन के द्वार पर दस्त
दे रही अपरिहार्य बनी मृत्यु का स्वागत है। वह देह के पोषण के प्रयत्नों का त्या
करके देहातीत होकर जीने की एक कला है। ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदश
अन्तगडदशा, अनुत्तरोपपातिकदशा तथा विपाकसूत्र आदि अग आगमो में जीव
के अन्तिम काल में सल्लेखना द्वारा शरीर त्यागने वाले साधको की कथाएँ हैं
इसमे भगवती सूत्र मे अम्बड सन्यासी और उसके 500 शिष्यो के द्वारा अदत्त जल
का सेवन नहीं करते हुए गगा की बालू पर समाधिमरण लेने का उल्लेख है।
उपासकदशा मे भगवान् महावीर के आनन्द, कामदेव, सकडालपुत्र, चुलिनीपिता
आदि दस गृहस्थ उपासको द्वारा समाधिमरण ग्रहण करने और उनमें विघ्नो के
उपस्थित होने तथा आनन्द को उस अवस्था मे विस्तृत अवधिज्ञान प्राप्त होने एव
गौतम के द्वारा आनन्द से क्षमा-याचना करने आदि के उल्लेख हैं। अन्तकृतदशा
मे भी कुछ श्रमणो और अर्यिकाओ द्वारा समाधिमरण स्वीकारने के निर्देश हैं।

श्वेताम्बर आगम साहित्य मे समाधिमरण के सबध मे सबसे विस्तृत ग्रन्थ
मरण विभक्ति है। वस्तुत मरण विभक्ति एक ग्रन्थ न होकर समाधिमरण से
सबधित प्राचीन आठ ग्रन्थो के आधार पर निर्मित हुआ एक सकलन ग्रन्थ है।
यद्यपि इसमें इन आठ ग्रन्थो की गाथाएँ कहीं शब्द रूप से तो कहीं भाव रूप से ही
गृहीत हैं फिर भी समाधिमरण से सबधित सभी विषयों को एक स्थान पर प्रस्तुत
करने की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण है। इसमे 664 गाथाएँ हैं। यह ग्रन्थ
सक्षिप्त होते हुए भी भगवती आराधना के समान ही अपने विषय को समग्र रूप से
प्रस्तुत करता है।

चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक का अन्तिम लक्ष्य तो समाधिमरण का निरूपण ही है
किन्तु उसकी पूर्व भूमिका के रूप मे विनय गुण, आचार्य गुण, विनय निग्रह गुण,
ज्ञानगुण और चरण गुण द्वार, नामक प्रथम पाच द्वारो में समाधिमरण की पूर्व
भूमिका के रूप में प्रकीर्णक मे कहा गया है कि जिस प्रकार पर्वतो मे मेरुपर्वत एव
तारागणो मे चन्द्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सुविहित जनो के लिए सथारा श्रेष्ठ है।

इसी मे आगे 12 गाथाओ मे सस्तारक के स्वरूप का विवेचन है। इस प्रसग म यह
बताया गया है कि कौन व्यक्ति समाधिमरण को ग्रहण कर सकता है। यह ग्रन्थ
क्षपक के लाभ एव सुख की चर्चा करता है। इसमे सथारा ग्रहण करने वाले कुछ
व्यक्तियो तथा सुकोशल ऋषि, अवन्ति-सकुमाल, कार्तिकेय, पाटलीपुत्र के
चदकपुत्र (सम्भवत चन्द्रगुप्त) तथा चाणक्य आदि के उल्लेख हैं।

समाधिमरण का स्वरूप निरूपण करते हुए सथारा प्रकीर्णक मे कहा है कि
जिसके मन, वचन और काय रूपी योग शिथिल हो गये हो, जो रागद्वेष से रहित
हो, त्रिगुप्ति से गुप्त हो, त्रिशल्य और मद से रहित हो, चारों कषायों को नष्ट करने
वाला हो, चारो प्रकार की विकथाओ से सदैव दूर रहने वाला हो, पाँच महाव्रतो से
युक्त हो, पाँच समितियो का पालन करने वाला हो, षड्निकाय की हिसा से विरत
रहने वाला हो, सात भयो से रहित हो, आठ मदस्थानो का त्याग करने वाला हो,
आठ प्रकार के कर्मो का नाश करने वाला हो, नौ प्रकार के ब्रह्मचर्य गुप्तियों से गुप्त
हो तथा दस प्रकार के श्रमता का पालन करता हो और सदैव अलग रहता हो, यदि
वह सस्तारक पर आरूढ होता है तो उसके सथारा सुविशुद्ध होता है। इसके
विपरीत जो व्यक्ति अहकार से मदोन्मत्त हो, गुरु के समक्ष अपने अपराधों की
आलोचना नहीं करता हो, दर्शन से मलिन अर्थात् मिथ्यादृष्टि और शिथिल
चरित्रवाला हो, फिर भले वह श्रमता जीवन को अगीकार करके सस्तारक पर
आरूढ़ होता हो तो भी उसका सथारा अविशुद्ध ही होता है। (31-43)। इस
ग्रन्थ में आपत्तिकाल मे अकस्मात् समाधिमरण ग्रहण करने वाले जिन पन्द्रह
व्यक्तियो के दृष्टान्त दिये गये हैं, वे ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

इन दृष्टान्तो मे बताया गया है कि अर्णिकापुत्र ने गगा नदी में नाव फिसल
जाने पर, स्कन्धक शिष्यो ने पापबुद्धि मन्त्री द्वारा यन्त्र मे पील कर चूर-चूर कर
दिये जाने पर, अवति सुकुमारल ने कुपित शृगाली द्वारा खाये जाने पर, कार्तिकार्य
न शक्ति नामक शस्त्र प्रहार से शरीर भेदन किये जाने पर, धर्मसिह ने हजारों
तिर्यचों द्वारा खाये जाने पर, चाणक्य ने शत्रुजय राजा द्वारा देह जलाये जाने पर,
अभयघोष मुनि ने चण्डवेग द्वारा देह छिन्न-भिन्न कर दिये जाने पर, कौशाम्बी

नगरी के बत्तीस मित्रो के समूह ने नदी मे बाढ आ जाने पर, आचार्य ऋषभसेन ने सिहा सेन नामक शिष्य द्वारा जलाये जाने पर, युवराज कुरुदत्त ने सिबलिफली की तरह आग से जलते हुए, गजसुकुमाल ने गीले चमड़े की तरह कीले ठोककर शरीर भूतल पर बींधे जाने पर और महावीर के दो शिष्यों ने मखलिपुत्र गोशालक द्वारा तेजोलश्या से जलाये जाने पर भी समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग कर उत्तम-अर्थ को प्राप्त किया (56-57)।

भगवती आराधना और सस्तारक प्रकीर्णक मे उपलब्ध होने वाली एक कथा में स्पष्ट रूप से भिन्नता है। सस्तारक प्रकीर्णक में धर्मसिह मुनि द्वारा गृद्धपृष्ठमरण नामक सथारा ग्रहण करके हजारो तिर्यचो द्वारा खाये जाने पर भी समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग कर उत्तम अर्थ प्राप्त करने का कथानक है, इसके स्थान पर भगवती आराधना मे धर्मघोषमुनि के नाम से जो कथानक मिलता है, उसके अनुसार चपानगरी मे गगा तीर पर गाखगण की तपस्या करते हुए तृषा (प्यास) सहन करते हुए समाधिमरण पूर्वक शरीर त्याग कर धर्मघोष मुनि उत्तम अर्थ को प्राप्त हुए। इस प्रकार धर्मघोष और धर्मसिह इन नामों में आशिक समानता होते हुए भी कथा में भिन्नता है।

गजसुकुमाल का जो दृष्टात सस्तारक और भगवती आराधना में उपलब्ध होता है, वह इन दोनो ग्रन्थो मे समान है किन्तु आगमिकधरा और मरणविभक्ति से सर्वथा भिन्न है। सस्तारक और भगवती आराधना के अनुसार गीले चमड़े की तरह सैकड़ों कीलो से भू-तल पर बींध दिये जाने पर भी गजसुकुमाल समाधिमरण को प्राप्त हुए। श्वेताम्बर परम्परा में सस्तारक को छोड़कर अन्यत्र गजसुकुमाल का दृष्टान्त दूसरे रूप मे मिलता है। अन्तकृतदशासूत्र के अनुसार गजसुकुमाल के सिर पर उसके श्वसुर द्वारा गीली मिट्टी की पाल बाँधकर उसमें दहकते हुए अगारे रखकर उनके सिरोभाग को जला दिया गया।

समाधिमरण साधनामय जीवन की चरम और परम परिणति है। यह साधना के भव्य प्रासाद पर स्वर्ण-कलश आरोपित करने के समान है। जीवनपर्यन्त आन्तरिक शत्रुओ के साथ किए गए सग्राम में अन्तिम रूप से विजय प्राप्त करने का महान् अभियान है। इस अभियान के समय वीर साधक मृत्यु के भय से सर्वथा मुक्त हो जाता है। समाधिमरण अगीकार करने से पूर्व साधक को यदि अवसर मिलता है तो वह उसके लिए तैयारी कर लेता है। वह तैयारी सल्लेखना के रूप में होती है। काय और कषायों को कृश और कृशतर करना सल्लेखना है। कभी-कभी यह तैयारी बारह वर्ष से पहले प्रारम्भ हो जाती है। मेघ मुनि का शरीर जब सयम में पुरुषार्थ करने मे सहायक नहीं रहा तब उन्होंने पादपोगमन समाधिमरण ग्रहण किया और उस जर्जरित देह से जीवन का अन्तिम लाभ प्राप्त किया।

इसी प्रकार आचार्य नानेश ने समाधिमरण का मार्ग अपना कर जीवन की सम्पूर्ण साधना को सफल बनाया और शाश्वत धर्म-पालन का ऐसा आदर्श प्रस्तुत किया जो अपने आप मे एक कीर्तिमान बन गया है। ◆

सन्दर्भ

1 गीता पर्व 18 श्लोक 5-6
2 सथारगपइण्णय डॉ सुरेश सिसोदिया भूमिका उदयपुर
3 सल्लेखना दर्शन ललितपुर 1994
4 षट्खण्डागम में गुणस्थान विवेचन—डॉ प्रमिला जैन लखनऊ
5 प्रकीर्णक साहित्य—मनन और मीमासा—डॉ सुरेश सिसोदिया उदयपुर
6 ज्ञाताधर्मकथा ब्यावर मेघकुमार कथानक
7 मूलाचार—(वट्टकेर) दिल्ली
8 भगवती आराधना (शिवार्य)
9 पचास्तिकाय दिल्ली
10 आचारागसूत्र ब्यावर (अष्टम अध्ययन)
11 उत्तराध्ययन सूत्र ब्यावर, (पचम अध्ययन)
12 मरणसमाधि प्रकीर्णक उदयपुर
13 उपासकदशाग सूत्र, ब्यावर
14 जैन आचार सिद्धान्त और स्वरूप—देवेन्द्र मुनि शास्त्री उदयपुर
15 अनुत्तरोपपातिकदशा ब्यावर
16 चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक डॉ सुरेश सिसोदिया, उदयपुर

डॉ (श्रीमती) सतोष गोधा

सल्लेखना में रिष्टों (मृत्युसूचक चिह्नो) की अवधारणा

'स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणा बलाना वशात् सक्षयो मरण'[1] अर्थात् अपने परिणामों से प्राप्त हुई आयु का इन्द्रिय और मन-वचन-काय इन तीनो वलों का विशेष कारण मिलने पर क्षय होने का नाम मरण है। इस मरण को भी स्वागतयोग्य यदि किसी ने जाना और उसके बारे मे कोई विधान प्रस्तुत किया, तो वह एकमात्र जैन दर्शन ही है जहाँ मृत्यु केवल प्रशसनीय ही नहीं अपितु निश्चित रूप से शाश्वत कल्याण को उत्पन्न करने वाली भी होती है। 'जैन दर्शन की इस अवधारणा ने मरण का स्वागतयोग्य ही नहीं, एक मागलिक महोत्सव भी बना दिया है।'[2] जैन परम्परा में आत्मशुद्धि एव आत्मकल्याण पर विशेष चिन्तन कर इन्हे महत्व दिया गया है। मनुष्य सयमादि द्वारा अपने जीवनकाल मे तो इस हेतु पुरुषार्थ करता ही है, किंतु अत समय में परिणामो की शुद्धता वनी रहे तथा व्रत सयमादि मे कमी व दोष न आवे, इस दृष्टि से जो योग-क्रिया है, उसे ही आचार्यों ने सल्लेखना कहा है।

'मारणातिक सल्लेखना जोषिता'[3] सूत्र द्वारा आचार्य प्रवर उमास्वामी ने भी यही निर्देश किया है। सल्लेखना अति प्रीतिपूर्वक, प्रसन्नचित्त एव वैराग्य सहित धारण की जाती है, जवर्दस्ती नहीं। इसे पण्डितमरण, समाधिमरण व ज्ञानमरण आदि सज्ञाएँ भी ग्रथों में दी गई हैं।

सम्यक् प्रकार से काय और कषाय को कृश करना सल्लेखना है।[4] 'समरसी भाव समाधि' समरसी भावों का नाम समाधि है अर्थात् उत्तम परिणामो म चित्त को स्थिर रखना या पच परमेष्ठी का स्मरण करना समाधि है।[5]

'दुर्लहम्मि गणुअलोए लद्धे धम्मे अहिसलक्खवदे
दु (दो) विह सहलेहणाए विरला जीवा पावत्तति।'[6]

सल्लेखना धारक को नारक, तिर्यच और मनुष्य आयु का बधन नहीं होता है।[7] सल्लेखना में रिष्टा की अवधारणा का भी अपना स्थान है। रिष्ट अर्थात् ऐसे प्राकृतिक चिह्न जिनसे मृत्यु की पूर्व
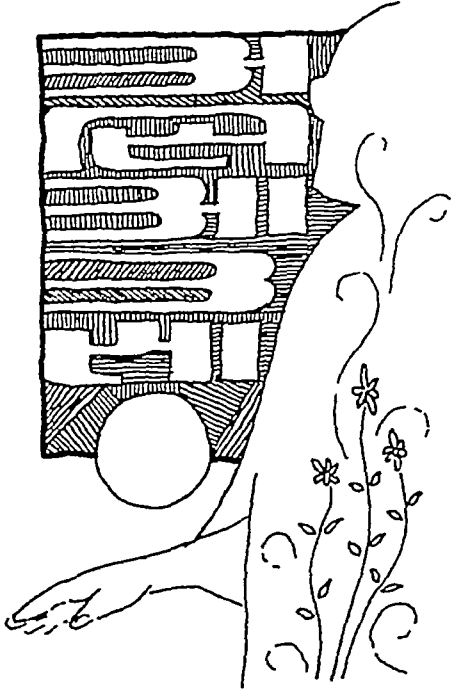
सूचना मिलती हो। इस प्रकार मृत्यु के पूर्व प्रकट होने वाले लक्षणों को अरिष्ट अथवा रिष्ट कहते हैं।[8]

सल्लेखना के योग्य-काल का वर्णन करते हुए कहा गया है कि तिर्यंचो, मनुष्यों, देवों व अचेतन द्वारा उपसर्ग होने पर, भयकर दुष्काल पड़ने पर, वृद्धावस्था आने पर, असाध्य रोग उत्पन्न होने पर, इन्द्रिय-बल क्षीण होने पर अथवा अन्यान्य मृत्यु के कारणो के मिलने पर एव ज्योतिष शास्त्रानुसार निमित्तिज्ञान द्वारा मरण समय समीप ज्ञात होने पर, शरीर मे प्रकट होने वाले मरण चिह्नो को जानकर अत्यन्त उत्साह सहित सल्लेखना धारण करनी चाहिए।[9]

जैन धर्म आत्ममूलक धर्म है, इसमे मत्र, तत्र, ज्योतिष, निमित्त, योग आदि को लोकसुख अथवा लोकोपयोग की दृष्टि से मान्यता नहीं दी गई है किंतु साधको के आत्मकल्याण तथा कर्तव्यपालन एव भविष्य से अवगत प्राणी पुरुषार्थ करके अपना कल्याण कर सके, प्राचीन आचार्यो द्वारा तद्विषयक शास्त्रों की रचना की गई है जो शास्त्र भविष्यफल प्रतिपादक होने के साथ-साथ कर्तव्य-बोधक भी है।

यदि मनुष्य अपनी मृत्यु के पूर्व अरिष्टों (निमित्तों) द्वारा अपने मरण को ज्ञात कर ले तो वह आत्मकल्याण में विशेष रूप से प्रवृत्त हो सकता है और चिरकाल जीने की इच्छा को सहज ही तोड़ सल्लेखना करने में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकता है। निमित्तो के द्वारा भावी इष्ट-निष्ट प्रकट हो जाने से व्यक्ति के जीवन में जागरूकता आती है तथा वह ससार की स्थिति का साक्षात्कार कर लेता है।

रिष्टों के दर्शन के लिए आचार्य कहते हैं—जो भव्यपुरुष विधि द्वारा सल्लेखना करता हुआ आहार को क्रमश कम करके पूर्ण त्याग द्वारा श्रेष्ठ मृत्यु को ग्रहण करना चाहता है, उसे अरिष्टों के दर्शन हो सकते हैं—

> मरण को भी स्वागतयोग्य यदि किसी ने जाना और उसके बारे में कोई विधान प्रस्तुत किया तो वह एकमात्र जैन दर्शन ही है जहाँ मृत्यु केवल प्रशंसनीय ही नहीं अपितु निश्चित रूप से शाश्वत कल्याण को उत्पन्न करने वाली भी होती है। जैन दर्शन की इस अवधारणा ने मरण को स्वागतयोग्य ही नहीं, एक मांगलिक महोत्सव भी बना दिया है।

इदि सल्लिहिद सरीरो भविओ जो अणसणेण वरमरण
इच्छइ सो इह भालइ इमाइ रिट्ठाइ जतेण

(रिष्ट समुच्चय, गाथा 14)

भारतीय वाङ्मय मे अरिष्टों को कई प्रकार का माना गया है।

ज्योतिष शास्त्र मे जातक के नक्षत्र विशेष के किसी निश्चित समय में जन्म होकर लग्न मे उसी ग्रह का वैध होने से अरिष्ट माना गया है।[10] प्रधान रूप से योगज, नियत और अनियत के भेद से ये तीन प्रकार के कहे गये हैं।

आयुर्वेद शास्त्र में रिष्टों के स्वास्थारिष्ट, बेघारिष्ट और कीटारिष्ट, ये तीन प्रधान भेद बताये गये हैं। आयुर्वेद मे अरिष्टो को बड़ा महत्त्व दिया गया है। 'सुश्रुत' मे चिकित्सक के लिए रिष्ट ज्ञान का प्रतिपादन करते हुए बताया गया है कि शरीर के जो अग स्वभावत जिस प्रकार के रहते हैं उनके अन्यथा होने से व्यक्ति की मृत्यु का निश्चय करना चाहिए। शुक्लवर्ण की कृष्णता, कृष्ण वर्ण की शुक्लता, रक्त, वीर्य आदि धातुओं का विकृत होना एव व्यक्ति के स्वभाव मे सहसा एक प्रकार की विचित्रता का प्रकट होना, रिष्ट द्योतक है।[12]

दर्शन और योगशास्त्र मे आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक ये तीन प्रकार के अरिष्ट बताये गये है।[13] आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र मे प्राणायाम द्वारा वायु के नाड़ियों मे गमन आदि द्वारा अनेक प्रकार से मृत्यु की सूचना की विधि बताई है। उन्होने कहा है कि वायु के चार गमन स्थानो को अभ्यास करके जान लेने से काल-मरण व आयु को जाना जा सकता है।[14]

निमित्त शास्त्र के अन्तर्गत वायुमण्डल में विभिन्न प्रकार के चिह्नों को, जिससे आगामी शुभाशुभ की सूचना मिलती है, अरिष्ट बताया गया है।

इस प्रकार विभिन्न शास्त्रा में रिष्टों का अलग-अलग भेदो द्वारा प्ररूपण किया गया है। प्रस्तुत लेख मे 11वीं शती के दिगम्बर आचार्य दुर्गदेव रचित ग्रथ *मरणकण्डिका की परम्परा के 'रिष्टसमुच्च' ग्रन्थ* को ही आधार मान कर रिष्टो के भेद-प्रभेद तथा उनके वर्णन का प्रयास किया गया है।

यद्यपि यह शास्त्र भी निमित्त व ज्योतिष का ही एक अग है, तथापि इसका स्वतत्र विकास हुआ हे। इसमें मुख्य रूप से केवल मृत्यु से पूर्व अरिष्टो का ही यथोचित विवेचन मिलता है।

आचार्य ने प्रस्तुत ग्रथ में रिष्टों के मुख्य रूप से तीन भेद प्ररूपित किय है—पिडस्थ, पदस्थ व रूपस्थ।[15]

पिण्डस्थ रिष्ट—शरीर मे उत्पन्न होने वाले रिष्ट को पिण्डस्थ रिष्ट कहते हैं। इसके कई भेद हैं। इनको पहचानने के चिह्न भी अलग-अलग हें।[16] वर्ष, मास, दिन, घण्टे आदि की मर्यादा लिए हुए शरीर के विभिन्न रिष्टो का वर्णन यहाँ मिलता है।

सभी इन्द्रियों का अकारण विकृत होना आँखा की पलकें स्थिर होना, दातो का सड़ना, रसना इन्द्रिय का शिथिल होना, जीभ की नोक का काला होना, ललाट पर मढी रेखाओ का मिट जाना आदि अरिष्ट द्योतक बताये गये हैं। मृत्युचिह्न प्रधान रूप से शारीरिक और मस्तिष्क सम्बन्धी वेगों की असमता का द्योतक है। शरीर एव इन्द्रियों की वास्तविक प्रकृति से बिल्कुल विपरीत जितने लक्षण प्रकट हों वे सब एक मास की आयु व्यक्त करते हैं। जिस व्यक्ति का शरीर कातिहीन हो और बाहर निकालने मे श्वास तेज हो, वह ससार में 15 दिन (गाथा 15), जिसकी जिह्वा से जल न गिरे, रस का अनुभव न हो तथा शरीर स्पर्श का अनुभव न करे, वह 7 दिन जीवित रहता है (गाथा 141)। यदि नैत्रा के सचालन के साथ पुतलियाँ नहीं घूमती हों तो उसका मरण दो दिन में नि सन्देह होता है (गाथा 35)। चरक सहिता म भी कहा गया है कि जिस व्यक्ति की काली पुतलियाँ विना किसी रोग के सफेद हो जायँ तथा नेत्र सचालन करने पर नेत्रो के भीतर रहने वाले प्रकाशमान तारे का दर्शन न हो तो उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिए।[17]

योगशास्त्र में कहा गया हे कि ऑख की पुतली का काला होना 6 माह के भीतर मृत्यु का सूचक है।[18] रिष्ट समुच्चय में कहा है कि यदि कोई जिह्वा न देख सके तो तीन दिन, नाक न देख सके तो सात दिन और भृकुटि टेढी हो जाय व उसे न देख सके तो नौ दिन जीवन का सकेत है (गाथा 37)। मुख से खून निकलता हो व मुख से ही तेजी से श्वास निकलती हो, खूब छटपटाहट हो तो मृत्यु निकट समझनी चाहिए। जिसके मुख मे बीच की तीनों अगुलियो का एक साथ प्रवेश न हो सके तथा जिसके मुख, नाक तथा गुप्त इद्रिय से शीतल वायु निकले उसकी मृत्यु शीघ्र ही समझनी चाहिए।

> वयणम्मि नासिआए तहगुन्झे जस्स सीयला पवणो
>
> तस्स लहु होइ मरण पुव्वायरियेहि णिद्दिट्ठ।।रि स 32।।

योगशास्त्र म भी कहा है जिसक दातों के बीच तीन अगुलियाँ समाविष्ट न हा तथा कौआ, गिद्ध जैसे मासभक्षी पशु मस्तक पर बैठ जायँ तो मृत्यु 6 महीने में निश्चित है।[19] *कल्याण कारक और सुश्रुत में इन्द्रियजन्य अरिष्टो का प्रतिपादन* करते हुए बताया गया है कि जिस व्यक्ति की रसना-इद्रिय रसों के स्वाद को ग्रहण नहीं करती हो, अकारण सिर काँपता हो, मस्तिष्क में एक प्रकार की सनसनाहट होती हो तथा शब्दो का उच्चारण यथार्थ नहीं होता हो तो उसकी आयु सात दिन समझनी चाहिए।[20] *अद्भुतसागर म कायारिष्टों का निरूपण करत हुए बताया गया* है कि अकस्मात लिग इन्द्रिय ओर रसना-इन्द्रिय का काला पड़ जाना अथवा विकृत हो जाना एक माह की आयु का सूचक है।[21]

रिष्ट समुच्चय तथा अन्य ग्रन्थों में ऐसे अनेक शारीरिक रिष्टो का विवेचन मिलता है। इन शारीरिक शैथिल्य से उत्पन्न होने वाले रिष्टो का दर्शन थोड़े-से प्रयास द्वारा सभी प्राणी कर सकते हैं क्याकि ये रिष्ट आँख, नाक, कान, मुँह, नाभि, मलद्वार, मूत्रद्वार और हाथ, पैर की बड़ी अगुलियो द्वारा प्रकट होते हैं। शरीर शास्त्र के अनुसार मनुष्य के प्राण इन्हीं स्थानों से निकलते हैं। योगशास्त्र म आचार्य ने कहा है कि जिस मनुष्य को छींक, विष्टा, वीर्य स्राव और पेशाव ये चारों एक साथ हो, उसकी एक वर्ष के अन्त म उसी मास और उसी तिथि को मृत्यु होगी।[22]

एक स्थान पर कहा है जब दिन और रात समान 12-12 घण्टे के होते हैं, तब वह विषवत् काल कहलाता है, इसमे जिसकी ऑख फड़कती है, उसकी मृत्यु निकट ही होती है—

'विषुवत्समयप्राप्तौ स्पन्देते यस्य चक्षुषी
अहोरात्रेण जानीयात् तस्य नाश न सशयम्'
(योगशास्त्र प्र पचम गाथा 76)

पदस्थ रिष्ट—आकाशीय दिव्य पदार्थो का शुभाशुभ रूप में दर्शन करना, कुत्ते, बिल्ली, कौआ आदि प्राणियो की इष्ट-निष्ट सूचक आवाज को सुनना या उनकी अन्य किसी प्रकार की चेष्टाओ को देखना, इन्हे पदस्थ रिष्ट कहा गया है।[23] पदस्थ रिष्टों में मृत्यु की सूचना 2-3 वर्ष पूर्व भी मिल जाती है।

आचार्य दुर्गदेव ने पदस्थ रिष्ट दर्शन के लिए कहा है—प्रकृति मनुष्य को प्रत्येक इष्ट-निष्ट की सूचना देती है, साधारण व्यक्ति इनको ग्रहण नहीं करते किंतु जो सुविज्ञ व्यक्ति हैं, वे उन्हें समझ कर सजग हो जाते हैं।

पदस्थ रिष्ट—दर्शन की भाँति पदस्थ रिष्ट के सामान्य दर्शन नहीं होते हैं। इनको जानने की विधि आचार्यो ने बतायी है यथा—

पक्खालिऊण देह सिय वत्थवि लेवणो सियाहरणो
युज्जिता जिणनाह अहिमतिअ णियमुह पच्छा। (गाथा 43)

अर्थात् स्नान कर, श्वेत वस्त्र धारण कर, सुगन्धित द्रव्य तथा आभूषणों से अपने को सजा कर एव जिनेन्द्र भगवान की पूजा कर 'ॐ ह्रीं णमो अरिहताण कमले-कमले विमले-विमले उदरदेवि इटिमिटि' पुलिहिणी स्वाहा' इस मत्र का 21 बार उच्चारण कर जिन शास्त्रों मे वर्णित पिण्डस्थ बाह्य वस्तु सम्बन्धी रिष्टो का दर्शन करना चाहिए।

इअ मतेण मतिय णियवयण एयवीस वाराओ
पुण जोएउ पयत्थ रिट्ठ जिण सासणे भणिय। (रि स 44)

उपर्युक्त विधि से जो ससार में एक चन्द्रमा को नाना रूपों तथा छिद्रों से पूर्ण देखता है उसकी आयु निश्चित रूप से एक वर्ष की होती है। (गाथा 45)

ग्रन्थातरों में चन्द्रदर्शन से रिष्ट ज्ञान का वर्णन मिलता है।[24] सहिता ग्रथो ने चन्द्रमा का लाल आभायुक्त दर्शन एव उसका ग्रहण के अभाव में भी ग्रहण जैसे रूप का दर्शन करना एक वर्ष पूर्व से ही मृत्यु की सूचना का सकेत माना है।[25] चन्द्रमा की तरह ही सूर्यबिम्ब के छिद्रपूर्ण और अनेक रूपो में दर्शन को भी एक वर्ष में मृत्यु का द्योतक, निमित्त शास्त्रो मे माना गया है। (गाथा 46)

प्राकृतिक ज्योतिषशास्त्र में प्रकृति के चिह्नो का वर्णन करते हुए बताया गया है कि प्रधान रूप से सूर्य और चन्द्र ये दो ग्रह हैं जिनकी गति और स्थिति का तो प्राणियों के जीवन पर प्रभाव पड़ता ही है, इनके रूपदर्शन और आकार-दर्शन का भी प्रभाव पड़ता है। समस्त प्राणी प्रतिदिन इनके अवलोकन से अपने कर्तव्य मार्ग को ग्रहण कर सकते हैं—क्योंकि प्राणी के शरीर की बनावट सौर जगत् के समान है तथा उसके सचालन के नियम भी सौर जगत् से मिलते हैं। वर्तमान में योग शक्ति के न होने के कारण साधारण व्यक्ति सौर्य जगत् की रचना की विकृति को नहीं देख पाते। इसलिए तारा, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र आदि के विकृत दर्शन की मृत्यु का सूचक माना है। सौर जगत् के सात ग्रह मनुष्य के बाह्य, आन्तरिक व्यक्तित्व के विचार, अनुभव, क्रिया तथा अन्त करण के प्रतीक माने गये हैं। निमित्त शास्त्र प्रकृति के रहस्यमयी ज्ञान-विज्ञान पर प्रकाश डालता है और पहले से ही प्रकृति परिवर्तन द्वारा कर्तव्य की सूचना दे देता है। योगशालाप्रकरण, योगरत्नाकर, धर्मसिन्धु आदि ग्रन्थो मे भी सूर्य और चन्द्रमा के दर्शन से अरिष्टो की जानकारी दी गई है।[26] योगशास्त्र मे कहा गया है कि दृष्टि साफ होने पर भी चन्द्रमा का चिह्न, छायापथ, एक छोटा तारा, भृकुटी व अरुन्धति तारा, इनमे से एक भी दिखाई न दें तो उसकी एक वर्ष मे मृत्यु निश्चित है।[27]

पदस्थ रिष्टो द्वारा निकट मृत्यु का ज्ञान—जो व्यक्ति दीपक के प्रकाश की लौ को अनेक रूपों में देखता है, वह तुरत मर जाता है। (गाथा 46) तथा रविमण्डल का रात्रि में दर्शन, चन्द्रबिम्ब का दिन में दर्शन तथा इन्द्रधनुष का रात्रि

म दर्शन होना भी शीघ्र मृत्यु क अरिष्ट हैं। जो सूर्य या चन्द्रमा के चार विम्बा को चारो विदिशाओ के कोणो पर दखे, वह चार घटिका ही जीवित रहता है।

सर्वसाधारण को मृत्यु के चारा दिशाओं में चन्द्रमा या सूर्य के सछिद्र टुकड़े दिखलाई नहीं पडते। किन्तु पूर्वजन्म के शुभोदय या इस भव के शुभ कार्यो से उत्पन्न प्रमाण मनोवृत्ति जिनम वर्तमान है और जो उपपत्ति गुण का प्रयोग करना जानते हैं, वे मृत्यु क कई वर्ष पहले से ही रिष्टों का दर्शन करने लगत है। साधारण व्यक्ति में ता रिष्ट-दर्शन की योग्यता भी नहीं होती। विशेष पवित्र आत्माएँ चन्द्र और रवि क दर्शन द्वारा सहज ही आयु ज्ञात कर लेती है। इसी कारण आचार्य ने रिष्ट-दर्शन की विधि वतलायी है। पदस्थ रिष्टा से भी 2 मास, 1 मास, 15 दिन, 7 दिन, 4 दिन, 3 दिन, 2 दिन आयु के ज्ञात करने का वर्णन प्राप्त होता है। सवग रगशाला नामक ग्रथ म वताया गया है कि जो व्यक्ति सूर्य विम्ब मे काले चिह्नो के समुदाय दर्शन करे तथा जिसे चन्द्रमा के समान कलक दिखलाई पड़े वह 12 दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है।[28] यदि किसी व्यक्ति का दिन मे रात और रात म दिन दिखलाई पड़ तो उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिए। (गाथा 52) यह रिष्ट साधारण व्यक्ति की अपेक्षा से है क्योंकि विशेष ज्ञानवान और चरित्रवान व्यक्तियों की इन्द्रिय शक्ति अत समय तक वर्तमान रहती है अत ऐसे भ्रम द्योतक रिष्ट उन्हें नहीं दिखत। यागशास्त्र गाथा 138 में भी कहा गया है कि सूर्य मण्डल को किरणविहीन देखना 11 मास मे मृत्यु की सूचना है।

निमित्त व ज्योतिष शास्त्रों में ऐसे अनेक रिष्टो का समायोजन मिलता है। इनमे शेष आयु परीक्षण के लिए अनेक नियम भी वतलाये हैं—यथा ॐ ह्रीं णमा अरहताण कमले-कमले, विमले-विमले उदरदेवि इटिमिटि पुलिहिनि स्वाहा—से सूत्र का मत्रित कर उसस सायकाल में अपने सिर से पॉव तक नापा जाय। यदि प्रात काल नापन स सूत छोटा हो तो वह व्यक्ति एक मास जीवित रहता है। (गाथा 63)

इस प्रकार जैन ग्रथों व ग्रन्थातरा में पदस्थ रिष्टा को जानने के अनेक नियम व विधिया वतायी गयी हैं।[29] शरीर विज्ञान की दृष्टि स जव सचना नाड़ी की शक्ति क्षीण होने लगती है तो आयु का क्षीण होना प्रारम्भ हो जाता है। पदस्थ रिष्टो म सूचनादि की शक्ति के ह्रास का तारतम्य बताया गया है।

रूपस्थ रिष्ट—जहाँ रूप दिखलाया जाता है वहाँ रूपस्थ रिष्ट होता है। 'दीसेई जत्थ रूव रूवत्थ त तु भण्णए रिट्ठ।' (गाथा 68) वह अनेक प्रकार का होता है—छायापुरुष, स्वप्नदर्शन, प्रत्यक्ष, अनुमानजन्य और प्रश्न के द्वारा जो रिष्ट होता है उसे रूपस्थ रिष्ट कहा गया है। ये रिष्ट दर्शन भी विशेष पवित्र आत्माओं को ही विधिज्ञात होते हैं।

विधि—स्नान कर स्वच्छ और सफद वस्त्रो से सुसज्जित हो अपने शरीर को मत्र से मत्रित कर एकान्त स्थान में छाया का दर्शन करें—

'ॐ ह्रीं रक्ते रक्ते रक्तप्रिये सिहमस्तक समारूढे कूष्माडी देवि मम शरीरे अवतर-अवतर छाया सत्या कुरु ह्रीं स्वाहा।' इस मत्र से अपने को मत्रित कर शुभ दिन सोमवार, बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार को पूर्वाह्न मे वायु और मेघरहित आकाश के होने पर मन, वचन, काय की शुद्धता के साथ किसी छाया से रहित भू-पृष्ठ पर छाया का दर्शन करे। (गाथा 70-72) छाया का ज्ञान करने की प्रक्रिया में कई जगह भू-पृष्ठ के अतिरिक्त दर्पण या जलाशय म छाया देखना तथा चादनी, सूर्य व दीपक के प्रकाश में भी छाया का दर्शन किये जाने का विधान है।[30]

छाया के भेद— 1 निजच्छाया 2 परच्छाया 3 छायापुरुष

उपरोक्त मत्र से मत्रित स्वय की छाया देखने को निजच्छाया दर्शन कहते हैं।

निजच्छाया दर्शन से जीवन-मृत्यु का निर्णय— यदि कोई रुग्ण व्यक्ति जो वहाँ खड़ा हो तथा अपनी छाया न देख सके तो निश्चय से 10 दिन वह जीवित रहता है। यदि किसी को विकृत, टेढी, छिन्न-भिन्न, छोटी-वड़ी और अदर्शनीय अपनी छाया दिखलाई पड़े तो मृत्यु निकट समझनी चाहिए। (गाथा 75) जो व्यक्ति अपनी छाया को दो रूपों मे देखता हे वह दो दिन जीवित रहता है। (गाथा 76) यदि कोई रोगी पुरुष उपर्युक्त मत्र का जाप करने के वाद तथा अपनी छाया पर दृष्टि रखने के वावजद भी उसका दर्शन न कर सके तो उसक स्थूल शरीर का

समय एक दिन समझना चाहिये। यदि वह अपनी छाया को बैल, हाथी, कौवा, गधा, भैंसा और घोड़ा इत्यादि अनेक रूपो मे देखता है तो उसका तत्काल मरण जानना चाहिए। छाया को अव्यवस्थित रूप से देखना भी मरण का सकेत है। (गाथा 79) इसी प्रकार छाया को विभिन्न रगों में देखने से उसके भिन्न-भिन्न समय में मरण का वर्णन हमें मिलता है।

आयुर्वेद शास्त्रो एव अन्य ज्योतिष शास्त्रों में छाया दर्शन द्वारा आयु का ज्ञान करने का विधान मिलता है। सवेग रगशाला मे कहा गया है कि यदि मनुष्य को अपनी पूरी सागोपाग छाया का दर्शन होता है तो उसकी आयु शेष समझ मृत्युभय छोड़ देना चाहिए और यदि नहीं देख पाता है तो उसकी जल्द ही मृत्यु निश्चित है।[31] किसी शस्त्र द्वारा कटती, बेधित की जाती हुई अथवा जानवरो द्वारा खाती हुई छाया को देखना भी मृत्युसूचक है। आचार्य हेमचन्द्र ने योग शास्त्र के पचम प्रकाश में छाया दर्शन द्वारा आयु निर्णय पर समुचित प्रकाश डाला है। उन्होंने मत्र से अभिमत्रित यत्र बनाकर विधिपूर्वक छाया दर्शन का उपचार बताया है।[32] जैन ज्योतिष में छाया गणित द्वारा काल निर्णय की अनेक विधियाँ हैं, कुछ मनोरजक भी हैं।[33] चरक सहिता मे भी छाया के रूप, आकार, लबाई एव रग आदि के आधार पर रोगी की मृत्यु का निश्चय किया गया है।[34] सवेग रगशाला तथा अद्भुत सागर[36] में भी वर्णन मिलता है।

परच्छाया—निजच्छाया की भाति ही शास्त्रो मे परच्छाया दर्शन का विवेचन किया गया है। इसमे अपने शरीर की छाया के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति या अन्य पदार्थों की छाया के दर्शन के आधार पर मृत्यु के समय का निर्णय किया जाता है। आदि पुराण, मार्कण्डेय पुराण, हरिवश पुराण, पद्म पुराण आदि प्रथमानुयोग के ग्रथो में कई स्थानो पर निजच्छाया और परच्छाया दर्शन का सुन्दर कथन किया गया है। विधिपूर्वक अपने को मत्रित कर रोगी को पूर्व दिशा मे बैठा कर उसकी छाया दर्शन कर उसकी मृत्यु का समय जानना चाहिए। लगभग निजच्छाया के अनुसार ही परच्छाया दर्शन से मृत्यु के काल का निर्णय होता है।

छायापुरुष—वह मत्रित व्यक्ति निश्चय से छायापुरुष है जो अभिमान, विषयवासना और छल-कपट से रहित पवित्रता के साथ अपनी छाया का दर्शन करता है। (गाथा 97)

छायापुरुष की व्युत्पत्ति 'छायाया दृष्ट पुरुष पुरुषाकृति विशेष' की गई है अर्थात् आकाश मे अपनी छाया की भाँति दिखाई देने वाला पुरुष छायापुरुष कहलाता है। शिवपार्वती पुराण मे शिवपार्वती सवाद के अन्तर्गत शिव के माध्यम से छायापुरुष के स्वरूप का वर्णन किया गया है।[37]

निजच्छाया और परच्छाया जैसे छायापुरुष के दर्शन सरलता से नहीं होते हैं, अपितु यह दर्शन विशुद्ध चरित्र वाले व्यक्तियो को पुण्योदय के होने पर ही होते हैं। छाया के देखने से छ मास तक मृत्यु नहीं होती है।

विधि—ॐ ह्रीं रक्ते इत्यादि मत्र का 108 बार जाप कर विशुद्ध चित्त होकर स्वच्छ आकाश मे अपनी छाया का दर्शन करे। यदि छाया आकाश मे स्पष्ट दिखाई पड़े तो उसकी दीर्घायु समझनी चाहिए। छायापुरुष के दर्शन का प्रभाव बड़ा भारी बतलाया गया है लेकिन यह कुछ समय के अभ्यास के अनन्तर होता है। योगदीपिका मे बताया गया है कि रविवार और मगलवार को उपर्युक्त मत्र का 108 बार जाप कर सूर्योदय काल में छायापुरुष का दर्शन करना चाहिए। छ मास के अभ्यास के अनतर भी यदि छायापुरुष दिखाई नहीं पड़े तो उसके अशुभ कर्मोदय समझना चाहिए।

छायापुरुष द्वारा आयुज्ञान—छायापुरुष की आकाश में बिना सिर की छाया दिखने पर छ मास , बिना पैर की छाया दिखने पर 3 वर्ष तथा बिना आँखों की छाया दिखने पर 2 वर्ष का जीवन समझना चाहिए। (गाथा 100-101)

जिसे सागोपाग छायापुरुष का दर्शन हो उसको दीर्घायु वाला समझना चाहिये। (गाथा 105)

वस्तुत छायादर्शन द्वारा साधक अपनी आयु का ज्ञान करके अपने आत्मकल्याण की ओर अग्रसर हो सकता है।

रिष्टो की अवधारणा स सवधित विपय अत्यत विस्तृत है, साधका द्वारा अपन प्रयोगो क माध्यम से इनम नये आयाम आज के वैज्ञानिक युग मे जोड़े जाने की आवश्यकता है। साथ ही प्राचीन ग्रन्थो म वर्णित इन विषया को आज के परिप्रेक्ष्य मे समझन क लिये भी विद्वाना द्वारा शोध किया जाना अपेक्षित है। ◆

सदर्भ सूची

1 (अ) सर्वार्थ सिद्धि 7/22
(ब) आयुप क्षयस्य मरण हेतुत्वात, धवला 1/11/33

2 आ विद्यानन्द मुनि का श्रमण पत्रिका' सितम्वर 1996 पृ 55

3 उमास्वामी तत्त्वार्थसूत्र 7/22

4 सम्यक काय कपाय लेखना सल्लेखना स सि 712

5 यत्सम्यक् परिणामेपु चित्तस्य ध्यान मज्जस्य स समाधिरिति ज्ञेय स्मतिर्वा परमेप्टिनाम्।। —महापुराण/21/226

6 रिप्ट समुच्चय गाथा 12

7 पद्म पुराण 14/203 भगवती आराधना—1942 1945, 1997 व 2001

8 रोगिणो मरण यस्मादवरयम्मावि लक्ष्यते तत्क्षणमरिप्ट स्याद्रिप्ट चापि तदुच्यते।। (भावप्रकाश चिकित्सा प्रकरण—10)

9 प रमशचन्द्र वाइल— सल्लेखना एक अनुचितन' पृ 13

10 मृत्युसूचक निमित्त अरिप्टम् क्रूर ग्रहदशातर्दशादि मरणकाल मृत्यु जातक परिजात 4, 1-2 त्रिलोक प्रकाश पृ 116-124

11 अद्भुत सागर पृ 516

12 (अ) शरीरशील योर्यस्य प्र तेर्वि ति भवेत्। तच्च रिप्ट समासेन (सुश्रुत सहिता, भास्कर गाविन्द घाणेकर लाहौर 1946)
(ब) प्र तेर्वि र्निर्णा बुद्वीन्द्रिय शरीरजा। अकस्मात् दृश्यते येपा तेपा मरणामादिशेत (ज्योति पराशर विष्णु धर्मोत्तरपुराण।)

13 अरिप्टम्योव। अरिप्टानि त्रिविधानि-आध्यात्मिक धिमोतिका धिदैविकमेदेन। (गागरन भोज त्त 3 22)

14 आचार्य हेमचन्द्र त योगशास्त्र प्रकरण पाच (गाथा 70 से 16)

15 रिप्ट समुच्चय गाथा 17

16 रिष्ट समुच्चय गाथा 18

17 कल्याण कारक, पृ 710

18 योगशास्त्र प्र 5-143

19 योगशास्त्र प्र 5-144

20 कल्याण कारक पृ 708

21 अद्भुत सागर, पृ 525

22 योगशास्त्र पचम प्रकाश, गाथा 135

23 रिष्ट समुच्चय गाथा-41 42

24 सवेग रगशाला-183, चरकसहिता पृ 1407

25 अत्रेय आरण्यक, पृ 135

26 योग रत्नाकर, पृ 7 धर्म सिंधु पृ 388 योगाशास्त्र पृ 5 श्लोक 156

27 योगशास्त्र, पृ 5 136

28 सवेग रगशाला 194-198

29 विस्तार के लिए देखे—प नेमीचन्द शास्त्री द्वारा रिप्ट समुच्चय ग्रथ में गाथा विवरण पृ 50-54

30 चरकसहिता इन्द्रिय स्थान, 6-1-4

31 सवेग रगशाला, 244-245

32 योगशास्त्र प्रकरण 5, श्लोक 211, 218 219

33 रिप्ट समुच्चय पृ 58, 59, 60

34 चरकसहिता, इन्द्रिय स्थान, 7, 8 9

35 सवेग रगशाला, 54-61

36 अद्भुत सागर, पृ 555

37 शिवपार्वती पुराण 1-11

इन्दरचन्द बैद

श्रावक जीवन में समाधिमरण का महत्त्व
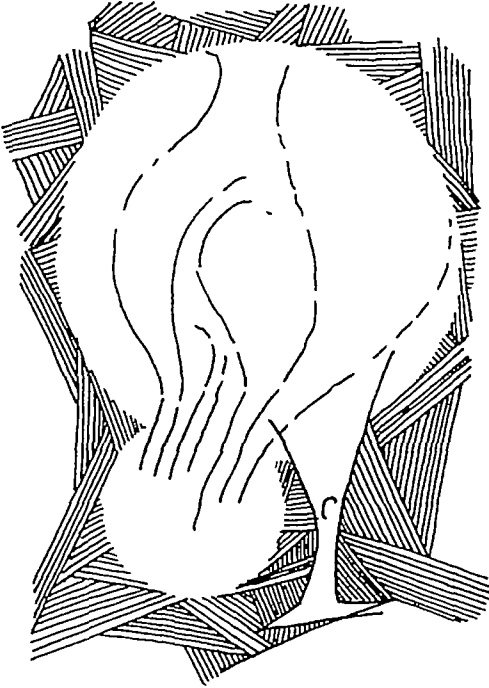
समाधिमरण जैन साधना का महत्त्वपूर्ण अग है। जैन परम्परा मे साधक चाहे मुनि हो अथवा गृहस्थ, उसे समाधिमरण ग्रहण करने की प्रेरणा दी जाती है।

समाधिमरण हमारे जीवन की साधना की परीक्षा है और महाप्रत्याख्यान हमें उसी परीक्षा में खरा उतरने का निर्देश देता है। वस्तुत महाप्रत्याख्यान हमारे सामने एक ऐसी अनासक्त जीवन दृष्टि प्रस्तुत करता है जिससे हमारा जन्म और मरण दोनो ही सार्थक बन जाते हैं। जीवात्माओं मे अनादिकाल से जन्म और मरण का क्रम चल रहा है। प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो विवेकशील है। उसमे चिन्तनशक्ति है, प्रज्ञा है, मेधा है और धारणा-क्षमता है इसलिए वह अपने जीवन का उद्देश्य निर्धारित कर सकता है।

सभी धर्मो मे जीवन का उद्देश्य जीवन-मुक्ति बतलाया गया है। चौरासी लाख योनियों मे मानव योनि मे वह शक्ति विद्यमान है जो जन्म-मरण की शृखला से निवृत्ति प्राप्त करा सकती है। इसलिए मानव सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति कहलाता है। जीवन-मुक्ति ही मानव-जीवन का मूल उद्देश्य एव जीवन की सार्थकता है।

जन्म और मृत्यु जीवन के दो पहलू हैं। जन्म पूर्वभवों में किये गये कर्मो का परिचायक है। हमारा जन्म किस धरती पर हुआ—आर्य भूमि पर अथवा अन्यत्र ? किस कुल मे हुआ—राजघराने में, कसाई के घर, बनिये के यहाँ, चौर्यवृत्ति से जीवनयापन करने वाले के परिवार म अथवा उस कुल में जहाँ सतगुरु की सेवा की परम्परा है और जहाँ मोक्ष का मार्गदर्शन कराने वाले पच महाव्रती का सान्निध्य सुलभ है ? ये सभी योग पूर्वभवो के कर्मो पर आधारित हैं।

जैसे जन्म पूर्वभवा के कर्मो पर आधारित है वैसे ही मृत्यु जीवन में कृत कर्मो पर आधारित है। मृत्यु के भी अनेक प्रकार हैं।

अष्टपाहुड ग्रन्थ के पाचवे भावपाहुड़ म मृत्यु के सतरह प्रकार बतलाये गये है—

1	अविचिय मृत्यु (अनुवीचि मरण)	2	तद्भव मरण
3	अवधि मृत्यु	4	आद्यन्त मरण
5	वाल मरण	6	पण्डित मरण
7	वलन्मृत्यु	8	वालपण्डित मरण
9	सशल्य मरण	10	प्रमाद मृत्यु
11	वशार्त्त मृत्यु	12	विप्रण मृत्यु
13	गृद्ध पृष्ठ मृत्यु	14	भक्त प्रत्याख्यान मृत्यु
15	इगित मृत्यु	16	पादोपगमन मृत्यु
17	कवलि मरण		

उत्तराध्ययन सूत्र में सामान्य रूप से मृत्यु के दो भेद वतलाय हैं —

वालाण अकाम तु, मरण असइ भवे।
पडियाण सकाम तु, उक्कोसेण सइ भव।।
—उत्तराध्ययन अ 5 गा 4

अर्थात् अज्ञानी जीव अकाम मृत्यु से मरते हैं। उन्हे पुन पुन मरना पडता है। किन्तु पण्डित अर्थात् ज्ञानी पुरुषो का सकाममरण होता है और वह उत्कृष्ट मरण एक वार ही होता है, उन्हे फिर मरना नहीं पडता—व अमर-मुक्त हो जाते हैं।

समाधिमरण जैन साधना का महत्त्वपूर्ण अग है। यह वह तप है जो साधु जीवन एव श्रावक जीवन में एकरूपता रखता है। आत्मा अनंत ज्ञान, अनत दर्शन, अनंत सुख एवं अनत वीर्य अर्थात् शक्ति का पुंज है परन्तु उसका यह स्वरूप कर्मवध के कारण दवा रहता है। समाधिमरण इस कर्मवध से मुक्त होने का उपाय है।

मृत्यु के भद जीवन कैस जिया गया उसका मूल्याकन करत हैं। जैसे जन्म, पूर्वभवो मे जिये गये जीवन का मूल्याकन है वैसे ही जीवन-भर किये शुभ-अशुभ कर्मो का फल मृत्यु के द्वारा प्राप्त होता है।

मृत्यु हर व्यक्ति को विशिष्टता प्रदान नहीं करती। मृत्यु उसे ही विशेषताओं की श्रेणी म प्रस्थापित करती है जो अभीत हो, जिसने मौत ललकारा हो, जिसने मृत्यु के क्षण में अमरत्व का आभास किया हो। लेकिन ऐ होता नहीं क्योंकि मनुष्य मृत्यु से दूर भागता है, डरता है।

भयमुक्ति—*मनुष्य का सवसे बड़ा शत्रु भय है। जीवन-लक्ष्य की पूर्ति* भयमुक्त होना आवश्यक है। भय इस लोक एव परलोक दोना का विपाक्त व दता है। भय एक नासमझी है, एक मिथ्या कल्पना है। नासमझी एव मिथ कल्पना म जिया गया जीवन मूल उद्देश्य से वहुत दूर चला जाता है। भय-निवा में कोई भी अन्य व्यक्ति हमारी सहायता नहीं कर सकता है।

चीन देश के जगत् प्रसिद्ध दार्शनिक कन्फ्यूशियस का कथन है कि भय अ मृत्यु म भय अधिक भयकर है, क्योंकि मृत्यु एक वार प्रहार करती है, भय तो वार-वार हमे दवोच लेता भगवान् महावीर ने कहा है—साधक को निर्भय रह चाहिए। डरपोक व्यक्ति को ही भय डरा सकता है। साह व्यक्ति के सामने भय डर कर भाग जाता है।

समाधिमरण तक पहुँचने के लिए भयमुक्त होना प आवश्यक है। भय समस्त पापा की जड़ तथा समस्त दु का मूल कारण है। भयभीत व्यक्ति कोई पुण्य कार्य नहीं सकता है। भयभीत व्यक्ति मन खोलकर न सत्य कह सक है न सत्य आचरण कर सकता है। डरने से व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाता। जहाँ भय है वहाँ धर्म-आराधना नहीं हो सकती। भय के वातावरण म सद्गुणो का विकास नहीं हो सकता त शिक्षा, कुशिक्षा हा जाती है। समस्त प्रगति का मूल मत्र अभय ही है।

अभय वही व्यक्ति हो सकता है जिसका अन्त करण निर्मल है, जो परोपकार तथा सेवा में निरत है, किसी को सताता नहीं, अपने व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठ चुका है, प्रतिशोध-भावना से मुक्त है, क्षमाशील है, दूसरो के हित के लिए कष्ट उठाता है तपस्वी है, मिथ्याभिमान छोड़ चुका है, भौतिक वस्तुओ के प्रति अनासक्त है और नि स्वार्थ भाव से अन्याय एव अत्याचार का प्रतिरोध करता है। सब जीवों की कुशलता के लिए मगलकामना करने वाला, मैत्रीपूर्ण अहिसक व्यक्ति सदा अभय होता है।

अभय आत्म-साधनों का प्राण बिन्दु है। भय स्वाभाविक क्रिया नहीं है प्रतिक्रिया है। भय से मुक्त होकर जीवन जीने के लिए अपने सुख-सुविधा तथा सत्ता और सम्मान के मोह से छूटना अत्यन्त आवश्यक है।

मनुष्य किसी वस्तु का स्वामी नहीं है। सभी वस्तुएँ धरती पर ही छूट जाती है इसलिये हमें अन्य व्यक्तियो के प्रति कर्तव्य-पालन करके सन्तोष कर लेना चाहिए किसी व्यक्ति अथवा वस्तु के साथ मोह एव अधिकार-पूर्ण स्वामित्व का नाता स्थापित नहीं करना चाहिए। भय के मूल मे मोह होता है। अतएव मन से मोह एव आसक्ति छूटने पर भय निर्मूल हो जाता है। यदि हम समस्त घटना-चक्रो को मोहमुक्त होकर साध्यभाव से अथवा तटस्थ दृष्टि से देखे तो हम कदापि भयभीत न होंगे।

मृत्यु अवश्यमावी है तथा प्रकृति के विधान का अपरिहार्य अग है। मृत्यु-भय के निराकरण का एक ही उपाय है—मृत्यु को सहजभाव से स्वीकार करना।

ज्ञान-दर्शन और चारित्र का सामजस्य—हमे क्षमता मिली है, विवेक मिला है लेकिन हम अपनी क्षमता और विवेक का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं क्योंकि ज्ञान, दर्शन और चारित्र का सामजस्य हममे नहीं है। बिना सामजस्य के जिया गया जीवन विसगतियो और विरोधाभासो से भरपूर होगा। उसकी कथनी करनी मे बहुत अन्तर होगा। आदमी का कहना एक प्रकार का और आचार-प्रचार दूसरे प्रकार का होगा।

दुनिया मे ऐसे लोग भी है जो विद्वान और पडित कहलाते है लेकिन आचार और व्यवहार की दृष्टि से शून्य हैं। ज्ञान और क्रिया मे अन्तर क्यो? ज्ञान का काम है अज्ञान का परिष्कार करना। ज्ञान का काम व्यवहार का परिष्कार करना नहीं है। जैसे ज्ञान के साथ आचार का सबध है वैसे ही आचार-व्यवहार के साथ मूर्च्छा का सबध है। मूर्च्छा का आवरण जब तक सघन है तब तक ज्ञान कितना ही आ जाय, आदमी भटक जाता है। ज्ञान जीवन मे प्रकाश दे सकता है, क्रिया नहीं दे सकता। प्रकाश देना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करना दूसरी बात है।

ज्ञान के आधार पर पहले एक दृष्टिकोण निर्मित होता है फिर आचरण और व्यवहार की बात आती है। जब तक ज्ञान और दर्शन की दूरी समाप्त नहीं होती तब तक ज्ञान आचरण को प्रभावित नहीं कर सकता। जीवन के लक्ष्य की पूर्ति हेतु ज्ञान, दर्शन और चारित्र का सामजस्य जरूरी है।

मनुष्य क्रोध करता है, घृणा करता है, आत्महत्या भी कर लेता है। क्या यह ज्ञान को जानने का परिणाम है? नहीं। उसके ज्ञान और आचरण मे दूरी है।

गौतम ने महावीर से पूछा—

भते! क्या केवल ज्ञान से जीव दु ख-मुक्त हो सकता है?

महावीर—नहीं।

भते! क्या कोरे चारित्र से जीवन मुक्त हो सकता है?

महावीर—नहीं।

भते! दु ख-मुक्ति कैसे हो सकती है?

महावीर—दु ख-मुक्ति के लिए ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनो का समन्वित योग होना चाहिए।

मूर्च्छा और मूढ़ता का परित्याग—जीवन में दो बातें होती है। एक है मूर्खता और दूसरी है मूढ़ता। ज्ञान से मूर्खता को मिटाकर समझदार बनाया जा

सकता है मूढता नहीं मिट सकती। मूढता का मिटाने का काम है अध्यात्म और दर्शन का। यह काम है ध्यान-साधना का। ध्यान-साधना से मूढता समाप्त की जा सकती है।

समस्त मूढता का कारण विपमता है। ज्ञान और आचरण के वीच मे एक होता हैं आकर्षण। वह आकर्षण समता क प्रति नहीं, पदार्थ के प्रति है। यह आकर्पण भी ज्ञान से फलित होता है। वुद्धिमान व्यक्ति जितना अपराधी हो सकता है, उतना अपराधी सामान्य व्यक्ति नहीं हो सकता। पशु छिपाना नहीं जानता। जैसे-जैसे आदमी की वुद्धि का विकास हुआ है वैसे-वैसे उसका चातुर्य वढा है। वह छिपान और ढकने की कला म निष्णात हुआ है। वह अपनी कामना और आकाक्षा को भी छिपा लता है। जव तक मूर्च्छा और मूढता मिटाने का प्रयास नहीं किया जायेगा तव तक समाधिमरण की वात करना सार्थक नहीं है।

परिजनो के प्रति ममत्व त्याग—आदमी जानता है कि जीव अकेला आया है। स्वार्थवश परिजना से चुम्वक की तरह चिपक जाता है। जमीन, जायदाद, धन और वैभव सामग्री क लिए माँ, वाप, भाई, वहिन, सगा, सवधी, किसी की भी हत्या कर सकता हे। यदि परिजना स ममत्व है तो ये हत्याएँ क्यों ? वाप, वटे को वुढापे का सहारा मानकर उस गले लगाता है। माँ, वेटी का दु ख-सुख की साथिन समझकर ममत्व देती है। वेटा, वाप की सम्पत्ति के लिए चिपका हुआ है। इस प्रकार प्रत्येक सवध से स्वार्थ जुडा हुआ है।

एक मास पूर्व जिस लड़की को हम जानते भी नहीं थे, जिसके दु ख-सुख की हम काई परवाह नहीं थी वही लडकी हमारे घर की वहू वनकर जव आ जाती है तव उसक साथ हमारा स्वार्थ जुड जाता है, तव उसक पैर में एक काटा चुभन पर भी हम दर्द हाता हे।

दूसरा प्रसग पाच वर्प पूर्व घर आयी पुत्र-वधू की हर पीडा हमार अन्तरमन को छूती थी। पाच वर्प वाद किसी कारण उसने तलाक ले लिया। तलाक क एक वर्प वाद कार दुर्घटना म वह जख्मी हो गयी ओर अस्पताल म जन्म और मृत्यु क वीच झूल रही थी फिर भी परिवार का कोई भी व्यक्ति सवेदना प्रकट करने उसके पास नहीं पहुँचा। यह है सवधा की कडी जो विशेष समय तक ही जोड़कर रखती है। इससे ज्ञात होता है कि सारे सवध, सारा ममत्व, स्वार्थपरक हे। हमारी मूर्च्छा इतनी सघन है कि हम अन्त समय तक इस ममत्व को नहीं छोड़ पाते। इसी तरह वस्तुआ का ममत्व है। धन, सम्पदा और पद यह भी हमारे साथ नहीं जान वाले हैं फिर भी इन्ह हम अन्त समय तक नहीं छोड पाते हैं।

जीवन और मृत्यु को सार्थक करने हतु भय से मुक्त होकर ज्ञान, दर्शन और चारित्र का सामजस्य स्थापित कर, मूर्च्छा और मूढता मिटाकर जीना जिजीविपा के अभाव मे समाधिमरण स्वीकार करना ही सर्वश्रेप्ठ है। यही जीवन चारित्र की पहचान है। जीवन-यात्रा का हर पल साक्षी वनता है किए गए कर्मो का, सस्कारों का, विचारों का, व्यवहारा का। इन्हीं पैमाने से मापी जाती हे सम्पूर्ण जीवन की अच्छाइयाँ ओर वुराइयाँ, क्योंकि व्यक्तित्व को उम्र से नहीं, चरित्र से पहचान मिलती है।

भगवान् महावीर ने तपस्या के वारह भेद वतलाए जिनमे छ वाह्य और छ आन्तरिक तप हैं। वाह्य तप म पहला अनशन है। यह तपस्या आत्म-शुद्धि क लिए की जाती है। यह कर्म-सस्कारों को जला देने वाली आग हे, वशर्ते तप का अनुप्ठान कर्म-निर्जरा क लिए हो।

आमरण अनशन तप की महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया हे। इसके साथ उम्र की कोई शर्त नहीं। जव व्यक्ति का लगे कि अव शरीर, इन्द्रियाँ, मन प्रतिक्षण अपनी शक्तियाँ खो रहे हें तव शेप वचे समय को धर्म जागरण म अर्पण कर दे। इस अर्पण में साधक मौत का सहज स्वीकृति देता है, समाधिमरण का सकल्प करता है। आने वाले हर शारीरिक, मानसिक, भावात्मक कप्ट का धैर्य के साथ सहन करता ह क्योंकि सहन में कर्म-निर्जरा का विश्वास है।

इस तपायज्ञ म न ता परिस्थितियों का झलन की कायरता है, न जीवन से ऊव हे, न पलायन हे, न प्रलोभन है, न वहकावा ओर न किसी प्रकार का आवेग।

यह तो राग-द्वेष के सस्कारों से हटकर पवित्रता के साथ भावी जन्मों के अनन्त दु खों को सीमा देने का अनुष्ठान कहा जा सकता है क्योकि इससे कृत कर्मो के विपाको का समत्व के साथ भोग का मुख्य उद्देश्य जुड़ा है।

यद्यपि शरीर को निस्सार, अशुचिमय, क्षणभगुर आसक्ति का कारण माना गया है परन्तु साधना की भूमिका पर यह शरीर चैतन्य के प्रकटीकरण का सवाहक सूत्र बनता है। कर्म-निर्जरा मे उसका पराक्रम मुख्य शर्त है तभी भगवान् महावीर ने इसे नौका कहकर नाविक प्राणी के भवसागर तैरने की बात कही है। शरीर साधना मे साधक-तत्त्व है।

सथारे के समय समाधि की बात अहम् प्रश्न है। जैन दर्शन तो मृत्यु को भावी जीवन का निर्णायक बिन्दु मानता है। प्राणी अगला जन्म कहाँ लेगा, इसका निर्णय मृत्यु के समय आत्मा के शुभ-अशुभ भावो पर निर्भर करता है। समाधिमृत्यु शुभ लेश्या में जीना है। यह न केवल अतीत की पकड़ से आत्मा को मुक्त करती है बल्कि वर्तमान जीवन की कृतार्थता एव भावी की निश्चितता भी देती है। मृत्यु उसे ही इन विशेषताओ की श्रेणी से प्रस्थापित करती है जो अभीत हो, जिसने मौत को ललकारा हो, जिसने मृत्यु के क्षण मे अमरत्व का आभास किया हो। जैन शास्त्रो में विहित समाधिमरण उसी का निर्देशन है।

भगवान् महावीर के समय स उदाहरण प्राप्त होते है कि श्रावक-जीवन मे आत्मशुद्धि का प्रसग प्रस्तुत कर समाधिमरण प्राप्त किया गया। इसमे एक उदाहरण आनन्द श्रावक का है। तपश्चर्या से आनन्द का शरीर सूख गया। उसकी नसें दिखाई देने लगीं।

एक दिन आनन्द श्रावक को धर्म-चिन्तन करते हुए यह विचार आया कि मैं उग्र तपश्चरण के कारण कृश हो गया हूँ फिर भी अभी तक उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषार्थ, श्रद्धा और सवेग विद्यमान है। मेरे लिये श्रेयस्कर होगा कि अन्तिम मरणान्तिक सलेखना अगीकार कर लूँ। यह निश्चय कर प्रात होते ही उसने सलेखना व्रत ले लिया, आमरण अनशन, पान आदि आहार का त्याग कर दिया और एकमात्र आत्मचिन्तन मे लीन हो गया। जीने और मरने की आकाक्षा को छोड़, भूख-प्यास के कष्ट से विमुख होकर, यश, कीर्ति, ऐहिक-भोग तथा पारलौकिक सुख आदि सब इच्छाओं से निवृत्त होकर वह आत्म-चिन्तन में समय व्यतीत करने लगा।

इस तरह धर्म चिन्तन करते हुए आनन्द को एक दिन शुभ अध्यवसाय, शुभ परिणाम एव विशुद्ध लेश्या के कारण अवधिज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम हो गया और अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। इससे वह पूर्व-पश्चिम की तरफ लवण समुद्र में पाच सौ योजन की दूरी तक जानने और देखने लगा, उत्तर दिशा की तरफ क्षुल्लहिमवान वर्षधर पर्वत को, ऊर्ध्वलोक में सौधर्मकल्प तक और अधोलोक मे चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले लोलुपाच्युत नरक तक जानने और देखने लगा।

भगवान् महावीर के प्रधान शिष्य गौतम स्वामी वाणिज्य नगर में भिक्षाचर्या के लिए घूमकर तथा पर्याप्त अन्न-जल ग्रहण कर वाणिज्य ग्राम नगर से बाहर निकल कर कोल्लाक सन्निवेश के पास पहुँचे। वहाँ एकत्र लोग आनन्द श्रावक की बात कर रहे थे कि आनन्द श्रमणोपासक पोषधशाला मे अपश्चिम मरणान्तिक सलेखना किए हुए यावत् जीवन मरण की आकाक्षा न रखते हुए विचर रहा है। गौतम स्वामी यह बात सुनकर आनन्द श्रावक के पास पोषधशाला पहुँचे।

आनन्द श्रावक गौतम स्वामी को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ किन्तु शरीर मे शक्ति न होन की वजह से उठकर वह वन्दन, नमस्कार नहीं कर सका। उसने लेटे हुए पसन्नता व्यक्त करके चरण स्पर्श के लिए उनसे समीप आने की प्रार्थना की। गौतम को तीन बार मस्तक झुकाकर वन्दन-नमस्कार कर आनन्द ने पूछा— भगवन् क्या गृहस्थ को घर में रहते हुए अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है? गौतम—हाँ आनन्द हो सकता है। आनन्द ने कहा—मुझे अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, इसके द्वारा मै पूर्व की ओर लवणसमुद्र में पाच सौ योजन तक, अधोलोक में लोलुपाच्युत नरक तक जानने तथा देखने लगा हूँ।

गौतम न यह सुनकर आनन्द श्रावक से कहा—हे आनन्द! गृहस्थ अवस्था मे अवधिज्ञान तो उत्पन्न हो सकता है परन्तु इतना विशाल नहीं। हे आनन्द! इस असत्य भाषण की आलोचना करा एव आत्मशुद्धि के लिए उचित तपश्चरण स्वीकार करा।

आनन्द बोला—हे भगवन्! क्या जिन प्रवचन म सत्य बात के लिए भी आलाचना तथा प्रायश्चित होता है? यदि एसा नहीं है तो आप ही आलोचना एव प्रायश्चित कीजिए।

आनन्द का उत्तर सुनकर गौतम स्वामी विचार म पड गए और इस विषय में भगवान् महावीर से पूछने का निश्चय किया।

वे भगवान् महावीर के पास पहुँचे और आनन्द का सारा वृत्तान्त सुनाया। पूछा—भगवन्! आलोचना एव प्रायश्चित किसे करना चाहिए? भगवान् ने उत्तर दिया—गौतम, तुम ही आलोचना एव प्रायश्चित करो। इतना ही नहीं, उन्होने यह भी कहा कि इस बात के लिए आनन्द से क्षमायाचना करो। इससे ज्ञात होता है कि महावीर-शासन मे दोष किसी का भी हो उसे क्षमा मागनी होती थी। गौतम का सघ में सर्वोच्च स्थान था फिर भी उससे कहा—आनन्द से क्षमायाचना करो।

महावीर के आदेशानुसार गौतम स्वामी ने आनन्द से क्षमायाचना की। यह बात उनके उदात्त चारित्र को प्रकट करती है। महावीर के प्रधान गणधर सघ के सर्वमान्य होने पर भी उनके द्वारा बगैर सकोच, अभिमानरहित होकर एक श्रावक से क्षमायाचना करना जैन दर्शन की भव्यता का प्रतीक है।

आनन्द श्रावक ने आत्मशुद्धि का अन्तिम सलेखना व्रत लेकर एक महीने के उपवास पश्चात समाधिमरण प्राप्त किया और सौधर्म देवलोक में उत्पन्न हुआ।

गौतम स्वामी क पूछने पर भगवान् महावीर ने कहा—आनन्द महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगा और वहाँ से सिद्ध गति प्राप्त करेगा।

समाधिमरण वह तप है जो साधु जीवन एव श्रावक जीवन मे एकरूपता रखता है। जैन दर्शन के अनुसार आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख एव अनन्त वीर्य अर्थात् शक्ति का पुञ्ज है परन्तु उसका यह स्वरूप कर्म-बन्ध के कारण दबा हुआ है। कर्म-बन्ध से मुक्त होने के लिए साधु जीवन में समाधिमरण का जितना महत्त्व है उतना ही महत्त्व श्रावक जीवन में भी है।

◆

सेवक की सेव्य के प्रति सेवा इस उद्देश्य से होती है कि सेवक भी सेव्य के तुल्य बन जाय और सेव्य की-सी सर्वशक्ति, सर्वज्ञता एव सर्वदर्शिता सेवक की आत्मा मे भी व्याप्त हो जाय।

—आचार्य श्री नानेश

डॉ सुरेश सिसोदिया

संथारा (समाधिमरण) का स्वरूप
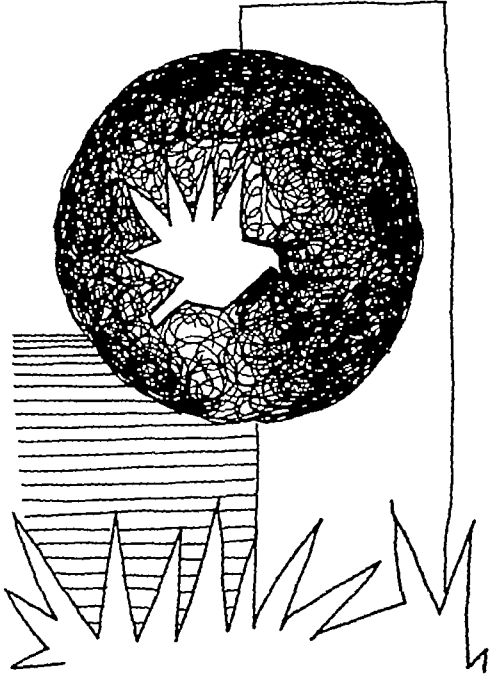
जैन परम्परा के सामान्य आचार नियमों मे सलेखना या सथारा (मृत्युवरण) एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है। जैन गृहस्थ उपासको एव श्रमण साधको, दोनो के लिए स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का विधान जैन आगमों में उपलब्ध है। जैनागम साहित्य ऐसे साधको की जीवन गाथाओ से भरा पड़ा है जिन्होंने समाधिमरण का व्रत ग्रहण किया था। समाधिमरण में मनुष्य का मृत्यु पर शासन होता है, जबकि अनिच्छापूर्वक मरण मे मृत्यु मनुष्य पर शासन करती है। पहले को पण्डितमरण कहा गया है जबकि दूसरे को बाल (अज्ञानी)-मरण कहा गया है। एक ज्ञानीजन की मौत है और दूसरी अज्ञानी की। अज्ञानी विषयासक्त होता है इसलिए वह मृत्यु से डरता है, जबकि सच्चा ज्ञानी अनासक्त होता है इसलिए वह मृत्यु से नहीं डरता है।[1] जो मृत्यु से भय खाता है, उससे बचने के लिए भागा-भागा फिरता है, मृत्यु भी उसका सदैव पीछा करती रहती है, लेकिन जो निर्भय हो मृत्यु का स्वागत करता है और उसे आलिगन दे देता है, मृत्यु उसके लिये निरर्थक हो जाती है। जो मृत्यु से भय खाता है, वही मृत्यु का शिकार होता है, लेकिन जो मृत्यु से निर्भय हो जाता है वह अमरता की दिशा मे आगे बढ़ जाता है। साधकों के प्रति महावीर का सन्देश यही था कि मृत्यु के उपस्थित होने पर शरीरादि से अनासक्त होकर उसे आलिगन दो।[2] महावीर के दर्शन मे अनासक्त जीवनशैली की यही महत्त्वपूर्ण कसौटी है कि जो साधक मृत्यु से भागता है, वह सच्चे अर्थ म अनासक्त जीवन जीने की कला से अनभिज्ञ है। जिसे अनासक्त मृत्यु की कला नहीं आती उस अनासक्त जीवन की कला भी नहीं आ सकती है। इसी अनासक्त मृत्यु की कला को महावीर ने सलेखना व्रत कहा है। जैन परम्परा में सथारा, सलेखना समाधिमरण पण्डितमरण और सकाममरण आदि निष्काम मृत्युवरण के ही पर्यायवाची नाम हैं। आचार्य समन्तभद्र सलेखना की परिभाषा करते हुए लिखते हैं कि आपत्ति, अकाल, अतिवृद्धावस्था एव असाध्य रागो मे शरीर त्याग करन को सलखना कहते है।[3] अर्थात जिन स्थितियो म मृत्यु अनिवार्य-सी हो गई हो उन परिस्थितियों मे

मृत्यु क भय से निर्भय हाकर दहासक्ति का विसर्जन कर मृत्यु का स्वागत करना हो सलखना व्रत है।

समाधिमरण के भेद—जैनागम ग्रथा में मृत्युवरण क अवसरो की अपेक्षा के आधार पर समाधिमरण के दो प्रकार माने गये हैं—(1) सागारी सथारा और (2) सामान्य सथारा।

सागारी सथारा—जब अकस्मात् कोई ऐसी विपत्ति उपस्थित हो जाए कि उसमें से जीवित बच निकलना सम्भव प्रतीत न हा, जैसे आग में गिर जाना, जल म डूबने जैसी स्थिति हो जाना अथवा हिसक पशु या किसी ऐसे दुष्ट व्यक्ति के अधिकार म फँस जाना जहाँ सदाचार से पतित होने की सम्भावना हो, ऐस सकटपूर्ण अवसरो पर जो सथारा ग्रहण किया जाता है वह सागारी सथारा कहा जाता है। यदि व्यक्ति विपत्ति या सकटपूर्ण स्थिति से बाहर हो जाता है तो वह पुन देहरक्षण के सामान्य क्रम का चालू रख सकता है। सक्षेप में अकस्मात् मृत्यु का अवसर उपस्थित हो जाने पर जो सथारा ग्रहण किया जाता है, वह सागारी सथारा मृत्युपर्यन्त के लिए नहीं, वरन् परिस्थिति विशेष के लिए होता है। अत उस परिस्थिति विशेष के समाप्त हो जाने पर उस व्रत की मर्यादा भी समाप्त हो जाती है।[4]

सामान्य सथारा—जब स्वाभाविक जरावस्था अथवा असाध्य राग के कारण पुन स्वस्थ होकर जीवित रहने की समस्त आशाएँ धूमिल हो गयी हों, तब यावज्जीवन तक जो देहासक्ति एव शरीर-पोषण के प्रयत्नो का त्याग किया जाता है और देहपात पर ही पूर्ण होता है, वह सामान्य सथारा है।

समाधिमरण ग्रहण करने की विधि—जैनागमा में समाधिमरण ग्रहण करन की विधि निम्नानुसार बताई गई है—सर्वप्रथम मल-मूत्रादि अशुचि विसर्जन के स्थान का अवलोकन कर शय्या तैयार कर ली जाती है। तत्पश्चात् अरिहन्त, सिद्ध और धर्माचार्यो को विनयपूर्वक नमस्कार कर पूर्वग्रहीत प्रतिज्ञाओं म लग हुए दोपा की आलोचना और उनका प्रायश्चित ग्रहण किया जाता है। इसके बाद समस्त प्राणिया से क्षमा-याचना की जाती है और अन्त म अठारह पापस्थाना, अन्नादि चतुर्विध आहारो का त्याग करके शरीर के ममत्व एव पोपणक्रिया का विसर्जन किया जाता है। साधक प्रतिज्ञा करता है कि मैं पूर्णत हिसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, यावत् मिथ्यादर्शन शल्य से विरत होता हूँ। अशन आदि चारों प्रकार के आहार का यावज्जीवन के लिए त्याग करता हूँ। मरा यह शरीर जो मुझे अत्यन्त प्रिय था, मैन इसकी बहुत रक्षा की थी, कृपण के धन के समान इसे सम्भालता रहा, इस पर मरा पूर्ण विश्वास था (कि यह मुझे कभी नहीं छोड़ेगा), इसके समान मुझे अन्य कोई प्रिय नहीं था, इसलिये मैंने इसे शीत, उष्ण, क्षुधा, तृष्णा आदि अनेक कष्टो से एव विविध रोगो से बचाया और सावधानीपूर्वक इसकी रक्षा करता रहा, अब मैं इस शरीर का विसर्जन करता हूँ और इसके पोषण एव रक्षण के समस्त प्रयासा का परित्याग करता हूँ।

> जैन परम्परा में सथारा, सलेखना, समाधिमरण पण्डितमरण, सकाममरण आदि निष्काम मृत्युवरण के ही पर्यायवाची नाम हैं। सलेखना की परिभाषा में कहा गया है कि आपत्ति, अकाल, अतिवृद्धावस्था एव असाध्य रोगों में शरीरत्याग करना सलेखना है। अर्थात् जिन स्थितियों में मृत्यु अनिवार्य सी हो गई हो, उन परिस्थितियों में मृत्यु के भय से निर्भय होकर देहासक्ति का विसर्जन कर मृत्यु का स्वागत करना ही सलेखना व्रत है।

बौद्ध परम्परा मे मृत्युवरण—यद्यपि बुद्ध ने जैन परम्परा के समान ही धार्मिक आत्महत्याओं को अनुचित माना है, तथापि बौद्ध साहित्य मे कुछ ऐसे सन्दर्भ अवश्य हैं जो स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते है। सयुक्तनिकाय मे असाध्य रोग से पीडित भिक्षु वक्कलि कुलपुत्र[5] तथा भिक्षु छन्न[6] द्वारा की गई आत्महत्याआ का समर्थन स्वय बुद्ध न किया था और उन्हे निर्दोष कह कर दोना ही भिक्षुओं को परिनिर्वाण प्राप्त करने वाले बताया था।

जापानी बौद्धो मे तो आज भी हाराकीरी की प्रथा प्रचलित है जो मृत्युवरण का प्रकार है।

फिर भी जैन परम्परा और बौद्ध परम्परा मे मृत्युवरण के प्रश्न को लेकर कुछ अन्तर भी है। प्रथम तो यह कि जैन परम्परा के विपरीत बौद्ध परम्परा मे शस्त्र के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण कर लिया जाता है। जैन आचार्यो ने शस्त्र के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण का विरोध इसलिए किया था कि उन्हें उसमे मरणाकाक्षा की सम्भावना प्रतीत हुई थी। उनके अनुसार यदि मरणाकाक्षा नहीं है तो फिर मरण के लिए उतनी आतुरता क्यों ? इस प्रकार जहाँ बौद्ध परम्परा शस्त्र के द्वारा की गई आत्महत्या का समर्थन करती है, वहीं जैन परम्परा उसे अस्वीकार करती है। इस सन्दर्भ मे बौद्ध परम्परा वैदिक परम्परा के अधिक निकट है।

वैदिक परम्परा मे मृत्युवरण—सामान्यतया हिन्दू धर्मशास्त्रों में आत्महत्या को महापाप माना गया है। पाराशरस्मृति में कहा गया है कि जो क्लेश, भय, घमण्ड और क्रोध के वशीभूत होकर आत्महत्या करता है, वह साठ हजार वर्ष तक नरकावास करता है।[7] महाभारत के आदिपर्व के अनुसार भी आत्महत्या करने वाला कल्याणप्रद लोकों मे भी नहीं जा सकता है।[8] लेकिन इनके अतिरिक्त हिन्दू धर्मशास्त्रो में ऐसे भी अनेक सन्दर्भ है जो स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण का समर्थन करते हैं। प्रायश्चित के निमित्त से मृत्युवरण का समर्थन मनुस्मृति (11/90-91), याज्ञावल्क्यस्मृति (3/253), गौतमस्मृति (23/1), वशिष्ठधर्मसूत्र (20/22, 13/14) और आपस्तबसूत्र (1/9/25/1-3, 6) मे भी किया गया है। मात्र इतना ही नहीं, हिन्दू धर्मशास्त्रो में ऐसे भी अनेक स्थल हैं, जहाँ मृत्युवरण को पवित्र एव धार्मिक आचरण के रूप में देखा गया है। महाभारत के अनुशासनपर्व (25/63-64), वनपर्व (85/83) एव मत्स्यपुराण (186/34/35) म अग्निप्रवेश, जलप्रवेश, गिरिपतन, विषप्रयोग या उपवास आदि के द्वारा देह त्याग करने पर ब्रह्मलोक या मुक्ति प्राप्त होती है, ऐसा माना गया है। अपरार्क ने प्राचीन आचार्यों के मत को उद्धृत करत हुए लिखा है कि यदि कोई गृहस्थ असाध्य रोग से पीड़ित हो तथा जिसने अपने कर्तव्य कर लिए हों, वह महास्थान, अग्नि या जल मे प्रवेश करके अथवा पर्वत शिखर से गिर कर अपने प्राणो का त्याग कर सकता है। ऐसा करके वह कोई पाप नहीं करता, उसकी मृत्यु तो तपो से भी बढकर है। शास्त्रानुमोदित कर्तव्यों के पालन में अशक्त होने पर जीवन जीने की इच्छा रखना व्यर्थ है।[9] श्रीमद्भागवत के 11वें स्कन्ध के 18वे अध्याय मे भी स्वेच्छापूर्वक मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है। वैदिक परम्परा मे स्वेच्छया मृत्युवरण का समर्थन न केवल शास्त्रीय आधारो पर हुआ है वरन् व्यावहारिक जीवन मे इसके अनेक उदाहरण भी उपलब्ध हैं। महाभारत मे पाण्डवो के द्वारा हिमालय-यात्रा मे किया गया देहपात मृत्युवरण का एक प्रमुख उदाहरण है। डॉ पाण्डुरग वामन काणे ने वाल्मीकि रामायण एव अन्य वैदिक धर्मग्रन्थो तथा शिलालेखों के आधार पर शरभग, महाराजा रघु, कलचुरी के राजा गागेय, चदेल कुल के राजा गगदेव, चालुक्य राजा सोमेश्वर आदि के स्वेच्छा मृत्युवरण का उल्लेख किया है।[10] मैगस्थनीज ने भी ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी में प्रचलित स्वेच्छामरण का उल्लेख किया है। प्रयाग में अक्षयवट से कूद कर गगा में प्राणान्त करने की प्रथा तथा काशी मे करवत लेने की प्रथा वैदिक परम्परा में मध्य युग तक भी काफी प्रचलित थी।[11] यद्यपि ये प्रथाएँ आज नामशेष हो गयी हैं फिर भी वैदिक सन्यासियो द्वारा जीवित समाधि लेने की प्रथा आज भी जनमानस की श्रद्धा का केन्द्र है।

इस प्रकार हम देखते है कि न केवल जैन और बौद्ध परम्पराओं में, वरन् वैदिक परम्परा मे भी मृत्युवरण को समर्थन दिया गया है। लेकिन जैन और वैदिक परम्पराओ में प्रमुख अन्तर यह है कि जहाँ वैदिक परम्परा में जल एव अग्नि में प्रवेश, गिरि-शिखर से गिरना, विष या शस्त्र प्रयोग आदि विविध साधनो से मृत्युवरण का विधान मिलता है, वहाँ जैन परम्परा में सामान्यतया कवल उपवास द्वारा ही देहत्याग का समर्थन मिलता है। जैन परम्परा शस्त्र आदि से होने वाली तात्कालिक मृत्यु की अपेक्षा उपवास द्वारा होने वाली क्रमिक मृत्यु को ही अधिक प्रशस्त मानती है। यद्यपि ब्रह्मचर्य की रक्षा आदि कुछ प्रसगों म तात्कालिक

मृत्युवरण को स्वीकार किया गया है, तथापि सामान्यतया जैन आचार्यो ने तात्कालिक मृत्युवरण, जिसे प्रकारान्तर से आत्महत्या भी कहा जा सकता है, की आलोचना की है। आचार्य समन्तभद्र ने गिरिपतन या अग्निप्रवेश के द्वारा किये जाने वाले मृत्युवरण को लोकमूढता कहा है।[12] जैन आचार्यो की दृष्टि मे समाधिमरण का अर्थ मृत्यु की कामना नहीं, वरन् देहासक्ति का परित्याग है। उनके अनुसार तो जिस प्रकार जीवन की आकाक्षा दूषित मानी गई है, उसी प्रकार मृत्यु की आकाक्षा भी दूषित मानी गयी है।

समाधिमरण के दोष—जैन आचार्यों ने समाधिमरण के लिए निम्न पाँच दोषों से बचने का निर्देश किया है —

1 जीवन की आकाक्षा,
2 मृत्यु की आकाक्षा,
3 ऐहिक सुखो की आकाक्षा,
4 पारलौकिक सुखो की आकाक्षा और
5 इन्द्रिय-विषयों के भोग की आकाक्षा।

जैन परम्परा के समान बुद्ध ने भी जीवन की तृष्णा और मृत्यु की तृष्णा, दोनो को ही अनैतिक माना है। बुद्ध के अनुसार भव-तृष्णा और विभव-तृष्णा क्रमश जीविताशा और मरणाशा की प्रतीक हैं और जब तक ये आशाएँ या तृष्णाएँ उपस्थित हैं तब तक नैतिक पूर्णता सम्भव नहीं है। अत साधक को इनसे बचके ही रहना चाहिए।

समाधिमरण और आत्महत्या—जैन, बौद्ध और वैदिक तीना परम्पराओ में जीविताशा और मरणाशा दोनो अनुचित मानी गई हैं।[13] अत यह प्रश्न स्वाभाविक रूप मे उपस्थित होता है कि क्या समाधिमरण मरणाकाक्षा नहीं है? वस्तुत यह न तो मरणाकाक्षा है और न आत्महत्या ही। व्यक्ति आत्महत्या या तो क्रोध के वशीभूत होकर करता है या फिर सम्मान या हितों को गहरी चोट पहुँचने पर अथवा जीवन से निराश हो जाने पर करता है, लेकिन ये सभी चित्त की सावेगिक अवस्थाएँ हैं जबकि समाधिमरण तो चित्त की समत्व की अवस्था है। अत वह आत्महत्या नहीं कही जा सकती। दूसरे आत्महत्या या आत्म-बलिदान मे मृत्यु को निमत्रण दिया जाता है। व्यक्ति के अन्तस् मे मरने की इच्छा छिपी हुई होती है, लेकिन समाधिमरण में मरणाकाक्षा का अभाव ही अपेक्षित है, क्योकि समाधिमरण के प्रतिज्ञा-सूत्र मे ही साधक यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं मृत्यु की आकाक्षा से रहित होकर आत्मरमण करता हूँ (काल अकखमाण विहरामि)। यदि समाधिमरण में मरने की इच्छा ही प्रमुख होती तो उसके प्रतिज्ञा-सूत्र में इन शब्दो को रखने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। जैन विचारकों ने तो मरणाशसा को समाधिमरण का दोष ही माना है। अत समाधिमरण को आत्महत्या नहीं कहा जा सकता। जैन विचारकों ने इसलिए सामान्य स्थिति मे शस्त्र, अग्निप्रवश या गिरिपतन आदि साधनो के द्वारा तात्कालिक मृत्युवरण को अनुचित ही माना है क्योकि उनके पीछे मरणाकाक्षा की सम्भावना रही हुई है। समाधिमरण में आहारादि के त्याग मे मृत्यु की चाह नहीं होती, मात्र देह-पोषण का विसर्जन किया जाता है। मृत्यु उसका परिणाम अवश्य है लेकिन उसकी आकाक्षा नहीं। जैसे व्रण (घाव) की चीरफाड़ के परिणामस्वरूप वेदना अवश्य होती है लेकिन उसमे वेदना की आकाक्षा नहीं होती है। एक जैन आचार्य ने कहा है कि समाधिमरण की क्रिया मरण के निमित्त नहीं होकर उसके प्रतिकार के लिए है। जैसे व्रण का चीरना वेदना के निमित्त नहीं हो कर वेदना के प्रतिकार के लिए होता है।[14] यदि आपरेशन की क्रिया में हो जाने वाली मृत्यु हत्या नहीं है तो फिर समाधिमरण में हो जाने वाली मृत्यु आत्महत्या कैसे हो सकती है? एक दैहिक जीवन की रक्षा के लिए है तो दूसरी आध्यात्मिक जीवन की रक्षा के लिए है। समाधिमरण और आत्महत्या मे मौलिक अन्तर है। आत्महत्या में व्यक्ति जीवन के सघर्षो से ऊब कर जीवन से भागना चाहता है। उसके मूल मे कायरता है, जबकि समाधिमरण मे देह और सयम की रक्षा के लिए अनिवार्य विकल्पो मे से सयम की रक्षा के विकल्प को चुनकर मृत्यु का साहसपूर्वक सामना किया जाता है। समाधिमरण मे जीवन से भागने का प्रयास नहीं वरन् जीवन-वेला की अन्तिम सध्या मे द्वार पर खड़ी हुई

मृत्यु का स्वागत है। आत्महत्या मे जीवन से भय होता है, जबकि समाधिमरण में मृत्यु से निर्भयता होती है। आत्महत्या असमय मृत्यु का आमत्रण है जबकि सथारा या समाधिमरण मात्र मृत्यु के स्थित होने पर उसका सहर्ष आलिगन है। आत्महत्या के मूल मे या तो भय है या कामना, जबकि समाधिमरण मे भय और कामना दोनो की अनुपस्थिति आवश्यक होती है।

समाधिमरण आत्म-बलिदान से भी भिन्न है। पशु-बलि के समान आत्म-बलि की प्रथा भी शैव और शाक्त सम्प्रदायों मे प्रचलित रही है। लेकिन समाधिमरण को आत्म-बलिदान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि आत्म-बलिदान भी भावना का अतिरेक है। भावातिरेक आत्म-बलिदान की अनिवार्यता है जबकि समाधिमरण मे भावातिरेक नहीं वरन् विवेक का प्रकटन आवश्यक है।

समाधिमरण के प्रत्यय के आधार पर आलोचको ने यह कहने का प्रयास भी किया है कि जैन दर्शन जीवन से इकरार नहीं करता वरन् जीवन से इन्कार करता है, लेकिन गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह धारणा भ्रान्त ही सिद्ध होती है। उपाध्याय अमरमुनिजी लिखते हैं—वह (जैन दर्शन) जीवन से इन्कार नहीं करता है, अपितु जीवन के मिथ्या मोह से इन्कार करता है। जीवन जीने में यदि कोई महत्त्वपूर्ण लाभ है और वह स्व-पर की हित साधना में उपयोगी है तो जीवन सर्वतोभावेन सरक्षणीय है।[15] आचार्य भद्रबाहु भी ओघनिर्युक्ति में कहते हैं—साधक का देह ही नहीं रहा तो सयम कैसे रहेगा, अत सयम की साधना के लिए देह का परिपालन इष्ट है।[16] लेकिन देह के परिपालन की क्रिया सयम के निमित्त है अत देह का ऐसा परिपालन जिससे सयम ही समाप्त हो, किस काम का? साधक का जीवन न तो जीने के लिए है न मरने के लिए है, वह तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र की सिद्धि के लिए है। यदि जीवन से ज्ञानादि आध्यात्मिक गुणो की सिद्धि एव शुद्धि-वृद्धि हो तो जीवन की रक्षा करते हुए वैसा करना चाहिए किन्तु जीवन से ही ज्ञानादि की अभीष्ट सिद्धि नहीं होती हो तो वह मरण भी साधक के लिए शिरसा श्लाघनीय है।[17]

◆

सदर्भ

1 बालाण' तु अकाम तु मरण असइ भवे।
पडियाण सकाम तु उक्कोसेण सइ भवे।।

2 वही, 5/32

3 उपसर्गे दुर्भिक्षे जरासि रूजाया च निष्पतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहु सलेखनामार्या ।।

4 द्रष्टव्य है—अतकृतदशागसूत्र के अर्जुनमाली अध्याय में सुदर्शन सेठ के द्वारा किया गया सागारी सथारा।

5 सयुक्तनिकाय, 21/2/4/5

6 वही 34/2/4/4

7 पाराशरस्मृति 4/1/2

8 महाभारत, आदिपर्व 271/20

9 विशेष जानकारी के लिए द्रष्टव्य है—धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ 448

10 वही, पृ 487

11 वही, पृ 488

12 रत्नकरण्डश्रावकाचार, गाथा 22

13 द्रष्टव्य है—दर्शन और चिन्तन प सुखलालजी, पृ 536

14 उद्धृत—दर्शन और चिन्तन पृ 536

15 अमर भारती, मार्च 1965 पृ 26

16 ओघनिर्युक्ति, गाथा 47

17 अमर भारती मार्च 1964, पृ 26
तुलना कीजिये—विसुद्धिमग्ग 1/133

मानमल कुदाल

संलेखना-संथारा · जैन दृष्टि से एक विहंगावलोकन
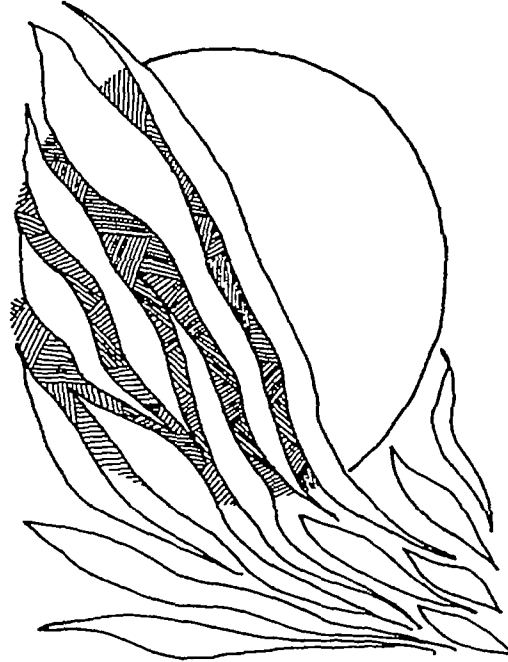
महान सकट, दुर्भिक्ष, असाध्य रोग व वृद्धत्व की अवस्था में जब साधक को यह प्रतीत हो कि वह उस विपत्ति से बच नहीं सकता, तब उसके लिए कराह-कराह कर व्याकुलता पूर्वक मरने की अपेक्षा यह श्रेयस्कर है कि वह क्रमश अपना आहार-पान इस विधि से घटाता जाये जिससे उसके चित्त मे क्लेश व व्याकुलता उत्पन्न न हो और वह शान्तभाव से अपने शरीर का उसी प्रकार त्याग कर सके, जिस प्रकार कोई धनी पुरुष अपने गृह को सुख का साधन समझता हुआ भी उसमें आग लगने पर उसे त्याग कर स्वय सुरक्षित निकल आने में ही अपना कल्याण समझता है। इसे सलेखना या समाधिमरण कहा गया है। इसे आत्मघात नहीं समझना चाहिए, क्योकि आत्मघात तीव्र रागद्वेषवृत्ति का परिणाम होता है और वह शस्त्र व विष के प्रयोग, भृगुपात आदि जैसी घातक क्रियाओ द्वारा किया जाता है, जिनका सलेखना मे सर्वथा अभाव होता है। इस प्रकार योजनानुसार शान्तिपूर्वक यह मरण, जीवन सबधी सुयोजना का ही एक अग है[1]।

सलेखना के महत्त्व को जानने के लिए सबसे पहले यह समझ लेना आवश्यक है कि आगम ग्रन्था मे इसके सन्दर्भ में क्या विचार हुआ है?

'आचारागसूत्र' के विमाक्ष अध्ययन में सलेखना, सथारा और मरणविधि का विस्तृत वर्णन है। भक्तप्रत्याख्यान, इगितमरण एव पादोपगमनमरण के रूप में आचाराग में मरण-विधि की व्याख्या की गई है। उपधि, वस्त्र, आहार, स्वाद तथा सहाय विमोक्ष आदि विभिन्न चरणो के साथ आचाराग मे शरीर-विमोक्ष का वर्णन हुआ है। इसमे वर्णन है कि अतिम समय म जब व्यक्ति म्लान हो जाय शरीर धारण करने में असमर्थ हा जाय ता सूखा (तृण) घास मागकर उन पर सथारा कर। इस सूत्र में वैहायसमरण का उल्लेख भी हुआ है जिसके अनुसार सकट उपस्थित होने पर साधु सयम की रक्षा के

लिए प्राण-त्याग कर देता है। सयम मार्ग में दृढ़ रहकर अचानक मृत्यु का वरण करने वाला साधु एक प्रकार से हितकर, सुखकर, कालोपयुक्त एव नि श्रेयस्कर मरण मरता है[2]।

'स्थानागसूत्र' में मरण के तीन प्रकार बतलाये गये हैं—बालमरण, पण्डितमरण और बालपण्डितमरण। बालमरण असयमी जीवो का होता है, पण्डितमरण सयमी जीवो का तथा बालपण्डितमरण श्रावको का होता है। इस सूत्र में आगे कहा गया है कि इन तीनों मरणों के तीन-तीन प्रकार होते हैं—जो लेश्या से सम्बन्धित किये गये हैं[3]—

1 बालमरण—

1 स्थितलेश्य 2 सक्लिष्टलेश्य और 3 पर्यवजातलेश्य

2 पण्डितमरण—

1 स्थितलेश्य, 2 असक्लिष्टलेश्य और 3 पर्यवजातलेश्य

3 बालपण्डितमरण—

1 स्थितलेश्य, 2 असक्लिष्टिलेश्य और 3 अपर्यवजातलेश्य

'समवायागसूत्र' मे मरण के 17 प्रकार बतलाये हैं—आविचिमरण, अवधिमरण आदि[4]। इन सत्रह भेदो में बालमरण, पण्डितमरण, बालपण्डितमरण, केवलीमरण, भक्तप्रत्याख्यानमरण, इगिनीमरण और पादोपगमन मरण भी सम्मिलित है। इसी सूत्र में समाधि के दस स्थानो का भी निरूपण है, जिनमे केवलीमरण को भी समाधि का एक स्थान माना गया है[5]। केवलीमरण व्यक्ति को सब दु खों से रहित कर देता है अत समाधिरूप है।

> महान् सकट, दुर्भिक्ष, असाध्य रोग व वृद्धत्व की अवस्था में जब साधक को यह प्रतीत हो कि वह उस विपत्ति से बच नहीं सकता तब उसके लिए कराह-कराह कर व्याकुलतापूर्वक मरने की अपेक्षा यह श्रेयस्कर है कि वह क्रमश अपना आहार-पान इस विधि से घटाता जाय जिससे उसके चित्त में क्लेश व व्याकुलता उत्पन्न न हो और वह शान्त भाव से अपने शरीर का उसी प्रकार त्याग कर सके जिस प्रकार कोई धनी पुरुष अपने गृह को सुख का साधन समझता हुआ भी उसमें आग लगने पर उसे त्याग कर सुरक्षित निकल आने में ही अपना कल्याण समझता है। इसे सलेखना या समाधिमरण कहा गया है।

'भगवतीसूत्र' मे मरण के दो भेद बतलाये गये है—बालमरण और पण्डितमरण। इन दोनो के अलग-अलग भेद किये गये है—

1 बालमरण—इसके वलयमरण, दशार्तमरण आदि 18 भेद होते हैं।

2 पडितमरण—इसके पादोपगमन तथा भक्तप्रत्याख्यान ये दो भेद किये है।

इगिनीमरण का समावेश भक्तप्रत्याख्यान मरण मे किया गया है।

'उत्तराध्ययनसूत्र' के अकाममरणीय अध्ययन मे मरण के दो भेद किये हैं—अकाममरण एव सकाममरण। अज्ञानियो का मरण अकाममरण तथा ज्ञानियो का मरण सकाममरण होता है। अकाममरणीय अध्ययन मे बतलाया गया है कि हजारो प्रश्न मनुष्य ने पूछे है और हजारो प्रश्नो का ही समाधान उसे मिला है किन्तु कुछ प्रश्न जिनका अनेक बार समाधान होने पर भी प्रश्नत्व मिटा नहीं है, ऐसे ही प्रश्नो में जन्म और मृत्यु का प्रश्न भी है। प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रश्न है और प्रत्येक व्यक्ति इसके समाधान की खोज मे है। इसमें कहा गया है कि आत्मा की मृत्यु नहीं होती। आत्मा द्रव्यदृष्टि से सनातन है, अत वह अजय है, अजर है, अमर है। इस तथ्य से सबधित कतिपय जिज्ञासाएँ भी हैं और उनके समाधान भी दिये गये है जैसे—

शरीर की भी मृत्यु नहीं होती। शरीर भी मूल पुद्गल द्रव्य की दृष्टि से शाश्वत है, ध्रुव है। क्या आत्मद्रव्य की पर्याय का परिवर्तन मृत्यु है? नहीं, जिस मृत्यु की चर्चा यहाँ है वह आत्मद्रव्य की प्रतिक्षण उत्पादव्ययशील पर्याय के परिवर्तन से सम्बन्धित नहीं है।

तब क्या शरीर का परिवर्तन मृत्यु है?

नहीं, वह भी नहीं। यहाँ केवल शरीर के परिवर्तन को भी मृत्यु नहीं कहते है।

तब मृत्यु क्या है ?

आत्मा का शरीर को छोड़ना 'मृत्यु' है।

आत्मा शरीर को क्यो छोड़ता है ? दिया क्यों बुझ जाता है ?

जलते-जलते तेल समाप्त हो जाता है, और दिया बुझ जाता है। इसी प्रकार जब समय आता है, आत्मा और शरीर को जोड़े रखने वाला आयुष्यकर्म भी प्रतिक्षण क्षीण होता-होता अन्त में क्षीण हो जाता है और मृत्यु हो जाती है।

मृत्यु का दु ख क्यो है ?

मृत्यु को नहीं जाना है इसलिए मृत्यु का दु ख है। यह अज्ञान ही मृत्यु के सम्बन्ध मे भय पैदा करता है, फलत दु ख का कारण बनता है।

क्या मृत्यु के भय से मुक्त हुआ जा सकता है ?

हाँ, मृत्यु को जानकर मृत्यु के भय से मुक्त हुआ जा सकता है, किन्तु मृत्यु को मृत्यु से नहीं जाना जा सकता है वरन् मृत्यु को जीवन से जाना जा सकता है। आत्मा और शरीर के जीवन से नहीं, किन्तु मौलिक आत्मद्रव्य के जीवन से, स्वय की सत्ता के बोध से, स्वस्वरूप मे रमणता से—सलीनता से। इस बोध से मृत्यु का भय मिट जाता है, केवल मृत्यु रह जाती है और इसी मृत्यु को सूत्रकार ने पण्डितो का सकाममरण कहा है और वह मृत्यु, जिसमे भय, खेद और कष्ट है, आत्मज्ञान नहीं है, वह बालजीवों का अर्थात् अज्ञानियो का अकाममरण है।

अत साधक सकाममरण की अपेक्षा कर, अकाममरण की नहीं। सकाममरण सयम से और आत्मबोध से होता है। अकाममरण असयम से और आत्मअज्ञान से होता है[7]।

'प्रकीर्णक' साहित्य म समाधिमरण से सम्बन्धित विषयवस्तु वाले ग्रथों म महाप्रत्याख्यान, आतुरप्रत्याख्यान, मरणविभक्ति, मरणसमाधि, मरणविशुद्धि

सलेखनाश्रुत, भक्तपरिज्ञा और आराधना है। समाधिमरण से सम्बन्धित इन सभी ग्रन्थो को एक ग्रन्थ में समाहित करके उसे 'मरणविभक्ति' नाम दिया गया है। उपलब्ध मरणविभक्ति मे मरणविभक्ति, मरणसमाधि, मरणविशुद्धि, सलेखनाश्रुत, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान और आराधना—ये आठ ग्रन्थ समाहित हैं[8]।

'महाप्रत्याख्यान' मे पण्डितमरण को प्रशसनीय बताते हुए कहा गया है कि माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री ये सभी न तो किसी के रक्षणकर्त्ता हैं और न ही त्राणदाता। जीव अकेला ही कर्म करता है और उसके फल को भी अकेला ही भोगता है। व्यक्ति को चाहिये कि वह नरक-लोक, तिर्यच-लोक और मनुष्य-लोक मे जो वेदनाएँ हैं उन्हे तथा देव-लोक मे जो मृत्यु है, उन सबका स्मरण करते हुए पण्डितमरण पूर्वक मरे क्योकि एक पण्डितमरण सैकड़ो भव-परम्परा का अन्त कर देता है[9]।

समाधिमरण का हेतु क्या है ? इस विषय में कहा गया है कि न तो तृणो की शय्या समाधिमरण का कारण है और न प्रासुक भूमि ही, अपितु जिसका मन विशुद्ध होता है, दूसरे शब्दो में कहें तो जिसने चतुर्विध कषायो पर विजय प्राप्त कर ली हो, वही आत्मा सस्तारक होती है[10]।

'भगवती आराधना' ग्रन्थ का समापन यह कहकर किया गया है कि धैर्यवान भी मृत्यु को प्राप्त होता है और कायर पुरुष भी, किन्तु मरना उसी का सार्थक है जो धीरतापूर्वक मरण को प्राप्त होता है क्योंकि समाधिमरण ही उत्तम मरण है। अन्तिम गाथा मे कहा गया है कि जो सयमी साधक इस प्रत्याख्यान का सम्यक् प्रकार से पालनकर मृत्यु को प्राप्त होगे, वे मरकर या तो वैमानिक देव होगे या सिद्ध होंगे।[11]

'चन्द्रवैध्यक' प्रकीर्णक मे कहा गया है कि पण्डितमरण साधना का उत्कृष्ट रूप है। इसके लिए साधना की आवश्यकता होती है। जो साधक अपने जीवन में योग साधना का अभ्यास नहीं करते हैं वे मरणकाल में परीषहो को सहन करने मे

समर्थ नहीं हो पाते है। यही नहीं, बहिर्मुख वृत्तियो वाला ज्ञानपूर्वक आचरण न करने वाला तथा पूर्व मे साधना न किया हुआ जीव आराधना काल मे अर्थात् समाधिमरण के अवसर पर विचलित हो जाता है।[12]

इस प्रकीर्णक मे मृत्युकाल उपस्थित होने पर मिथ्यात्व का वमनकर सम्यक्त्व की प्राप्ति के लिए कामना की है तथा उन्हें धन्य कहा है जो इन्द्रिय-सुखों के अधीन न होकर मरणसमुद्घात के द्वारा मिथ्यात्व की निर्जरा कर देते हैं।[13] जो पण्डितमरण पूर्वक मरते हैं वे आराधक कहलाते हैं तथा जो अज्ञानपूर्वक मरण करते हैं वे अनाराधक कहलाते हैं। दीर्घकाल तक पाँच समिति और तीन गुप्तियो का पालन करने वाला मुनि भी यदि मृत्यु के समय विराधना करता है तो उसे धर्म का अनाराधक कहा जाता है तथा अत्यधिक मोही व्यक्ति भी यदि जीवन की सन्ध्यावेला मे सयमी और अप्रमत्त हो जाता है तो उसे आराधक कहा जाता है।[14]

मरण के भेद—'स्थानागसूत्र' मे मरण के तीन प्रकार बतलाये हैं[15]—बालमरण, बालपण्डितमरण और पण्डितमरण। इनकी सक्षिप्त विवेचना अपेक्षित है।

बालमरण—अकाल मृत्यु मे जो मरण होता है, उसे बालमरण कहते हैं। इसमे सड़क, रेल, विमान, भूकम्प, बिजली, बाढ़, आग, दुर्घटना आदि से जो मृत्यु होती है वह तथा असाध्य रोगो के कारण अज्ञान दशा मे जो मृत्यु होती है वह बालमरण कहलाती है। उपशम युक्त मिथ्यादृष्टियों का मरण बालमरण है तथा कषाय से कलुषित जीव का जघन्य मरण बालमरण कहलाता है।

बालपण्डितमरण—देशविरति एव अविरति सम्यग्दृष्टियों का मरण बालपण्डितमरण कहलाता है।

पण्डितमरण—मुनियो का भक्तपरिज्ञा आदि मरण तथा धैर्यपूर्वक होने वाला मरण पण्डितमरण कहलाता है। इस मरण के तीन भेद है—(1) भक्तपरिज्ञामरण, (2) इगिनीमरण और (3) पादोपगमन मरण।[16]

भक्तपरिज्ञामरण—इस मरण के भी दो भेद हैं—(1) सविचार मरण और (2) अविचार मरण।

समय रहते सलेखना-पूर्वक पराक्रम के साथ जो भक्तपरिज्ञामरण है वह सविचार भक्तपरिज्ञामरण है तथा अल्पकाल रहने पर बिना शरीर सलेखना विधि के जो भक्तपरिज्ञामरण किया जाता है वह अविचार भक्तपरिज्ञामरण है।[17] भक्तप्रत्याख्यान मरण के प्रारभ मे तीन प्रकार के आहार का त्याग किया जाता है तथा बाद में अपनी स्थिति के अनुसार चौथे आहार पान का भी त्याग कर दिया जाता है। इस मरण मे गुरुजनो एव केवलियो के प्रति विनय, श्रद्धा अथवा भक्तिभाव भी पाया जाता है अत इसे भक्तपरिज्ञामरण कहा गया है।

इगिनीमरण—इगिनीमरण भक्तपरिज्ञामरण से विशिष्ट स्थान रखता है। इसमे साधक दूसरो से किसी प्रकार की सेवा न करवाकर सथारा ग्रहण करने के बाद स्वय ही आकुचन प्रसारण एव उच्चार आदि की क्रियाएँ करता है। इसमे किसी भी जाति के जीवो द्वारा उपसर्ग उपस्थित किया जाय तो भी वह निर्भय होकर किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करता।[18] उन उपसर्गो से उसमे आकुलता भी नहीं होती तथा वह उन्हे दूर करन का भी प्रयास नहीं करता है। किन्नर, किपुरुष देवो की कन्याएँ, चाहे तो भी, वह उनसे विचलित नहीं होता है, न ही किसी ऋषि का आश्चर्य करता है।[19] वह बाहरी शुद्धि करके एक स्थान पर तृणों का सस्तारक बिछाता है तथा अरिहत को प्रणाम करता हुआ विशुद्ध मन से आलोचना करता हुआ चारो आहारो का त्याग करता है। द्रव्य एव भाव से सलेखना करने के बाद ही वह सस्तारक ग्रहण करता है। इस मरण से मरने वाला जीव वज्रऋषभ नाराच सहनन से युक्त होता है।[20] इस मरण से मरने वाला साधक इतना निर्भय हो जाता है कि यदि ससार के सारे पुद्गल भी दु ख रूप मे परिणत हो जायें तब भी उसे दु खी नहीं कर सकते। वह धर्मध्यान से आर्तध्यान और रौद्रध्यान में नहीं आता। स्वाध्याय एव शुभध्यान ही उसके जीवन के अग बन जाते है। मौन एव अभिग्रह धारक उस आराधक से यदि देव एव मनुष्य कुछ पूछे तो वह धर्मकथा कहता है।[21]

पादोपगमनमरण—'मरणसमाधि प्रकीर्णक' मे पादोपगमनमरण का स्वरूप बतलाते हुए कहा गया है कि—निश्चल रूप से बिना प्रतिक्रिया के जहाँ जिस प्रकार अग स्थित करके जो मरण किया जाता है वह पादोपगमनमरण है।[22] यह भी दो प्रकार का होता है—सनिहारी और अनिहारी। उपसर्ग के कारण जब मरण होता है तो सनिहारी और बगैर उपसर्ग के होने वाला मरण अनिहारी कहा जाता है। भक्तप्रत्याख्यान तथा इगिनीमरण से भी यह मरण उत्कृष्ट है। इस मरण से मरने वाला साधक पादप के सूखे ठूँठ की तरह एक स्थान पर निश्चेष्ट पड़ा रहता है।

सलेखना और सथारे मे अन्तर—

सलेखना की परिभाषा—'स्थानागवृत्ति' में आचार्य अभयदेव ने सलेखना की परिभाषा करते हुए कहा है—'जिस क्रिया के द्वारा शरीर एव कषाय को दुर्बल और कृश किया जाता है वह सलेखना है।'[23]

'प्रवचनसारोद्धार' के अनुसार—'शास्त्र मे प्रसिद्ध चरम अनशन की विधि को सलेखना कहते है'[24]

'निशीथचूर्णि' में सलेखना का अर्थ 'छोलना—कृश करना' है। शरीर को कृश करना द्रव्य सलेखना है और कषाय को कृश करना भाव सलेखना है।[25]

'सत्' और 'लेखना' इन दोनो के सयोग से सलेखना बना है। 'सत्' का अर्थ है—सम्यक् और 'लेखना' का अर्थ है—कृश करना। अर्थात सम्यक् प्रकार से कृश करना। जैन दृष्टि से काय और कषाय को कर्म-बन्ध का मूल कारण माना गया है इसलिए उसे कृश करना ही सलेखना है। सलेखना मे शरीर और कषाय को साधक इतना कृश कर लेता है कि उसके मन मे किसी भी प्रकार की कामना नहीं रह जाती है। उसके अनशन मे पूर्ण रूप से स्थैर्य आ जाता है। अनशन से शरीर क्षीण हो सकता है किन्तु आयुकर्म क्षीण न हो और वह सबल हो तो अनशन दीर्घकाल तक चलता है।

'मूलाराधना' मे सलेखना के अधिकारी का वर्णन करते हुए इसके सात मुख्य कारण वताये है—

1 सयम का परित्याग किये बिना जिस व्याधि का प्रतिकार करना सभव नहीं है, ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर—अर्थात् दुश्चिकित्सा व्याधि।
2 श्रमण जीवन की साधना करने में बाधक हो—अर्थात् वृद्धावस्था।
3 मनुष्य, देव तथा तिर्यंच सम्बन्धी कठिन उपसर्ग उपस्थित होने पर।
4 चारित्र विनाश के लिए अनुकूल उपसर्ग उपस्थित किये जाते हो तब।
5 भयकर दुष्काल मे शुद्ध भिक्षा प्राप्त होना कठिन हो तब।
6 देखने की, श्रवण की और पैर आदि से चलने की शक्ति क्षीण हो जाये तब।[26]

'आचारागसूत्र' मे सलेखना के सबध मे बतलाया गया है कि जब श्रमण को यह अनुभव हो कि उसका शरीर ग्लान हो रहा है, वह उसे धारण करने मे असमर्थ है तब वह क्रमश आहार सकोच करके शरीर को कृश करे।[27]

सथारा—'उपासकदशागसूत्र' में कहा गया है कि श्रमणोपासक धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार कर विविध तप-कार्यों द्वारा उपासक प्रतिमाओ की आराधना करते हुए शरीर को कृश करते हैं जिसे हम सथारा कहते हैं। आगम साहित्य में सथारा का अर्थ 'दर्भ का बिछौना' किया गया है। 'प्रवचनसारोद्धार'[28] मे साधक को 12 वर्ष उत्कृष्ट सलेखना करके गुफा, कन्दरा, पर्वत या किसी निर्दोष स्थान पर जाकर पादोपगमन, भक्त प्रत्याख्यान या इगिनीमरण धारण करने को कहा गया है। इसे सथारा कहते है।

सलेखना-सथारे की विधि—

सलेखना की विधि—'व्यवहार भाष्य' मे सलेखना का उत्कृष्ट काल 12 वर्ष, मध्यमकाल 1 वर्ष तथा जघन्य काल 6 महीने का बतलाया है।[29] उत्तराध्ययन वृत्ति के अनुसार प्रथम 4 वर्षो में विकृति परित्याग अथवा आयबिल, द्वितीय 4 वर्षो में विचित्र तप उपवास छट्ट भक्त और पारणे मे यथेष्ठ भोजन ग्रहण

करने का विधान है।[30] 8वे तथा 10वे वर्ष मे एकान्तर उपवास और पारणे मे आयबिल किया जाता है। 11वें वर्ष मे पहले छ माह में अष्टम, दशम, द्वादश भक्त आदि की तपस्या की जाती है जिसे विकृष्ट कहा है।[31] 11वें वर्ष मे पारणे के दिन आयबिल तप किया जाता है। प्रथम छ माह मे आयबिल मे ऊनोदरी तप करते हैं[32] और द्वितीय छ माह मे आयबिल के समय भर-पेट आहार ग्रहण करते हैं।[33] 12वें वर्ष मे कोटि सहित आयबिल अर्थात् निरन्तर आयबिल करते हैं या प्रथम दिन आयबिल और दूसरे दिन अन्य कोई तप करते हैं, पुन तीसरे दिन आयबिल करते हैं। बारहवें वर्ष के अन्त मे अर्ध-मासिक या मासिक अनशन भक्तपरिज्ञा आदि किया जाता है।[34]

'निशीथ चूर्णी' मे सलेखना के 12वें वर्ष में छोटे-छोटे आहार की मात्रा न्यून की जाती है, जिससे आहार और आयु पूर्ण हो सके। उस वर्ष अन्तिम चार महीनो मे मुख-यन्त्र विसवादी न हो अर्थात् नमस्कार महामत्र के जप करने मे असमर्थ न हो जाय, अत कुछ समय मुँह मे तेल भरकर रखा जा सकता है।

सलेखना ग्रहण करने से पहले इस बात की जानकारी आवश्यक है कि जीवन और मरण की अवधि कितनी बाकी है। यदि शरीर मे व्याधि हो गई हो और जीवन की अवधि लम्बी हो तो उसके लिए सलेखना ग्रहण करने का विधान नहीं है।

सथारे की विधि—सथारा, सलेखना क बाद आता है। अर्धमागधी आगम ग्रन्थों मे सथारा ग्रहण करने की विधि निम्न प्रकार से बतलाई है—

सर्वप्रथम एक निरवद्य शुद्ध स्थान में अपना आसन जमावें। उसके बाद वह दर्भ, घास, पयाल आदि मे से किसी का बिछोना बिछाए फिर पूर्व या उत्तर दिशा मे मुँह करके बैठे। इसके बाद वह यह प्रतिज्ञा करे कि 'हे भगवान्! अब मैं मारणान्तिक सलेखना या प्रीतिपूर्वक सेवन एव आराधना करता हूँ।' इसके बाद नमस्कार महामत्र, तीन बार वन्दना, इच्छा कारेण, तस्स उत्तरी करणेण, लोगस्स का पाठ, उसके बाद 'अहमते अपच्छिम मारणतिय सलेहणा-झूसणा आराहणाए आरोहेमि' पाठ बोलकर तीर्थंकर भगवान् की साक्षी से ध्यान करता हूँ चारो आहार का त्याग करता हूँ, 18 पापस्थानो का त्याग करता हूँ, इस मनोज्ञ, इष्ट, कान्त, प्रिय, विश्वसनीय, आदेय, अनुमत, बहुमत, भाण्डकरण्डक समान, शीत-ठण्डा, क्षुधा पिपासा आदि मिटाकर सदा जतन किया हुआ, हत्यारे चौरादि से, डास-मच्छर आदि से रक्षा किया हुआ, व्याधि, पित्त, कफ, वात, सान्निपातिक आदि से भी बचाया हुआ, विविध प्रकार के स्पर्शो से सुरक्षित श्वासोच्छ्वास की सुरक्षा प्राप्त इस शरीर पर मैने जो अब तक मोह-ममत्व किया था, उसे अब मैं अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक त्यागता हूँ, मुझे कोई भी चिन्ता नहीं होगी क्योकि अब यह शरीर धर्म-पालन करने मे समर्थ नहीं रहा है, बोझरूप हो गया, आतकित या अत्यन्त जीर्ण अशक्त हो गया।

उक्त वर्णन से यह फलित होता है कि सलेखना धीरे-धीरे शान्तभाव से मृत्यु की ओर प्रस्थान है। शरीर और मन को धीरे-धीरे कसा जाता है और विषयो से निवृत्ति का अभ्यास बढा दिया जाता है। हठात् किसी दुष्कर काम को हाथ लगाना और फिर बीच मे विचलित हो जाना बहुत खतरनाक है। अत साधक के लिए यह मनोवैज्ञानिक भूमिका है कि वह क्रमश तप और ध्यान के पथ पर बढे, मनोनिग्रह का अभ्यास बढ़ाये और मन इतना तैयार कर ले कि अन्तिम स्थिति म पहुँचते-पहुँचते वह परमहस दशा—जिसे शास्त्रो की भाषा मे 'पादोपगमन अनशन' कहते हैं—वैसी स्थिति को स्वत प्राप्त कर ले। जीवन और मृत्यु से सर्वथा असलीन होकर शुद्ध चैतन्य दशा मे रमण करने लगे। उसका शरीर भी स्वत ही इस प्रकार की नि चेष्टता ग्रहण कर ले कि न हाथ हिलाने का सकल्प हो, न शरीर खुजलाने का। यह परम शान्त और आह्लादमय स्थिति है जिसमे साधक को आत्मा के सिवाय और कुछ नहीं दिखता है। वह प्राण धारण किये रहता है किन्तु फिर भी निश्चेष्ट और निर्विकल्प और अन्त मे उस स्थिति मे देहत्याग कर वह अपनी मजिल तक पहुँच जाता है। इस प्रकार सलेखना मनुष्य को मृत्यु को जीतने की कला सिखाती है। वास्तव में जीवन-शुद्धि और मरण-शुद्धि की सलेखना द्वारा जीवन विशुद्धि करने वाले की मृत्यु, मृत्यु नहीं—समाधि

है, परम शान्ति है और सम्पूर्ण व्रत-तप-ज्ञान आदि का यही तो फल है कि साधक अन्तिम समय मे आत्मदर्शन करता हुआ समाधिपूर्वक प्राण त्यागे।[35] ◆

सदर्भ—

1 भारतीय सस्कृति में जैनधर्म का योगदान—डॉ हीरालाल जैन पृष्ठ 262।

2 आचारागसूत्र—प्रका आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर सूत्र, 1,8,4 215।

3 स्थानागसूत्र—प्रका आगम प्रकाशन समिति ब्यावर, सूत्र, 2 4 411, 414 3 4, 548, 3 4—520-22।

4 समवायागसूत्र सप्तदश स्थानक समवाय।

5 वही दशस्थानक समवाय।

6 व्याख्याप्रज्ञप्तिसूत्र देखें।

7 उत्तराध्ययनसूत्र, पचम अध्ययन गाथा 2-3।

8 वही गाथा 1 से 32।

9 महापच्चक्खाण पइण्णय, गाथा 41-50।

10 वही गाथा 96।

11 भगवती आराधना गाथा 2154 55, 56।

12 चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक, गाथा 122।

13 वही, गाथा 149-150।

14 वही, गाथा 157 158।

15 स्थानागसूत्र—प्रका आगम प्रकाशन समिति ब्यावर सूत्र 3-4 519।

16 भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक, गाथा 9।

17 वही गाथा 10-11।

18 आराधनापताका गाथा 909।

19 वही, गाथा 910।

20 वही गाथा 905 907।

21 वही, गाथा 911 919।

22 मरणसमाधि प्रकीर्णक, गाथा, 527।

23 सलिख्यतेऽनया शरीर कषायादि इति सलेखना-स्थानाग उ 2 वृत्ति।

24 आगमोक्तविधिना शरीराद्यपकर्षणम्—प्रवचनसारोद्धार 135।

25 सलेखन—द्रव्यत शरीरस्थ भावत कषायाण कृशताऽअपपादन।

(क) सलेखसलेखनेति।—वृहद्वृत्ति पत्र।

(ख) मूल 10 3/208—मूला दर्पण, पृ 425।

26 मूलाराधना, 2/71-74।

27 आचाराग, 1-8-67।

28 प्रवचनसारोद्धार 134।

29 व्यवहारभाष्य, 203।

30 वहद्वृत्ति पद 706।

31 प्रवचनसारोद्धार वृत्तिपत्र 254।

32 वही वृत्तिपत्र 254।

33 वही वृत्तिपत्र 254।

34 वही वृत्तिपत्र 706।

35 पूज्य प्रवर्तक श्री अम्बालालजी म सा अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 414।

प्रो सागरमल जैन

जैन आगमों में समाधिमरण की अवधारणा

अर्धमागधी आगम साहित्य मे समाधिमरण की अवधारणा का अति विस्तृत विवेचन उपलब्ध है। पौर्वात्य एव पाश्चात्य विद्वानों न अर्धमागधी आगम साहित्य के ग्रन्थो का जो कालक्रम निर्धारित किया है, उसके आधार पर समाधिमरण से सबधित आगमों को हम एक विशेष क्रम में रख सकते हैं। अति प्राचीन स्तर के आगम ग्रन्थो मे आचारागसूत्र एव उत्तराध्ययनसूत्र ये दो ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें समाधिमरण के सम्बन्ध मे विस्तृत विवरण मिलता है। आचारागसूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध का 'विमोक्ष' नामक अष्टम अध्ययन समाधिमरण के तीन प्रकारो—भक्त प्रत्याख्यान, इगितिमरण एव प्रायोपगमन की विस्तृत चर्चा करता है। इसी प्रकार उत्तराध्ययन सूत्र का पचम 'अकाम मरणीय' अध्ययन भी अकाम-मरण और सकाम-मरण (समाधिमरण) की चर्चा से सम्बन्धित है। इसके साथ ही किंचित् परवर्ती माने गये उत्तराध्ययन के 36वे अध्ययन मे भी समाधिमरण की विस्तृत चर्चा है। इसमें समयावधि की दृष्टि से उत्कृष्ट, मध्यम एव जघन्य ऐसे तीन प्रकार के समाधिमरणो का उल्लेख है। प्राचीन स्तर के अर्धमागधी आगमों में दशवैकालिक का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके आठवे 'आचार-प्रणिधी' नामक अध्ययन में समाधिमरण के पूर्व की साधना का उल्लेख हुआ है। इसमें कषायो को अल्प करने या उन पर विजय प्राप्त करने का निर्देश है।

इसके अतिरिक्त कालक्रम की दृष्टि से किंचित् परवर्ती माने गये अर्धमागधी आगमो में तृतीय अग—आगम स्थानागसूत्र के द्वितीय अध्ययन के चतुर्थ उद्देशक मे मरण के विविध प्रकारो की चर्चा के प्रसग में समाधिमरण के विविध रूपा के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। चतुर्थ अग—आगम समवायाग मे मरण के सतरह भेदों की चर्चा है। ज्ञातव्य है कि नाम एव क्रम के कुछ अन्तरा को छोड़कर मरण के इन सतरह भेदों की चर्चा भगवती आराधना में भी मिलती है। इसमे बालमरण, बाल-पण्डितमरण, पण्डितमरण, भक्त-प्रत्याख्यान, इगितिमरण, प्रायोपगमन आदि की चर्चा है। इसी प्रकार पाँचवें
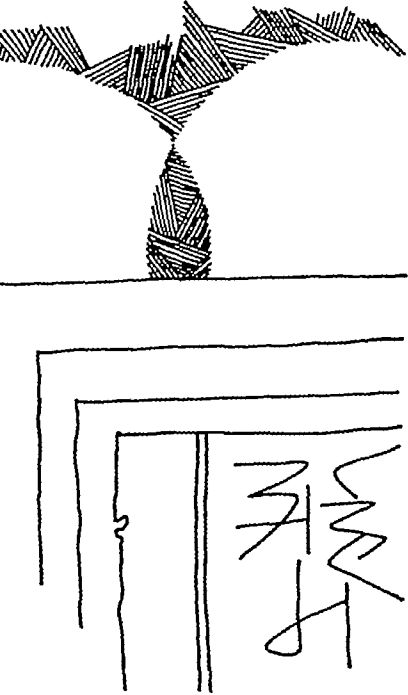
अग—आगम भगवतीसूत्र मे अम्बड सन्यासी एव उसके शिष्यो के द्वारा गगा की बालू पर अदत्त जल का सेवन नहीं करते हुए समाधिमरण करने का उल्लेख पाया जाता है। सातवे अग—उपासकदशासूत्र मे भगवान् महावीर के 10 गृहस्थ उपासको के द्वारा लिये गये समाधिमरण और उसमें उपस्थित विघ्नो की विस्तृत चर्चा मिलती है। आठवे अग—आगम अन्तकृतदशासूत्र एव नवें अग—आगम अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र मे भी अनेक श्रमणो एव श्रमणियो के द्वारा लिये गये समाधिमरण का उल्लेख मिलता है। अन्तकृतदशासूत्र की विशेषता यह है कि उसमें समाधिमरण लेने वालो की समाधिमरण के पूर्व की शारीरिक स्थिति कैसी हो गई थी, इसका सुन्दर विवरण उपलब्ध है।

उपाग-साहित्य में मात्र औपपातिकसूत्र और रायप्रश्नीयसूत्र मे समाधिमरण ग्रहण करने वाले कुछ साधको का उल्लेख है, किन्तु इनमे समाधिमरण की अवधारणा के सम्बन्ध में कोई विवेचन उपलब्ध नहीं है। इस सम्बन्ध मे जो स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध होते है, उन्हे अर्धमागधी आगम साहित्य मे प्रकीर्णक वर्ग के अन्तर्गत रखा गया है। प्रकीर्णको में आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, भक्तपरिज्ञा, सस्तारक, आराधनापताका, मरणविभक्ति के नाम से प्रकीर्णक उपलब्ध हैं, उसमे मरणविभक्ति सहित मरणविशुद्धि, मरणसमाधि, सलेखनासूत्र, भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, आराधनापताका इन आठ ग्रन्थो को समाहित कर लिया गया है। यद्यपि भक्तपरिज्ञा, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, सलेखनासूत्र, सस्तारक, आराधनापताका आदि ग्रन्थ स्वतन्त्र रूप से भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त तन्दुल-वैचारिक नामक प्रकीर्णक के अन्त मे भी समाधिमरण का विस्तृत विवरण पाया जाता है। यद्यपि श्वेताम्बर परम्परा मे समाधिमरण का विस्तृत विवरण एव उपदेश देने वाले सस्कृत एव प्राकृत के परवर्ती आचार्यो के अनेक ग्रन्थ है, किन्तु प्रस्तुत विवेचन मे हम अपने को मात्र अर्धमागधी आगम साहित्य तक ही सीमित रखेगे। शौरसेनी आगम साहित्य मे समाधिमरण का विवरण प्रस्तुत करने वाले आगमतुल्य जो ग्रन्थ है, उनमे मूलाचार एव भगवती आराधना नामक यापनीय परम्परा के दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। इसमे मूलाचार समाधिमरण का विवरण प्रस्तुत करने के साथ ही मुनि आचार के अन्य पक्षो पर भी प्रकाश डालता है। यद्यपि इसके सक्षिप्त प्रत्याख्यान एव बृहत प्रत्याख्यान नामक अध्यायो मे आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णको की शताधिक गाथाऐं यथावत अपने शौरसेनी रूपान्तर मे मिलती हैं। इस प्रकार इसमें आवश्यकनिर्युक्ति की भी शताधिक गाथाएँ आवश्यक निर्युक्ति के नाम से ही मिलती हैं।

> पौर्वात्य एव पाश्चात्य विद्वानों ने अर्धमागधी आगम साहित्य के ग्रन्थों का जो कालक्रम निर्धारित किया है, उसके आधार पर समाधिमरण से संबधित आगमों को एक विशेष क्रम में रखा जा सकता है। यद्यपि इनमें समाधिमरण की विस्तृत एव व्यापक विवेचना उपलब्ध होती है तथापि इसके स्वरूप एव प्रकृति को देखते हुए इस पर विशेष शोध की आवश्यकता अनुभव की जाती है।

जहाँ तक भगवती आराधना का प्रश्न है, उसमें भी अर्धमागधी आगम साहित्य की, विशेष रूप से समाधिमरण से सबधित प्रकीर्णको की शताधिक गाथाऐं उपलब्ध होती हैं। ज्ञातव्य है कि भगवती आराधना का मूल प्रतिपाद्य समाधिमरण है और यह ग्रन्थ अनेक दृष्टियो से मरणसमाधि, अपरनाम मरणविभक्ति और आराधनापताका से तुलनीय है। कुछ विद्वानो की मान्यता है कि आराधनापताका नामक ग्रन्थ श्वेताम्वर आचार्य वीरभद्र के द्वारा भगवती-आराधना का अनुकरण करके लिखा गया है। यद्यपि यह अभी शोध का विषय है। इसमें भक्तपरिज्ञा, पिण्डनिर्युक्ति और आवश्यकनिर्युक्ति की भी सैकड़ा गाथाएँ उद्धृत की गयी हैं। इसमें कुल 1110 गाथाऐं है।

इस प्रकार मरणविभक्ति और सस्तारक में समाधिमरण ग्रहण करने वालो के जो विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होते हैं, वे ही उल्लेख भगवती आराधना में भी वहुत कुछ समान रूप से मिलते है। मरणविभक्ति आदि प्रकीर्णको का भगवती आराधना से तुलनात्मक

अध्ययन बहुत अपेक्षित है, क्योकि यह ग्रन्थ यापनीय परम्परा मे निर्मित हुआ है और यापनीय अर्धमागधी आगमो को मान्य करते थे। अत दोनो परम्पराओ में काफी कुछ आदान-प्रदान हुआ है। इसी प्रकार यापनीय परम्परा के ग्रन्थ बृहद्कथाकोश में भी मरणविभक्ति, भक्तपरिज्ञा, सस्तारक आदि की अनेक कथाएँ सकलित है। मेरी दृष्टि मे बृहद्कथाकोश की कथाओ का मूल स्रोत चाहे प्रकीर्णक ग्रन्थ रहे हो, किन्तु ग्रन्थकार ने भगवती-आराधना की कथाओ का अनुकरण करके ही यह ग्रन्थ लिखा है। आज आवश्यकता है दोनो परम्पराओ के समाधिमरण सबधी इन ग्रन्थो एव उनकी कथाओ का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करने की।

समाधिमरण की यह अवधारणा अति प्राचीन है। भारतीय सस्कृति की श्रमण और ब्राह्मण—इन दोनों परम्पराओ में इसके उल्लेख मिलते है। वस्तुत यहाँ हमारा विवेच्य मात्र अर्धमागधी आगम है। इनमें आचारागसूत्र प्राचीन एव प्रथम अग-आगम है। आचारागसूत्र के अनुसार समत्व या वीतरागता की साधना ही धर्म का मूलभूत प्रयोजन है। आचारागकार की दृष्टि मे समत्व या वीतरागता की उपलब्धि में बाधक तत्त्व ममत्व है। इस ममत्व का घनीभूत केन्द्र व्यक्ति का अपना शरीर होता है। अत आचारागकार ने निर्ममत्व की साधना हेतु देह के प्रति निर्ममत्व की साधना को आवश्यक माना है। समाधिमरण देह के प्रति निर्ममत्व की साधना का ही प्रयास है। यह न तो आत्महत्या है और न जीवन से भागने का प्रयत्न। अपितु जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही अपरिहार्य बनी मृत्यु का स्वागत है वह देह के पोषण के प्रयत्नों का त्याग करके देहातीत होकर जीने की एक कला है।

आचारागसूत्र और समाधिमरण आचारागसूत्र मे जिन परिस्थितियो मे समाधिमरण की अनुशसा की गयी है, वे विशेष रूप से विचारणीय हैं। सर्वप्रथम तो आचाराग मे समाधिमरण का उल्लेख उसके प्रथम श्रुतस्कन्ध के विमोक्ष नामक अष्टम अध्ययन मे हुआ है। यह अध्ययन विशेष रूप से शरीर, आहार, वस्त्र आदि के प्रति निर्ममत्व एव उनके विसर्जन की चर्चा करता है। इसमे वस्त्र एव आहार के विसर्जन की प्रक्रिया को समझाते हुए ही अन्त मे देह-विसर्जन की साधना का उल्लेख हुआ है। आचारागसूत्र, समाधिमरण किन स्थितियो मे लिया जा सकता है, इसकी सक्षिप्त किन्तु महत्त्वपूर्ण विवेचना प्रस्तुत करता है। इसमे समाधिमरण स्वीकार करने की तीन स्थितियो का उल्लेख है—

1 जब शरीर इतना अशक्त व ग्लान हो गया हो कि व्यक्ति सयम के नियमों का पालन करने मे असमर्थ हो और मुनि के आचार नियमो को भग करके ही जीवन बचाना सम्भव हो, तो ऐसी स्थिति मे यह कहा गया है कि आचार नियमो के उल्लघन की अपेक्षा देह का विसर्जन ही नैतिक है। आचार-मर्यादा का उल्लघन करके जीवन का रक्षण वरेण्य नहीं है। उसमें कहा गया है कि जब साधक यह जाने कि वह निर्बल और मरणान्तिक रोग से आक्रान्त हो गया है, नियम या मर्यादापूर्वक आहार आदि प्राप्त करने मे असमर्थ है, तो वह आहारादि का परित्याग कर शरीर के पोषण के प्रयत्नो को बन्द कर दे। इससे देह के प्रति निर्ममत्व की साधना पूर्ण होती है।

2 जब व्यक्ति को लगे कि अपनी वृद्धावस्था अथवा असाध्य रोग के कारण उसका जीवन पूर्णत दूसरो पर निर्भर हो गया है, वह सघ के लिए भार स्वरूप बन गया है तथा अपनी साधना करने मे भी असमर्थ हो गया है तो, ऐसी स्थिति में वह आहारादि का त्याग करके देह के प्रति निर्ममत्व की साधना करते हुए देह का विसर्जन कर सकता है।

3 इसी प्रकार साधक को जब यह लगे कि सदाचार या ब्रह्मचर्य का खण्डन किए बिना जीवन जीना सम्भव नहीं है, अर्थात् चरित्रनाश और जीवित रहने में एक ही विकल्प सम्भव है तो वह तत्काल ही श्वास निरोध आदि करके अपना देहपात कर सकता है। ज्ञातव्य है कि यहाँ मूल-पाठ में शीत-स्पर्श है, जिसका टीकाकारो ने ब्रह्मचर्य के भग का अवसर ऐसा अर्थ किया है, किन्तु मूल-पाठ और पूर्वप्रसग को देखते हुए इसका यह अर्थ भी हो सकता है कि जिन मुनि ने अचेलता को स्वीकार कर लिया है वह शीत सहन न कर पाने की स्थिति मे चाहे देह त्याग कर दे, किन्तु नियम भग न करे।

इससे यह फलित होता है कि आचारागकार न तो जीवन को अस्वीकार टी करता है और न वह जीवन से भागने की बात कहता है। वह तो मात्र यह प्रतिपादित करता है कि जब मृत्यु जीवन के द्वार पर दस्तक दे रही हो और आचार-नियम अर्थात् ली गई प्रतिज्ञा भग किए बिना जीवन जीना सम्भव नहीं हो, तो ऐसी स्थिति मे मृत्यु का वरण करना ही उचित है। इसी प्रकार दूसरों पर भार बनकर जीना अथवा जब शरीर व्यक्तिगत साधना अथवा समाज सेवा दोनो के लिए सार्थक नहीं रह गया हो, ऐसी स्थिति में भी येनकेन-प्रकारेण शरीर बचाने के प्रयत्न की अपेक्षा मृत्यु का वरण ही उचित है। जब साधक को यह लगे कि सदाचार और मुनि आचार के नियमो का भग करके आहार एव औषधि के द्वारा तथा शीतनिवारण के लिए वस्त्र अथवा अग्नि आदि के उपयोग द्वारा ही शरीर को बचाया जा सकता है अथवा ब्रह्मचर्य को भग करके ही जीवित रहा जा सकता है तो उसके लिए मृत्यु का वरण ही उचित है।

आचारागकार ने नैतिक मूल्यों के सरक्षण और जीवन के सरक्षण मे उपस्थित विकल्प की स्थिति मे मृत्यु के वरण को ही वरेण्य माना है। ऐसी स्थिति में वह स्पष्ट निर्देश देता है कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु का वरण कर ले। यह उसके लिए काल-मृत्यु ही है, क्योकि इसके द्वारा वह ससार का अन्त करने वाला होता है। वह स्पष्ट रूप से कहता है कि यह मरण विमोह आयतन, हितकर, सुखकर, कालोचित, नि श्रेयस और भविष्य के लिए कल्याणकारी होता है। आचारागसूत्र में समाधिमरण के तीन रूपो का उल्लेख हुआ है—भक्तप्रत्याख्यान, इगितिमरण, प्रायोपगमन। उसमें समाधिमरण के लिए दो तथ्य आवश्यक माने गए हैं—पहला कषायों का कृशीकरण और दूसरा शरीर का कृशीकरण। इसमे भी मुख्य उद्देश्य तो कषायों का कृशीकरण है। भक्तपरिज्ञा म प्रथम तो मुनि के लिए कल्प का विचार किया गया है और उसके अन्त मे यह बताया गया है कि अकल्प का सेवन करने की अपेक्षा शरीर का विसर्जन कर देना ही उचित है। उसमे कहा गया है कि जब भिक्षु को यह अनुभव हा कि मेरा शरीर अव इतना दुर्बल अथवा रोग से आक्रान्त हो गया है कि गृहस्थो के घर भिक्षा हेतु परिभ्रमण करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, साथ ही मुझे गृहस्थ के द्वारा मेरे सम्मुख लाया गया आहार आदि ग्रहण करना योग्य नहीं है। ऐसी स्थिति में एकाकी साधना करने वाले जिनकल्पी मुनि के लिए आहार का त्याग करके सथारा ग्रहण करने का विधान है। यद्यपि आचारागसूत्र के अनुसार सघस्थ मुनि की बीमारी अथवा वृद्धावस्थाजन्य शारीरिक दुर्बलता की स्थिति में आहारादि से एक-दूसरे का उपकार अर्थात् सेवा कर सकते हैं, किन्तु इस सम्बन्ध में भी चार विकल्पों का उल्लेख हुआ है

1 कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं (साधर्मिक भिक्षुओं के लिए) आहार आदि लाऊँगा और (उनके द्वारा) लाया हुआ स्वीकार भी करूँगा।

अथवा

2 कोई भिक्षु प्रतिज्ञा करता है कि मै (दूसरों के लिए) आहार आदि नहीं लाऊँगा, किन्तु उनके द्वारा लाया स्वीकार करूँगा।

अथवा -

3 कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मैं (दूसरों के लिए) आहार आदि लाऊँगा, किन्तु उनके द्वारा लाया स्वीकार नहीं करूँगा।

अथवा

4 कोई भिक्षु यह प्रतिज्ञा करता है कि मे न तो (दूसरो के लिए) आहार आदि लाऊँगा और न (उनके द्वारा) लाया हुआ स्वीकार करूँगा।

उपर्युक्त चार विकल्पों मे से जो प्रथम दो विकल्प स्वीकार करता है, वह आहारादि के लिए सघस्थ मुनिया की सेवा ले सकता है। किन्तु जो अन्तिम दो विकल्प स्वीकार करता है, उसके लिए आहारादि के लिये दूसरो की सेवा लेने मे प्रतिज्ञा भग का दोष आता है। ऐसी स्थिति मे आचारागकार का मन्तव्य यही है कि प्रतिज्ञा भग नहीं करनी चाहिये, भले ही भक्तप्रत्याख्यान कर देह त्याग करना पडे। आचारागकार के अनुसार ऐसी स्थिति मे जब भिक्षु को यह सकल्प उत्पन्न हो कि मैं इस समय सयम-साधना क लिए इस शरीर को वहन करने मे ग्लान

(असमर्थ) हो रहा हूँ, तब वह क्रमश आहार का सवर्त्तन (सक्षेप) करे। आहार का सक्षेप कर कषायों (क्रोध, मान, माया और लोभ) को कृश करें। कषायो को कृश कर समाधिपूर्ण भाव वाला शरीर और कषाय दोनो ओर से कृश बना हुआ वह भिक्षु फल का वस्थित हो समाधिमरण के लिए उत्थित (प्रयत्नशील) होकर शरीर का उत्सर्ग करे।

सथारा ग्रहण करने का निश्चय कर लेने के पश्चात् वह किस प्रकार समाधिमरण ग्रहण करे इसका उल्लेख करते हुए आचारागकार कहता है कि ऐसे भिक्षु ग्राम, नगर, कर्वट, आश्रम आदि में जाकर घास की याचना करे और उसे प्राप्त कर गाव के बाहर एकात मे जाकर जीव-जन्तु, बीज, हरित आदि से रहित स्थान को देखकर घास का बिस्तर तैयार करे और उस पर स्थित होकर इत्वरिक अनशन अथवा प्रायोपगमन स्वीकार करे।

ज्ञातव्य है कि आचारागकार भक्तप्रत्याख्यान, इगितिमरण और प्रायोपगमन ऐसे तीन प्रकार के समाधिमरण का उल्लेख करता है। भक्तप्रत्याख्यान मे मात्र आहारादि का त्याग किया जाता है, किन्तु शारीरिक हलन-चलन और गमनागमन की कोई मर्यादा निश्चित नहीं की जाती है। इगितिमरण में आहार त्याग के साथ ही साथ शारीरिक हलन-चलन और गमनागमन का एक क्षेत्र निश्चित कर लिया जाता है और उसके बाहर गमनागमन का त्याग कर दिया जाता है। प्रायोपगमन या पादोपगमन में आहार आदि के त्याग के साथ-साथ शारीरिक क्रियाओ का निरोध करते हुए मृत्यु-पर्यन्त निश्चल रूप से लकड़ी के तख्ते के समान स्थिर पड़े रहना पड़ता है इसलिए आचारागकार ने प्रायोपगमन सथारे के प्रत्याख्यान मे स्पष्ट रूप से यह लिखा है कि काय, योग एव ईर्या का प्रत्याख्यान करें। वस्तुत यह तीनो सथारे की क्रमिक अवस्थाएँ हैं।

आचारागसूत्र मे समाधिमरण का विवरण क्रम से निर्ममत्व की स्थिति को प्राप्त धैर्यवान, आत्मनिग्रही और गतिमान साधक इस अद्वितीय समाधिमरण की साधना हेतु तत्पर हो। वह धर्म के पारगामी ज्ञानपूर्वक अनुक्रम से दोनों ही प्रकार के आरम्भ का (हिसा का) परित्याग कर दे। वह कषायो को कृश करते हुए आहार की मात्रा को भी अल्प करे और परिषहों को सहन करे। इस प्रकार करते हुए जब अति ग्लान हो जाय तो आहार का भी त्याग कर दे। ऐसी स्थिति में न तो जीवन की आकाक्षा रखे और न मरण की अपितु जीवन एव मरण दोनों में ही आसक्त न हो। वह निर्जरापेक्षी मध्यस्थ समाधि-भाव का अनुपालन करे तथा राग-द्वेष आदि आन्तरिक परिग्रह और शरीर आदि बाह्य परिग्रह का त्याग कर शुद्ध अध्यात्म का अन्वेषण करे।

यदि उसे साधनाकाल मे किसी भी रूप में आयुष्य के विनाश का कोई कारण जान पड़े, तो वह शीघ्र ही समाधिमरण का प्रयत्न करे। ग्राम अथवा अरण्य मे जहाँ हरित एव प्राणियों आदि का अभाव (अल्पता) हो, उस स्थण्डिल भूमि पर तृण का बिछौना तैयार करे और वहाँ निराहार होकर शान्त भाव से लेट जाये। मनुष्य कृत अथवा अन्य किसी प्रकार के परिषह से आक्रान्त होने पर भी मर्यादा का उल्लघन न करे तथा परिषहों को समभावपूर्वक सहन करे। आकाश में विचरण करने वाले पक्षी एव रेंगने वाले प्राणी यदि उसके शरीर का मास नोचे, रक्त पीये तो भी न उन्हें मारे और न उनका निवारण करे तथा न उस स्थान से उठकर अन्यत्र जाये, अपितु यह विचार करे कि ये प्राणी मेरे शरीर का ही नाश कर रहे हैं, मेरे ज्ञानादि गुणो का नहीं। वह आस्रवो से रहित एव आत्मतुष्ट हो उस पीड़ा को समभाव से सहन करे। ग्रन्थियों अर्थात् अन्तर-बाह्य परिग्रह से रहित मृत्यु के अवसर पर पारगत भिक्षु के इस समाधिमरण को सयमी जीवन के लिए अधिक श्रेष्ठ माना गया है।

भक्तप्रत्याख्यान के अतिरिक्त समाधिमरण का एक रूप इगितिमरण बताया है। इसमे साधक दूसरों से सेवा लेने का त्रिविध रूप से परित्याग कर देता है, ऐसा भिक्षु हरियाली पर नहीं सोए अपितु जीवो से रहित स्थण्डिल भूमि पर ही सोए। वह अनाहार भिक्षु देह आदि के प्रति ममत्व का विसर्जन करके परिषहो से आक्रान्त होने पर उन्हे समभाव से सहन करे। इन्द्रियो के ग्लान हो जाने पर वह मुनि समितिपूर्वक अपने हाथ-पैर आदि का सकोच-विस्तार करे, क्योकि जो

अचल एव समभाव से युक्त हाता है, वह निन्दित नहीं होता। वह जब लेटे-लेटे या बैठे-वंठे थक जाय तो शरीर के सधारण के लिए थोड़ा गमनागमन करे या हाथ-पैरो को हिलाए, किन्तु सम्भव हो तो अचेतनवत् निश्चेष्ट हो जाये। इस अद्वितीय मरण पर आसीन व्यक्ति उन काष्ठ-स्तम्भो या फलक आदि का सहारा न ले, जो दीमक आदि से युक्त हो अथवा वर्जित हो। जो साधक इगितिमरण से भी उच्चतर प्रायोपगमन या पादोपगमन सथारे को ग्रहण करता है, वह सभी अगो का निरोध करके अपने स्थान से चलित नहीं होता है—यह प्रायोपगमन, भक्त प्रत्याख्यान और इगितिमरण की अपेक्षा उत्तम स्थान है। ऐसा भिक्षु जीव-जन्तु से रहित भूमि को देखकर वहाँ निश्चेष्ट होकर रहे और वहाँ अपने शरीर को स्थापित कर यह विचार करे कि जब शरीर ही मेरा नहीं है तो फिर मुझे परिषह या पीड़ा कैसी ? वह ससार के सभी भोगों को नश्वर जानकर, उनमें आसक्त न हो। देवो द्वारा निमन्त्रित होने पर वह देव माया पर श्रद्धा न करे। सभी भोगों में अमूर्च्छित होकर मृत्यु के अवसर का पारगामी वह तितिक्षा को ही परम हितकर जानकर निर्ममत्वभाव को अन्यतम साध्य माने। इस प्रकार आचारागसूत्र मे समाधिमरण के प्रकार, उसकी प्रक्रिया तथा उसे किन स्थितियो मे ग्रहण किया जा सकता है, इसकी विस्तृत चर्चा है।

उत्तराध्ययनसूत्र और समाधिमरण आचारागसूत्र के पश्चात् प्राचीन स्तर के अर्धमागधी आगम उत्तराध्ययन मे भी समाधिमरण का विवरण उसके 5वे एव 36वे अध्याय मे उपलब्ध होता है। उसके पाँचवें अध्याय मे सर्वप्रथम मृत्यु के दो रूपों की चर्चा है — 1 अकाम-मरण और 2 सकाम-मरण। उसमे यह बताया गया है कि अकाम-मरण बार-बार होता है जबकि सकाम-मरण एक ही बार होता है। ज्ञातव्य है कि यहाँ अकाम-मरण का तात्पर्य कामना से रहित मरण न होकर आत्म पुरुषार्थ से रहित निरुद्देश्य या निष्प्रयोजनपूर्वक मरण से है। इसी प्रकार सकाम-मरण का तात्पर्य पुरुषार्थ या साधना से युक्त सोद्देश्यमरण या मुक्ति के प्रयोजनपूर्वक मरण से है। उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार अकाम-मरण करने वाला व्यक्ति ससार मे आसक्त होकर अनाचार का सेवन करता है और काम-भोगों के पीछे भागता है, ऐसा व्यक्ति मृत्यु के समय भय से सत्रस्त होता है और हारने वाले धूर्त जुआरी की तरह शोक करता अकाम-मरण को अर्थात् निष्प्रयोजन मरण को प्राप्त होता है जबकि सकाम-मरण पण्डितों को प्राप्त होता है। सयत जितेन्द्रिय पुण्यात्माओं को ही अति प्रसन्न अर्थात् निराकुल एव आघातरहित यह मरण प्राप्त होता है। ऐसा मरण न तो सभी भिक्षुओं को मिलता है, न सभी गृहस्थों को। जो भिक्षु हिसा आदि से निवृत्त होकर सयम का अभ्यास करते हैं, उन्हे ही ऐसा सकाम-मरण प्राप्त होता है।

उत्तराध्ययनसूत्र यह स्पष्ट निर्देश देता है कि मेधावी साधक बालमरण व पण्डितमरण की तुलना करके सकाम-मरण को स्वीकार कर मरण काल मे क्षमा और दया धर्म से युक्त हो, तथाभूत आत्मभाव मे मरण करें। जब मरण काल उपस्थित हो तो जिस श्रद्धा से प्रव्रज्या स्वीकार की थी, उसी श्रद्धा व शान्त भाव से शरीर के भेद अर्थात् देहपात की प्रतिज्ञा करे। मृत्यु का समय आने पर तीन प्रकार के एक से एक श्रेष्ठ समाधिमरणो से शरीर का परित्याग करे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तराध्ययनसूत्र के पचम अध्याय मे भी उन्हीं तीनों प्रकार के समाधिमरणों का उल्लेख है जिनकी चर्चा हम आचारागसूत्र के सबध में कर चुके हैं। फिर भी ज्ञातव्य है कि उत्तराध्ययनसूत्र का यह विवरण समाधिमरण के हेतु प्रेरणा प्रदान करने की ही दृष्टि से है। दूसरे शब्दो में यह मात्र उपदेशात्मक विवरण है। इसमे किन परिस्थितियो में समाधिमरण ग्रहण किया जाय, इसकी चर्चा नहीं है। मात्र यत्र-तत्र समाधिमरण के कुछ सकेत ही हैं। उत्तराध्ययनसूत्र मे समाधिमरण या सलेखना के काल आदि के सम्बन्ध म और उसकी प्रक्रिया के सम्बन्ध में जो उल्लेख है वह उसके 36वें अध्याय मे इस प्रकार से वर्णित हैं—

अनेक वर्षो तक श्रामण्य का पालन करके मुनि इस अनुक्रम से आत्मा की सलेखना के विकारों को क्षीण करे। उत्कृष्ट सलेखना बारह वर्ष की होती है, मध्यम एक वर्ष की और जघन्य छह मास की होती है। प्रथम चार वर्षो में दुग्ध आदि विकृतियो का निर्यूहण—त्याग करे, दूसरे चार वर्षो म विविध प्रकार क तप

करे, फिर दो वर्षो तक एकान्तर तप (एक दिन उपवास और फिर एक दिन भोजन) करे। भोजन के दिन आचाम्ल करे। उसके बाद ग्यारहवें वर्ष में पहले छह महीनों तक कोई भी अतिविकृष्ट (तेला, चौला आदि) तप न करे। उसके बाद छह महीने तक विकृष्ट तप करे। इस पूरे वर्ष मे परिमित (पारणों के दिन) आचाम्ल करे। बारहवे वर्ष मे एक वर्ष तक दृष्टि सहित अर्थात् निरन्तर, आचाम्ल करके फिर मुनि पक्ष या एक मास का आहार से तप अर्थात् अनशन करे। कादर्पी, अभियोगी, किल्बिषिकी, मोही और आसुरी भावनाएँ दुर्गति देने वाली हैं। ये मृत्यु के समय मे सयम की विराधना करती हैं। अत जो हिसक है, उसे बोधि बहुत दुर्लभ है। जो सम्यग्दर्शन मे अनुरक्त है, निदान से रहित है, शुक्ल, लेश्या म अवगाढ़-प्रविष्ट है, उसे बोधि सुलभ है। जो जिनवचन मे अनुरक्त है, जिनवचनों का भावपूर्वक आचरण करता है, वह निर्मल और रागादि से असक्लिष्ट परीतससारी (परिमित ससार वाला) होता है।

अन्य अग-आगम और समाधिमरण आचारागसूत्र व उत्तराध्ययनसूत्र के पश्चात् अर्धमागधी मे स्थानागसूत्र और समवायागसूत्र मे समाधिमरण से सम्बन्धित मात्र कुछ सकेत हैं। स्थानागसूत्र (3/4) में दो-दो के वर्गो मे विभाजित करत हुए श्रमण भगवान् महावीर द्वारा अनुमोदित मरणो का उल्लेख है। महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण कभी भी वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अनुमोदित नहीं किये हैं किन्तु कारण-विशेष होने पर वैहायस (वैरवानस) और गृद्धपृष्ट ये दो मरण अनुमोदित किये हैं। श्रमण महावीर ने श्रमण-निर्ग्रन्थों के लिए दो प्रकार के मरण सदा वर्णित, कीर्तित, उक्त, प्रशसित और अनुमोदित किये है—प्रायोपगमनमरण और भक्त प्रत्याख्यानमरण। प्रायोपगमनमरण दो प्रकार का कहा गया है—निर्हारिम और अनिर्हारिम। प्रायोपगमनमरण नियमत सप्रतिकर्म होता है।

समवायागसूत्र (समवाय 27) में मरण के निम्न सतरह प्रकारों का उल्लेख हुआ है —

1 आवीचिमरण, 2 अवधिमरण, 3 आत्यन्तिकमरण

4 वलन्मरण, 5 वशार्तमरण, 6 अन्त शल्यमरण

7 तद्भवमरण, 8 बालमरण 9 पण्डितमरण

10 बालपण्डितमरण 11 छद्मस्थमरण 12 केवलिमरण

13 वैखानसमरण, 14 गृद्धपृष्टमरण, 15 भक्तप्रत्याख्यानमरण

16 इगितिमरण एव 17 पादोपगमनमरण।

इनमें स बालपण्डितमरण, पण्डितमरण, छद्मस्थमरण, केवलिमरण, भक्तप्रत्याख्यानमरण, इगितिमरण व प्रायोपगमनमरण का सम्बन्ध समाधिमरण से है। किन्हीं स्थितियों मे वैखानसमरण, गृद्धपृष्टमरण को जैन परम्परा मे भी उचित माना गया है किन्तु ये दोनो अपवादिक स्थिति मे ही उचित माने गये हैं, जैसे जब ब्रह्मचर्य के पालन और जीवन के सरक्षण में एक ही विकल्प हो, तो ऐसी स्थिति में वैखानसमरण द्वारा शरीर त्याग को उचित माना गया है। ज्ञातव्य है कि भगवती आराधना मे भी समवायाग के समान ही मरण के उपर्युक्त सतरह प्रकारो का उल्लेख है। यद्यपि कहीं-कहीं उनके नाम एव क्रम में अन्तर दिखायी देता है। उदाहरणार्थ समवायाग में छद्मस्थमरण का उल्लेख है जबकि भगवती आराधना में इसका उल्लेख नहीं है। इसके स्थान पर उसमे आसन्नमरण का उल्लेख है। समवायागसूत्र के पश्चात् ज्ञाताधर्मकथासूत्र, उपासकदशासूत्र, अन्तकृतदशासूत्र, अनुत्तरौपपातिकदशासूत्र तथा विपाकदशासूत्र, आदि अग आगमो मे जीवन के अन्तिम काल में सलेखना द्वारा शरीर त्यागने वाले साधको की कथाएँ है। इसमें भगवतीसूत्र मे अम्बड़ सन्यासी और उसके 500 शिष्यो के द्वारा अदत्त जल का सेवन नहीं करते हुए गगा की बालू पर समाधिमरण लेने का उल्लेख है। उपासकदशासूत्र में भगवान् महावीर के आनन्द, कामदेव, सकडालपुत्र, चुलिनीपिता आदि दस गृहस्थ उपासको द्वारा समाधिमरण ग्रहण करने और उनमे विघ्नो के उपस्थित होने तथा आनन्द को इस अवस्था में विस्तृत अवधिज्ञान उत्पन्न होने, गौतम के द्वारा आनन्द से क्षमा याचना करने आदि के उल्लेख हैं। इसी प्रकार अन्तकृत्दशासूत्र में श्रमणो और आर्यिकाओ द्वारा समाधिमरण

स्वीकार करने और उस दशा मे कैवल्य एव मोक्ष प्राप्त करने के निर्देश हैं। किन्तु इन सवकी चर्चा म जाना आवश्यक नहीं है। इतना अवश्य ज्ञातव्य है कि इनमें से कुछ कथाओ के निर्देश श्वेताम्वर परम्परा में मरणविभक्ति में तथा अचेल परम्परा के भगवती आराधना में भी पाये जाते हैं। यहाँ हम केवल अन्तकृत्दशासूत्र (वर्ग 8, अध्याय 1) का वह उल्लेख करना चाहगे जिसमे साधक किस स्थिति मे समाधिमरण ग्रहण करता था, इसका सुन्दर चित्रण किया गया है—

'तत्पश्चात् काली आर्या, उस उराल-प्रधान, विपुल, दीर्घकालीन, विस्तीर्ण, सश्रीक—शोभासम्पन्न, गुरु द्वारा प्रदत्त अथवा प्रयत्नसाध्य, वहुमानपूर्वक गृहीत, कल्याणकारी, निरोगता-जनक, शिव-मुक्ति के कारण—भूत, धन्य, माङ्गल्य, पापविनाशक, उदार-निष्काम होने के कारण औदार्य वाले, उत्तम, अज्ञान अन्धकार से रहित और महान् प्रभाव वाले, तप-कर्म से शुष्क, नीरस शरीर वाली, रुक्ष, मॉसरहित और नसों से व्याप्त हो गयी थी। जैसे कोई कोयलो स भरी गाड़ी हो, सूखी लकड़ियो से भरी गाड़ी हो, पत्तो से भरी गाड़ी हो, धूप म डालकर सुखाई हो अर्थात् कोयला, लकड़ी, पत्ते आदि खूव सूखा लिये गये हा और फिर गाड़ी मे भरे गये हो, तो वह गाड़ी खड़-खड़ आवाज करती हुई चलती है और ठहरती है, उसी प्रकार काली आर्या हाड़ों की खड-खड़ाहट के साथ चलती थीं और खड़-खड़ाहट के साथ ठहरती थी। वह तपस्या से तो उपचित-वृद्धि को प्राप्त थी मगर मास और रुधिर से अपचित-ह्रास को प्राप्त हो गयी थी। भस्म के समूह से आच्छादित अग्नि की तरह तपस्या क तेज से देदीप्यमान वह तपस्तेज की लक्ष्मी से अतीव शोभायमान हो रही थी।

एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में काली आर्या के हृदय में स्कन्दमुनि के समान यह विचार उत्पन्न हुआ—'इस कठोर तपसाधना के कारण मेरा शरीर अत्यन्त कृश हो गया है तथापि जव तक मेरे इस शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम है, मन में श्रद्धा, धैर्य एव वैराग्य है तव तक मेरे लिये उचित है कि कल सूर्योदय होने के पश्चात् आर्या चन्दना से पूछकर, उनकी आज्ञा प्राप्त होन पर, सलेखना झुषणा का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके, मृत्यु के प्रति निष्काम होकर विचरण करूँ।' ऐसा सोचकर वह अगले दिन सूर्योदय होते ही जहाँ आर्या चन्दना थी वहाँ आई और वन्दना-नमस्कार कर इस प्रकार बोली—'हे आर्ये। आपकी आज्ञा हो तो मै सलेखना झुषणा करती हुई विचरना चाहती हूँ।' आर्या चन्दना ने कहा—'हे देवानुप्रिये। जैसे तुम्हे सुख हो, वैसा करो। सत्कार्य में विलम्ब न करो।' तव आर्या चन्दना की आज्ञा पाकर काली आर्या सलेखना झुषणा ग्रहण करके यावत विचरने लगी। काली आर्या ने आर्या चन्दना के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अगों का अध्ययन किया और पूरे आठ वर्ष तक चारित्रधर्म का पालन करके एक मास की सलेखना से आत्मा को झोषित कर आठ भक्त का अनशन पूर्ण कर, जिस हेतु से सयम ग्रहण किया था यावत् उसको अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण किया तथा सिद्ध, वुद्ध और मुक्त हो गई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तकृत्दशा में जव शरीर पूर्णतया ग्लान हा जाय उसी स्थिति मे ही समाधिमरण लेने का उल्लेख है।

प्रकीर्णक और समाधिमरण श्वेताम्वर परम्परा मे समाधिमरण से सम्वन्धित जो ग्रन्थ लिखे गये हैं, उनमे चन्द्रवेध्यक, आतुरप्रत्याख्यान, महाप्रत्याख्यान, सस्तारक, भक्तपरिज्ञा और मरणविभक्ति आदि प्रमुख हैं। चन्द्रवेध्यक प्रकीर्णक का अन्तिम लक्ष्य तो समाधिमरण का निरूपण ही है, किन्तु उसकी पूर्व भूमिका के रूप में विनय गुण, आचार्य गुण, विनयनिग्रह गुण, ज्ञान गुण और चरणगुणद्वार नामक प्रथम पाँच द्वारो म समाधिमरण से सम्वन्धित विषयों का विवरण दिया गया हे और अन्त मे छठा समाधिमरण द्वार है। इस प्रकीर्णक में 175 गाथाऐं है। किन्तु कुछ प्रतियों में 75 गाथाएँ और भी मिलती हैं, जिनमे से अधिकाश गाथाएँ आतुरप्रत्याख्यान मे यथावत् उपलब्ध हाती है। ग्रन्थ के अन्त म मरणगुणद्वार नामक सप्तम द्वार में सवसे अधिक 58 गाथाऐं हैं। इसमें अकृतयोगी और कृत-योगी क माध्यम से यह वताया गया है कि जो व्यक्ति विषय-वासनाओं के वशीभूत हाकर जीवन जीता है, वह अकृत-यागी है तथा जो इसके विपरीत वासनाओं एव कषाया पर नियन्त्रण कर जीवन जीता है वह कृतयोगी है और जो

कृतयोगी है, उसी का मरण सार्थक है या समाधिमरण है। इसमें किस प्रकार की जीवनदृष्टि व आचार-विचार का पालन करते हुए व्यक्ति समाधिमरण को प्राप्त कर सकता है, इसका विस्तृत विवेचन है। इसमें कहा गया है कि जो सम्यक्त्व से युक्त लब्धबुद्धि साधक आलोचना करके मरण को प्राप्त होता है, उसका मरण शुद्ध होता है। इसके विपरीत जो इन्द्रिय सुखों की ओर दौड़ता है वह अकृत परिकर्म जीव आराधना काल में विचलित हो जाता है। जिस प्रकार लक्ष्य भेद का साधक अपना ध्यान बाह्य विषयों की ओर न लगाकर केवल लक्ष्य की ओर रखता है, उसी प्रकार जो व्यक्ति राग-द्वेष का निग्रह करता है, त्रिदण्ड और चार-कषायो से अपनी आत्मा को लिप्त नहीं होने देता, पाँचों इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है, वह छह जीव निकाय की हिसा एव सात भयों से रहित मार्दव भाव से युक्त होता है, आठ मदो से रहित हो नौ प्रकार से ब्रह्मचर्य का पालन करता है तथा दस धर्म का पालन करते हुए शुक्ल ध्यान के अभिमुख होता है और वही व्यक्ति मरणकाल में कृतयोगी होता है। जो व्यक्ति जिन उपदिष्ट समाधिमरण की आराधना करता है, वह धृत क्लेश होकर भावशल्यों का निवारण करके शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जिस प्रकार कुशल वैद्य भी अपनी व्याधि अन्य से कहकर उसकी चिकित्सा करवाता है, उसी प्रकार साधु भी गुरु के समीप अपने दोषों की आलोचना करके मृत्यु के समय शुद्ध अवस्था को प्राप्त होता है। जो साधु मरणकाल मे आसक्त नहीं होता, वही आराधक है। इस प्रकार चन्द्रवेध्यक मुख्य रूप से समाधिमरण करने वाले साधक की जीवन दृष्टि कैसी होनी चाहिए, इसकी चर्चा करता है।

चन्द्रवेध्यक के पश्चात् जो प्रकीर्णक ग्रन्थ पूर्णत समाधिमरण की अवधारणा को ही अपना विषय बनाते हैं, उनमें आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान प्रमुख हैं।

ज्ञातव्य है कि आतुरप्रत्याख्यान और महाप्रत्याख्यान की लगभग एक सौ गाथाएँ मूलाचार के सक्षिप्त प्रत्याख्यान और बृहद्-प्रत्याख्यान नामक अध्ययनों मे उपलब्ध होती हैं। आतुरप्रत्याख्यान के नाम से तीन प्रकीर्णक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। एक आतुरप्रत्याख्यान में तीस गाथाएँ और कुछ गद्य भाग हैं, जबकि दूसरे मे चौंतीस गाथाएँ हैं और तीसरे में इकहत्तर गाथाएँ हैं। वैसे इन सभी आतुरप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णको का विषय समाधिमरण ही है। प्रथम आतुरप्रत्याख्यान में पचमगल के पश्चात् अरिहत आदि से क्षमा-याचना और उत्तम अर्थ अर्थात् समाधिमरण की आराधना के लिए 18 पापस्थानों का और शरीर के सरक्षण का परित्याग तथा अन्त में सागार एव निरागार समाधिमरण के प्रत्याख्यान की चर्चा है। इसके अनन्तर ससार के सभी प्राणियो से क्षमा-याचना के सन्दर्भ में 13 गाथाएँ है और अन्त में एकत्व भावना का उल्लेख है जिसमे कहा गया है कि 'ज्ञान-दर्शन से युक्त एक मेरी आत्मा ही शाश्वत है, शेष सभी बाह्य पदार्थ सायोगिक हैं। सायोगिक पदार्थो के प्रति ममत्व ही दु ख परम्परा का कारण है। अत त्रिविध रूप से सयोग का परित्याग कर देना चाहिए।' ज्ञातव्य है कि ये गाथाएँ भगवती आराधना एव मूलाचार के साथ-साथ कुदकुद के ग्रन्थों मे भी यथावत रूप में उपलब्ध होती हैं। आतुरप्रत्याख्यान नामक दूसरे ग्रन्थ मे अविरति का प्रत्याख्यान, ममत्वत्याग, देव के प्रति उपालम्भ, शुभ भावना, अरहत आदि का स्मरण तथा समाधिमरण के अगों की चर्चा है। इसी नाम के तृतीय प्रकीर्णक में इकहत्तर गाथाएँ हैं। इसमें मुख्य रूप से बालपण्डितमरण और पण्डितमरण ऐसे दो प्रकार के समाधिमरणो की चर्चा की गई है। इसमें प्रथम चार गाथाओं में देशव्रती श्रावक के लिए बालपण्डितमरण का विधान है जबकि मुनि के लिए पण्डितमरण का विधान है। इसमें उत्तम अर्थ समाधिमरण की प्राप्ति के लिए किस प्रकार के ध्यानों (विचारो) की आवश्यकता है, इसकी चर्चाएँ हैं। इसके पश्चात् सब पापों के प्रत्याख्यान के साथ आत्मा के एकत्व की अनुभूति की चर्चा भी है। अन्त में आलोचनादायक और आलोचना ग्राहक के गुणों की चर्चा करते हुए तीन प्रकार के मरणो की चर्चा की गई है—बालमरण, बालपण्डितमरण पण्डितमरण। इसके पश्चात् असमाधिमरण के फल की चर्चा की गयी है और फिर यह बताया गया है कि बालमरण और पण्डितमरण क्या हैं। शस्त्र-ग्रहण, विष-भक्षण, जल-प्रवेश, अग्नि-प्रवेश आदि द्वारा मृत्यु को प्राप्त करना बालमरण है तथा इसके विपरीत अनशन द्वारा देहासक्ति का त्याग कर कषायों को क्षीण करना पण्डितमरण है। अन्त मे पण्डितमरण की भावनाएँ और उसकी विधि की चर्चा है।

महाप्रत्याख्यान नामक प्रकीर्णक में 142 गाथाएँ हैं। इसमे वाह्य एव आभ्यन्तर परिग्रह का परित्याग, सर्वजीवो से क्षमा-याचना, आत्मालोचन, ममत्व का छेदन, आत्मस्वरूप का ध्यान, मूल एव उत्तर गुणों की आराधना, एकत्व भावना, सयोग सम्वन्धो के परित्याग आदि की चर्चा करते हुए आलोचक के स्वरूप का भी विवरण दिया गया हे। इसी प्रसग मे पाँच महाव्रतो एव समिति, गुप्ति के स्वरूप की चर्चा भी है। साथ ही साथ तप के महत्त्व को बताया गया हे फिर अकृत-योग एव कृत-योग की चर्चा करके पण्डितमरण की प्ररूपणा की गयी है। इसी प्रसग म ज्ञान की प्रधानता का भी चित्रण हुआ है। अन्त में ससार तरण एव कर्मो से विस्तार पाने का उपदेश देते हुए आराधना रूपी पताका को फहराने का निर्देश है, साथ ही पाँच प्रकार की आराधना व उनके फलो की चर्चा करते हुए धीरमरण (समाधिमरण) की प्रशसा की गयी है।

सस्तारक प्रकीर्णक का विषय भी समाधिमरण ही है। इस प्रकीर्णक में 122 गाथाएँ है। प्रारम्भ में मगल के साथ-साथ कुछ श्रेष्ठ वस्तुओं और सद्गुणों की चर्चा है। इसम कहा गया हे कि समाधिमरण परमार्थ, परम-आयतन, परमकल्प और परमगति का साधक है। जिस प्रकार पर्वतों म मेरुपर्वत एव तारागणों में चन्द्र श्रेष्ठ है, उसी प्रकार सुविहित जनो के लिए सथारा श्रेष्ठ है। इसी मे आगे 12 गाथाओ म सस्तारक के स्वरूप का विवेचन है। इस प्रसग मे यह वताया गया है कि कौन व्यक्ति समाधिमरण को ग्रहण कर सकता है। यह ग्रन्थ क्षपक के लाभ एव सुख की चर्चा करता है। इसमे सथारा ग्रहण करने वाले कुछ व्यक्तियो के उल्लेख हैं, यथा—सुकाशल ऋषि, अवन्ति-सुकुमाल, कार्तिकेय, पाटलीपुत्र के चदक-पुत्र (सम्भवत चन्द्रगुप्त) तथा चाणक्य आदि। अधिकाश कथाएँ यापनीय ग्रन्थ भगवती आराधना म भी उपलब्ध होती है।

श्वेताम्वर आगम साहित्य में समाधिमरण के सम्वन्ध में सवसे विस्तृत ग्रन्थ मरणविभक्ति है। वस्तुत मरणविभक्ति एक ग्रन्थ न होकर समाधिमरण से सम्वन्धित प्राचीन आठ ग्रन्था क आधार पर निर्मित हुआ एक सकलन ग्रन्थ है। यद्यपि इसमे इन आठ ग्रन्थो की गाथाएँ कहीं शब्द रूप मे, तो कहीं भाव रूप से ही गृहीत है फिर भी समाधिमरण-सम्बन्धित सभी विषयो को एक स्थान पर प्रस्तुत करने की दृष्टि से यह ग्रन्थ अति महत्त्वपूर्ण है, इसमे 663 गाथाएँ है। यह ग्रन्थ सक्षिप्त होते हुए भी भगवती आराधना के समान ही अपने विषय को समग्र रूप से प्रस्तुत करता है। इसम 14 द्वार अर्थात् अध्ययन हैं। इस ग्रन्थ मे भी सस्तारक के समान ही पण्डितमरण पूर्वक मुक्ति प्राप्त करने वाले साधका के दृष्टान्त हैं। जिनमे से अधिकाश भगवती आराधना एव सस्तारक में मिलते हैं। इसी ग्रन्थ मे अनित्य आदि वारह भावनाओं का भी विवेचन है।

इसके अतिरिक्त आराधनापताका नामक एक ग्रन्थ और है। यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है। कुछ विद्वानों का ऐसा कहना है कि यह ग्रन्थ यापनीय ग्रन्थ भगवती आराधना पर आचार्य वीरभद्र द्वारा निर्मित हुआ है, किन्तु इस ग्रन्थ म भक्तपरिज्ञा, पिण्डनिर्युक्ति और आवश्यकनिर्युक्ति की अनेक गाथाएँ भी हैं। अत यह किस ग्रन्थ के आधार पर निर्मित हुआ है, यह शोध का विषय है।

इसी प्रकार श्वेताम्वर परम्परा मे समाधिमरण से सम्वन्धित अनेक ग्रन्थ परवर्ती श्वेताम्वराचार्यो द्वारा भी लिखे गये हैं, जिनमें पूर्ण विस्तार के साथ समाधिमरण सवधी विवरण है, किन्तु ये ग्रन्थ परवर्तीकाल के हैं फिर भी तुलनात्मक अध्ययन द्वारा समाधिमरण से सवधित प्रकरण को आग वढाना अपेक्षित है। इस सम्वन्ध में अनेक आगमिक व्याख्या ग्रन्थों जैसे—आचारागनिर्युक्ति, सूत्रकृतागनिर्युक्ति, आवश्यकनिर्युक्ति, निशीथभाष्य, वृहत्कल्पभाष्य, व्यवहारभाष्य, निशीथचूर्णि आदि भी उनके उपजीव्य हो सकते है। इसी प्रकार आगमा की शीलाक और अभयदव की वृत्तियाँ भी वहुत कुछ सूचनाए प्रदान कर सकती हैं। उदाहरण के रूप मे क्षपक अर्थात सलेखना लन वाल श्रमण के मरणोपरान्त देह को किस प्रकार विसर्जित किया जाये, इसकी चर्चा भगवती आराधना और निशीथचूर्णि मे समान रूप से मिलती है। जो भी हो, इस सवध में विशेष शोध की आवश्यकता है। ◆

गजेन्द्र सूर्या

आचार्य नानेश और ग्राम-धर्म

'भारत ग्रामो का देश है' यह उक्ति यद्यपि बहुत पुरानी हो चुकी है तथापि इसके पीछे छिपे मर्म को भली-भाँति नहीं समझा जा सका है, यही इस देश की वर्तमान दुर्दशा का प्रमुख कारण है। मर्म उक्ति की भगिमा मे है—जो वस्तु जिन तत्त्वो से मिल कर बनी हो उन तत्त्वों की सुरक्षा की चिन्ता से ही उस वस्तु की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है। तब उक्ति के अनुसार, यदि भारत ग्रामा का देश है तो ग्रामो की खुशहाली से ही भारत की खुशहाली सुनिश्चित की जा सकती है। ऐसा इसलिये भी है कि उस उत्पादन की इकाई ग्राम ही होती है जिसका उपभोग कर सम्पूर्ण देश खुशहाल बनता है। इस प्रकार ग्राम किसी भी देश के अर्थशास्त्र अथवा आर्थिक विकास एव खुशहाली की धुरी बन जाता है। इसलिये उसकी सुरक्षा की सुनिश्चितता प्राथमिक आवश्यकता बन जाती है। यही *ग्राम धर्म* है। यह एक मोटा सत्य है जो व्यापक रूप और शानदार ढग से प्रचार पाता रहा है जिसकी पुष्टि हमारे अर्थशास्त्री, समाज शास्त्री और नेता जोर-शोर से करते रहे हैं और जिस पर एक अनपढ़ ग्रामीण से लेकर बड़े से बड़ा नेता तक मत व्यक्त करना अपना अधिकार समझता है परन्तु ग्रामों की खुशहाली के प्रयास मात्र औपचारिक रूप मे, मनमाने ढग से और बिना पर्याप्त मथन के किये जाते हैं। परिणाम यह होता है कि धर्म के स्थान पर अधर्म का पालन होता है और न ग्राम की दशा सुधरती है, न देश की किस्मत।

ग्राम इकाई केवल उत्पादन इकाई ही नहीं होती, सस्कृति की इकाई भी होती है और धर्म, दर्शन तथा जीवनचर्या की नियत्रक, निर्धारक एव प्रेरक शक्ति भी होती है। इसीलिये ग्राम इकाई की चिन्ता किसी भी समाज और चिन्तन की पहली आवश्यकता होनी चाहिये। इस सबध में सर्वाधिक सतोष की बात यह है कि हमारे धर्म और धर्माचार्यो ने इस आवश्यकता को सदा गहराई से समझा है और सदा ग्राम-धर्म के रक्षण की प्रेरणा दी है। इस दृष्टि से जैन धर्म, दर्शन और जैन धर्माचार्यो की भूमिका अविस्मरणीय रही है। भगवान् महावीर ने तो *ठाणाग सूत्र* में *ग्राम-धर्म* क पालन को सर्वप्रमुख कर्तव्य

वताया है। उन्होंने जिन दस धर्मो की पालना की बात कही है उनमें ग्राम-धर्म प्रथम स्थान पर आता है और सर्वप्रमुख है—

> दस विहे धम्मे पण्णत्ते तजहा-गामधम्मे,
> नगर धम्मे, रट्ठ धम्म, पाखण्ड धम्मे, कुल धम्मे
> गण धम्मे, सघ धम्मे, सुत्त धम्मे, चरित्त धम्मे,
> अत्थिकाय धम्मे एव।।

ऐसा इसलिये है कि यदि ग्राम खुशहाल नहीं होंगे तो न नगर खुशहाल बन पायगे, न राष्ट्र और न ही कुल, गण, सूत्र, चरित्र आदि धर्मो की रक्षा हो पायेगी।

वर्तमान युग में आचार्य श्री नानेश ने इस सत्य के मर्म को तो समझा ही, ग्राम तत्त्व को भी समझा था इसीलिये उन्होने उन सभी पीड़ित, दलित, उपेक्षित और शोषित जनो के कल्याण की बात कही जो गाँवों मे निवास करते हैं। यह ग्राम तत्त्व के मर्म तक पहुँचने की वात थी जिसकी परिधि मे मनुष्यो के साथ अन्य प्राणी और प्रकृति भी आ जाती है। इस प्रकार जीवन की सुरक्षा की वात सम्पूर्ण पर्यावरण (जिसम प्रकृति के साथ प्राणी भी सम्मिलित होते हे) की सुरक्षा तक पहुँच जाती है।

पहले वात करते हैं उस दलित समाज के उद्धार की जो ग्रामों की पहचान होता है। *वात जुड़ती है लगभग* 37 वर्ष पूर्व की उस घटना से जो धर्मपाल अभियान का आधार वनी।

तव आचार्य श्री नानेश के सदुपदेशो से प्रभावित एव उद्वोधित होकर समाज के दलित कहे जाने वाले अनेक वन्धु व्यसन-विकार स मुक्त होकर समतामय जीवन की ओर अग्रसर हुए। इन्हे आचार्य भगवन् ने *धर्मपाल* नाम से सवोधित किया। शीघ्र ही धर्मपाल अभियान एक स्मरणीय और प्रेरणास्पद आदोलन वन गया जिसने विगत तीन दशको के दौरान कई क्षेत्रो में महत्त्वपूर्ण और वहुमुखी उपलब्धियाँ हासिल की हैं। धर्मपाल समाज की रचना प्रभु महावीर के वाद मानव जीवन के समूहगत रूप से रूपान्तरण की एक वड़ी घटना है। इस अध्यात्म योगी ने अपने जीवनकाल में दलित एव पतित कहलाने वाले लाखों लोगों को गरिमापूर्ण पद पर प्रतिष्ठित किया। धर्मपाल वन्धुओ को प्रतिवोध देने से वे *'धर्मपाल प्रतिवोधक'* कहलाए। धर्मपाल प्रतिवोधक आचार्य श्री नानेश ने मालव धरा पर व्यसनमुक्ति की महान क्राति का सूत्रपात किया। इस प्रकार उन्होने एक ऐसा युगान्तरकारी कार्य कर दिखाया जो कि अपने आप मे अनुपम और अद्वितीय है और जिसका सही मूल्याकन आगे आने वाला वुद्धिवादी समाज ही कर पायेगा। दलितोद्धार के महाभियान की अपूर्व सफलता से ही वे एक वर्ष के अपने आचार्य-काल मे ही राष्ट्रीय नायक के रूप मे प्रख्यात हो गये। उनके द्वारा प्रवर्तित यह धर्मपाल अभियान एक ऐसा अभियान हे जो युगो-युगो तक दलित-दमित, पतित-पीड़ित मानवता के लिए प्रगति और मुक्ति के द्वार उन्मुक्त करता रहेगा। मानव कल्याण की इस युगान्तरकारी प्रवृति का प्रारभ भले ही किसी महानदी के उद्‌गम की तरह प्रारम्भ मे एक लघु जल प्रपात-सा रहा हो, किन्तु अपने वर्तमान विस्तृत रूप में वह किसी महानदी से कम नहीं है। एक लाख के लगभग दलित कहलाने वाले मनुष्यो के हृदयों मे एक *क्रान्तिकारी* परिवर्तन आ गया है और उनके इस हृदय-परिवर्तन के साथ ही उनका जीवन-क्रम ही परिवर्तित हो *गया* है।

> *ग्रामधर्म की रक्षा का आह्वान कर आचार्य श्री नानेश ने जो क्रातिकारी अभियान प्रारभ किया था वह विकास से तो सीधा जुड़ता ही है, मानवता की रक्षा कर विश्व को विनाश से बचाने का अभियान भी है। जन-कल्याण, समाज-सुधार, ग्रामोद्धार, नगरोद्धार एवं राष्ट्र के अभ्युदय के साथ धर्मोन्नति एवं आत्मोन्नति के लक्ष्यों को भी इस अभियान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।*

भगवान् महावीर ने जैन धर्म-दर्शन के द्वार जन-जन के लिए खाल दिये थे। उन्हाने पूरी वुलन्दी से कहा था—पुश्तैनी कुछ नहीं है। जन्म किसी एक खास घर या घराने, कुल या कुनवे मे हो जाने से कोई शख्स छोटा या वडा, श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ नहीं हो सकता, न ही उस

कोई सामाजिक दर्जा इसलिए मिल सकता है कि उसने फला घर/घराने, कुल/वश में जन्म लिया है—ये सारी कसौटियाँ खोटी और अविश्वसनीय है। खरी और सच्ची कसौटी है आचरण और कर्म।

जिसका जैसा कर्म होगा उसी से वह छोटा या बड़ा ब्राह्मण या शूद्र कहलायेगा—

'कम्मुणा बम्भणो होई, कम्मुणा होई खत्तिओ। वइस्सों कम्मुणा होई, सुद्दो हवइ कम्मुणो।'

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जैसी सज्ञाएँ जन्मना नहीं, कर्मणा अर्थवान् होती है। इसीलिये जो आर्थिक और सामाजिक असमानता दीवार बनकर एक मनुष्य को दूसरे से अलग करती है, उसे हटाना जरूरी है। इस प्रकार भगवान् महावीर ने धर्म और दर्शन के तमाम द्वार, झरोखे, उजालदान अन्तिम आदमी के लिए खोल दिये थे और उसकी चेतना को अन्धविश्वासों और सम्प्रदायो की बेड़ियो से मुक्त कर दिया था।

प्रभु महावीर के बाद आचार्य श्री नानेश ने उसी तरह से दलित कहे जाने वालों हजारो-हजार लोगो को व्यसन-विकार से मुक्त करके समतामय जीवन की ओर प्रेरित करके धर्मपाल नाम से सम्बोधित करते हुए कहा था कि जैन धर्म ने कभी भी जाति, वर्ण व कुल के भेदभावो को महत्त्वपूर्ण नहीं माना है, बल्कि उसने तो मानव समता ही नहीं बल्कि प्राणी मात्र मे समता स्थापित की है, हमेशा गुण को पूजा है तथा आचरण को महत्ता प्रदान की है अत आप लोग भी यदि व्यसन का त्याग करेंगे और सत्सस्कारो की शिक्षा को जीवन में स्थान देंगे तो आप स्वय ऊपर उठ जाएँगे। इस प्रकार आचार्य देव ने अछूतोद्धार का जो क्रान्तिकारी कार्य आरम्भ किया वह इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णिम अक्षरो में अकित हो गया है।

उन्होंने विषमता के अभिशाप को अपनी अनुभूति से जाना और उन लोगों की पीड़ा को जिनका प्रतिपल ऋण हम पर है, जाना। वचितो को सबल बनाने के कार्य को आगे बढ़ाने के लिए उन्होने बड़ी-बड़ी मुसीबते झेलीं और कठिन परिश्रम करके उन्हे समाज मे गौरवपूर्ण स्थान दिलाया। स्व श्रीमद् जवाहराचार्य ने कहा था कि—'उच्चता का अर्थ कृतघ्नता नहीं होता है।' आचार्य नानेश ने भी व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व की सीमाओ, पीड़ाओ और व्यथाओं को समझा, उनका अनुभव किया और उन पर चन्दन लेप किया। गरीबी की जिस दशा को लाखों लोग सह उसे मिटाने के लिए उन्होने समाज को प्रेरित किया और शिक्षा व प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराने की बात रखी।

एक बार आचार्य श्री नानेश से प्रश्न किया गया था कि व्यसन-मुक्ति और शाकाहार-प्रवृत्ति के प्रसार हेतु आपने अभूतपूर्व अभियान चला कर पिछड़े-बिछुड़े क्षेत्रो में जो सस्कार क्राति की है, वह प्रभु महावीर के बाद की एक ऐतिहासिक घटना है। इस पावन प्रेरणा का उत्स क्या रहा?

आचार्यश्री ने उत्तर दिया—मैं मूलत ग्रामवासी हूँ। इसका प्रत्यक्ष दर्शन मुझे मालवा के दलित-बहुल गाँवों की यायावारी मे हुआ। मैंने देखा गरीब-पिछड़े लोग व्यसन में लीन, शिक्षाविहीन, कुरीतियों मे आकठ निमग्न तथा भक्ष्याभक्ष्य के ज्ञान से वचित दीन-हीन पड़े है। मैं गुरडिया ग्राम की 72 गाँवो की एक विशाल पचायत मे जा पहुँचा। व्यसनमुक्ति हेतु लोगों को समझाया। शाकाहारी-शुद्धाचारी जीवन धर्म का मर्म बताया। लोग मान गये और मैंने उन्हें धर्मपाल की सज्ञा से बहुमानित किया। मैंने पाया कि इन गरीब लोगों को ममता के स्पर्शभर की प्रतीक्षा थी।

आज एक लाख से अधिक धर्मपालो का मालवा क्षेत्र मे काया-कल्प हो चुका है और वे शुद्ध, अहिसक शाकाहारी जीवन जी रहे हैं। प्रभु महावीर का कार्य चल रहा है। मेरा कुछ नहीं। मै तो एक अकिचन नाना (नन्हा) निमित्त हूँ। मैंने इस कार्य को राष्ट्रधर्म माना। यही मेरा उत्स है। यही नम्र पहल देश के पिछड़े-बिछुडे लोगो के जीवन मे बदलाव लायेगी।

अ भा साधुमार्गी सघ ने भी आचार्यश्री के अभियान के महत्त्व को समझा और धर्मपाल क्षेत्रो को सघन एव गहन बनाने की दृष्टि से पद-यात्राएँ शुरू करके इन क्षेत्रो के सुधार के अभियान को तेज गति प्रदान कर दी।

इस प्रकार समाज और मानव मात्र को उपयोगी बनने की कला सिखाने और परिवारो मे बुरी सगति, कुव्यसना और बुरे विचारों का त्याग कराने का वातावरण निर्मित किया गया। असहायो के घर जाकर उनकी तकलीफा और व्यथाओ के निवारण करने के उपाय ही नहीं किये गये बल्कि उन्हें आवश्यक साधन भी उपलब्ध कराय गये।

प्रवास म गावा की वास्तविक हालत को समझने का मौका मिलता है और पता चलता हे कि देश मे ग्रामीण समाज की कैसी दुर्दशा है।

आचार्य श्री नानेश ने यह समझाने का प्रयास किया कि जिस मनुष्य का जीवन अन्न-वस्त्र पर अवलवित है उसके लिए ग्रामीण समाज को महत्त्वपूर्ण स्थान देने की जरूरत है, परन्तु इस ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा है परिणामस्वरूप आज वहाँ शहरों के दुर्गुण तीव्रता से फैलते जा रहे हैं और वहाँ शहरा से विदेशी माल और मौज-शौक की वस्तुएँ पहुँच रही हैं। कृषि राष्ट्र-व्यवस्था का आधार है, परन्तु कृषि आधारित उद्योगा को नष्ट किया जा रहा है *और ग्रामीण समाज के परम्परागत उद्योगा को समाप्त करके गरीबी, वेरोजगारी* ओर अनारोग्य को वढ़ाया जा रहा है।

श्रीमद् जवाहराचार्य ने *'धर्म और धर्मनायक'* पुस्तक में ग्रामधर्म पर ज़ोर देते हुए कहा था कि ग्रामधर्म की भूमिका म से ही सभ्यता, नागरिकता और राष्ट्रीयता के धर्मांकुर फूटते है तथा सच्चा हिन्दुस्तान तो गावो म बसता है। शहर ता माया मात्र हैं। गावो की सेवा हिन्दुस्तान के पुनरुद्धार की भूमिका है। भारतवर्ष का उद्धार उसके लाखों गावा को सजीव कराने मे है और छोटे-छोटे गाव भारतवर्ष की सस्कृति के धाम है।

आज यद्यपि उद्यमशील किसाना और कृषि वैज्ञानिको ने अपने प्रयासों स खाद्यान्नो की कमी को बहुलता मे वदल दिया है तथापि पिछले कई दशका से जल ससाधना के प्रवध के लिए पर्याप्त प्रयास नहीं हुए हैं जवकि हमारे देश की अधिकाश खेती वर्षा पर निर्भर है। इसीलिए वर्षा-जल के अधिकतम सभव उपयोग क लिए गावों म अनुकूल वातावरण पैदा किया जाना आवश्यक है। यद्यपि बिजली, सड़क, परिवहन, आधुनिक शिक्षा और सामाजिक सुविधाओ द्वारा ग्रामीण भारत का स्वरूप बदला अवश्य है, परन्तु यह काम प्राचीन भारत की परम्परागत तकनीक और शिक्षा जैसी विरासतों की रक्षा से भी हो सकता है। राष्ट्र के अस्तित्व के लिए ग्रामवासियो मे पर्यावरण सुरक्षा व भूमि जल एव श्रम के सरक्षण के प्रति जागरूकता पैदा करने की भी आवश्यकता है। ग्रामीण प्रतिभाओं को यदि शिक्षण एव उचित वातावरण उपलब्ध कराया जाये तो वे सामाजिक परिवर्तन को सार्थक दिशा प्रदान कर सकती हैं।

आचार्य श्री नानेश ने ग्राम धर्म की रक्षा का महत्त्व भलीभाँति समझा था और इसीलिए वे अपनी सयमित सीमाओ मे रहते हुए सघ और समाज के प्रवुद्धजनो को सदैव प्रेरित करते रहे थे कि हम तो अपने ढग से आत्मीययोग देते रहते हैं परन्तु आप लोग भी अपना कर्तव्य समझ कर यदि इस कार्य को व्यापक स्वरूप प्रदान करे तो यह कार्य स्व श्रीमद् जवाहराचार्य के सपना को साकार कराने वाला हा सकता है। व्यापक भविष्य का सोच-विचार करने वाले ऐसे लोग कम ही होते हैं *जो जर्जर हो रही प्रणाली तथा विखर चुके आतरिक ढाचे को ठीक करने क लिए* प्रेरणा दे सके। आचार्य श्री नानेश ने ग्रामीण सस्कृति के पुनरुद्धार की आवश्यकता को समझा और प्रयास किये कि हमारा राष्ट्र विश्व म महत्त्वपूर्ण और मजवूत शक्ति के रूप मे उभरे और अपनी प्राचीन विशिष्ट सस्कृति की रक्षा कर सके। इसके लिये आवश्यक है कि समाजसेवी प्रवुद्ध कार्यकर्ता धर्मपाल क्षेत्रों में घूम-घूम कर ग्राम उत्पादा, ग्रामोद्योगों व पशुपालन के सरक्षण के वैज्ञानिक उपायो को अमल मे लाने के तरीकों से उनको शिक्षित करे और वताएँ कि आधुनिक विकास की पद्धति हमारी परम्परागत अवधारणाआ एव परिप्रेक्ष्य को नष्ट कर रही हे तथा हमारी विद्या, सस्कृति और सभ्यता की विरासत को भ्रष्ट कर रही है। यदि इसे वचाना है तो पश्चिम की एकल आयामी सस्कृति के वर्चस्व को निष्प्रभावी वनाना होगा क्याकि पश्चिमी दृष्टि सिर्फ वस्तुओ के विकास की चिन्ता करती है, मनुष्या के विकास की नहीं। यूरोपीय आधुनिकीकरण का विराट चक्र जिस दिन से यहाँ चलना शुरू हुआ उसी दिन से हम वैसे बनने लगे, यानी यूरोपीय मानव। यूरोपीय

नव जागरण अथवा पश्चिमी सभ्यता का नेतृत्व करने वाले अमेरिका आदि राष्ट्रा ने भलाई तो बहुत थोडे वर्ग की की है पर खतरे ज्यादा लोगो के सम्मुख उपस्थित किये हैं। बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के जनकल्याण के ऊँचे लक्ष्य के सारे अवसर हाथ से निकलते जा रहे है। आज की चुनौतियाँ अनेक अर्थो मे अधिक तीखी और द्रुतगामी बनती जा रही हैं।

आज पर्यावरण पर जो सकट उपस्थित हुआ है उसकी वजह यही पश्चिमी सस्कृति की दृष्टि है जो विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अधाधुध विकास को विकास मानती है और निरकुश उपभोक्तावाद को बढावा देती है। आज भविष्य की सरचना के प्रति जितना व्यापक एव गहरा विचार एव जितनी व्यापक सहमति आवश्यक है उतनी पूर्व मे कभी नहीं थी। नई सदी का नया दौर दस्तक दे रहा है, प्रकृति विरोधी दुष्परिणामो को मिटाने के लिए, हथियारो की होड़ खत्म करने के लिए और भोजन की समस्या को मिटाने के लिए, धर्मपाल समाज के जरिये इस निरकुश उपभोक्तावाद की परिणति को रोकना और सस्कार क्राति की दिशा में आगे बढ़ना होगा। प्रकृति की भारी हानि की जा चुकी है तथा आज भी जारी है, उसके दुर्विनाश के परिणामो के प्रति सचेत करने के लिए नई पीढी से सवाद जरूरी है, जो इसके माध्यम से किया जा सकता है।

हमारे वर्तमान आचार्य श्री रामेश ने सस्कार-क्राति की आवाज़ को बुलन्द किया है अत जैसे भी हो भोगवादी मानसिकता से बचकर तथा अहिसक साधनो के उपयोग द्वारा अपनी रक्षा की जाए एव शाकाहार की महत्ता तथा उपयोगिता का सर्वत्र प्रसार कराया जाए। आचार्य श्री जवाहर ने वर्षो पूर्व चेताया था कि पश्चिमी सुधारवादी दृष्टि मानव-कल्याण की नींव पर टिकी नहीं है बल्कि यह तो हमारी प्राचीन सस्कृति की सूरत-शक्ल को बिगाड़ कर आत्मा तक को भ्रष्ट करने वाली ऐसी सवेदनहीन दृष्टि है जो पाखण्ड, छल और स्वार्थपरता से उद्भूत है।

ग्राम-धर्म की रक्षा का आह्वान कर आचार्य श्री नानेश ने जो क्रान्तिकारी अभियान प्रारभ किया था वह विकास से तो सीधा जुडता ही है, मानवता की रक्षा कर विश्व को विनाश से बचाने का अभियान भी है। जन-कल्याण, समाज-सुधार, ग्रामोद्धार, नगरोत्थान एव राष्ट्र के अभ्युदय के साथ धर्मोन्नति एव आत्मोन्नति के लक्ष्यो को भी इस अभियान द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। भारत जैसे ग्राम सभ्यता प्रधान देश के उत्थान की तो यह आधारशिला ही है अत यह आवश्यक है कि ग्राम-धर्म के तत्त्व को समझ कर ग्राम-धर्म की रक्षा की चिन्ता प्राथमिकता के आधार पर की जाये।

◆

व्रत-ग्रहण के प्रारभ मे एक नई निष्ठा जन्म लेती है और अव्यक्त रूप से ही सही, वह निष्ठा सम्पूर्ण प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करती है। अत व्रत-ग्रहण के महत्व को समझना चाहिए एव यथाशक्ति-यथासुविधा कोई न कोई व्रत अवश्य ग्रहण करते रहना चाहिए।

—आचार्य श्री नानेश

साध्वी विद्यावती

अप्रतिम संत अप्रतिम धर्माचार्य

अप्रतिम व्यक्तित्व के धनी, विनय, विद्या और विवेक की साक्षात् मूर्ति, वैराग्य, तप और सयम के पुज, अलौकिक ज्ञान से सम्पन्न, उद्‌भट आगम-ज्ञाता, सिद्ध पुरुष, आचार्य श्री नानेश को अपने भौतिक चक्षुओ से देखने और अन्तर्मन मे वैठाने का जिन्हें सुअवसर प्राप्त हुआ वे सासारिक पुरुप निश्चय ही धन्य हैं। वे एक ऐसे दिव्य पुरुप थे जिनमें ओजस्विता, तेजस्विता और वर्चस्विता का पावनकारी त्रिवेणी सगम उपलब्ध था। उनकी अलौकिक छवि इस मृत्युलोक में जो उज्ज्वल आभा विकीर्ण करती थी उसम मुमुक्षु आत्माआ को अपने उद्धार का मार्ग सहज ही दीख जाता था। ऐसे दीप्तिमत सूर्य थे धर्माचार्य श्री नानेश, जिन्होने समाज में व्याप्त अज्ञान और अश्रद्धा को दूर कर ज्ञान और श्रद्धा की ज्योति प्रज्वलित की। मानवो में महामानव, योगिया में महायोगी और आत्माओं में महा-आत्मा के पद पर अधिष्ठित हाने वाला यह महासत सर्वत्र समानरूप से पूजित था।

साधक हाते हुए भी सिद्ध और पूजक होते हुए भी पूजित, नाना नामधारी इस व्यक्ति ने अपने देह-नाम—गोवर्धन और मुनि-नाम—नाना दोनों को महिमामण्डित किया। अनेक विशेपणा से सवोधित इस सिद्ध पुरुप के सवोधना की गणना कर पाना कठिन है क्याकि गुणों के सवोधन भी कई वार अकल्पनीय होते हैं। तव छोटा सा नाम—*नाना*, जिस लघुता-भाव को अपनी अभिधा मे समाहित करता है उसम कितना *'महिमा'* भाव था इसकी व्याख्या कर पाना सभव नहीं है। प्रभु महावीर के पट्टधर आचार्य नानेश चतुर्विध सघ हेतु गणधर तुल्य तथा अपने भक्तों के लिये भगवान् के समान थे। तीर्थकर के पट्टधारी होन से वे 1008 के विशेपण के पात्र थे और परमेष्ठी के तीसरे पद पर प्रतिस्थापित तथा 36 गुणों से अलकृत, 17 प्रकार के सयमा के धनी एव 8 सम्पदाआ स सम्पन्न होन के कारण सही अर्थो में आचार्य पद के अधिकारी थे। वर्तमान म समुपलव्ध शास्त्रों की टीका, टव्वा, भाष्य, चूर्णिया आदि तथा प्रकीर्णक ग्रथों का भी उन्होने गहन अध्ययन किया था, यही नहीं वेद-वेदाग, गीता, उपनिपद्, न्याय, व्याकरण आदि ग्रथा क भी वे आधिकारिक विद्वान थ।
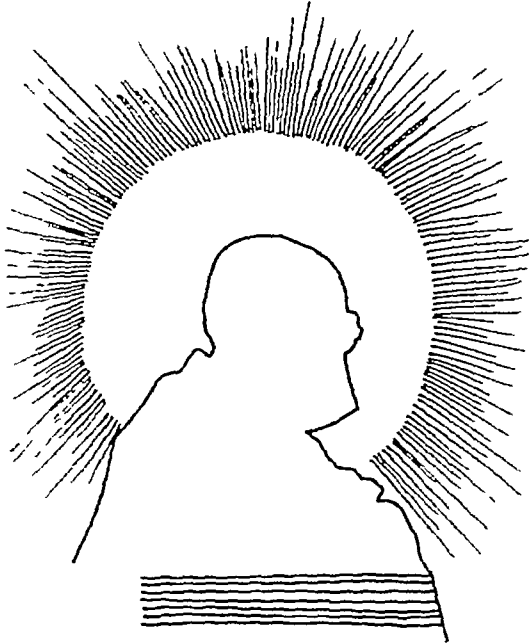
आचार्यश्रीजी की सयम-साधना के प्रति कितनी सजगता थी इसके उदाहरण के रूप मे सरदारशहर की एक घटना का उल्लेख पर्याप्त होगा। बीकानेर नरेश तथा तत्कालीन सासद डॉ करणीसिहजी आपश्री के दर्शनार्थ उपस्थित हुए थे। उस समय सूर्यास्त होने मे थोड़ा ही समय शेष था जब उन्होने अपनी भावना और श्रद्धासुमन अर्पित किये। आचार्यश्री ने कहा 'अब तो हमारे सध्या प्रतिक्रमण का समय है, मैं अधिक समय नहीं दे सकता।' स्थानीय प्रतिष्ठित श्रावक श्री कन्हैयालालजी दुग्गड़ ने निवेदन किया—'मत्थएण वन्दामि, अभी महाराज साहब को समय है, आपश्रीजी कुछ मार्गदर्शन देने की कृपा करावे।' तब आचार्य देव ने फरमाया, 'देखो, हमे अपनी दैनिकचर्या का कार्य तो समय पर ही करना होता है, अत मै समय देने मे असमर्थ हूँ।'

आचार्यश्री के ऐसे स्पष्ट, सयमपूर्ण कथन से प्रभावित होकर महाराजा साहब बोले, 'सच्ची साधुता तो इन आचार्यश्रीजी मे ही है जिन्हें राजनेताओं को अनुगृहीत करने की अपेक्षा अपनी श्रमण मर्यादाएँ अधिक प्रिय हैं। ऐसे नि स्पृह महापुरुष ही जनता को कल्याण का मार्ग दिखा सकते है।'

सयम की रक्षा हेतु ही आपश्री ने एक बार श्री अमरमुनिजी म सा से, सुई लौटाना भूल जाने के कारण 4 मील का चक्कर लगवा कर, अपना कार्य स्वय करने के आदर्श का पालन कराया था। इसी प्रकार षड्जीव निकाय के रक्षक आचार्य देव जब छत्तीसगढ़ प्रदेश में विहार कर रहे थे तब नदी मे पानी आ जाने के कारण 40 किलोमीटर का चक्कर खाकर दूसरे मार्ग से तो गये परन्तु अपवाद का सेवन नहीं किया। आपश्री की स्वय की सयम साधना तो इतनी उत्कृष्ट थी ही 300 से भी अधिक मुमुक्षु आत्माओं को आपने आत्मानुरागी बना कर सयम साधना के मार्ग पर अग्रसर किया था। सैकड़ो आत्माओ ने आपकी चरण सेवा मे रह कर मासखमण जैसी सैकड़ो तपस्याएँ कीं। आपश्री का कोई चातुर्मास ऐसा नहीं गया जिसमें बड़ी सख्या मे मासखमण न हुए हों। रतलाम चातुर्मास मे 55 से अधिक तथा देशनोक चातुर्मास मे 50 से अधिक मासखमण की तपस्याएँ हुई।

> आचार्य श्री नानेश एक ऐसे दिव्य पुरुष थे जिनमें ओजस्विता, तेजस्विता और वर्चस्विता का पावनकारी त्रिवेणी सगम उपलब्ध था। वे ऐसे दीप्तिमत सूर्य थे जिन्होंने समाज में व्याप्त अज्ञान और अश्रद्धा को दूर कर ज्ञान और श्रद्धा की ज्योति प्रज्वलित की। मानवों में महामानव, योगियों में महायोगी और आत्माओं में महा-आत्मा के पद पर अधिष्ठित होने वाला यह महासत सर्वत्र समान रूप से पूजित था।

आपश्री की दृष्टि और सृष्टि ही ऐसी थी कि व्यक्ति का मानस सहज ही तप की ओर आकर्षित हो जाता था। तपोतेजस्विनी महासती श्री चरित्रप्रभाजी म सा ने लघु वय में 101 दिन की तपस्या कर कीर्तिमान स्थापित किया था। यह तो इत्वारिक तप की बात है, आपश्रीजी के शासन मे भावत्कायिक तप भी बड़ी सख्या मे हुए। महासती श्री गुलाबकवरजी म सा ने 82 दिन का, महासती श्री वल्लभकवरजी म सा ने 72 दिन का तथा महासती श्री सरदारकवरजी म सा ने 62 दिन का भावत्कायिक तप करके अपने आपको एव शासन को चमकाया। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो आपश्री की तपोनिष्ठा के चमत्कार के प्रमाण प्रस्तुत करते है। 1981 के उदयपुर चातुर्मास मे 116 जोड़ो ने ब्रह्मचर्य व्रत अगीकार किया। एक अन्य अवसर पर जब आप 29 दिन उदयपुर विराजे तब वहाँ के श्रावकों ने 1100 दयाव्रत कर अपनी आचार्यनिष्ठा का परिचय दिया।

आचार्यश्री की विहारचर्या भी अपूर्व थी। राजस्थान, गुजरात, मालवा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि अनेक प्रदेशों मे विचरण कर आपने धर्म प्रभावना का व्यापक स्तर पर कार्य किया। शारीरिक अस्वस्थता की स्थिति में भी आपने कभी व्हीलचेअर अथवा वाहन का उपयोग नहीं किया।

आपकी श्रुत सम्पदा अत्यत सम्पन्न थी। सभी उपलब्ध धर्म ग्रन्थों का आपने गभीरता से अध्ययन किया था और उनमे समाहित ज्ञान-दर्शन की

सामग्री का आत्मसात किया था। इसीलिये आप मूल सामग्री की भावार्थ एव टिप्पणिया सहित विस्तृत विवचना प्रस्तुत कर सकते थे। श्रमण-श्रमणिया ने आपस इस प्रकार अलभ्य ज्ञान प्राप्त कर स्वय को विद्वान एव विदुषी बना लिया था। अपन ज्ञान एव विवेक द्वारा किसी भी समस्या का आप इतना सटीक समाधान प्रस्तुत करत थे कि लोग आश्चर्यचकित रह जात थे। सरलता, सरसता माधुर्य एव प्रभावशीलता आपकी प्रवचन शैली के विशेष गुण थे। इसीलिय आपके प्रवचन अत्यत प्रेरणादायी होते थे। धर्मप्रभावना एव प्रेरणा प्रदान करने क लिय स्थान चयन म आप केवल उपयुक्तता का ध्यान रखत थे इस कारण जहाँ सार्थकता, दखते थ प्रेरणात्मक प्रवचन देने म सकाच नहीं करते थे। उदयपुर जल म 400 एव जयपुर जेल में 1000 बदिया न आपक प्रवचनो से प्रभावित होकर अपराधी जीवन त्यागने का सकल्प लिया। आपके प्रवचना की प्रभावशीलता का सबसे बड़ा प्रमाण ता आपके द्वारा मध्यप्रदेश प्रवास के दौरान अस्पृश्य समझी जाने वाली बलाई जाति को प्रेरणा प्रदान कर उन्हे व्यसनमुक्त कर धर्मपाल बना लेन वाली घटना है। हृदय-परिवर्तन एव चरित्र-सस्कार की एसी क्रान्ति काई दिव्य पुरुष ही कर सकता है जिसमे 70 ग्रामा क 1100 प्रतिनिधिया के माध्यम से एक बार मे 50 हजार लोग सन्मार्ग के पथ पर अग्रसर हो जाय। अब तो इनकी सख्या लाखा में है। अपनी वाणी क प्रभाव से ही आपने केसिगा, रायपुर, काननवन ब्यावर सरदारशहर, बम्बोरा जैसे स्थाना पर मनमुटाव अशाति, अन्तर्ताप और वैरभाव का समाप्त कर परस्पर सहयोग, सद्भाव और प्रम की गगा प्रवाहित की थी।

आपश्री की देशना में दशना के चारा भेदों—*आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, सवेदिनी* और *निर्वेदिनी* का प्रभावी समन्वय था। इस प्रकार *आक्षेपिणी* म स्वमत का मण्डन समतादर्शन, समीक्षण ध्यान आदि, *विक्षेपिणी* में परमत का खण्डन, ईश्वर का सृष्टि का कर्ता होने, जीव में पाप यतान तथा मूर्तिपूजा का खण्डन, *सवेदिनी* म विविध प्रकार स आत्मा को जाग्रत करन वाली विधिया एव सामग्री का सचय और *निर्वेदिनी* मे धर्मकथा आदि का समन्वय कर आपने विषयभोगा स विमुख होकर ज्ञान एव सयम के मार्ग पर चलन की प्ररणा चतुर्विध सघ को दी।

1981 म उदयपुर विश्वविद्यालय मे 'समता दर्शन का व्यावहारिक रूप' विषय पर आपके प्रवचन को सुनकर सभी विद्वान चमत्कृत हो गये थे। उन्हे लगा था जैसे आपने प्लटो, अरस्तू, काट जैसे दार्शनिको के चितन का पचाकर एक नये और अधिक उपयुक्त दर्शन का प्रतिपादन किया था और इस प्रकार आप महायोगी ता थे ही आपने समत्व योग का अधिक व्यापक आयाम प्रदान कर उसकी वर्तमान जीवन मे आवश्यकता प्रमाणित कर चिन्तन के क्षेत्र मे एक नया अध्याय जाड़ा था। इन्दौर एव धार जेसे स्थाना पर धर्म, दर्शन और जीवनचर्या के तत्त्वो की गहन एव विस्तृत जानकारी बोधगम्य शैली में प्रस्तुत कर आपने न केवल जिज्ञासुओ एव शकालुआ को सतुष्ट किया वरन् उनके ज्ञानचक्षु खोल कर जीवन और जगत् के प्रति नई दृष्टि विकसित करने का सुअवसर भी उन्ह उपलब्ध कराया।

अपने नियमा के प्रति आप इतने दृढ थे कि कोई भी आग्रह, स्थिति की प्रतिकूलता अथवा विवशता आपको उनके पालन से विमुख नहीं कर सकती थी। ध्वनि विस्तारक यत्र के उपयोग के सबध में ऐसे आग्रहा को आपने किस प्रकार अस्वीकृत कर दिया था इसक प्रमाण तो जयपुर और मुम्बई की घटनाएँ ही हैं। जयपुर म आपने स्पष्ट कह दिया था, 'अपने श्रोताओं को खुश करने क लिये मैं अपना नियम भग नहीं कर सकता।' और हम ज्ञात है कि अपने नियम का पालन करते हुए भी 8-10 हजार लोगो की भारी भीड़ को आप अपने मुखारविन्द स निकले शब्दा स परितृप्त कर सके। मुम्बई में ता माइक्रोफोन पर प्रतिक्रमण कराने की वर्षो पुरानी परम्परा को आपने तोड़ा और प्रमाणित किया कि कैसे बिना ध्वनिविस्तारक यत्र क उपयोग के भी हजारा लोगों की भीड़ को सफलतापूर्वक नियत्रित, निर्देशित, प्रेरित और प्रबोधित किया जा सकता है।

आचार्य श्री नानश का आगम ज्ञान ता तलस्पर्शी था ही, जनसामान्य क लाभार्थ उन्हाने भगवती सूत्र, आचाराग सूत्र, कर्म प्रवृत्ति, कल्पसूत्र आदि आगमिक ग्रथा को सरल भाषा-शैली म इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया जिसस जैन सिद्धान्ता का समझना सहज हो सके। आपक प्रवचन साहित्य की लगभग 50 पुस्तक प्रकाशित हो चुकी हे तथा प्रमाण गाथाआ की सख्या ता हजारा म है।

दर्शन क्षेत्र मे समीक्षण ध्यान, आत्म समीक्षण और समताचिन्तन का आपका अमूल्य प्रदेय युगों-युगो तक भव्य आत्माओ को लाभान्वित करता रहेगा।

तप, त्याग, सयम और चितन की प्रभा से आचार्य भगवन् का सम्पूर्ण व्यक्तित्व आलोकित रहता था। आपका मुखमण्डल ऐसे दिव्य आभामण्डल से दीप्त रहता था कि जिसकी भी दृष्टि उस ओर उठती थी उसका हृदय तक प्रकाशमान हो जाता था। उनका सामना होते ही कुविचार पलायन कर जाते थे और सद्भावो का बीजारोपण हो जाता था। बलाई जाति द्वारा कुव्यसनो का त्याग कर सुसस्कारित जीवनचर्या की ओर अग्रसर होना आचार्यश्री की ऐसी ही दिव्य प्रेरणा-शक्ति का प्रमाण है। आपके सान्निध्य मे जो तप हुए, मानवकल्याण के विविध कार्य जो आपकी प्रेरणा से प्रारभ हुए तथा चतुर्विध सघ का जैसा उत्थान हुआ वह आपके दिव्य व्यक्तित्व का ही प्रताप था।

वचन-सिद्धि के साथ ही चमत्कारी शक्तियों से भी आप सम्पन्न थे। ऐसी अनेक घटनाएँ श्रावको के हृदयपटल पर अकित हैं जो आपके स्पर्श, दर्शन और वचन के चमत्कारी परिणाम के विवरण प्रस्तुत करते हैं। बन्द आँखो का खुल जाना, असाध्य रोगो का दूर हो जाना, सकट मे रक्षा हो जाना, कार्य की पूर्व-प्रेरणा प्राप्त हो जाना जैसे अनुभवो के अगणित सस्मरण आपके भक्तो की जिह्वा पर रहते है। आपके आशीर्वाद अथवा मागलिक श्रवण की बात तो दूर, आपकी पद-रज तक दु ख-दर्द निवारण करने की अनोखी शक्ति रखती थी इसीलिये श्रद्धालु जैनेतर बधु भी उसे पोटलियो मे सुरक्षित कर लिया करते थे। लोग आपकी शरीर सम्पदा की बात करते है, आपका शरीर, स्वर, लक्षण, व्यजन जैसे अच्छे सामुद्रिक शास्त्रीय गुणो से परिपूर्ण था। पाँचो इन्द्रियाँ सयम-पालन करने और करवाने मे निपुण थी, शारीरिक क्षमता ऐसी थी कि घण्टो प्रवचन स्थल पर विराजते, प्रवचन देते, गोचरी हेतु अथवा दर्शन देने पधारते, यहाँ तक कि सेवा भावना से परिपूर्ण होने के कारण तथा सयमी जीवन की मर्यादा का पालन करने हेतु छोटा से छोटा काम भी अपने हाथो से करने को तत्पर रहते, परन्तु थकान का कोई चिह्न प्रकट न होता था।

वचन सम्पदा का अक्षय भण्डार आपके पास था। किस व्यक्ति से कब, कहॉ, कैसे, क्या बात, कैसे कहनी है, वे भली प्रकार जानते थे। नन्हें बच्चों से लेकर प्रौढ और बुजुर्ग तक इस सम्पदा से कृतकृत्य होते रहते थे। वे बहुत अधिक बोलने के आदी नहीं थे। जो कुछ कहना होता था'वह सयत भाषा मे एव स्पष्ट शब्दो मे स्नेहपूर्वक वे ऐसे कह देते थे कि लोग, अपने मतव्य के प्रतिकूल होने के बाद भी, उसका बुरा मानना तो दूर उससे सहमत होते देखे जाते थे। ऐसा इसलिये भी होता था कि उनके कथन पूर्णत निष्पक्ष, धर्मानुकूल, व्यवस्था एव अनुशासन की दृष्टि से उपयुक्त एव समय तथा परिस्थिति के अनुकूल होते थे। उनके पास से कभी कोई असतुष्ट होकर नहीं लौटा। उनके वचनो तथा निर्णयों को पूर्ण प्रामाणिक एव उचित मान कर सभी सहर्ष स्वीकार करते थे। अपनी अमूल्य मति सम्पदा, अतुलनीय न्याय-बुद्धि, निर्मल विवेक तथा उत्कट आगमिक ज्ञान द्वारा प्रेरित आचार्यप्रवर अपने निर्णयों पर अटल रहते थे। आपके इन्हीं गुणों ने आपको चतुर्विध सघ का ही नहीं जैनेतर समाजो का भी अप्रतिम मार्गदर्शक बना दिया था।

आचार्यप्रवर की सग्रह परिज्ञा सम्पदा भी अद्भुत थी। स्वाध्याय, ध्यान, साधना, ज्ञानार्जन तथा शिष्य सम्पदा का सग्रह करने का विशिष्ट परिज्ञान आपको उपलब्ध था। इतना बड़ा शिष्य समुदाय, अति विशाल भक्त समुदाय, सुविशाल दीक्षित सत सख्या। आश्चर्य होता है आपकी ऐसी अलौकिक सम्पदा पर! रतलाम में एक साथ 25 दीक्षाएँ, बीकानेर में 21, अहमदाबाद और ब्यावर में 15-15 दीक्षाएँ अपने आप में कीर्तिमान हैं। अपने पवित्र अवदान से आपने निश्चय ही भगवान् महावीर की पाट परम्परा को गौरवान्वित किया। उसी परम्परा के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये अपने ही द्वारा दीक्षित, शिक्षित, परीक्षित सयम के सजग प्रहरी, तपोपूत, प्रशातमना, शास्त्रज्ञ, परमपूज्य श्री रामलालजी म सा को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर आपने चतुर्विध सघ का तो परम उपकार किया ही है, धर्मप्रभावना की महती प्रगति का द्वार भी उन्मुक्त कर दिया है। ऐसे अप्रतिम धर्म-नायक कभी युगो मे अवतरित होते है और अपने प्रदेय से सम्पूर्ण मानवता को कृतकृत्य कर जाते है। ◆

साध्वी सत्यप्रभा

आचार्य श्री नानेश और उनके चातुर्मास . अनवरत उपलब्धियों का इतिहास
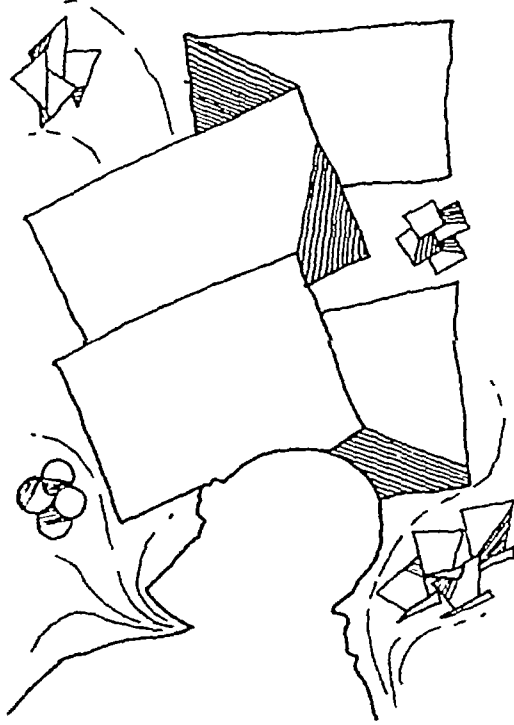
श्रमण सस्कृति मूल रूप मे अहिसाप्रधान है जो जीवरक्षा को प्राथमिकता देकर सासारिक प्राणियों को आत्मोत्थान एव धर्माराधना की दिशा मे अग्रसर करती है। इसकी इसी विशिष्टता को लक्ष्य मे रख कर निर्ग्रथ मुनि के जीवन की विशेष चर्या का विधान किया गया है। इस विधान मे चातुर्मास चर्या का विशेष महत्त्व है। चातुर्मास आषाढ़ पूर्णिमा से कार्तिक पूर्णिमा तक का समय होता है। इस अवधि म वर्षा ऋतु के कारण जीवो की बडी सख्या म उत्पत्ति होती है। छ काय के रक्षक, सयम-साधक, साधु अहिसा धर्म की परिपालना हेतु इसीलिये एक स्थान पर निवासित रहते है जिससे विराधना की स्थिति तो बने ही नहीं, साथ ही धर्म-आराधना के अवसर प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हों। अपनी इसी विशिष्टता के कारण चातुर्मास का काल अन्य कालो की अपक्षा धर्म जागृति हेतु विशेष रूप से उपयुक्त काल माना *गया है। समय का भी अपना महत्त्व होता है। कहा गया है, 'काले काल समाचरेत'—प्रत्येक कार्य को* उसके ही काल म करे। चातुर्मास के विशिष्ट काल म अन्य कालो की अपेक्षा उपलब्धियाँ अधिक होती हैं। ऐसा इसलिये भी है कि शेष आठ महीनो मे सतजन ग्रामानुग्राम विचरण करते रहते हैं। उस समय म स्थिरता के अभाव मे कोई भी स्थायी कार्य मुश्किल से ही हो पाता है। साथ ही धर्म आराधना आदि क लिये उपयुक्त वातावरण भी नहीं बन पाता जबकि वर्षावास के काल म स्थिरता रहने के कारण व्यवस्थित रूप से कार्य सम्पन्न होने की स्थितियाँ बनी रहती हैं।

आचार्य जेसी महान् विभूति का वर्षावास-काल जिस क्षेत्र को उपलब्ध होता है उस महाभागी क्षेत्र का तो कायाकल्प ही हो जाता है। वह क्षेत्र पुनीत तीर्थस्थल बन जाता है और आत्मोद्धार क अपूर्व अवसर उपलब्ध करान लगता है। धार्मिक-आध्यात्मिक वातावरण म विविध प्रकार की समस्याआ क समाधान प्रचुरता से प्राप्त हात हैं और अनोखी सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त हा जाता है। वैर-विरोध शान्त हा जाते हे और आत्मोत्थान की राह सलभ हो जाती है।

आचार्य नानेश के चातुर्मास अपनी उपलब्धियो की दृष्टि से अति विशिष्ट रहे। आचार्य पद-ग्रहण के उपरान्त उनका प्रथम पावस-प्रवास रतलाम मे हुआ और अतिम 37वा पावस-प्रवास उदयपुर मे हुआ। रतलाम से उदयपुर तक के ये सभी चातुर्मास अनेक प्रकार की उपलब्धियों से परिपूर्ण रहे। ऊर्जस्वल व्यक्तित्व के धनी आचार्य श्री नानेश के क्रान्तिकारी आचार्यत्व की छाप इन सभी चातुर्मासों की गतिविधियो पर अकित रही। इस स्थिति पर किचित् विस्तार से दृष्टिनिक्षेप उपयुक्त होगा।

आचार्यश्री का प्रथम चातुर्मास 1963 में रतलाम में सम्पन्न हुआ। यह चातुर्मास स्वरूप-बोध के प्रति जागृति का चातुर्मास रहा। जावरा, जावद और रतलाम श्रीसघों के बीच समरसता के सबध स्थापित हुए और सामाजिक क्राति का वातावरण निर्मित हुआ। इस चातुर्मास के दौरान आचार्यश्री के इस चिन्तन का स्पष्ट प्रभाव भी दृष्टिगोचर हुआ कि समाज रूपी देह का कोई भी अग यदि रुग्ण रहेगा तो उसकी पीड़ा शाति भग करनेवाली बनेगी। समाज रूपी देह का कोई भी अग निकृष्ट नहीं है। ऐसी ही भावनाओं से उत्प्रेरित हो समाज के दलित-शोषित वर्ग को स्वास्थ्य लाभ कराने हेतु उन्होने पुरुषार्थ किया, और रुग्णता के मूल कुव्यसनों से, समाज को मुक्त कराने का स्तुत्य प्रयास किया। परिणामस्वरूप समाज का वह रुग्ण अग भी स्वास्थ्य-लाभ कर पाया।

1964 में आचार्य श्री नानेश का द्वितीय चातुर्मास इन्दौर में सम्पन्न हुआ। विगत रतलाम चातुर्मास की उपलब्धियो को इस चातुर्मास में नई दिशा प्रदान की गई। समाज के शरीर को स्वास्थ्य-लाभ कराना एक उपलब्धि थी परन्तु यह स्वास्थ्य कैसे स्थायी बना रहे, इस हेतु क्या उपाय किये जायें, इस ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक था। उपाय, जो आचार्यश्री ने सुझाया, वह था—शरीर की शक्ति को क्षीण करने वाले तत्त्वों का शरीर से निष्कासन। ये तत्त्व होते है—जातिवाद का आग्रह, झूठे मान-सम्मान की भावना तथा मनुष्य-मनुष्य के बीच अपने-पराये का विचार। जातिवाद की भावनाएँ कुण्ठाओ और सकुचित विचारों को जन्म देती हैं जिन्हे मान-सम्मान की भावनाएँ और अपने-पराये का विचार पुष्ट करते है। इन्दौर चातुर्मास मे आचार्यश्री ने भेदभाव की दीवारों को तोड़कर मानव-मानव के बीच भ्रातृभाव की सरिता प्रवाहित कर दी। उनका उपदेश था—'किसी भी बात को हमे मान-सम्मान का विषय नहीं बनाना चाहिये।'

> वर्ष के आठ मास ग्रामानुग्राम विचरण करने वाले साधु-सत पावस के चार महीनों में स्थिरवास करते है, इस कारण चातुर्मास काल में धर्म-प्रभावना, आत्मसस्कार एव जीवन-परिष्कार के लिये अधिक अनुकूल एव प्रभावी स्थितिया उपलब्ध होती है। इस दृष्टि से आचार्य श्री नानेश के चातुर्मास विशेष उपलब्धियों से परिपूर्ण रहे। ऊर्जस्वल व्यक्तित्व के धनी आचार्यश्री ने अपने रतलाम के प्रथम चातुर्मास से उदयपुर तक के अपने 37वें एवं अन्तिम चातुर्मास तक सस्कार-क्रान्ति, समता-दर्शन, समाज-निर्माण और धर्माराधना की जो निर्मल गगा प्रवाहित की उसमें स्नान कर समाज धन्य हो गया।

शरीर का स्वास्थ्य निश्चित रूप से पहली आवश्यकता है परन्तु मन का स्वास्थ्य उससे भी पहले आता है। यदि भावनाएँ विकृत होती हैं तो शारीरिक स्वास्थ्य प्रदान करने वाली वस्तुएँ भी अपेक्षित प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पातीं और नादानी वश की गई कोई छोटी-सी त्रुटि भी बहुत बड़ा कहर ढा सकती है। विचारो की उदारता तथा क्षमा का आलेप विकट परिस्थितियों मे भी किस प्रकार रामबाण औषध का काम कर जाता है, यह प्रमाणित हो गया उस छोटी-सी घटना से जो मुस्लिम एव जैन समाज के बीच विग्रह की चिनगारी के रूप में उत्पन्न हुई थी परन्तु जिसे एक पक्ष की उदारता तथा दूसरे पक्ष की क्षमाशीलता ने बडी ज्वाला के रूप मे परिवर्तित होने से पूर्व ही शात कर दिया। 1965 मे रायपुर मे सम्पन्न तृतीय चातुर्मास में घटित इस घटना ने समाज के सभी वर्गो पर समत्व चिन्तन की गहरी छाप अकित कर दी। इस प्रकार रायपुर का यह चातुर्मास आध्यात्मिक उत्क्राति एव आत्मशोधन का अनोखा चातुर्मास बन गया।

सता का सान्निध्य और चातुर्मासो की योजना किसी भौतिक उद्देश्य की पूर्ति का माध्यम न बनती भी दिखाई दे तो भी विचार-परिष्कार, अध्यात्म-चिन्तन, सस्कार-वपन और सम्यक् विचारो के विस्तृत क्षेत्रो पर अपनी गहन छाप अवश्य छोड़ती हैं। धर्म-प्रभावना और पवित्र वातावरण के निर्माण के साथ मिल कर ये उपलब्धियाँ भी ऐतिहासिक महत्त्व की वस्तु बन जाती हैं। 1966 का राजनादगाँव चातुर्मास, 1967 का दुर्ग चातुर्मास, 1968 का अमरावती चातुर्मास तथा 1969 का मन्दसौर चातुर्मास ऐसी ही उपलब्धिया के उदाहरण बने। सामाजिक क्रान्ति की निरतरता का यह प्रभाव रहा कि जहाँ राजनादगॉव मे यौवन की दहलीज पर दाम्पत्य जीवन का प्रारभ करने वाला जोड़ा भी क्षणभगुर सुखों के आकर्षण स मुक्त हो विरक्ति की दिशा मे अग्रसर हो गया वहीं दुर्ग मे अजैन समाज जैन धर्म क सिद्धान्तो और आदर्शो से गभीरता से परिचित हुआ और जैन जीवनचर्या के प्रति उसम विशेष उत्साह उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार यदि अमरावती के चातुर्मास में आगम के सूक्ष्म एव तलस्पर्शी रहस्यो के उद्घाटन ने मूर्धन्य विद्वानों को भी चकित कर दिया तो वहीं शास्त्रीय ज्ञान के प्रकाश ने उनके हृदयो को आलोकित भी किया। मन्दसौर चातुर्मास राजनीति, राजनेतृत्व और राष्ट्र हितो के चिन्तन की दृष्टि से एक ऐसा अविस्मरणीय अवसर बन गया जिसने इस क्षेत्र म उदात्त चिन्तन एव सम्यक् विचारो की महिमा से जन-मानस को गहनता से परिचित कराया। उग्र तपस्याओं और धार्मिक जागरण के साथ दीक्षाओ का क्रम भी सभी स्थाना पर चलता रहा।

1970 का बड़ी सादड़ी में आठवा चातुर्मास एव 1971 में ब्यावर का नौवाँ चातुर्मास अपनी तरह से अनोखे रहे। प्रथम मे कटुतापूर्ण पारस्परिक सबधों को सौहार्द एव स्नेहपूर्ण सबधों म तो बदला ही गया, सामाजिक कुरीतियों और अध परम्पराआ की समाप्ति हेतु एक 19 सूत्रीय सामाजिक-सास्कृतिक कार्यक्रम को भी स्वीकृति प्रदान की गई जिसक अनुसार वैवाहिक सबधा म सौदेबाजी, दहेज एव फूहड प्रदर्शनों पर राक लगाई गई, मृत्यु-भोज की परम्परा समाप्त की गई, धर्म स्थाना में धार्मिक समारोहा म एव साधु-साध्वियों के सम्मुख विशेष मर्यादापूर्ण व्यवहार की आधारशिला रखी गई, धार्मिक एव सत् साहित्य के पठन-पाठन हेतु प्रेरणा प्रदान की गई तथा सास्कृतिक पुनर्निर्माण एव जागरण के अनेक बिन्दुओ के पालन की प्रतिज्ञाएँ ली गई। ब्यावर चातुर्मास मे ध्वनि विस्तारक यत्र के उपयोग के अनौचित्य पर सार्थक वैज्ञानिक चर्चा हुई तथा इस विचार को स्वीकृति प्राप्त हुई कि ध्वनि विस्तारक यत्र का उपयोग हिसापूर्ण कार्य होने के कारण धार्मिक एव नैतिक दृष्टि से सर्वथा अनुपयुक्त है।

'जीवन क्या है', यह प्रश्न चिरकाल से मनुष्य की जिज्ञासा का केन्द्र रहा है। विद्वानो, धर्माचार्यो एव नीतिशास्त्रियों ने इसकी अपनी-अपनी तरह से विवेचना की है परन्तु सम्पूर्ण विवेचना आज तक सम्भव नहीं हुई है। आचार्य श्री नानेश ने 1972 के अपने चातुर्मास में इसी विषय 'कि जीवन' को अपने विश्लेषण का विषय बनाया और पूरे चातुर्मास इसकी सम्यक् विवेचना की। उनका इस दिशा में चिन्तन कितना उदात्त और मौलिक रहा, यह कोई भी पाठक उनके जयपुर चातुर्मास के प्रवचनों के सकलन का अध्ययन कर जान सकता है। जयपुर का यह दसवाँ चातुर्मास इस दृष्टि से भी विशिष्ट रहा कि इसमें आचार्य प्रवर ने समता दर्शन की रूपरेखा प्रतिपादित कर उसके प्रचार-प्रसार का श्रीगणेश किया।

चातुर्मास जहाँ श्रावकों एव समाज के लिये धार्मिक जागरण का अवसर होते हैं वहीं वे आध्यात्मिक क्रान्ति एव मुमुक्षु आत्माओ को दिशा-निर्देश प्रदान करने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं। इस दृष्टि से आचार्यश्री का 1973 का बीकानेर चातुर्मास, 1974 का सरदारशहर चातुर्मास, 1975 का देशनोक चातुर्मास और 1976 का नोखामण्डी चातुर्मास विशेष रूप से उल्लेखनीय रहे। प्रत्येक स्थान पर अनेक भागवती दीक्षाएँ तो सम्पन्न हुई ही, सामाजिक एव सघीय सामजस्य के सार्थक प्रयास भी किये गय। अपने सरदारशहर के चातुर्मास मे सावत्सरिक एकता स्थापित करने हेतु आपने स्पष्ट मतव्य प्रस्तुत कर दिया—'सावत्सरिक एकता हेतु निजी पकड़ को छोडते हुए तत्परता आवश्यक है। अगर सवत्सरी मनाने के बारे में सम्पूर्ण जैन समाज का एक मत बन सके तो बड़ी उपलब्धि हो सकेगी।

सावत्सरिक एकता की दृष्टि से अगर हमें अपनी परम्परा भी छोड़नी पड़े तो मै किसी पूर्वाग्रह को आगे नहीं आने दूँगा।' ऐसा मन्तव्य प्रकट करने वाले का चिन्तन कितना उदात्त था, बताने की आवश्यकता नहीं। ऐसे उदात्त और निर्मल हृदय वाले सत ही ऐसे कार्य करने मे सक्षम होते है जिन्हे लोग चमत्कार का नाम दे देते है। नोखा चातुर्मास के दौरान एक अधे को दृष्टि प्रदान कर आचार्यश्री ने ऐसा ही चमत्कारिक कार्य किया। वास्तव मे यह अपनी दिव्य ऊर्जा को अन्य के शरीर मे प्रवाहित करने का ही कार्य था जो आचार्य श्री नानेश जैसे अलौकिक शक्ति-सम्पन्न सिद्ध की कृपा का ही परिणाम हो सकता था।

आचार्यश्री का व्यक्तित्व अत्यत प्रखर एव प्रभावशाली था। उनकी तपोसाधना एव ज्ञान-गरिमा से प्रभावित होकर भव्य आत्माएँ सयममार्ग पर अग्रसर होने के लिये प्रेरित होती थीं। इस प्रकार दीक्षाएँ उनके चातुर्मासो की विशिष्ट उपलब्धियाँ होती थीं यद्यपि अन्य अवसरों पर भी दीक्षाएँ सम्पन्न होती रहती थीं। इस प्रकार चातुर्मास चाहे गगाशहर-भीनासर (1977) का हो, जोधपुर (1978) का हो, अजमेर (1979), राणावास (1980) या उदयपुर (1981) का, भागवती दीक्षाएँ सभी स्थानो पर सम्पन्न हुईं। जोधपुर चातुर्मास की विशेष उपलब्धि थी जन जागृति और सामाजिक क्रान्ति की एक पचसूत्रीय योजना। इस योजना के पाच सूत्र थे—समानता में आस्था, गुण-कर्म आधारित वर्गीकरण मे आस्था, व्यक्तिगत जीवन की शुद्धि का अभ्यास, गरीब-अमीर विभाजक सामाजिक चिन्तन का परित्याग और नियमित दिनचर्यापूर्वक समता भाव की साधना। अजमेर वर्षावास के दौरान अन्तर्राष्ट्रीय बाल वर्ष के अवसर पर बाल शिक्षा पर जो विद्वत् गोष्ठी सम्पन्न हुई उसने बाल-शिक्षा के क्षेत्र मे नूतन चिन्तन की आधारशिला रखी। राणावास वर्षावास के दौरान चिन्तन के नौ क्रान्तिकारी सूत्रो का प्रवर्तन किया गया। उदयपुर वर्षावास की प्रेरणा वहाँ आगम, अहिसा एव प्राकृत शोध सस्थान की स्थापना के रूप मे फलीभूत हुई। उदयपुर में ही ब्रह्मचर्य व्रत अभियान, दहेज-उन्मूलन अभियान और आदिवासी जागरण अभियान की एक त्रिमुखी योजना प्रारभ की गई।

सन् 1982 मे अहमदाबाद मे आचार्यश्रीजी का 20वाँ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। यहाँ 15 मुमुक्षु आत्माओं ने आचार्यश्रीजी की पावन नेश्राय मे प्रव्रज्यापथ स्वीकार किया। नवरगपुरा मे बरवाला सम्प्रदाय के आचार्य चम्पकमुनिजी म सा तथा दरियापुरी सम्प्रदाय के आचार्य श्री शातिलालजी म सा से आपका पावन मिलन हुआ जिसके परिणामस्वरूप अनोखी ज्ञान गगा प्रवाहित हुई। आचार्यश्री ने स्वय प्रवचन, वाचना, प्रश्नोत्तर, तत्त्वचर्चा एव वार्तालाप द्वारा धर्म, अध्यात्म एव शास्त्रों के गूढ़ प्रसगो की सरल एव रोचक व्याख्या कर श्रावको पर विशेष उपकार किया। इसी वर्षावास के दौरान आचार्यश्री ने समीक्षण ध्यान पद्धति का प्रकाश किया और एक छ सूत्रीय योजना प्रस्तुत की। इस प्रकार अहमदाबाद का उनका यह वर्षावास विशेष महत्त्व का रहा।

1983 में भावनगर में श्री चम्पक मुनिजी के साथ जो चातुर्मास सम्पन्न हुआ उसमे शास्त्रोक्त समाचारी तथा सयमित जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से उपयोगी एक पन्द्रह-सूत्रीय आचार सहिता की पालना का सयुक्त रूप से निवेदन किया गया। 1984 के बोरीवली के बाईसवे चातुर्मास मे धर्म के सही रूप, विश्व शाति एव श्रमण सस्कृति की सुरक्षा जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर विशेष प्रवचनों द्वारा उन्होने जनता का मार्गदर्शन किया। अपने घाटकोपर (बम्बई) के तेईसवें चातुर्मास में आचार्यश्री ने लाउड स्पीकर के उपयोग के विवादास्पद विषय पर खुल कर चर्चा की और युक्ति-युक्त विचारो द्वारा श्रावकों की शकाओं का समाधान किया। सावत्सरिक प्रतिक्रमण के प्रसग पर उन्होंने अपने मौलिक विचार रखे और शुद्ध आचरण की महिमा प्रतिपादित की। उन्होंने स्पष्ट किया कि सच्चा आनद शुद्ध आचरण मे ही है तथा आदर्श कथन का विषय न होकर प्रयोग का विषय बनना चाहिये। मनुष्य की निष्ठा और भावना को उन्होने तर्क और औपचारिकता से बड़ा बताया।

सस्कार क्रान्ति की आवश्यकता को आचार्य श्री नानेश ने भली प्रकार समझा था। वे जानते थे कि धर्म, अध्यात्म, ज्ञान और मानवता की दिशाओं में तब तक अपेक्षित प्रगति नहीं हो सकती जब तक लोगों के सस्कार सुधर नहीं

जाते। 1986 के अपने जलगॉव चातुर्मास से ही इस दिशा मे अभियान की जो तैयारी उन्होने प्रारभ की थी वह उनके 1987 के इन्दौर चातुर्मास मे एक अभियान के रूप में फलवती हुई। अपने इस पच्चीसवे चातुर्मास को 17 सप्ताहो में बॉट कर उन्होने न केवल सस्कार क्रान्ति के विविध पक्षो पर गभीर प्रवचन दिये वरन् समता समाज रचना के अपने आदर्श की भी व्यापक व्याख्या की। सुसस्कारो का प्रस्फुरण व्यक्ति को सामान्य से विशिष्ट की ओर, पतनोन्मुखी प्रवृत्तियो से उन्नतिशील प्रवृत्तियो की ओर, सासारिकता से आध्यात्मिकता की ओर तथा नश्वर से शाश्वत की ओर ले जाता है। ऐसा ही कुछ 1988 के रतलाम चातुर्मास मे हुआ, जहॉ एक साथ 25 दीक्षाओ का एक ऐसा अनोखा कीर्तिमान स्थापित हुआ जिसने 500 वर्ष पूर्व के इतिहास की पुनरावृत्ति की। कानोड़ (1989) और चित्तौड़गढ़ के (1990) 27वे एव 28वे चातुर्मास सस्कार क्रान्ति को आगे बढ़ाने की दृष्टि से ही नहीं, ज्ञान-साधना एव तप साधना की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण रहे।

1991 मे पीपल्या कला में आचार्यश्री का 29वॉं चातुर्मास सम्पन्न हुआ। इस चातुर्मास मे समीक्षण ध्यान साधना के प्रयोगों से परिचित होने का जन समाज को अवसर मिला। *जैन तत्त्वज्ञान स्नातक शिविर* का आयोजन इस चातुर्मास की एक अन्य उपलब्धि थी। 1992 का उदयरामसर का 30वॉं चातुर्मास ग्रामीण अचल मे आयोजित होने वाला विशेष चातुर्मास था। इस चातुर्मास में 'आगम पुरुष' का लोकार्पण सम्पन्न हुआ। 1993 के देशनोक, 1994 के नोखा मण्डी तथा 1995 के बीकानेर चातुर्मासों मे धर्म-प्रभावना, सस्कार क्रान्ति तथा समाज निर्माण की अभिनव दिशाओं मे प्रगति हुई। देशनोक चातुर्मास के दौरान 'समता शिक्षा सेवा सस्थान' की स्थापना हुई तथा जैन समाज की शोध पत्रिका समता सौरभ का प्रकाशन आरभ हुआ।

बीकानेर के उपनगर गगाशहर-भीनासर मे 1995 मे आचार्यश्री का 34वॉं चातुर्मास सम्पन्न हुआ। इस चातुर्मास की विशिष्ट उपलब्धि स्वाध्याय शिविर का आयोजन था। यद्यपि आचार्यश्री का स्वास्थ्य लगातार गिरता जा रहा था तथापि अपने अद्भुत आत्मबल का प्रदर्शन कर उन्होने लोगो को चकित कर दिया। इसी मनोबल का परिणाम था कि वे अपना 35वॉं चातुर्मास ब्यावर (1997) में सम्पन्न कर 36वॉं एव 37वॉं चातुर्मास सम्पन्न करने के लिये सुदूर उदयपुर तक की यात्रा कर सके। उनके इस अनोखे आत्मबल ने ही उन्हे सतत् जाग्रत रखा और जब 1998 मे उन्होने अपने निर्वाण का समय निकट आया देखा तब सल्लेखना सथारापूर्वक देहत्याग का अनुपम मार्ग अपनाया। उनका अवसान धर्म और अध्यात्म जगत् के लिये तो एक भीषण क्षति है ही, साधना और सामाजिक पुनर्निर्माण की दृष्टि से भी अपूरणीय क्षति है। साधुमार्ग एव श्रमण सस्कृति को अपने अवदानों से उन्होंने गभीरता से प्रभावित किया। सतोष की बात यह है कि चातुर्मासों से सबधित उनका प्रवचन साहित्य प्रकाशित एव अप्रकाशित रूप में सुरक्षित है। अत यह आशा की जा सकती है कि वह सम्पूर्ण साहित्य ग्रन्थावली के रूप में शीघ्र ही उपलब्ध हो सकेगा। उनके आदर्शो के अनुरूप समाज-व्यवस्था एव साधना पद्धतियों के अनुसरण के लिये यह आवश्यक भी है कि वह साहित्य समग्र रूप मे उपलब्ध हो। एक दिव्य सत, अनोखे क्रातिदर्शी धर्माचार्य को यह सच्ची श्रद्धाजलि भी होगी जो प्रेरणा का स्रोत तो बनेगी ही, व्यसनमुक्त सुसस्कारित समता समाज की स्थापना में भी सहायक होगी। ◆

साध्वी अर्चना

क्रान्तदर्शी आचार्य . नानेशाचार्य

महामानव के रूप मे अवतरित होने वाली आत्मा जब अपने विकास की चरम अवस्था मे पहुँचती है तब उसके धारक का जीवन स्व-पर कल्याण का आदर्श बन जाता है। तब जीवन का प्रत्येक क्षण विशिष्ट उपलब्धियो से परिपूर्ण होने के कारण वह ऐसी मोहनीय शक्ति से परिपूर्ण हो जाता है कि अपने आसपास के परिसर को ही नहीं, दिग्-दिगन्त तक के प्राणों को आकर्षित करने लगता है। तूफानो और आँधियो के बीच साहस और धैर्य के साथ ऐसा व्यक्ति अपने क्रान्तिकारी कदमों को अनवरत आगे बढ़ाता रहता है और जगत् को कोई अनोखा अवदान दे जाता है। आचार्य नानेश एक ऐसे ही महायोगी थे जिन्होंने 'नाना' रूपों में सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति का अवदान दिया। उन्होने चेतना मदिरों मे श्रद्धा के शत-शत दीप प्रज्वलित कर आस्थाहीन हृदयो को ज्योतिर्मय किया। वैविध्यपूर्ण जग-जीवन को प्रभावित करने वाले ऐसे आचार्यश्री का जीवन निश्चय ही बहुआयामी था।

आध्यात्मिक धरातल पर, धर्म के मच पर और आराधकों के हृदयों में उन्होंने अपने प्रखर व्यक्तित्व की अमिट छाप तो छोड़ी ही, चेतना को नयी दिशा भी प्रदान की। सुख और दु ख के बीच से गुजरते हुए अनुभूतियों का सचय कर आत्म साधना के साथ जन-कल्याण की दिशा में उन्होंने जो चरण बढाये, वे समय की सिकता पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं।

करुणा के देवता

उनके व्यक्तित्व के जिन अनेक रूपो ने समाज को आकर्षित किया उनमे एक था करुणा के देवता का रूप। बम्बोरा ग्राम के बाहर झाड़ियों मे फँसे मेमने को उन्होंने देखा। सध्या का समय था और कोई भी व्यक्ति दूर तक कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। प्रश्न जीव-रक्षा का था। करुणा का अवतार देवता उसे निस्सहाय कैसे छोड़ देता ? जीव-रक्षा को प्रमुख धर्म मानने वाले करुणा के देवता का हृदय
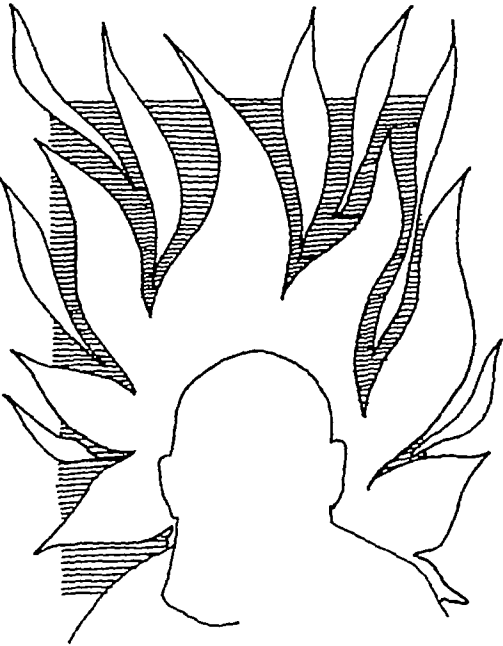
पसीज उठा और वह स्वय अपने हाथो से उसे निकाल कर गाँव में ले आया। उनके सवेदनशील हृदय के इस रूप को देख कर ग्रामवासी चकित रह गये। इस प्रकार उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि प्राणिमात्र की रक्षा सबसे बड़ा कर्त्तव्य है और लोकमर्यादा एव सयम मर्यादा से भी बढ़ कर है जीवन-रक्षा। दया के सस्कार उन्ह वचपन से ही उपलब्ध थे। जाति-पाति के भेद-भाव से कोसा दूर उनका निर्मल हृदय किसी भी व्यथित व्यक्ति को देख कर द्रवित हो जाता था, आँखो से अश्रुधारा फूट पड़ती थी और वे सहानुभूति से ओतप्रोत होकर सहायतार्थ दौड़ पड़ते थे। बूढ़ी माँ-बहिनों के पानी से भरे घड़े उनके घर तक पहुँचाने के लिये उनके चरण गतिमान हो जाते थे। शैशवावस्था के ये सस्कार विस्तार पाते गये ओर जब उन्होने मानवों के एक वर्ग को अस्पृश्य तथा दमित और शोषित अवस्था में देखा तव उनके हृदय की करुणा का समुद्र उद्वेलित हो उठा। विषमता के इस विष का प्रतिकार कर उसे समानता के स्तर पर लाने का उन्होंने पुरुषार्थ किया। अपने प्रवचनो की पावन गगा म स्नान करा कर उस अस्पृश्य बलाई वर्ग के तन, मन और जीवन को पवित्र किया, उसे विविध प्रकार के कुव्यसनों से मुक्त किया, गो-भक्षको को गो-रक्षक बनाया और अहिसा, सत्य और सम्यकत्व का पाठ पढ़ा कर उसे 'धर्मपाल' बना दिया। ऐसी क्रान्ति, जो आचार्य प्रवर के सवेदनशील हृदय से प्रारभ हुई थी, मानव-इतिहास की एक अनोखी घटना थी।

आदर्श शिष्य

वे शिष्य भी थे तो अनोखे। सयम के महापथ को स्वीकार कर, मुनि रूप मे वे गुरु के चरणों में सर्वतोभावेन समर्पित हो गये थे। विनय, विवेक, गुरु-भक्ति, दृष्टि-सयम और अनुशासनबद्धता जैसे शिष्यत्व के गुणा को उन्होने चरित्र एव जीवन म आत्मसात किया। शास्त्रों मे प्रभ महावीर और गौतम स्वामी के गुरु-शिष्य सबध का जो आदर्श चित्रण मिलता हे उसे मुनि नानालाल ने अपने जीवन में साक्षात् किया और यशस्वी आचार्य श्री गणेशीलाल जैसे अप्रतिम गुरु के अप्रतिम शिष्य के रूप मे अपनी छवि बनाई। गुरु भी अनोखे कलाकार थे। उन्होने अपने इस शिष्य को पहले गहनता से परखा तदुपरान्त अपने कर कमलों से तराश कर उसे भव्य रूप प्रदान किया। मुनि जीवन में गुरु-सेवा, सयम-साधना और गहन अध्ययन को यदि मुनि नानालाल ने अपना लक्ष्य बनाया तो गुरु गणेश ने भी होनहार, विनयवान, समर्पित, श्रुत-सम्पन्न, शील सम्पन्न, आस्थावान मुनि नानालाल को अपने जीवन के सध्याकाल में साधना से प्राप्त अनमोल निधि का स्वामी घोषित कर दिया। *'हुक्म गादी'* के अधिकारी के रूप में *'नाना'* से *'नानेश'* बनने वाले महासाधक का जीवन तव गुरुतर दिशा की ओर अग्रसर हुआ।

> *आचार्य नानेश एक ऐसे महायोगी थे जिन्होंने 'नाना' रूपों में सामाजिक-सास्कृतिक क्रान्ति का अवदान दिया। उन्होंने चेतना मदिरों में श्रद्धा के शत-शत दीप प्रज्वलित कर आस्थाहीन हृदयों को ज्योतिर्मय किया। आध्यात्मिक धरातल पर, धर्म के मच पर और आराधकों के हृदय में उन्होंने अपने प्रखर व्यक्तित्व की अमिट छाप तो छोड़ी ही, चेतना को नयी दिशा भी प्रदान की। आत्म साधना के साथ जनकल्याण की दिशा में उन्होंने जो कदम बढाए वे समय की सिकता पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं।*

ऊर्जस्वल गुरु वात्सल्य रस से शिष्य को पूरी तरह भर देता है और आदर्श शिष्य उसे अपनी जीवनधारा बना लेता है। गुरु-शिष्य का सवध अन्य सबधो से विलक्षण होता है। यह सबध कैसे जुड़ता है, कैसे पुष्ट होता है और कैसे शिखर पर पहुँचता है, कुछ पता नहीं चलता। परन्तु यह बात सभी गुरु-शिष्यों पर लागू नहीं होती। मुनि नानालाल ऐसे आचार्य वने जिन्होंने गुरु और शिष्य दोनो के आदर्श रूपो को अपने जीवन और चरित्र म साकार किया।

आदर्श आचार्यत्व

'णमो आयरियाण' में आस्था रखने वाले इस शिष्य ने आचार्यत्व के गुरुतर दायित्व का जिस कौशल से निर्वाह किया, वह अद्भुत था। चतुर्विध सघ की सम्पूर्ण बागडोर हाथ मे आ जाने के बाद अपनी योग्यता से उसका सचालन कर उन्होंने उसे एक आदर्श

चतुर्विध सघ बना दिया। उनमे नेतृत्व की अनुपम क्षमता थी। कुशल नेतृत्व हेतु जितने भी गुण होने चाहिये, वे सभी अपनी पूर्ण प्रखरता मे उनमे विद्यमान थे।

इतने विशाल सघ का सयम-साधना के साथ अनुशासनात्मक ढग से सचालन उनकी योग्यता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। लाखो उपासको के सघ को अनुशासनबद्ध रख पाना स्वय मे बड़ी उपलब्धि होती है, फिर सैकड़ों मुमुक्षु आत्माओं को सयम का परिधान देकर, उनसे कठोर मुनिचर्या का पालन करवाते हुए उन्हे आत्मोत्थान के मार्ग पर सतत गतिमान रख पाना बिरले आचार्य के लिये ही सभव होता है। आचार्यश्री ऐसा पूर्ण वत्सल भाव से कर पाये। यही कारण रहा कि प्रत्येक शिष्य समर्पित भाव से उनके निर्देशो का पालन करता रहा। ऐसे नवनीत हृदय आचार्यश्री को कौन नहीं चाहेगा? कौन उनके प्रति तन, मन और जीवन से समर्पित नहीं हो जायेगा? बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढग से पुत्रवत शिष्यो को रत्नत्रयी साधना में प्रवृत्त रख पाना बड़ी बात थी। आचार्यश्री की सघ-कल्याणकारी भावना अनोखी थी। असीम थी उनकी योग्यता और अपरिमित थी उनकी क्षमता। सर्व के हितैषी बन कर आचार्य के पद को उन्होंने गरिमामण्डित तो किया ही, हुक्म पाट को कीर्ति के नये क्षितिज तक पहुचा भी दिया। यही नहीं, इस पद के उपयुक्त योग्यतम उत्तराधिकारी के चयन के कठिनतम एव चरम दायित्व का निर्वाह करते हुए, राम मुनि की खोज कर उन्हें युवाचार्य के पद पर प्रतिष्ठित भी किया। ऐसे अमाय, आत्मबल के धनी आचार्य नानेश अतिम समय तक सक्रिय रहे और जन-जन के कल्याण हेतु सतर्क रहे। यही कारण है कि जहॉ-जहॉ भी आपका पदार्पण हुआ वह स्थान तीर्थ बन गया और जो भी आपके सम्पर्क मे आया, स्वय एक प्रज्वलित दीपक बन गया।

समता-साधक महायोगी

आचार्य नानेश ने समता योग को अनुपम तपाराधना द्वारा सिद्ध किया था। उन्होने अतीत के इतिहास का परिचय तो प्राप्त किया ही था क्षमावीर प्रभु महावीर, गज सुकुमाल, स्कन्धक मुनि आदि के चरित्राचार से प्रेरणा भी प्राप्त की थी। जीवन का उन्हें गहन अनुभव था और सासारिक क्लेशो और पीड़ाओ की उन्हे व्यक्तिगत रूप से जानकारी थी। दु ख और पीड़ाए उन्होने स्वय भोगी थीं परन्तु उनके गरल को वे महादेव बन कर पी गये और अमृत समाज के लिये सुरक्षित कर दिया। अनुकूल-प्रतिकूल स्थितियो के प्रति समभाव रख कर आत्मानदी बने, वे सतत चलते रहे। बिरले ही समझ पाये कि यह सच्चा साधक, अवधूत महायोगी उच्चस्तरीय चेतना से सम्पृक्त अनोखी मस्ती के आलम मे सतत चलता जा रहा था। अपने साधना-स्पदित देह निर्झर से वे आत्म आरोग्यामृत प्रवाहित करते रहे। विजातीय तत्त्वो को पराभूत करने वाले उस पराक्रमी को आभ्यतर शत्रुओ/रोगो से भी लोहा लेना पड़ा परन्तु पीड़ा और कष्ट की प्रत्येक भगिमा को वह सहन करता गया और उफ तक नहीं की, सौम्य बदन पर विकृति के चिह्न भी उभरने नहीं दिये। तलहटी मे चक्रमण करने वालो की क्या सामर्थ्य जो उपमातीत ऊर्ध्वारोही चेतना को कपित या चलित कर पाते! इस अनोखे समता साधक की दीप शिखा ऑधी-तूफान में भी अविचल और अकम्प रहकर पथ से भटके राहगीरो को सतत रूप से आत्मोत्थान का मार्ग दिखाती रही।

अनोखा अवधूत

नाना नामधारी यह अवधूत समीक्षण ध्यान की अतल गहराइयों मे उतर चुका था। बाहरी दुनिया का हित-चिन्तन करता हुआ भी एक पल को भी वह आत्मचितन से दूर नहीं रह सका था और आत्म समीक्षण की निर्मल धारा मे सतत निमज्जन करता रहा था। उनके जीवन का सर्वोत्तम आयाम था—*आत्मरमण*। ध्यानस्थ दशा मे देहातीत होकर वे आत्मरमण की गहराइयों में खो जाते थे। जिसने भी उन्हे ध्यान की इस अवस्था मे देखा, उनके इस तेजस्वी ऊर्जस्वल रूप का दर्शन किया, वह धन्य हो गया। महाप्राण के आराधक के रूप में वे अपनी चेतना को सतत ऊर्ध्वगामी बनाते रहे तथा अप्रमत्त रहकर आत्मा को परिष्कृत करते रहे। परिणामस्वरूप अपने भौतिक अस्तित्व को शुद्ध, बुद्ध, प्रबुद्ध आत्मा मे रूपान्तरित कर सके।

नाना नाम जहाज

आचार्य नानेश के नाम का चिन्तन मात्र तारनेवाला बना। वे एक ऐसे महायागी थे जो अपने भक्तो के पास उनके सकटो के क्षणो मे अविलम्ब पहुँच जाते थे। *'जय गुरु नाना' का उच्चारण मात्र करने की देर लगती और सकटो से* छुटकारा मिल जाता। वे स्वय कवच वनकर श्रद्धालुओं और उनकी आपदाआ के वीच अवस्थित हा जाते थे। ऐसे महायोगी आचार्य नानेश यदि सभी के आराध्य वने तो यह कोई अनोखी वात नहीं थी। आस्थानिष्ठ हृदयों मे आराध्य नाना का *भव्य स्थान वना और भाव* पूजा से पूजित होकर अपने भक्तों के लिये वे भगवान वन गये। भक्ता के हृदय अश्रात श्रद्धा के स्वरा से निनादित होते रहते कि नाना गुरु का नाम लिया और मेरा काम हो गया। वे बने चिन्तामणि, कल्पतरु, अवढरदानी, अर्चनीय, वदनीय, प्रात स्मरणीय, जन-जन की आस्था के केन्द्र।

क्रान्ति के सूत्रधार

सामाजिक जीवन की विकृतियों और अपसस्कृति के प्रसार से आचार्यश्री वहुत चितित थे। *उन्हाने वस्तुस्थिति का सम्यक मूल्याकन किया और विकृतियो* के जाल मे फँसे मनुष्य का विमुक्त होने के प्रभावी सूत्र प्रदान किये। धर्मपाल प्रतिवोधक के रूप में उन्हाने लाखो लोगों को कुव्यसनों से मुक्त कराया और दहेज, मृत्यु भोज, अशिक्षा, भ्रष्टाचरण आदि से समाज को मुक्ति दिलाने हेतु सतत प्रयत्नशील रहे। व्यसनमुक्ति, सस्कार निर्माण तथा समता भाव के प्रचार हेतु उन्हाने अथक श्रम किया तथा विविध मचों, सगठनो एव सस्थानो के माध्यम स इस हेतु प्रेरणा प्रदान की। जिन स्थानों पर भी उनका प्रवास हुआ, वे स्थान तीर्थ क्षेत्र वन गये। ऐसी थी उस महायोगी की तप साधना।

मृत्युजय साधक

वह साधक निश्चित रूप से मृत्युजय था इसलिये सघीय धरातल से अपने सभी *क्रिया-कलापो को समेट कर उसने महाप्रयाण की तैयारी महीनों पूर्व से* प्रारभ कर दी थी और आहार से अनाहार की ओर बढते हुए देह देवल मे विराजमान आत्मतत्त्व को सूक्ष्मतर करना प्रारभ कर दिया था। आत्म विस्मृति की उनकी *दिखनेवाली अवस्था वास्तव म तपश्चर्या की पूर्णता की स्थिति तक* पहुँचने की पीठिका थी और फिर वे अध्यात्म की उस अतल गहराई तक पहुँच गये जहाँ तक वाह्य जगत की परछाँई भी नहीं पहुँच पाती है। यह आत्मा की पूर्ण सजगता की स्थिति थी जिसमे उसने प्रस्थान की तैयारी की और जैसे ही अतिम क्षण आया, अपनी साधना-सहयोगिनी देह को अहिकचुकवत त्याग कर वह शुद्ध-प्रवुद्ध आत्मा अतिम यात्रा पर चल पड़ी। और इस प्रकार साधुमार्ग के स्वर्णिम इतिहास मे एक पृष्ठ और जुड़ गया जो एक आत्मजयी वीर की गौरवगाथा से मण्डित था—

ओ प्रकाश पथ के महायात्री
सुधर्मा रथ के निपुण सारथी,
साधना के नाना दीप जलाकर
आलोकित कर गये अवनि और अम्वर।

◆

भूपराज जैन

आचार्य श्री नानेश एक कालजयी व्यक्तित्व
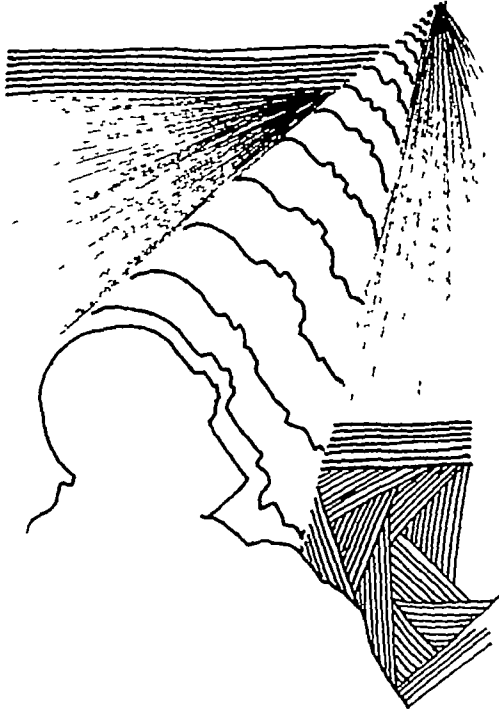
जीवन क्षणभगुर है और काल अनत। इस अनत काल के वक्ष पर अपनी चिरन्तनता का प्रमाण अकित कर पाना जीवन की सबसे बड़ी सफलता होती है। ऐसी सफलता जो बिरले मानव ही अपने कर्तृत्व द्वारा अर्जित कर पाते है उनमे आचार्य श्री नानेश का नाम विशेष स्थान का अधिकारी है। विशेष स्थान का इसलिये क्योकि अपने चिन्तन को उन्मुक्त रख कर भी वे ज्ञान-तत्त्व के प्रत्येक सूत्र से जुड़े रहे और वैविध्य की प्रत्येक भगिमा को समता की एकरूपता में ढालते रहे। उनकी यह व्यक्तिगत उपलब्धि एक ऐसा सामाजिक प्रदेय बनी जिसका चिरस्थाई महत्त्व तो है ही, वह उनके कालजयी होने का प्रमाण भी प्रस्तुत करती है।

आखिर टिकता क्या है? अशाति, सघर्ष, विषमता अथवा समन्वय, शाति और समभाव? अशाति का विकल्प है शाति, कठोर का कोमलता, कराल का मृदुता और विषमता का समानता। इस समता को शैव दर्शन समरसता के जिस आलोक में परिभाषित करता है उसमें अमृत-विष, दु ख-सुख, हानि-लाभ, सब बराबर हो जाते हैं। यही पूर्णता है जिसे *'भूमा'* कहा गया है—*'भूमा वै सुखम् नाल्पे सुखमस्ति'* अर्थात् पूर्णता मे ही सुख है थोड़े में नहीं। जीवन की आशिक झाँकी दु खमय हो सकती है किन्तु आगा-पीछा सब मिला कर देखने में दु ख भी सुख महसूस होता है। यह वह गूढ़ दार्शनिक रहस्य है जिसकी विवेचना हमारे ऋषि-महर्षि, सत-आचार्य, दार्शनिक-विद्वान सदा से करते आये है। भारतीय सस्कृति के सूत्र वाक्यों *'वसुधैव कुटुम्बकम्'* और *'आत्मवत सर्व भूतेषु'* के माध्यम से साम्य भाव या समता भाव का शखनाद करता रहने वाला चिन्तन इसके पीछे छिपी सैद्धातिकता से बड़ी सीमा तक ग्रस्त ही रहा है। इस दार्शनिक सत्य को अनुगमनीय बनाने के लिये इसकी सरल लौकिक निरूपणा आवश्यक रही है—ऐसी निरूपणा जिसमे मानव-मन की आस्था हो और जो प्रेरणादायी बन सके। समता दर्शन के प्रणेता के रूप में आचार्य नानेश ऐसा कुछ तो कर ही पाये इससे भी बढ कर समीक्षण

ध्यान और सयम साधना की पद्धतियो को उसके साथ सयुक्त कर उसकी प्रकृति को आधार भी दे पाये। अपन अस्तित्व की रक्षा के लिये तरलता को भी कोई आधार तो चाहिये ही होता है और स्निग्धता भी किसी रूप की अपेक्षा रखती है। इस दृष्टि से आचार्य श्री नानेश ने जैन दर्शन के मूल सत्य को ही अपनी तरह से निरूपित करने का सार्थक प्रयास किया।

जैन दर्शन प्रारम्भ से ही समता का प्रबल समर्थक, पक्षधर एव उद्घोषक रहा है। महावीर ने इसी समता को अपने आचरण एव व्यवहार म फलित किया था। उन्होंने ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, गरीब-अमीर का कोई भेद स्वीकार नहीं किया था और कहा था कि कर्म से ही व्यक्ति छोटा-बड़ा और ऊँचा-नीचा होता है—

'कम्मुणा वमणो होई, कम्मुणा होइ खत्तियो।'

अपने अच्छे-बुरे कर्म से ही व्यक्ति अच्छा-बुरा और छोटा-बड़ा होता है। इसलिए महावीर ने चाडाल पुत्र, हरिजन, डाकू, मछुआरे, वेश्या, पूर्वापराधी, चोर, आदि को अपने पथ में दीक्षित किया और सभी वर्गो के लोगों को अपना अनुयायी वनने का अवसर दिया। यह समता, समरस साधना या समत्व ही जैन धर्म की आधार शिला है।

आचार्य नानेश ने समय की नजाकत को समझते हुए दलित, अछूत, पतित एव अस्पृश्य मानी जान वाली वलाई जाति का उद्धार कर अपने समता समाज रचना के सिद्धान्त को व्यावहारिकता का बाना पहनाया एव धर्मपाल की सज्ञा स उन्हें अभिहित कर एक ऐसी अहिसक क्रान्ति का सूत्रपात किया, जिसने उस दलित जाति को न केवल ऊँचा उठाया अपितु व्यसन-मुक्त जीवन जीने का रास्ता बताकर उनके लिए शाति, सौख्य एव समृद्धि के द्वार उद्घाटित कर दिये। आज अस्पृश्य समझी जाने वाली बलाई एव खटीक जाति के हजारो लोग, जिनके हाथ अनेक जीवो की हत्या या वध के कारण खून से रगे हुए थे तथा शराब, मास, जुआ जैसे व्यसनों के कारण जो नारकीय जीवन जीने के लिए बाध्य थे, आज व्यसनो से पूर्ण मुक्त होकर अहिसक जीवन जी रहे हैं एव उनकी सन्तानें उच्च शिक्षा प्राप्त कर सम्माननीय पदों पर प्रतिष्ठित हैं। आचार्य नानेश ने समता सिद्धान्त के प्रयोग द्वारा यह एक ऐसा चमत्कार किया है, जो इतिहास मे स्वर्णाक्षरो मे अकित होगा। काल के भाल पर लिखा गया यह एक ऐसा अमिट लेख है जो उन्हें कालजयी के सिहासन पर भी अधिष्ठित करता है।

> *जीवन की आंशिक झाँकी दु खमय हो सकती है किन्तु आगा-पीछा सब मिलाकर देखने में दु ख भी सुख महसूस होता है। यह वह गूढ़ दार्शनिक रहस्य है जिसकी विवेचना हमारे ऋषि-मुनि, संत-आचार्य, दार्शनिक-विद्वान सदा से करते आये हैं। इस दार्शनिक सत्य को अनुगमनीय बनाने के लिये इसकी सरल लौकिक निरूपणा आवश्यक रही है—ऐसी निरूपणा जिसमें मानव-मन की आस्था हो और जो प्रेरणादायी बन सके। समता दर्शन के प्रणेता के रूप में आचार्य नानेश ऐसा कुछ तो कर ही पाये, इससे भी बढकर समीक्षण ध्यान और सयम-साधना की पद्धतियों को उसके साथ संयुक्त कर उसकी प्रकृति को आधार भी दे पाये। इस दृष्टि से उन्होंने जैन दर्शन के मूल सत्य को अपनी तरह से निरूपित करने का सार्थक प्रयास किया।*

आचार्यश्री का यह मानना था कि वर्तमान जटिल परिस्थितियो ने वैश्विक मानव मन को नितान्त अशान्त, तनावग्रस्त, आकुल-व्याकुल, उद्भ्रान्त एव दिग्भ्रमित कर दिया है। मन की अशान्ति सम्पूर्ण जीवन को खोखला एव निस्सार बना देती है। यह अशान्ति, यह व्यग्रता न केवल *हिसा को जन्म देती है बल्कि मानवता को पशुता* मे वदल भी देती है। अत जव तक मन को सशय-विहीन वनाकर तनाव-मुक्त बनाने का प्रयत्न नहीं किया जायेगा, वह निर्मल, स्वस्थ एव शात नहीं रह पायेगा। इसके लिए मन को साधना होगा। मन की यह साधना ही आचार्यश्री की समीक्षण-ध्यान-साधना है। जब तक हम अपने को दृष्टाभाव से देखकर अपनी असद् प्रवृत्तियो की समीक्षा नहीं करेगे एव उन पर विजय प्राप्त नहीं करगे, तव तक मन को शान्त रख पाना किसी भी प्रकार सभव नहीं होगा। पन्नवणा सूत्र के *'पन्ना*

समिक्खिए धम्म' को आधार बनाकर आचार्यवर ने समीक्षण ध्यान की प्रवृत्ति
निरूपण किया। प्रात काल, शुद्ध मन से एकान्त स्थान पर निर्बैर होकर, दृष्टाभ
अपनाकर दस मिनट से आध घटे तक भी यदि यह साधना की जाय तो निश्चि
ही चित्तवृत्तिया निर्मल होगी, अशान्त एव तनावग्रस्त चित्त शान्त एव स्थिर हो
और सारी स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। इसीलिए व्यष्टि से लेकर समष्टि तक इस
प्रयोग आज आवश्यक हो गया। कबीर ने भी कहा है—

निदक नियरे राखिये, आगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निरमल करे सुमाय।।

आत्म-समीक्षण या हमारा दृष्टाभाव ही ऐसा निदक है जो सदा अपने पास रहता है और यह बिना किसी आग्रह के मन को दोषरहित-निर्मल बना देता है। एक पुरानी कहावत 'हींग लगै न फिटकरी एव रग आवे चोखो' को समीक्षण-ध्यान का यह मार्ग चरितार्थ करता है। समीक्षण ध्यान मनुष्य के मन में समता का प्रादुर्भाव करता है तथा वैषम्य की, भेद की, ऊच-नीच की, छोटे-बड़े की खाई को पाटकर समत्व का निर्झर प्रवाहित करता है, जिसमे अवगाहन कर मन 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' से सराबोर हो जाता है। महावीर ने इसीलिए 'समियाए समणो होइ' कहा है—जो श्रमण समतामय नहीं है, जिसका आचरण समतामय नहीं है, वह कभी समाज को समता का पाठ नहीं पढ़ा सकता। आचार्यश्री के जीवन का प्रत्येक क्षण इसी समता ज्योति के प्रकाश से प्रदीप्त रहा एव अपने इसी आलोक से लक्ष-लक्ष लोगों के हृदयो को आलोकित किया। आचार्यश्री की कथनी एव करनी की एकरूपता ने भले ही अनेक बाधाओ, कठिनाइयों एव झझावातों को जन्म देकर उन्हें झकझोरा हो लेकिन यावज्जीवन वे मेरुवत अचल एव अडिग बने रहे। आचार्यश्री के उदार, अनुग्राही एव व्यापक दृष्टिकोण ने ही उनके विरोधियो एव आलोचको का न केवल मुह बन्द किया अपितु उन्हे परास्त भी किया। उनका सरल एव निराग्रही जीवन इस श्लोक को सार्थक करता है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेष कपिलादिषु।
युक्तिमद् वचन यस्य तस्य परिग्रह।।

सयम की उत्कट साधना, अस्खलित चारित्र्य एव शुद्ध-निर्मल आचरण ने उनके यश को निरन्तर प्रवर्द्धमान बनाया है।

समाहियस्सग्गी सिहा व तेय सा,
तवो य पन्ना य जस्सो वडढइ।

अग्निशिखा के समान प्रदीप्त एव प्रकाशवान उस अन्तर्लीन आत्म-साधक एव सयम के सुमरु का यश काल की चौहद्दियो, सीमाओं एव अवरोधको को लाघ कर आज कालातीत हुआ तो इसीलिये कि उन्होने अपनी विवेक की मशाल को सदा प्रज्वलित एव ज्योतित बनाये रखा और उसी आलोक मे, आत्मा की साक्षी मे, ऐसे निर्णय लिए जो समय की शिला पर अमिट अक्षरों में अकित रहेंगे। वे उठते-बैठते, सोते-जागते, चलते-फिरते सदा जाग्रत, अप्रमत्त एव अव्याहत रहकर विवेक की तुला पर अपने को निरन्तर तौलते रहते थे अत उनके निर्णयों ने सदैव सत्य की ही स्थापना की। 'सच्च खलु भगव' ही उनके लिए अभिप्रेत एव अभीप्सित था।

जय चरे, जय चिट्ठे, जय मासे जय समे।
जय धुजन्तो भासतो पाव कम्म न बधइ।।

मन, वचन और काया की एकरूपता ने उन्हे अविजित, अपराजेय एव अपौरुषेय बना दिया था। मनस्यैक, वयस्यैक, कायस्यैक ही महात्मा, महामानव एव महापुरुष होते हैं।

नाना निगमागमपुराणसम्मत की तरह उन्होंने अपने साहित्य का प्रणयन समाज की भलाई के लिए किया। उनका साहित्य कला-कला के लिए आदर्श को स्वीकार नहीं करता अपितु समाज के हित का साधन करने वाला है। वे अपने साहित्य द्वारा उस सप्रेषणीयता के पक्षपाती हैं, जो रचनाकार के उद्देश्य को श्रोताओं एव पाठको के हृदय मे समाविष्ट कर लोक कल्याण एव परहित के लिए प्ररित कर। लोक-मगल की उदग्रता एव उत्तुगता से परिवेष्टित उनका साहित्य जहा धर्म के उन शाश्वत सिद्धातो—समता, सहृदयता, उदारता एव उदाता का

उद्घोप करता है, वहीं चारित्र की निर्मलता, पवित्रता एव ऋजुता के साथ नैतिकता को प्रतिप्ठापित करता है। उनका समग्र प्रवचन साहित्य, कथा साहित्य एव काव्य इसी भावभूमि पर आधारित स्व-पर कल्याण का जाज्वल्यमान प्रतीक है। साहित्य क सवध म सत कवि तुलसीदास की टिप्पणी है—

> कीरति, मनिति भूति भल सोई।
> सुरसरिसम सव कह हित होई।

आचार्यश्री का सपूर्ण साहित्य इस कसौटी पर नितान्त खरा उतरता है। उनका साहित्य गगा की तरह नितान्त पावन, प्रेरणादायी एव लोकमगलकारी है। पाठको एव श्रोताआ के मन को वह न केवल निष्काम, निर्लोभी, निस्पृह एव निष्कलक वनाने में सहयोगी है अपितु अपनी रागात्मिका शक्ति एव सप्रेषणीयता स धर्मपरायण एव धर्मनिप्ठ वनाने में सक्षम है।

आचार्यश्री की दूरदृष्टि प्रत्येक क्षण की महत्ता को पहचानने वाली थी, वह जानती थी कि जो गया, वह कभी लौटकर नहीं आने वाला है, जो वीत गया वह व्यतीत एव अतीत हो गया है अत उनकी दृष्टि अनुपल, अनुक्षण जाग्रत एव अप्रमत्त रहती थी। 'समय गोयम मा पमायए' की पीठिका पर आधृत 'वे खणजाणिए पडिए' के साकार स्वरूप थे। वे जानते थे कि जिसने अपने को जीत लिया है वही सर्वश्रेप्ठ विजयी है, उसे कोई परास्त नहीं कर सकता, फिर काल भला उसका क्या विगाड़ सकता है ?

> 'अप्पाणमेव जुज्झहि कि ते जुज्झण वज्झओ।'

और जीवन-मरण उसी का श्रेष्ठ है, जो स्वहित के साथ परहित का साधन करता है—

> जीवितान्मरण श्रेष्ठ परोपकृतिवर्जितात
> मरण जीवित मन्ये यत्परोपकृति क्षमम्।

जा अखड आत्म-भाव की इस असीम विश्व मे स्थापना करता है उसे काल कभी खा नहीं सकता, मार नहीं सकता, नष्ट नहीं कर सकता। वह सार्वदेशिक, सार्वकालिक एव कालजयी होता है। इसीलिये आचार्य नानेश का यश एव व्यक्तित्व अक्षर, अजर, अमर एव कालजयी है।

◆

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार मनुष्य के विचारो पर उसके भोजन का विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसा भोजन वह करता है उसी के अनुसार उसके विचार बनते हैं और जैसे विचार बनते हैं उनके अनुसार ही वह आचरण करता है। अत भोजन का विवेक प्रथम आवश्यकता है।

—आचार्य श्री नानेश

साक्षात्कार

आचार्य पूज्य श्री रामलालजी म.सा. से
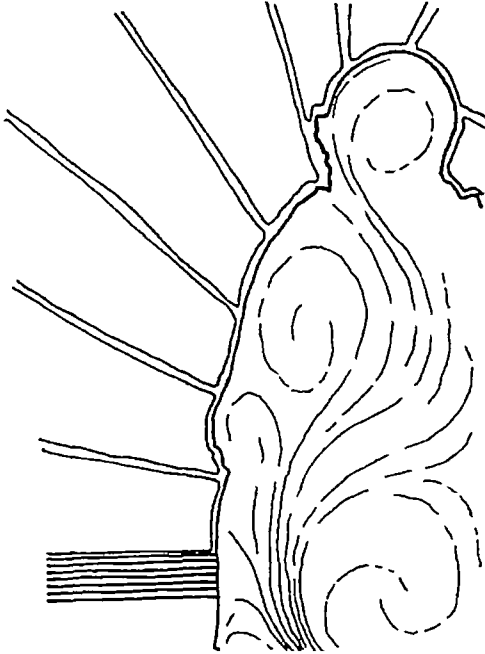
आचार्य श्री नानेश इस विगत होती हुई शताब्दी के एक विरल सिद्ध पुरुष थे। वे एक प्रतापी धर्माचार्य तो थे ही, एक बहुत बड़ी धार्मिक-सामाजिक क्रान्ति के उत्प्रेरक भी थे। इस शताब्दी के तीन चौथाई भाग से भी अधिक के वे साक्षी रहे थे। इस प्रकार इस शताब्दी के अपने 80 वर्षो के जीवन के जो 60 वर्ष उन्होंने धर्म प्रभावना मे व्यतीत किये थे वे इस शताब्दी के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वर्ष भी थे। सवत् 1996 मे उनके दीक्षा लेने का समय व्यापक राजनीतिक उथल-पुथल एव अन्तर्राष्ट्रीय अशाति का था। द्वितीय विश्वयुद्ध पूरी तीव्रता मे चल रहा था और देश को स्वतत्र होने मे अभी लगभग 7 वर्षो की देरी थी। 1942 का भारत छोड़ो आन्दोलन दीक्षित नानालाल के जीवन की प्रमुख राष्ट्रीय घटना थी। इसके उपरान्त वे पूरी बीसवीं शताब्दी स्वतत्र भारत के इतिहास तथा वैज्ञानिक-औद्योगिक युग के अतरिक्ष युग मे प्रवेश को देखते रहे थे। अत यह स्वाभाविक था कि एक धर्माचार्य के रूप में वे धर्म की मानवतावादी व्याख्या करते तथा उसे जन-कल्याण का साधन बनाते। धर्मशास्त्रो के गभीर ज्ञान तथा विभिन्न धर्मो के पवित्र ग्रथो के अध्ययन ने उन्हे वह दृष्टि दी थी जिसने उन्हे उस पथ पर सतत गतिशील रखा जिस पर वे इस शताब्दी के अत तक चलते रहे। धर्म, दर्शन और समाज-सेवा के क्षेत्रो में उनका जो प्रदेय रहा उससे सभी परिचित हैं तथापि उनके कार्य और चिन्तन के ऐसे अनेक पक्ष भी होंगे जो विभिन्न कारणो से पर्याप्त प्रचार नहीं पा सके होगे और व्यापक समाज उनसे अपरिचित ही रह गया होगा। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को भली प्रकार से समझने के लिये यह आवश्यक है कि उनके जीवन के ज्ञात और अज्ञात, दोनो ही पक्षों की सम्यक् जानकारी हमें उपलब्ध हो। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु *'समता सौरभ'* के प्रतिनिधियों ने वर्तमान आचार्य पूज्य श्री रामलालजी म सा से साक्षात्कार के माध्यम से अपेक्षित जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया। इस हेतु कतिपय प्रमुख प्रश्नो की एक सूची तैयार की गई जिसे आधार बनाकर समय एव स्थान की उपलबधता तथा अवसर की अनुकूलता के

अनुसार समाधान प्राप्त किये गये। इन समाधानो को आवश्यकता के अनुसार सम्पादित कर प्रश्नोत्तरो के रूप मे प्रस्तुत किया जा रहा है। मौखिक विस्तृत शास्त्रीय समाधानों को सम्पादन की औपचारिकता का निर्वाह करते हुए लिखित रूप देने में सभव है कहीं कोई व्यतिक्रम हो गया हो अथवा कोई उत्तर आचार्यश्रीजी के मतव्य के पूर्ण अनुरूप न वन पाया हो तो यह सम्पादनकर्ता की ही त्रुटि होगी जिसके लिये वह आचार्यश्रीजी एव पाठको से क्षमाप्रार्थी होगा।

—सम्पादक

प्रतिनिधि आचार्य नानालालजी म सा के जन्म से पूर्व ही पचम पट्टधर आचार्य न फरमाया था, 'अष्टम पट्टधर आचार्य इतने अधिक पुण्यशाली हागे कि उनके आचार्यत्व काल मे धर्म की महती प्रभावना होगी और यह पाट परम्परा अत्यत दीपेगी।'

यह भविष्यवाणी आचार्य श्री नानेश के व्यक्तित्व और कृतित्व की दृष्टि से किस सीमा तक सफलीभूत हुई है और किस प्रकार?

आचार्यश्री जा भविष्यवाणी पचम पट्टधर आचार्य ने की थी, वह किसी सामुद्रिकशास्त्रज्ञ की भविष्यवाणी नहीं थी जिसके फलित होने मे सशय की गुजाइश होती। वह भविष्यवाणी तो ब्रह्मतेजस्वी आचार्य श्री श्रीलालजी म सा की साधनानुरजित अतर्ध्वनि थी अत उसे तो फलित होना ही था और आप दख रहे हे कि वह आचार्यश्रीजी के सदर्भ मे पूरी तरह फली। आचार्यश्री नानश का व्यक्तित्व एव कृतित्व भी हिमालय जैसा गगनस्पर्शी, अतुलनीय एव अप्रतिम था। सौजन्य, सौहार्द, स्नेह, सद्भाव, तप, त्याग और समभाव से युक्त वे एक विमलोत्कर्षी व्यक्तित्व थे। उस व्यक्तित्व को उसकी सम्पूर्णता में उजागर करन वाला पक्ष वह विचार-क्रान्ति है जिसका उन्होने सूत्रपात किया। इस प्रकार उनके वैचारिक परिवेश मे विश्व की युगीन समस्याआ के समाधान तो समन्वित थे ही, अपनी

मौलिकता के कारण वह एक नई वैचारिक क्रान्ति का पथ-प्रदर्शक भी बना।

आचार्य श्री नानेश ने समाज मे व्याप्त जड़ता को झकझोर कर भौतिक चकाचौंध से पराभूत जन-जीवन को विज्ञान, दर्शन, सस्कृति और धर्म के सूत्रों से सम्पन्न कर, जाग्रत बनाया। उनका व्यक्तित्व अनुभूतिगत साधना का व्यक्तित्व था और आत्मा के चरमात स्वरूप की उपलब्धि उनकी साधना का पुनीत लक्ष्य थी जिसे उन्होने अपने कृतित्व से परिपोषित किया। इस प्रकार वे पुण्यशाली तो थे ही, उनके आचार्यत्व काल में धर्म की महती प्रमावना भी हुई और आचार्यत्व की पाट परम्परा देदीप्यमान भी हुई।

प्रतिनिधि आचार्य श्री नानेश के नाम के साथ कतिपय उपाधियाँ जैसे *चरित्र-चूड़ामणि, प्रात स्मरणीय, जिनशासन प्रद्योतक* आदि जुड़ी हुई हैं। ये उपाधियाँ किन लोगो द्वारा दी गई हैं और किस प्रकार सार्थक है?

आचार्यश्री अप्रमत्त आराधक आत्मभाव के साथ चारित्र की यथावत परिपालना करने वाले चरित्र-चूडामणि होत हैं जिनकी सयमपूर्ण आराधना को देश, काल, क्षेत्र आदि से सवधित कोई भी वाधा अथवा प्रतिकूलता बाधित नहीं कर पाती। ऐसे ही शिखरस्पर्शी चरित्र वाले आराधक ऐसे महामानव होते है जिनक स्मरण मात्र से ही आस्थावान लोग अपनी समस्याओ से मुक्ति पा लेते है। ऐसे महामानवों क क्षणभर के सान्निध्य से हृदय-परिवर्तन हो जाता है। ऐसे ऊर्जापुरुष प्रात स्मरणीय होते है, वे जिन-शासन की ज्योति का युगीन ऑधियो मे भी अपन त्याग-तप के साये में रख कर सुरक्षित करत हैं इस कारण वे जिन शासन-प्रद्योतक कह जाते हैं। ऐस महामानवों का नाम स्मरण करना अपने आप मे मगलकारी

होता है। उनके स्मरण के साथ प्रात काल की दिनचर्या प्रारम्भ करने वाला साधक आश्वस्त हो सकता है कि उसका सम्पूर्ण दिन मगलमय रहेगा, बाधाऐं दूर होगी और सफलता प्राप्त होती रहेगी। इसलिये ऐसे नाम प्रात स्मरणीय बन जाते है। आचार्य श्री नानेश के नाम के साथ ऐसी ही आस्था जुड़ी है। चरित्र-चूड़ामणि तो वे अपने चरित्र के कारण बने, जिनशासन प्रद्योतक जैन धर्म और दर्शन में विश्वास को नवीन शिखरो तक पहुँचा कर बने। ऐसा नाम प्रात स्मरणीय तो स्वत ही बन जाता है।

इस सबध मे एक अन्य बात भी समझ लेनी आवश्यक है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और प्रस्तुत प्रश्न के प्रारम्भिक भाग से जुड़ी हुई है। *चरित्र-चूड़ामणि, प्रात स्मरणीय* जैसे शब्द जो आचार्य श्री नानेश के नाम से पूर्व प्रयुक्त होते हैं, उपाधियाँ नहीं हैं जो किसी के द्वारा प्रदान की गई होती हैं। ये तो मात्र सबोधन हैं जिनके पात्र वे अपने दिव्य गुणों के कारण बने थे और जो उनकी तपश्चर्या के परिचायक भी हैं। उनके कृतज्ञ भक्तो ने उनके ऐसे दिव्य गुणो के कारण ही उन्हें ऐसे अनेक सबोधनो से पुकारना प्रारभ किया था। ये सबोधन भी इतने ही नहीं, अनेक हैं और उनसे भी अधिक हो सकते हैं, उनके सख्यातीत गुणो के आधार पर। इसलिये इनकी गणना की न कोई उपयुक्तता है, न सार्थकता। उपयुक्तता और सार्थकता तो गुण की होती है, उसे किसी भी नाम से सबोधित किया जा सकता है।

प्रतिनिधि आचार्य श्री नानेश का दर्शन के क्षेत्र में प्रमुख प्रदेय उनका *समता दर्शन* माना जाता है। समता दर्शन कोई नया विचार नहीं है। शास्त्रो में भी कहा गया है *'समियाए धम्मे'।* तब आचार्य नानेश के इस प्रदेय में नवीनता क्या है और उन्हे ही *'समता योगी'* क्यों कहा जाता है?

आचार्यश्री आप्तवाणी *'समियाए धम्मे'*, अर्थात् समता ही धर्म है, जैन दर्शन का मूलाधार है, शाश्वत सिद्धान्तों का मूल्य जब-जब जागतिक विकृतियो की विशदता मे खो जाता है तब-तब भगवान् महावीर के सदेशवाहक अध्यात्मयोगी उनकी मूल्यवत्ता की पुन प्रतिष्ठा करने हेतु अवतरित होते है और स्वय के जीवन मे उन्हें आत्मसात कर नये ओज और तेज से उन्हे निखारते हैं। गीता मे भी कहा गया है और जो भारतीय चिन्तन का सार भी है कि जब-जब धर्म की अवमानना होती है, तब-तब उसका अभ्युत्थान करने के लिये भगवान् अवतार लेते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदत्मान सृजाम्यह।।

ये अवतार युग की परिस्थिति के अनुरूप ही होते हैं। ऐसी ही *'समभाव की हानि'* की स्थिति आज के इस उपभोक्तावादी युग मे बन गई थी। आचार्य श्री नानेश ने *'समता योगी'* बनकर अनुभूति के उत्स से समता सलिल को समाज के उद्धार हेतु प्रवाहित किया था, विषमता की दावाग्नि को शान्त करने के लिये समता-दर्शन को बहुआयामी रूप में प्रस्तुत किया था। आचार्यश्री की यह अहिसक उत्क्राति नयी शक्ति, नये प्रभाव और नयी सभावनाओं के साथ समाज के सम्मुख आई इसलिये उसके प्रेणता होने के नाते उन्हें *'समता योगी'* कहना पूर्णत समीचीन है।

प्रतिनिधि समाजवाद, प्रजातत्र, साम्यवाद, धर्मनिरपेक्षता जैसे सिद्धान्त प्रकारान्तर से समता चितन में समाहित हैं। आचार्य श्री नानेश का समता चिन्तन किस प्रकार विशिष्ट है?

आचार्यश्री समता दर्शन अथवा समता चितन आत्मावलोकन के साथ अतर-ग्रथियों के विमोचन से प्रारम्भ होता है, तत्पश्चात् व्यवहार के स्तर पर कर्तव्य की धारा मे घुलमिल कर व्यापक रूप में विस्तार लेता है

इसके विपरीत, समाजवाद, प्रजातत्र, धर्मनिरपेक्षता आदि अतर्ग्रन्थियों से विमोचित न होकर, किसी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अथवा ऐसे ही किसी चिन्तन से उद्‌भूत होते हैं। इस प्रकार इन वादा म वाहर की समानता की औपचारिकता अथवा आग्रह अवश्य होता है, परन्तु इनके पीछे सत्ता, सपत्ति, ख्याति अथवा ऐसी ही किसी महत्त्वाकाक्षा की चिनगारियाँ सुलगती रहती हैं फलस्वरूप उनसे सवधित स्वप्न चिन्तन के आदर्श ही बन कर रह जाते हैं, व्यावहारिकता मे उनका रूपातरण नहीं हो पाता। ससार म समाजवादी अथवा साम्यवादी देशो की आज जो स्थिति है अथवा उनके द्वारा जो विषैला वातावरण उत्पन्न हुआ है वह पूँजीवादी, अधिनायकवादी, फासीवादी जैसी विचारधाराआ के विषैले वातावरण से किसी प्रकार भिन्न नहीं है। यही नहीं, इन चिन्तना ने हिसा, शोषण, अत्याचार, पीड़न और असमानता की नई एव अधिक वीभत्स स्थितियो को जन्म दिया है। समता दर्शन और चिन्तन तो एसी वृत्तियों के मूल पर ही कुठाराघात करता है और उनके उत्पन्न होने की स्थितियों को तो समाप्त करता ही है, मानवतावादी स्थितिया के निर्माण का प्रोत्साहित भी करता है।

प्रतिनिधि समता चिन्तन अत्यत उपयागी चिन्तन है और विविध स्तरों पर समता की स्थापना की वात अत्यत प्राचीन काल से की जाती रही है फिर भी असमानता ही वढी है। आचार्य श्री नानेश का चिन्तन किस प्रकार इस स्थिति के निराकरण म सक्षम है ?

आचार्यश्री जव तक समता का चिन्तन व्यावहारिक क्षेत्रो म आचरण की घरा पर नहीं उतरता तव तक असमानता की दरारे दीर्घ ही हाती जाएँगी चाहे उसकी रूपरेखाए कितनी ही रगीन क्यों न वना ली जाएँ।

आचार्यश्री ने असमानता वनाम विषमता को समाप्त करने के लिये समता के 21 सूत्रा और 3 चरणा की व्यवस्था दी है। इन्हें क्रिया

। म ढालना आवश्यक है अन्यथा सिर्फ समता का ज्ञान तो हो ायेगा परन्तु उसके आचरण मे न आ पाने के कारण विषमता मिट ों पायेगी। स्वार्थ और वैचारिक सघर्ष से विषमता पनपती है। दोनो सघर्षों से उद्‌भवित असमानता अहिसा और अनेकात के युध से समाप्त की जा सकती है। स्वार्थ को अहिसा से और ारों के सघर्ष को अनेकात के आदर्श से समाप्त किया जा सकता है। प्राचीनकाल से चले आ रहे समता-चितन के इस पक्ष की अनदेखी की जाती रही है जो समानता की स्थापना का आधार अथवा नींव है। आप समझ सकते हैं कि यदि नींव ही कमजोर होगी तो उस पर चाहे कितना ही भव्य भवन निर्मित कर लिया जाये, वह स्थायी तो नहीं ही होगा, अपने मे आवास करने वालो के लिये वड़ा खतरा भी वना रहेगा। आचार्य श्री नानेश का चिन्तन इस समस्या का समाधान प्रस्तुत करता है और हृदय की गहराइयो तक समता चितन की नींव डालता है।

प्रतिनिधि किसी भी दर्शन का व्यावहारिक होना अत्यत आवश्यक है, अर्थात् उसे इस रूप मे ढाला जाये कि सामान्य व्यक्ति उसका अनुसरण करने में अधिक कठिनाई अनुभव न कर पाये। यदि ऐसा नहीं होता तो दर्शन चिन्तन की वस्तु ही वन कर रह जाता है और समाज को उसका लाभ नहीं मिल पाता। आचार्य नानेश का समता दर्शन कितना सैद्धान्तिक है और कितना व्यावहारिक ? ऐसे कौन-से पक्ष हैं जो उसे व्यावहारिक वनाते हैं ?

आचार्यश्री आचार्य नानेश के समता दर्शन का व्यावहारिक पक्ष समभाव के रूप के सर्वतोमुखी व्यवहार पर स्थित है जिसके आधार पर समभाव को गति दी जा सकती है। स्व-निर्माण के साथ पर-निर्माण के क्षेत्र म भी प्रगतिशील रहे, यह भी उस दर्शन का एक पक्ष है। एक वाती से हज़ार वातियाँ जलान क समान *समता-समाज* की स्थापना के

रूप मे अथक पुरुषार्थ किया जा सकता है। *'जिओ और जीने दो'* की भावना को *'जिओ और जिलाओ'* की ऊँचाई तक ले जाने का उपक्रम इसके व्यवहार का पक्ष है। समता को व्यावहारिक बनाने के ये बिन्दु उनके सैद्धान्तिक चिन्तन को व्यावहारिक बनाते हैं। इसी प्रकार उनके अनुसार धन, सम्पत्ति सत्ता, पद, प्रतिष्ठा आदि को आधार न बनाते हुए व्यक्ति का उसके गुणों के अनुसार चयन कर समता-समाज का निर्माण करना व्यावहारिक पक्ष को पोषित करना है। आचारशुद्धि से आत्मशुद्धि तक ले जाने वाला उनका यह समता दर्शन सर्वागीण रूप में व्यावहारिक ही अधिक है।

स्वय के विचार को ही सत्य मानना, इस हठ के वात्याचक्र में न फँसते हुए बिना किसी पूर्वाग्रह के सामने वाले व्यक्ति के विचार का भी बहुमान करते हुए तथा उसमें निहित सत्याश को समझते हुए वैचारिक समन्वय को पुष्ट करे, यह आचार्य नानेश का चिन्तन कहता है। इस चिन्तन द्वारा प्रेरित समता-समाज अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति के सचालन मे, अपने प्रत्येक चरण में व्यक्ति और समाज की शक्तियों का सामजस्य करने का लक्ष्य रखता है। उभय शक्तियों के इस समन्वय के सहयोग से समता विस्तार के जटिल अभियान को सरल बनाना इसका उद्देश्य है। हर व्यक्ति के गुणों का मूल्याकन हो, उस प्रोत्साहित किया जाय और विषम चिन्तन से मुक्त रखने हेतु उसे एक आध्यात्मिक-सास्कृतिक वातावरण प्रदान किया जाय, यह आचार्य श्री नानेश के चिन्तन का ऐसा आदर्श है जो व्यवहार मे ढाला जा सकता है। आचार्य नानेश ने ता व्यक्ति के लाभ हेतु ही समता दर्शन को इस प्रकार ऐसा अनुकरणीय एव व्यावहारिक बनाया है कि सामान्य व्यक्ति भी उसके अनुसरण मे कठिनाई अनुभव न कर पाये और अपनी प्रकृति एव प्रवृत्तियों को उसके अनुसार ढाल सके। ये ऐसे कतिपय पक्ष हैं जो आचार्यश्री के सैद्धान्तिक दर्शन को व्यावहारिक बनाते है।

प्रतिनिधि आचार्य श्री नानेश ने भारतीय समाज की दुर्दशा पर गभीर चिन्ता व्यक्त की थी' इस दुर्दशा के लिये वे फैशन, पश्चिम की नकल, सिनेमा और अधविश्वासो को प्रमुख रूप से उत्तरदायी मानते थे। इस दुर्दशा से निपटने के लिये उन्होंने कौन-से मार्ग सुझाये है?

आचार्यश्री सामाजिक दुर्दशा आज अति वेग से बढ रही है। इसकी रोकथाम के लिये आचार्यश्री ने सस्कार सुधार को आवश्यक माना था। उनकी यह दृढ मान्यता थी कि कुसस्कारो, कुरीतियो आदि को समाप्त करने हेतु उनके उद्गम को ढूँढना चाहिये। अशुभ वृत्तियाँ कहाँ से पनप रही हैं? विदेशी सभ्यता इसका निमित बन रही है या सामाजिक राष्ट्रीय वातावरण इस दुर्दशा का कारण है? इन कारणो की सम्यक् विवेचना कर इनके स्रोतो को ही सुखा देने का प्रयास करना चाहिये। उन्होने पाश्चात्य सभ्यता के अधानुकरण, सिनेमा, टी वी आदि के व्यापक प्रसार, अज्ञान और अधविश्वासो को तो दुर्दशा के लिय उत्तरदायी माना ही, वर्तमान शिक्षा पद्धति, उपयोगितावादी चिन्तन, भोगवादी मनोवृत्ति, कुव्यसनो के विस्तार, धार्मिक चिन्तन के अवमूल्यन तथा विषमतावादी दृष्टि को भी उन्होने प्रमुख सहयोगी तत्त्वो के रूप में देखा। इस स्थिति के निवारणार्थ उन्होंने सस्कार क्राति की महती आवश्यकता को रेखाकित किया। उन्होने कहा कुसस्कारों के स्रोत से आप अपने परिवार के सदस्यो को अलग कर लीजिये। उनके मस्तिष्क में ये कुसस्कार किसी भी मार्ग से न पहुँच सके, इसका ध्यान रखें। अभ्यास और प्रयासो से सस्कार परिवर्तित हो जायेगे।

वे अनुभव करते थे कि सामाजिक सुधारो का काम बहुत टढा है। इसे एक अभियान का रूप देकर ही पूरा किया जा सकता है।

व्यक्तियों को प्रेरणा देकर कुरीतियों को त्यागने के लिये प्रेरित किया जाय यह भी आवश्यक है। व्यापक दृष्टि रख कर सुरीतियों को अपनाने के लिये यदि लोगों को प्रेरित किया जाय तो सामाजिक क्षेत्रो म शुद्धि आ सकेगी जिसका प्रभाव यदि राष्ट्र और विश्व पर पड़ेगा तो व्यक्ति की आतरिक शुद्धि भी सभव होगी। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को सस्कार क्रान्ति का मोटा नाम दिया जा सकता है।

प्रतिनिधि आचार्य श्री नानेश ने अपने एक प्रवचन *'सुसस्कारों के निर्माण का पथ'* में कहा था कि विचारों के साथ सस्कारों में जो परिवर्तन किया जाता है वही परिवर्तन स्थायी होता है। सस्कारों मे परिवर्तन के लिये तो उन्होंने सस्कार क्रान्ति-अभियान चलाया, विचारों के परिवर्तन के लिये उन्होंने कौन-सा मार्ग सुझाया है?

आचार्यश्री आचार्य नानेश ने सस्कारों में परिवर्तन को विचारों में परिवर्तन से अलग करके कभी नहीं देखा। वे मानते थे कि यदि विचार सस्कार के प्रेरक होते हैं तो सस्कार भी विचारों को पवित्र रखने में सहायक होते हैं। इसलिये उन्होंने दोनों के सम्मिलित सुधार का मार्ग सुझाया और उसे *समीक्षण ध्यान* नाम दिया। उनका मानना था कि *समीक्षण ध्यान* विचार परिवर्तन का सर्वोत्तम मार्ग है। विचार शुद्धि के विना आचार शुद्धि सभव नहीं होती और अतरावलोकन के विना विचार शुद्धि भी सभव नहीं। सम्यक् प्रकार से अपने विचारो का निरीक्षण करने से विवेक और प्रज्ञा जाग्रत होती है और शुभ-अशुभ विचारो का ज्ञान होता है। इस स्थिति मे ही मनुष्य अशुभ विचारो को त्याग कर शुभ विचारों का अवलम्ब लेकर अपने जीवन को शुद्ध-विशुद्ध बना सकता है।

इस प्रकार यदि गहराई से देखें तो समीक्षण ध्यान से सबधित आचार्य नानेश का चितन वास्तव में आत्मावलोकन द्वारा विचार परिवर्तन को प्रेरित करता है। विचार-परिवर्तन मनुष्य को चरित्र-परिवर्तन की दिशा मे गतिशील करता है और परिवर्तित चरित्र सुसस्कारों के निर्माण का मार्ग प्रशस्त करता है। इस प्रकार विचार-परिवर्तन सम्पूर्ण व्यक्तित्व-निर्माण का एक ऐसा वृत्त है जिसकी परिधि समीक्षण ध्यान, सुसस्कार एव चरित्र निर्माण द्वारा निर्मित होती है।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश ने सस्कार सुधार हेतु सस्कार क्रान्ति की बात कही है। किन्तु क्रान्ति के साथ तो वलपूर्वक त्वरित परिवर्तन का भाव जुड़ा होता है। आचार्यश्री तो वलप्रयोग अथवा किसी भी प्रकार की हिसा के सख्त खिलाफ थे, उन्होंने सस्कार सुधार हेतु जो उपाय वताये हैं वे भी शाति और हृदय परिवर्तन के हैं तथा सहज परिवर्तन की प्रक्रिया से सबधित हैं। तब उनके द्वारा अपने अभियान को क्रान्ति कहना कहाँ तक उपयुक्त है?

आचार्यश्री 'क्रान्ति वलपूर्वक त्वरित परिवर्तन की प्रक्रिया है' यह कथन क्रान्ति का केवल शब्दकोशीय अर्थ तथा परिवर्तन की ऊपरी पहिचान का द्योतक तो हो सकता है परन्तु उस भाव को सप्रेपित नहीं कर पाता जो क्राति शब्द मे निहित है। क्रान्ति जिस स्थायी परिवर्तन का लक्ष्य रखती है वह न तो हिसा द्वारा सभव है, न त्वरित गति से प्राप्त किया जा सकता है क्योंकि वास्तविक परिवर्तन आतरिक परिवर्तन होता है जो न तो त्वरित हो सकता है, न ही हिसा द्वारा सभव। भावों और विचारों की प्रक्रिया को वदलने मे लम्वा समय तो लगता ही है, उसके लिये सद्भावनापूर्ण आस्थामय मन स्थिति भी आवश्यक होती है जो निश्चित रूप से समय लेती है। इस प्रकार क्राति का अर्थ विचारों और भावनाओं का सशक्त एव सामूहिक परिवर्तन, रूपान्तरण अथवा वदलाव है। जो क्रान्ति धन, सत्ता, वल-प्रयोग जैसे हिसक तरीके से परिवर्तन लाती है, वह वाहरी परिवर्तन होता है। वह क्रान्ति नहीं दमन

शोषण, जोर-जबरदस्ती मात्र होता है। हृदय-परिवर्तन से जो क्रान्ति घटित होती है, वही असली क्राति होती है। अधविश्वासो, रूढ़ियो, परम्पराओ आदि के कारण जो मूल तत्त्व, चिन्तन दृष्टियाँ आदि दूषित हो गई है, सस्कारों और सस्कृति की जो आभा धूमिल हो गई है उसे पुन शुद्ध और कातिमान बनाने का जो अभियान है, वह क्राति है। इस क्राति हेतु त्याग, स्नेह, बलिदान, सौहार्द, सहयोग आदि अपेक्षित है। क्रान्तिकारी पुरुष महामानव के रूप में स्वय सघर्ष को झेल कर जागरण का सदेश देते हैं। आचार्य श्री नानेश ने युग को बदलने के लिये जो चितन दिया वह ऐसी ही क्रान्ति की अवधारणा वाला चितन था, जो प्रणाली में नहीं, परिणाम में क्रान्ति का लक्ष्य रखता था और हम जानते हैं कि आचार्यश्री का लक्ष्य परिणामवादी होता था। इसलिये अपने आह्वान को उनके द्वारा क्रान्ति कहा जाना सर्वथा उपयुक्त है।

प्रतिनिधि किसी सत का सबसे बड़ा प्रदेय यह होता है कि वह समाज मे ऐसे वातावरण का निर्माण करने में सफल होता है जो समाज-कल्याण, समाज-सेवा और समाजोपयोगी कार्यो के सम्पादन में सहायक होता है तथा इस हेतु प्रेरणा देकर सार्थक प्रयासों की एक शृखला का प्रारम्भ करता है। आचार्य नानेश की प्रेरणा द्वारा किन क्षेत्रों में इस प्रकार के कार्य हुए है और उनका भविष्य क्या है?

आचार्यश्री आचार्य श्री नानेश का सामाजिक प्रदेय अत्यत विशाल है और अपनी परिधि में मनोविज्ञान, आत्मकल्याण, धर्म, दर्शन आदि को भी समेटे हुए है। इस प्रकार जहाँ एक ओर उन्होने दलित, पतित और अस्पृश्य समझी जाने वाली बलाई जाति के हजारों लोगो को मास-भक्षण, मदिरा-पान जैसे कुव्यसनो से मुक्त कर व्यसनमुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया वहीं उनके सस्कार-सुधार के प्रयासों द्वारा सस्कार क्रान्ति का श्रीगणेश भी किया।

दलितोद्धार के अपने इस कार्य द्वारा उन्होंने अस्पृश्य समझी जाने वाली इस जाति को सम्मानजनक *धर्मपाल* नाम देकर प्रतिष्ठित समाज में सम्मिलित होने का अधिकारी बनाया।

मानसिक तनाव से आक्रान्त समाज को मानसिक एव आध्यात्मिक शाति प्राप्त करने हेतु उन्होंने समीक्षण ध्यान साधना का राजमार्ग दिखाया और उसकी सम्पूर्ण विधि की व्याख्या की। दहेज प्रथा उन्मूलन, ब्रह्मचर्य व्रत की पालना तथा रूढ़ियों एव अधविश्वासों से छुटकारे हेतु सस्कार-क्राति का जो मार्ग उन्होंने दिखाया तथा समाज एव व्यक्ति के विचारो को आन्दोलित कर जिस वैचारिक क्रान्ति का दिशा-निर्देश किया, वह उनकी समाज सेवा के क्षेत्र में की गई बहुत बड़ी सेवा थी। विश्वशाति एव समाज व्यवस्था के अमोघ उपाय के रूप में समता दर्शन का प्रतिपादन कर उन्होंने चितन के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी अध्याय जोड़ा।

इस प्रकार जन-कल्याण, समाज-सेवा और समाजोपयोगी कार्यो की एक शृखला उन्होंने आरभ की, जिसका भविष्य अत्यत उज्ज्वल है क्योंकि जहाँ एक ओर जनमत उन प्रवृत्तियों के सचालन हेतु जाग्रत हुआ है वहीं दूसरी ओर जन-मन की उनमें आस्था बनी है। समाज के सभी वर्गो एव स्तरो के लोगों द्वारा इन कार्यो हेतु सहयोग मिलना प्रारम्भ हो ही गया है, चतुर्विध सघ इस दिशा मे विशेष रूप से सक्रिय हुआ है। शिक्षण सस्थानों, छात्रावासों, चिकित्सालयों की स्थापना तथा विविध प्रकार के अन्य जनकल्याणकारी एव जीवदया के कार्यक्रम, जो व्यापक स्तर पर प्रारभ हुए हैं, वे इस बात का प्रमाण है कि आचार्यश्री की प्रेरणा का समुचित प्रभाव पड़ा है और समाज उनकी कल्पनाओं को साकार करने की दिशा में सकल्पबद्ध हुआ है। सत-सती वर्ग भी अपनी मर्यादाओं की परिधि में इस हेतु सम्पूर्ण सहयोग प्रदान करने

के लिये कटिवद्ध है। इस प्रकार सार्थक प्रयासों की जो शृखला आरभ हा गई है वह आश्वस्त करती है कि ऐसे कार्यों का भविष्य अत्यत उज्ज्वल है।

प्रतिनिधि आज की राजनीतिक स्थिति पर दु ख व्यक्त करते हुए आचार्य श्री नानेश ने इस वात पर चिन्ता भी व्यक्त की थी कि सैकड़ो वर्षो के कठिन सघर्ष के वाद मनुष्य न लोकतत्र के रूप मे समानता के कुछ सूत्र वटोर किन्तु विषमता के पुजारियो ने मताधिकार जैसे पवित्र प्रतीक को भी ऐसे कुटिल व्यवसाय का साधन बना दिया है कि प्राप्त राजनीतिक स्वतत्रता भी जैसे निरर्थक होती जा रही है, परन्तु राजनीति का कुत्सित खेल खेलने वाले राजनेताओ के क्रिया-कलापो पर आपने न कभी कोई टिप्पणी की, न उनके विरुद्ध कोई व्यापक अभियान ही छेड़ा, क्यो?

आचार्यश्री साघु-जीवन की अपनी मर्यादाएँ होती है। मर्यादाओ के भीतर रहते हुए साधु समाज को कर्तव्यवोध तो करा सकता है परन्तु परिवर्तन हेतु स्वय सक्रिय नहीं हो सकता। वैसे भी साधु का कार्य एक कमाण्डर जैसा होता है जो नीति एव कार्यप्रणाली का निर्माण करता है। इसका क्रियान्वयन सैन्य तत्र की जुम्मेदारी होती है। मोटे तौर पर कुछ ऐसा ही साधु का कार्य होता है।

आचार्य नानेश एक युगद्रष्टा सत थे। राजनीतिज्ञो द्वारा खेले जा रहे कुत्सित खेल की प्रकृति को समझ कर ही उन्हाने सस्कार क्राति, समीक्षण ध्यान और समता-दर्शन की वात कही थी। वर्वर प्रक्रिया का वर्वर तरीका से विरोध करने की स्वीकृति वे कभी नहीं द सकते थे। वे तो साध्य और साघन दोनों की पवित्रता मे विश्वास रखते थे। इस प्रकार साधु मर्यादाओ का पालन करते हुए उन्हाने अभियान ता छेडा ही, जा सस्कृति, धर्म, दर्शन और मानवता के आदर्शो स पुष्ट था। इसे यदि हम चाहे तो परोक्ष अभियान कह ल

परन्तु अभियान तो यह था ही। वैसे भी राजनीति की आत्मा तो धर्मनीति ही होती है और धर्मनीति को व्यक्ति की इकाई पुष्ट करती है। इस प्रकार व्यक्ति राष्ट्र की नियति को सम्यक् रूप दे सकता है। व्यक्ति को जाग्रत ओर प्रेरित कर आचार्य श्री नानेश ने यह अभियान तो चलाया ही।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश ने अपने एक प्रवचन में कहा था *'गरीवी हटाओ'* का नारा आज हमारे देश के नेताओ का एक सूत्र वन गया है किन्तु यदि अपने जीवन मे समता दृष्टि विकसित हो जाय तो हम गरीवी की समस्या सहज ही दूर कर लेगे। उन्होंने नेताआ को इस प्रकार की दृष्टि के निर्माण के लिये कोई सुझाव नहीं दिये। क्या उन्हें कोई उपयोगी सुझाव दिये जा सकते हैं?

आचार्यश्री आचार्य श्री नानेश ने 'गरीवी हटाओ' के नारे के उद्घोष के वदल गरीवी हटाने का एक स्वस्थ एव अमोघ कार्यक्रम दिया। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को समतावादी, समताधारी और समतादर्शी वनने के सुन्दरतर सोपान दिखाये। इन सोपानो पर आरूढ होने वाला राष्ट्र आर्थिक रूप से सम्पन्न ता होगा ही, मानवता का सरक्षण भी करेगा और आध्यात्मिक आनद से परिपूर्ण भी वन सकेगा। महाव्रतो को स्वीकार करने में असमर्थ व्यक्ति यदि अणुव्रता का पालन भी कर ले और आवश्यकता से अतिरिक्त सत्ता-सम्पति के प्रति अनासक्त भाव विकसित कर ले, तो भी आर्थिक समस्याआ का समाधान आसानी से हो सकता है।

गरीवी हटाने के लिय उन्होंने इस प्रकार अपनी ओर से *मार्ग-निर्देशित* कर दिया। राजनेताआ को अलग से कोई सुझाव देना न तो अपेक्षित ही था, न उचित ही, क्याकि राजनेताआ पर सत्ता का दवाव होता है। उस स्थिति में वे उपयुक्त सुझाव की अवहलना भी कर सकत हैं। फिर जा मार्ग आचार्यश्री ने दिखाया था वह उनक

सामने भी था, उन्हें दीख भी रहा था और वे उसकी उपयुक्तता समझते भी थे परन्तु विविध प्रकार के आग्रहो से ग्रस्त होने के कारण वे उसका अनुगमन नहीं करना चाहते थे। सोते हुए व्यक्ति को तो जगाया जा सकता है परन्तु जो सोने का ढोग कर रहा हो, उसे कौन जगा सकता है? ऐसे राजनेता अपने दभ के कारण जब समझते हुए भी उपयुक्त सुझावों की अनदेखी कर दें तब उन्हें सुझाव देने की बात ही बेमानी हो जाती है।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश समाज निर्माण के कार्य में शिक्षा की महती भूमिका से परिचित थे। आज की दूषित शिक्षा-प्रणाली से वे क्षुब्ध थे तथा उसकी अपनी तरह से कटु आलोचना करते हुए उन्होने कहा था, 'आज जिस प्रकार की शिक्षा-पद्धति प्रचलित है वह बालक को किसी भी अर्थ मे समर्थ नहीं बनाती, न ही नैतिकता एव स्वावलबन की प्रेरणा देती है।'

क्या उन्होंने किसी ऐसी उपयोगी, व्यावहारिक शिक्षा-प्रणाली की रूप-रेखा भी प्रस्तुत की है अथवा क्या किसी ऐसी प्रणाली की परिकल्पना उन्होंने की थी जो दूषण-मुक्त हो? क्या कोई ऐसा शिक्षण सस्थान उनकी प्रेरणा से बना है जो उनकी आदर्श शिक्षा-प्रणाली के अनुरूप शिक्षा प्रदान करता हो?

आचार्यश्री आचार्य नानेश एक धमाचार्य थे इस कारण उनकी दृष्टि दूषित शिक्षा-प्रणाली सहित समाज के शरीर में व्याप्त सभी दूषणों की ओर थी और उनके निवारण के मार्ग भी वे जानते थे जिनकी ओर समय, स्थिति और आवश्यकता के अनुसार अपने प्रवचनो मे वे सकेत भी करते रहते थे। इस दृष्टि से उनके प्रवचनों के शिक्षा से सबधित अश यदि एक स्थान पर सग्रहीत किये जाएँ तो शिक्षा से उनका क्या मतव्य था, यह भली प्रकार स्पष्ट हो सकता है। जहाँ तक इस शिक्षा-प्रणाली को साकार रूप देकर गतिशील करने की बात है, तो यह दायित्व तो सरकार और समाज अथवा श्रावको का बनता है।

हाँ, उनकी प्रेरणा से उनके जन्म-स्थान दाता ग्राम मे *'श्री नानेश समता शिक्षण समिति'* की स्थापना की गई है। इस शिक्षण सस्थान का मूल उद्देश्य आचार्य श्री नानेश की शिक्षा से सबधित परिकल्पना को कतिपय अशो मे साकार करना है। इस प्रकार यह सस्थान उनके उपदेशो और दर्शन को विस्तार देने, ऐसे प्रयास करने जिससे ग्रामीण अचलो में प्राचीन गुरुकुल-परम्परा के अनुरूप छात्रो का बौद्धिक, आध्यात्मिक एव चारित्रिक विकास हो सके तथा चरित्रवान पीढी अस्तित्व में आये, ऐसे लक्ष्यो को प्राप्त करने की दिशा में सक्रिय है। यह ऐसे उपयुक्त समाजसेवी भी तैयार कर रही है जो जैन सिद्धातो के प्रचार-प्रसार द्वारा सामाजिक चेतना जाग्रत कर सके तथा समता-चितन का विस्तार कर सके। अब यह समाज और व्यवस्था के देखने का काम है कि वह ऐसे प्रयासों को बहुआयामी एव प्रभावी बनाने के लिये क्या कर सकते हैं। चूँकि आज शिक्षा जीवन-यापन के उद्देश्य से जुड़ी हुई है इसलिये किसी भी शिक्षा-प्रणाली को लागू करने मे बहुत सावधानी की आवश्यकता है।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश ने अपने एक प्रवचन *'ताप और तप'* में श्री ठाणाग सूत्र मे वर्णित दस प्रकार के धर्मो मे ग्राम और नगर-धर्म के बाद तीसरे स्थान पर राष्ट्रधर्म की बात कही और उसे पुष्ट भी किया, जबकि चरित्र को नौवे स्थान पर रखा परन्तु यदि लोगों का चरित्र ही दूषित होगा तो न श्रुत धर्म की रक्षा हो सकेगी न कुल, ग्राम, नगर या राष्ट्र धर्म की। वैसे भी शास्त्रों में चरित्र को ही धर्म कहा गया है, फिर चरित्र को नौवें स्थान पर रखने की क्या उपयुक्तता है?

आचार्यश्री लौकिक धर्म का भली-भाँति पालन किये बिना लोकोत्तर धर्म का पालन नहीं हो सकता। राष्ट्रधर्म का पालना करने वाला ही चारित्र धर्म की पालना सम्यक् रूप से कर सकता है। अगर राष्ट्रीय व्यवस्था ठीक न हो तो चोरी, हिसा, अत्याचार, अनाचार जैसी कुवृत्तियाँ पनपने लगेंगी। उस स्थिति में चारित्रधर्म का पालन असभव हा जायेगा।

भगवान् ऋषभदेव ने ग्राम, नगर और राष्ट्रधर्म की स्थापना करके ही अत मे चारित्रधर्म मे प्रवेश किया था तथा उसका प्ररूपण किया था। पाँचवे आरे के अत मे चारित्र्य धर्म का पहले विनाश होगा तत्पश्चात् राष्ट्रधर्म का, अत चारित्रधर्म के लिये राष्ट्रधर्म का अस्तित्व अनिवार्य है। यही वात कुल, ग्राम, नगर-धर्म आदि के सवध मे भी सत्य है। जहाँ इन सभी धर्मो का सम्यक् विधि से पालन होगा वहाँ चारित्र्यधर्म की रक्षा स्वत ही हो जायेगी क्याकि ये ही चरित्र को प्रभावित कर उसके विशिष्ट रूप का निर्माण करते हैं। वड़ी इकाई में वैसे भी छोटी इकाई समा जाती है, यह एक सर्वज्ञात सत्य है।

प्रतिनिधि पर्यावरण-सुरक्षा को आचार्य नानेश ने सर्वजीव सुरक्षा माना, यह निश्चय ही जैन धर्म के केन्द्रीय सिद्धान्त 'अहिसा परमोधर्म ' के अनुरूप था परन्तु पर्यावरण की सुरक्षा के लिये उन्होंने सस्कार क्रान्ति, अथवा 'धर्मपाल प्रतिवोधन' जैसी किसी कार्य प्रणाली की व्यवस्था नहीं दी। आचार्य नानेश के चिन्तन के अनुरूप अव क्या कोई विशिष्ट उपाय सुझाये जा सकते हैं ?

आचार्यश्री आचार्य श्री नानेश ने पर्यावरण-सुरक्षा हेतु किसी कार्य प्रणाली की व्यवस्था नहीं दी है, ऐसा नहीं है। उन्होंने जीवन मे पालन हेतु जो नियम वताय हैं उनम इस व्यवस्था का समावेश हो जाता है। ऐसे कतिपय नियम हैं— हरे-भरे वृक्षों को न काटे पानी का दुरुपयोग

न कर, जूठन न छोड़े, वायुमण्डल को दूषित करने वाले उद्योगो से वच तथा पन्द्रह कर्मदान का त्याग करे।

आचार्य नानेश के चिन्तन के अनुरूप जो उपाय सुझाये जा सकते हैं उनमें प्रथम तो यह है कि इन नियमा की सूची वना कर एक उपासक वर्ग तैयार किया जाय, जो अभियान बना कर उन नियमो को प्रत्येक घर मे पहुँचाये। पन्द्रह कर्मदान तो महापाप के व्यवसाय हैं ही, अन्य हिसाजन्य कार्यो के भयकर परिणामो के प्रति भी लोगो को जाग्रत कर पर्यावरण सुरक्षा के प्रयास करें।

आचार्य श्री नानेश की समीक्षण ध्यान पद्धति एव उनका समता दर्शन पर्यावरण शुद्धि के मौलिक उपाय हैं। मानव मन जितना शात एव समत्व की स्थिति मे रहेगा उतना ही प्रकृति का सतुलन वनाये रखने में वह सक्षम रहेगा। इस प्रकार भीतरी पर्यावरण की सुरक्षा द्वारा वाह्य पर्यावरण की सुरक्षा का कार्य किया जा सकता है।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश सैद्धान्तिक एकता के प्रवल पक्षघर थे। इस हेतु उन्होने जो प्रयास किये थे उनका विवरण समाज के लिये आँखें खोलने वाला होगा।

आचार्यश्री आधुनिक सदर्भ में तथा युगीन आवश्यकता को देखते हुए यह नितात वाछनीय है कि समता, समन्वय, मैत्रीभाव तथा एकता की भावना जनव्यापी वने। इस हेतु एकता के प्रवल समर्थक आचार्य श्री नानेश जिनाज्ञा के अनुरूप एव सयमनिष्ठा तथा अनुशासन व्यवस्था के आधार पर जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तो की सुरक्षा के प्रवल समर्थक थे परन्तु एकता-निर्माण के लिये उन सिद्धान्ता से समझौता उन्हे कभी मान्य नहीं था।

सैद्धातिक एकता के प्रवल पक्षघर आचार्यश्री का प्रारभ से यही कहना रहा कि एकता सैद्धातिक घरातल पर ही होनी चाहिये।

इसके लिये उन्होंने जो शर्तें निर्धारित की थीं जिनका पालन होना उन्होने आवश्यक माना था, उनमे कतिपय हैं—

1 विद्युत से परिचालित साधनों का प्रयोग न किया जाय—इस प्रकार बिजली का पखा, विद्युत की रोशनी, ध्वनि विस्तारक यत्र एव सेलवाली घड़ी का प्रयोग वर्जित रहेगा।

2 रुपये-पैसे, चदे-चिट्ठे के आदान-प्रदान मे भाग नहीं लिया जाय।

3 स्थानक-धर्मशाला आदि बनवाने एव सावद्य प्रवृत्तियो में भाग नहीं लिया जाय।

4 सत का पुरुष के साथ के बिना तथा साध्वी का बहिन के साथ के बिना क्रमश बहिनो और पुरुषों में बैठना वर्जित हो।

ऐसे सभी नियमों का सर्वत्र पालन हो। उनका विश्वास था कि बिना सैद्धातिक धरातल के मात्र लोक-प्रदर्शन की अथवा मचस्थ एकता की बात हास्यास्पद होती है। यह भी सभी को ज्ञात होगा कि उन्होने सवत्सरी पर्व की एकता के लिये स्वय प्रस्ताव रखा था। वैसे भी साम्प्रदायिक कट्टरता को उन्होंने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश ने धर्म सबधी जिज्ञासाओ के समाधान के गभीर प्रयास किये थे जिनसे सबधित दो पुस्तकें प्रकाशित भी हुई है। उनके द्वारा प्रस्तुत समाधान जैन समाज के अन्य घटको को कहाँ तक मान्य हैं? कतिपय के सबध में तो हमे ज्ञात है कि उन समाधानों को स्वीकार नहीं किया गया है, जैसे ध्वनि-विस्तारक यत्र, वाहन एव विद्युत शक्ति का उपयोग। जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों की इस प्रकार जो अवमानना होती है क्या उसके परिणामों से जैन समाज चिंतित नहीं है?

आचार्यश्री आचार्य श्री नानेश के समाधान सदा ही अत्यत सटीक तटस्थ एव मानवीय धरातलस्पर्शी तो रहे ही, वैज्ञानिक सदर्भो से वे कभी कटे भी नहीं। उनके समाधान सभी जिज्ञासुओ के हृदयो को स्पर्श करने की क्षमता भी रखते हैं। उनके समाधानों को जिन लोगो ने नहीं स्वीकारा वे आप्तवाणी के मर्म से अपरिचित, हठाग्रही और लोकैषणा के जाल मे फसे हुए रहे होंगे। ऐसे उत्सूत्रप्ररूपक तथा उन्मार्गगामी लोगों के कारण सच्चे सिद्धान्तो की अवमानना तो होती रही है, अहिसा जो जैनत्व का आधार है, उस पर भी आघात हो रहा है। यह निश्चय ही अशोभनीय स्थिति है। चरित्र की इमारत को टिकाये रखने के लिये प्रामाणिकता नितात आवश्यक है। साध्य और साधन दोनो की निर्मलता ही लक्ष्य की पूर्ति करा सकती है। अत साधु-साध्वी तथा श्रावक-श्राविका के सम्मुख चुनौती है कि नवागत सदर्भो की सम्यक् समीक्षा करते हुए धर्म और धर्मी की रक्षा के प्रयास करे। जैन समाज को इस स्थिति में धर्म की तथा उसके मूल सिद्धातो की रक्षा के प्रति सतर्क रहना चाहिये।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश समग्र जैन समाज की एकता के प्रबल समर्थक थे। इस हेतु समग्र जैन समाज द्वारा एक ही दिन सवत्सरी पर्व मनाये जाने के प्रस्ताव के अतिरिक्त अन्य और कौन से प्रयास उन्होने किये थे तथा उन प्रयासो के क्या परिणाम रहे थे?

आचार्यश्री आचार्य नानेश अत्यत उदार वृत्ति के अनूठे सत थे। उनके चिन्तन में कहीं कोई सकीर्णता नहीं थी। समता भाव उनके चिन्तन के कण-कण में स्पदित था तथा उनकी प्रत्येक क्रिया मे वैश्विक वात्सल्य समाहित रहता था। सभी के विचारो को अपने चितन में समाहित करने के लिये वे तत्पर थे बशर्ते कि जैन धर्म की मौलिकता सुरक्षित रहे।

स्वस्थ आध्यात्मिक चितन की प्यास उनम हरदम बनी रहती थी और हर पल वे उसकी तृप्ति की खोज म लग रहते थे। उनका सत समाज का खुला आमत्रण था कि जैनाचार को सैद्धान्तिक दृष्टि से कायम रखन वाले किसी भी सम्प्रदाय के साथ सम्मिलित होने का तैयार थे। परन्तु समत्व अथवा एकता के प्रयास उभयपक्षीय होत है। उनक सार्थक परिणाम तभी सामने आते हैं जब दूसरे पक्ष भी समन्वय हतु उत्सुक एव तत्पर हो।

प्रतिनिधि आचार्य नानेश धर्म और अध्यात्म के ही गभीर ज्ञाता नहीं थे, धर्मशास्त्र के भी निष्णात विद्वान थे। उनके द्वारा विरचित प्रमुख धर्मशास्त्रीय ग्रथ कौन से है तथा जैन धार्मिक साहित्य म उनका क्या स्थान है ?

आचार्यश्री *'जिण धम्मो'* आचार्य नानेश का एक एसा मौलिक धार्मिक ग्रन्थ है जिसमे जिन प्रणीत मूल तत्त्वा की धर्म और विज्ञान क परिप्रेक्ष्य मे विशद व्याख्या प्रस्तुत की गई है। विभिन्न समस्याओं के ऐसे सटीक समाधान उसमें उपलब्ध है जो युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप हैं। उनके कतिपय अन्य प्रमुख धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ हैं— *आचाराग सूत्र भगवती सूत्र, अतकृद्दशाक सूत्र* एव *कल्प सूत्र*। वैस उनका प्रवचन साहित्य भी अत्यत विशाल है जिसमे धर्मशास्त्रीय तत्त्वा की विशद विवचना उपलब्ध होती है।

प्रतिनिधि अपन 38 वर्षो के आचार्यत्व काल म आचार्य श्री नानेश ने धर्म प्रभावना क अतिरिक्त धार्मिक-सामाजिक जीवन के उद्धार हेतु जा अनक कार्य किये उनम आप सर्वप्रमुख किस कार्य को मानेंग और क्या ?

आचार्यश्री अपन आचार्यत्व काल मे आचार्य नानेश ने धर्म प्रभावना क अतिरिक्त जीवन के उद्धार हेतु अनेक क्षेत्रा में कार्य किया। इस दृष्टि से *धर्मपाल प्रवृत्ति, व्यसन मुक्ति अभियान, सस्कार क्राति, समीक्षण ध्यान साधना* आदि तो महत्त्वपूर्ण है ही, उनका सर्वाधिक महत्त्व का प्रदेय है *'समता दर्शन'* जिसके व्यवहार की भी उन्होंने गभीर विवेचना की थी। सत्य तो यह है कि समता चिन्तन जीवन के धार्मिक, सामाजिक, सास्कृतिक आदि पक्षो का आधार है। शास्त्र वचन भी है—*'समियाए धम्मे'*। यदि चित्त मे समता-भाव आ जाता है तो किसी भी समस्या का। चाहे वह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अथवा अन्य किसी प्रकार की हो, स्वत ही समाधान हो जाता है। चित्त, चितन, मन और हृदय को सम की स्थिति म रखना ही गीता के अनुसार भी *योग* है क्योंकि जहाँ मानसिक सतुलन प्राप्त होता है और हृदय का शाति मिलती है वहीं जीवन की उस सारी भौग-दौड़ और छीना-झपट से छुटकारा मिल जाता हे जा अशाति, हिसा, तनाव, असतोष आदि को जन्म दती है। व्यक्ति, समाज राष्ट्र और विश्व की सभी समस्याओ का समाधान इस एक प्रवृत्ति के हृदय म उदय होने में निहित है। समीक्षण ध्यान, आत्म समीक्षण आदि इसी दर्शन की मनोवैज्ञानिक पद्धतियाँ हैं। इस प्रकार हृदय, बुद्धि और मन की त्रयी को अपने आप म समाहित कर रखने वाल इस *समता दर्शन* की महिमा को इस प्रकार प्रतिपादित करना कि वह वर्तमान जीवन का आधार बन जाय, आचार्य श्री नानेश का एक प्रमुख कार्य था। ◆

—*समता सौरभ* प्रतिनिधि

परिशिष्ट 1

अष्टमाचार्य आचार्य श्री नानेश एक विलक्षण विभूति (विहंगम दृष्टिपात)
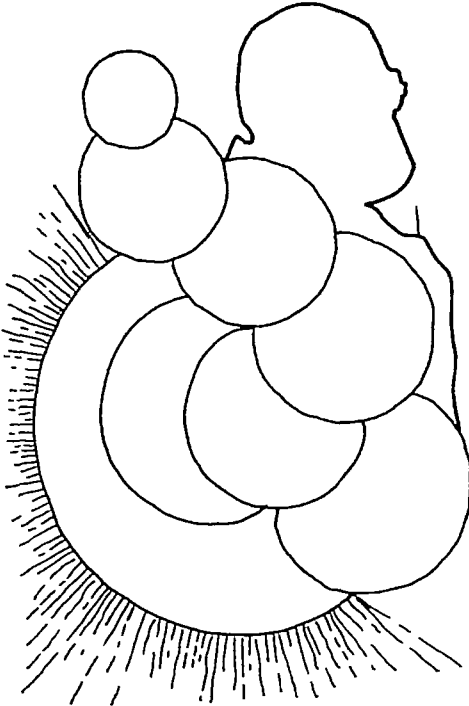
जीवन–वृत्त

पूर्व–पीठिका

परम प्रतापी आचार्य के अवतरण की भविष्यवाणी

आचार्य श्री नानेश के जन्म से पूर्व ही तथा उनके आचार्य पद की प्राप्ति से लगभग 50 वर्ष पूर्व ही पचम पट्टधर आचार्य श्री श्रीलालजी म सा ने भविष्यवाणी कर दी थी कि अष्टम पट्टधर आचार्य अत्यत पुण्यशाली होंगे तथा उनके आचार्यत्व काल में धर्म की महती प्रभावना होगी।

जन्म का प्रान्त

राजस्थान

जन्म का प्रदेश

वीरभूमि मेवाड़

जन्मवश

पोखरना परिवार

जन्म स्थान

दाँता (जिला चित्तौड़गढ़)

जन्म तिथि

ज्येष्ठ शुक्ला द्वितीया, विक्रम सवत् 1977

माता का नाम
श्रीमती शृगारकुवर बाई

पिता का नाम
श्री मोड़ीलाल पोखरना

वैराग्य-प्रेरणा के स्रोत
मेवाडी मुनि श्री चौथमलजी म सा

वैराग्य काल
लगभग तीन वर्ष।

दीक्षा प्रदाता आचार्य
युवाचार्य श्री गणेशीलालजी म सा

दीक्षा स्थान एव वर्ष
कपासन (उदयपुर), पौष शुक्ला अष्टमी, वि स 1996

युवाचार्य पद-प्राप्ति स्थान एव वर्ष
उदयपुर, आश्विन शुक्ला द्वितीया, वि स 2019

आचार्य पद की प्राप्ति स्थान एव वर्ष
उदयपुर, माघ कृष्णा द्वितीया, वि स 2019

दीक्षा के बाद प्रथम चातुर्मास
फलौदी (राज), वि स 1997

आचार्य पद के बाद प्रथम चातुर्मास
रतलाम (म प्र), वि स 2020

आपके द्वारा प्रथम दीक्षित सत
शा प्र श्री सेंवतमुनिजी म सा , कार्तिक शुक्ला द्वितीया, स 2019, उदयपुर

आपके द्वारा प्रथम दीक्षित महासती
महासती श्री सुशीलाकवरजी म सा , माघ कृष्णा द्वादशी, वि स 2019

कुल चातुर्मास
37 (1963-1999)—राजस्थान-23, मध्यप्रदेश-8, महाराष्ट्र-4, गुजरात-2

कुल दीक्षित सत-सतिया
सत-59, महासतिया-310

गुरु भ्राता
दो-श्री ईश्वरमुनिजी म सा, श्री इन्द्रमुनिजी म सा

सथारा प्रत्याख्यान
उदयपुर, कार्तिक कृष्णा तृतीया, वि स 2056 प्रात 9 45

स्वर्गारोहण
उदयपुर, कार्तिक कृष्णा तृतीया, वि स 2056, रात्रि 10 41 ♦

रिशिष्ट 2

आचार्य श्री नानेश · आचार्यत्व एवं आचार्यत्वकाल से संबंधित कतिपय विशिष्ट तथ्य

1 अष्टमाचार्य नानेश के गौरवशाली आचार्यत्व की उनके जन्म से पूर्व ही पचमाचार्य द्वारा भविष्यवाणी।

2 आचार्यपद की प्राप्ति के तुरन्त बाद उदयपुर के हाथीपोल दरवाजे से विहार कर दिशाशूल और मुहूर्त सबधी अधविश्वासों का निवारण।

3 आचार्य पद की प्राप्ति के उपरान्त रतलाम चातुर्मास समाप्त कर 141 दिनों में 87 गावों का पैदल विहार।

4 सन् 1963 के रतलाम चातुर्मास के उपरान्त गुराड़िया ग्राम से 'धर्मपाल' अभियान का श्रीगणेश।

5 सन् 1970 के बड़ी सादड़ी वर्षावास में सामाजिक क्रान्ति की 19 प्रतिज्ञाओं का उद्बोधन। (देखिये परिशिष्ट 5)

6 सन् 1971 के ब्यावर वर्षावास तथा 1985 के घाटकोपर वर्षावास के दौरान ध्वनि विस्तारक यत्र की अनुपयुक्तता पर मौलिक विचारों का प्रतिपादन।

7 सन् 1972 के जयपुर चातुर्मास के दौरान 'समता दर्शन' का प्रतिपादन।

8 सन् 1974 के सरदारशहर वर्षावास में सावत्सरिक एकता के लिये प्रयत्नों का आश्वासन।

9 सन् 1978 में आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा से भोपालगढ़ में ऐतिहासिक मिलन, शास्त्रीय आचार परम्परा की रक्षा तथा समता-भाव की वृद्धि हेतु सयुक्त उद्घोष (देखिये परिशिष्ट 6) तथा पाँच-सूत्रीय योजना का उपदेश। (देखिये परिशिष्ट 7)

10 सन 1980 में राणावास चातुर्मास में चिन्तन के नौ सूत्रों का प्रतिपादन। (देखिये परिशिष्ट 8)
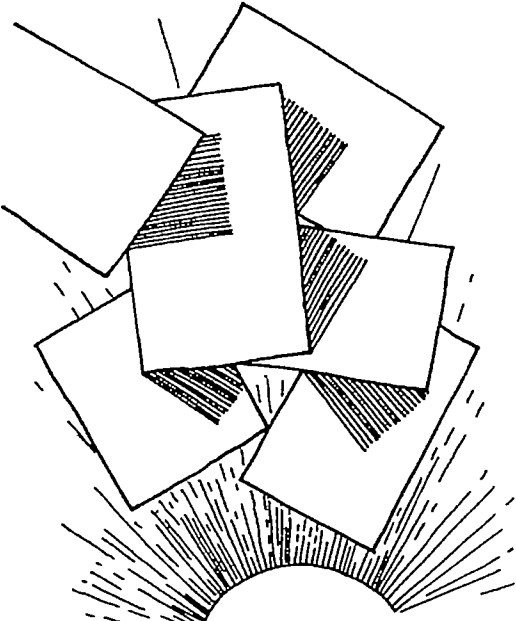
11 सन् 1981 म आपकी प्रेरणा से उदयपुर में *आगम अहिसा समता एव प्राकृत सस्थान* की स्थापना।'

12 सन् 1982 के अहमदावाद वर्षावास के दौरान *समीक्षा ध्यान पद्धति* का प्रकाश।

13 सन् 1983 म भावनगर में श्री चम्पक मुनिजी क साथ चातुर्मास सम्पन्न एव शास्त्राक्त समाचाचारी तथा सयमित जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से उपयोगी एक *पन्द्रह-सूत्रीय* आचार सहिता का सयुक्त रूप से निवेदन। (देखिये परिशिष्ट 9)

14 सन् 1987 के इन्दोर वर्षावास से 'सस्कार क्रान्ति' का आह्वान।

15 मार्च 1992 म वीकानर मे युवाचार्य के पद पर मुनि श्री रामलालजी म सा की प्रतिष्ठा।

16 सन् 1993 म आपकी प्रेरणा से देशनोक मे *समता शिक्षा सेवा सस्थान* की स्थापना।

17 दीक्षाआ के अनोख कीर्तिमान स्थापित—एक साथ 11, 12, 18 और 21 की दीक्षाएं सम्पन्न एव सन् 1988 मे रतलाम मे एक साथ 25 दीक्षाएँ प्रदान कर 500 वर्ष पूर्व के इतिहास की पुनरावृत्ति। कुल 369 दीक्षाएँ सम्पन्न-सत 59 + सतिया 310।

18 श्रमण सस्कृति की रक्षा की दृष्टि से श्रावकों के लिये एकादश दायित्व प्रतिवोधित। (दखिय परिशिष्ट 10)

19 साधु-साध्वियां द्वारा वजोड तपस्याएँ—61, 81 एव 101 दिना की तपस्या सहित।

20 आपको प्राप्त वचन-सिद्धि के अनोखे उदाहरण।

21 प्रभूत धार्मिक आध्यात्मिक साहित्य का सृजन।

22 हाथ की चक्की से पिसे आटे की अनुपलव्धता की स्थिति मे एक सम्पूर्ण चातुर्मास छाछ, रावड़ी, खीचड़ा आदि पदार्थो से सम्पन्न। (देखिये परिशिष्ट 11)

23 पथ्य-परहेज के नियमो के प्रति घोर सतर्क—दिल्ली म एक वैद्य द्वारा पानी के स्थान पर छाछ का प्रयोग करने के परामर्श पर पूरे छ माह पानी न पीकर छाछ पीकर गुजारे।

24 वच्चो से विशेष प्रेम, उनमे भगवान के रूप का दर्शन, माता-पिता द्वारा उनकी विशेष चिन्ता का निर्देश।

25 वैयक्तिक, पारिवारिक एव सामाजिक झगड़ो एव मनमुटावा को स्नेह एव सद्भावपूर्वक सुलझाने के अनोखे प्रयोग।

26 वड़ी सख्या मे विविध अवसरों पर दपतियों द्वारा शीलव्रत ग्रहण एव श्रावका द्वारा विविध प्रकार की तपस्याएँ गृहीत।

27 अनुवर्ती सता से आत्मवत व्यवहार तथा नवदीक्षिता की शिक्षा की विशष चिन्ता।

28 धार्मिक एकता के प्रवल समर्थक एव उस हेतु प्रभावी प्रयास।

29 सभी प्रकार के अधविश्वासा, अध-परम्पराओं, सामाजिक कुरीतियो एव व्यसना के प्रवल विराधी। (देखिये परिशिष्ट 5)

30 वीसवीं सदी के अनुपम सिद्ध पुरुष के रूप म आदृत। ◆

परिशिष्ट 3

श्री गणेशीलाल जी म.सा. द्वारा मुनि श्री नानालाल को युवाचार्य एवं भावी आचार्य-पद प्रदान करने संबंधी सार्वजनिक घोषणा

मुनि नानालाल की प्रतिभा, योग्यता, ज्ञान गरिमा, तप-तेजस्विता एव चतुर्विध सघ के सचालन की उनकी क्षमता से प्रभावित होकर तथा साध्वी वर्ग एव श्रावक वर्ग के द्वारा 22-8-1962 को दिये गये लिखित आवेदनो को स्वीकार कर आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा ने उदयपुर मे अपने 22-9-1962 के व्याख्यान मे मुनि नानालाल को युवाचार्य एव भावी आचार्य पद प्रदान करने की घोषणा की थी। यह घोषणा मुनि नानालाल की आचार्य पद हेतु पात्रता पर अत्यत सारगर्भित टिप्पणी भी प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत है उस घोषणा का मुख्य अश—

सार्वजनिक-घोषणा

लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व जब अचानक मेरे शरीर पर रोग ने आक्रमण किया और स्वास्थ्य निर्बल होता जा रहा था तब शासन हितैषी, सुसगठन प्रेमी, चतुर्विध सघ मे चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उस समय मुझसे प्रार्थना की गई थी कि आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के अधीन नहीं हो जाए, तब तक हमारा भावी आधार क्या हो?

समाज की स्थिति को देखते हुए चतुर्विध सघ के मन मे ऐसे विचार आना स्वाभाविक ही था। उनकी उपर्युक्त भावना की प्रार्थना आने पर समाज की स्थिति और अन्यान्य बातो पर गम्भीरता से मनन करके कुछ व्यवस्था करना मैंने अपना कर्त्तव्य समझा। उस समय मैंने यही सोचा कि चतुर्विध सघ की चिता निर्मूल नहीं है। अत मैंने दिनाक 18 अप्रैल, 1961 को सुसगठन सबधी निम्न भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि मैं सुसगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ। मै अब भी यही चाहता हूँ कि मेरा सतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार, जैसा कि मै पूर्व मे व्यक्त
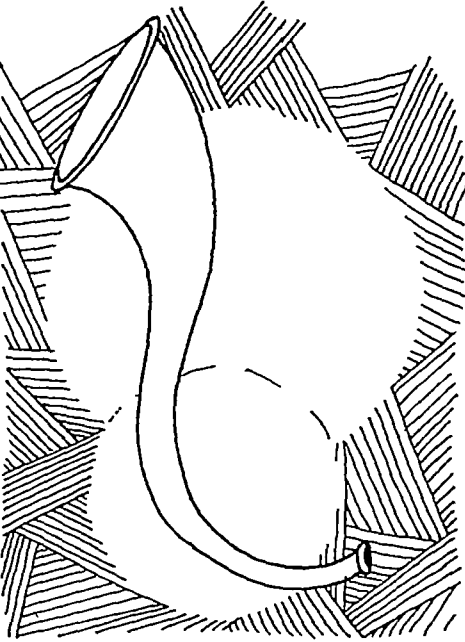
कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व म श्रमण सगठन साकार रूप होकर सुदृढ़ वने अथवा मेर सतोपजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमण्डल या यथासम्भव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आवद्ध हाकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ श्रद्धावान एव चरित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य माने और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य परम्परा आदि सव उन्हीं आचार्य क अधीन रहे। यदि ऐसी स्थिति वनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सत-सतियो से भी मैं यही अपक्षा करता हूँ कि जव भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो उसमे अपना विलीनीकरण करन को तैयार रह। इन भावा को व्यक्त करते हुए चतुर्विध सघ की प्रार्थना को लक्ष्य करके आदश दिया था कि यदि मेरी कल्पना व सम्भावना आदि के अनुसार सुसगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन म न वन सके ता मरे पश्चात् चतुर्विध सघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पडित मुनि श्री नानालालजी को सौंपता हूँ। उनको यह भी निर्देशन करता हूँ कि वे यथासम्भव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसगठन वनाने म सदैव प्रयत्नशील रहे और चतुर्विध सघ उनकी आज्ञाओ को शिराधार्य करता हुआ ज्ञान, दर्शन चरित्र की अभिवृद्धि करता रह।

उक्त भावना एव निर्देशन म सन्निहित भावों से सुज्ञ वर्ग का ज्ञात होना चाहिये कि चतुर्विध सघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जहाँ मैंने एक व्यवस्था दी, वहा शास्त्रसम्मत एक समाचारी म आवद्ध होकर सर्वाधिकारसम्पन्न एक के नेतृत्व म श्रमण सगठन वनता हो तो उसम विलीन हाने क लिये भी मार्ग खुला रखा है। आज भी मेरे यही विचार हैं।

अभी गत ज्येष्ठ मास म उपाध्याय प रत्नश्री हस्तीमलजी म सा उदयपुर पधारे तव श्रमण सघ सबधी उनसे वार्तालाप हुआ था। इसके पश्चात् पर्यूषण पर्व स पूर्व अ भा श्वे स्था जैन कान्फ्रेंस का एक शिष्ट मण्डल भी आया था उससे भी श्रमण सघ सबधी चर्चा-वार्ता हुई थी। सभी ने सुसगठन सवधी मेरी उक्त भावना एव विचारों को भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षार्थ, सहायक माना। परन्तु इतना समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् और चर्चा-विचारणा के उपरान्त भी तदनुसार पालन करन-कराने का कहीं से कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

स 2009 म सादड़ी सम्मेलन मे स्था जैन धर्मानुयायी विभिन्न सम्प्रदायों के मुनिवरों ने मिलकर भिन्न-भिन्न परम्परा और समाचारी मे एकता लाकर एकीकरण, पारस्परिक प्रेममय, एक्यवृद्धि एव सयम मार्ग में उत्पन्न विकृतिया को निर्मूल करन की दृष्टि से एक आचार्य के नतृत्व मे एक और अविभाज्य श्रमण सघ की स्थापना की थी। वहाँ एकत्र सव प्रतिनिधि मुनिवरो ने मिलकर सर्वसम्मति से उपाचार्य पद पर मुझ आसीन कर श्रमण सघ सचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझे सौंपा। तव मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी मैंने प्रतिनिधि मुनिवरो को मान दकर श्रमण सस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण वनाये रखने के लिये उस गुरुतर उत्तरदायित्व को वनाये रखन के लिय उस गुरुतर उत्तरदायित्व को सघ सेवार्थ स्वीकार किया और जो भी समस्याएँ मेरे सामने आई अथवा मुझे सौंपी गई, उन पर न्याय-नीति पूर्वक विचार करके आत्मसाक्षी स निर्णय दिये। यद्यपि विधि-विधान के अनुसार ऐसी समस्याआ का निर्णय लेने का मुझे पूर्ण अधिकार था परन्तु मेरी दृष्टि-सघ हित की मुख्य रही, एव जहाँ भी मुझे आवश्यकता अनुभव हुई मैंन अधिकारी मुनिवरो आदि से परामर्श लेकर निर्णय दिये। इतना सव होते हुए भी ऐसे निर्णयो की न केवल मौन अवज्ञा ही की गई वल्कि विपरीत अध्यादेशों आदि द्वारा उनकी स्पष्ट अवहेलना भी की गई और कराई गई। आश्चर्य ता इस वात का रहा कि मेरे द्वारा किये गये श्रमण सघीय एसे निर्णयों पर जव किसी ने मुझस चर्चा की, तो जहाँ तक मुझे स्मरण है, किसी ने भी उन निर्णया मे मुख्य रूप से अमुक त्रुटिया या कमी रही, ऐसा नहीं कहा फिर भी उनकी पालना नहीं हुई। इस प्रकार न्याय, नीति और अनुशासन की अवहलना होते हुए भी मैंन धैर्यपूर्वक और प्रतीक्षा की, परन्तु जव मुझ लगा कि अव मर जैसे व्यक्ति का श्रमण सघ म रहना व्यर्थ है तव मुझ विवश होकर उस नव-निर्मित श्रमण सघ स सकारण पृथक् हाना पडा परन्तु मार्ग खुला रखा।

बाद मे श्रमण सघीय अधिकारी मुनिवरों एव श्रावक सघों द्वारा मेरे त्याग पत्र सम्बन्धी विचार पर पुनर्विचार करने के पत्र, प्रार्थना पत्र आदि आये। उनमे मैंने मेरे प्रति उनके प्रेम की झलक तो देखी किन्तु जिन कारणो को लेकर मैं श्रमण सघ से पृथक् हुआ, उनके निराकरण का कोई सन्तोषजनक समाधान, आश्वासन नहीं दिखा। इसलिये मैंने सधन्यवाद उनकी प्रेम भावना की सराहना करते हुए जब तक मेरा सन्तोषजनक समाधान नहीं हो जाये तब तक क्या करू, ऐसा उत्तर दिया।

यद्यपि इन सब बातों को काफी समय हो गया, फिर भी मुझे आशा थी कि सादड़ी सम्मेलन में स्वीकार किये हुए उद्देश्य की पूर्ति हेतु मेरी योजना को कार्यान्वित करने का कहीं सक्रिय कदम उठेगा, परन्तु अभी पिछले दिनों जब विकेन्द्रीकरण की योजना मेरे सामने आई और मुनि रूपचन्द्रजी के विषय को, शास्त्रीय मर्यादाओं को भी अलग रखकर जिस ढग से निपटा हुआ मान लिया गया, तो अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी भावानानुकूल एक आचार्य के नेतृत्व में पूर्व स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति की सब मुनिवरों द्वारा कम से कम निकट भविष्य मे सम्भावना नहीं है।

इन दिनों मेरा स्वास्थ्य पुन गड़बड़ा गया है और शरीर में अधिक निर्बलता अनुभव हो रही है। इधर समाज की अस्थिर स्थिति और नैराशय से सुसगठन प्रेमी महानुभाव भी विचलित हैं और चाहते हैं कि सघ सचालन का कुछ ठोस निर्णय लिया जाय। मैं भी अब इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। इसलिये प मुनि श्री नानालालजी को शुभेच्छु चतुर्विध श्रीसघ की सम्मति से परम प्रतापी तपोधनी यशस्वी महान् सन्त पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा की पाटपरम्परा पर युवाचार्य घोषित करता हूँ। मेरे जीवनकाल में ये इस पद से विभूषित रहेगे और मेरे बाद में आचार्य पद के अष्टम पाट की शोभा बढायेगे। यही मेरी भावना है।

यदा-कदा मेरे कान पर एक बात आती रहती है कि उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमण सघ से पृथक् हो जाने के पश्चात् मेरे अगरूप श्रमण वर्ग सहित मेरी स्थिति क्या रहती है ? अब अवसर आ गया है कि इस बिन्दु पर भी प्रकाश डाल दूँ, जिससे स्थिति स्पष्ट हो जाये।

सादड़ी मे निर्मित श्रमण सघ मे प्रवेश इस शर्त के साथ था कि यह सघ ऐक्य योजना अखण्ड रहे, तब तक के लिये मैं बाध्य हूँ।

श्रमण सघ सचालन की अवधि मे, शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा में तथा ध्वनिवर्धक यत्र के उपयोग नहीं करने के सम्बन्ध मे मैने विधिवत् व्यवस्थाए दी थीं। परन्तु उन व्यवस्थाओ के विपरीत आचार्यश्री द्वारा अध्यादेश आदि निकाले गये जिससे तत्काल तो दिल्ली विराजित पजाबी मुनिवरों में और पश्चात् अनन्य भी सामोगिक सम्बन्ध विच्छेद हो गये। इस प्रकार विमेद पड़कर योजना अखण्डित नहीं रही। मेरी उपर्युक्त शर्त के अनुसार मै उस नवनिर्मित श्रमण सघ से पृथक् होने में उसी समय से स्वतन्त्र था, परन्तु इधर समाज में मेरी उक्त व्यवस्थाओ को पालन कराने के प्रयत्न चल रहे थे, इसलिये जावरा सघ से निवेदन प्रकाशित कर मेरी साभोगिक स्थिति को मर्यादित करते हुए मैंने सावधानी दिला दी थी और त्यागपत्र नहीं देकर प्रतीक्षा करता रहा। इसके पश्चात् लम्बे काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब टूटे हुए साभोगिक सम्बन्ध में सुधार नहीं हुआ और दूसरी-दूसरी बातों द्वारा व्यवस्था और बिगड़ने लगी तो मुझे विवश होकर उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमण सघ से पृथक् होना पड़ा।

इस प्रकार श्रमण सघ से पृथक् हो जाने के पश्चात् मैं अपने अग रूप श्रमण वर्ग सहित अपने आप ही यथापूर्व स्थिति मे आ गया। इसमें और विशेष कुछ करने का नहीं रहता।

प मुनिश्री नानालालजी को युवाचार्य पदवी प्रदान के पश्चात् भी जहाँ तक श्रमण वर्ग के साथ सामोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का प्रश्न है उसके लिये मैं पूर्व मे व्यक्त कर चुका हूँ, तदनुसार जिसके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा, वैसा सम्बन्ध आदि रखा जा सकेगा।

मेरे में श्रद्धा रखने वाले सन्त-सती वर्ग एव श्रावक-श्राविकाए प मुनिश्री नानालालजी की आज्ञाओ को शिरोधार्य करते हुए इनको पूर्ण सहयोग देवे और ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि करते रहें।

मै यहाँ पुन निवेदन करता हूँ कि मेरी भावना और कल्पना आदि के अनुसार जब भी ऐसी (सुसगठित की) स्थिति का निर्माण हो, उसमें ये अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहे और सुसगठन बनाने मे सदा प्रयत्नशील रहें।

सघ सचालन के वृहद् कार्य मे सत-सतिया एव श्रावक-श्राविकाओ ने मुझे जो सहयोग दिया, उसके लिये मै उनका पूर्ण आभार मानता हूँ।

श्रमण सघ के कार्यकाल में तथा उसके पश्चात् मेरे द्वारा किसी का भी दिल दुखा हो, तो मै एक बार पुन अन्त करण से क्षमायाचना करता हूँ। इति शुभम्।

उदयपुर,

दिनाक आसोज कृष्णा 9 स 2019

ता 22 सितम्बर, 1962

◆

संसार के पर्दे पर अनेक तरह के चित्र उभरते हैं। उन चित्रों को देख कर मनुष्य कई बार घबरा जाता है। वह उनमे राग-द्वेष करने लगता है। उस मनुष्य को समता दृष्टि से सोचना चाहिए कि यह घबराहट उसके लिए कतई योग्य नहीं है। उसकी योग्यता समभाव में है। अच्छे चित्र पर मुग्ध न होना और बुरे चित्र पर क्षुब्ध न होना समता के सहारे ही सभव हो सकता है।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 4

चादर प्राप्ति के पश्चात् युवाचार्य श्री नानेश का प्रवचन

युवाचार्य की चादर प्राप्त करने के उपरान्त उस चादर को अत्यत विनम्रतापूर्वक स्वीकार करते हुए 30-9-62 को युवाचार्य श्री नानालालजी म सा ने जो सारगर्भित प्रवचन दिया था वह उनके गरिमामय व्यक्तित्व की अनोखी झलक तो प्रस्तुत करता ही है, आचार्य-पद हेतु उनकी पात्रता का प्रमाण भी प्रस्तुत करता है।

चादर प्राप्त करने के पश्चात परम श्रद्धेय प रत्न युवाचार्य
श्री नानालालजी म सा का प्रवचन (दि 30-9-1962)

मैं इस महती सभा मे अपने विचार रखने के लिये खड़ा हुआ हूँ। मेरी इच्छा भार ग्रहण करने की नहीं थी क्योंकि यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण एव गुरुतर दायित्व का है। मेरे विचार में इस पद पर किसी योग्य महामुनि को नियुक्त करने की आवश्यकता थी, पर स्थिति की गम्भीरता ने इस प्रश्न को भी गम्भीर बना दिया और मुझको ही इसके लिये चुना गया।

सादड़ी मे निर्मित श्रमण सघ ने एक आचार्य की अधीनता में ही शिक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास आदि होने का तथा साधु सस्था मे उत्पन्न विकृतियों को दूर करने का जो लक्ष्य निर्धारित किया था, उनकी प्रमुख मुनिवरों द्वारा बाद में पुष्टि तो हुई किन्तु तदनुसार वह अमल मे नहीं आया और अनुभव ऐसा हुआ कि उस लक्ष्य के प्रतिकूल दिशा में ही प्रवृत्ति होने लगी। पूज्यश्रीजी ने समय-समय पर एतद् विषयक सावधानी दिलाई पर उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया, जिसके परिणामस्वरूप निर्ग्रथ श्रमण सस्कृति के ऊपर भी एक बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो गया। पूज्य आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा इसको सहन नहीं कर सके और निर्ग्रथ श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिये पूज्य आचार्यश्री के ये प्रमाण समाज के सामने आ रहे हैं, अन्य भावना से नहीं।
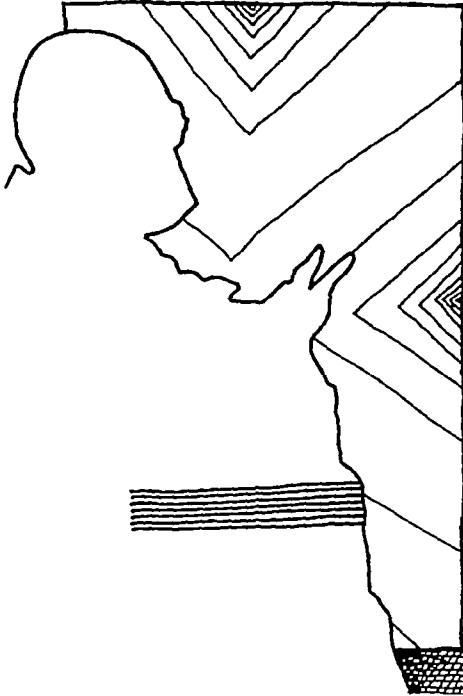
पूज्य आचार्यश्री ने अब भी उपयुक्त लक्ष्य (उद्देश्य) की पूर्ति के लिये सब द्वार खुले रखे हैं। अत निर्ग्रंथ श्रमण सस्कृति की रक्षार्थ पूज्य आचार्यश्री का सन्तोषजनक समाधान होकर सादड़ी सम्मेलन मे निश्चित किये गये उद्देश्य की पूर्ति सही माने में जिस समय भी होगी उसी समय यह सुसगठन प्रेमी चतुर्विध सघ पीछे रहने वाला नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है।

मैं अपने आपको विद्यार्थी के रूप मे समझता हूँ और अपने अन्दर इस पद की योग्यता अनुभव नहीं कर रहा हूँ। मैंने तो विद्यार्थी जीवन के अन्दर रहते हुए श्रावक पद से ऊपर उठकर गुरुदेव के चरणो मे मुनिपद ग्रहण किया। यह मुनि पद भी अपने आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है। यह भार भी कोई थोड़ा नहीं है। यदि यह भी ठीक ढग से वहन हो जाय तो मैं समझूँ कि मेरा जीवन ठीक ढग से आगे बढ रहा है। मैं तो इसी भावना को लेकर चल रहा था, लेकिन आचार्यश्री की भावना और चतुर्विध सघ की इच्छा हुई कि इस महान् उत्तरदायित्व का यह भार इस विद्यार्थी पर डाला जाय। इसमें आचार्यश्री जैसे महापुरुष का क्या आशय रहा है—इसको हमे समझना है। मैं इसमें हस्तक्षेप तो नहीं करता क्योकि यह चादर तो जो मुझे प्रदान की गई है, यह भारतीय सस्कृति मे अपूर्व त्याग एव तपस्या की द्योतक मानी गई है। जहाँ ससार में अन्य पदविया दी जाकर उनका पदक आदि द्वारा महत्त्व आका जाता है, वहाँ यह चादर निराला महत्त्व रखती है।

चादर की परम्परा निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का द्योतन करने के लिये नवीन नहीं है, वल्कि यह तो विशिष्ट ज्ञानियो व पूर्वाचार्यो द्वारा चतुर्विध सघ के सामने चिरकाल से चली आ रही है। यद्यपि व्यक्ति अलग-अलग रूप मे रहकर विकास कर सकता है, लेकिन जहाँ सामूहिक रूप वनकर समाज वनता है, वहाँ व्यक्ति अलग न रहकर सामाजिक रूप में प्रवेश करता है। तब उसका कोई न कोई चिह्न अवश्य होता है। यह जो चादर दी गई है, यह धार्मिक दृष्टि का एक चिह्न है।

चादर के विषय मे पूज्य आचार्यश्री ने मुझे फरमाया है कि यह चादर सुधर्मा स्वामी आदि आचार्यो से चली आ रही है। जितने भी आचार्य तथा महापुरुष हुए है, उन्होने पाट परम्परा पर चादर धारण की है यह चादर श्वेत एव उज्ज्वल है, निष्कलक, पवित्र तथा धब्बो से रहित है। इसके समान अपने जीवन में स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता एव उज्ज्वलता आदि रखने का जो सदेश चादर के रूप में पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, उसको मैं आप तक पहुँचा रहा हूँ।

आज का यह चतुर्विध सघ जिस एक रूप मे यहाँ एकत्र हुआ है उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। इस प्रकार की जो घटनाएँ घटित होती हैं और उनमें जो धार्मिक सस्कार गतिमान हैं, उन सस्कारो को जीवन मे उतार कर उन्नत कराने की दृष्टि से हम सबको प्रत्येक भारतीय के प्रति आत्मीय सम्बन्ध कायम करना है।

ससार में जितने भी प्राणी है सब एक है। आत्मीय दृष्टि से हममें कोई भेद नहीं है। हम सब विश्व कल्याण की कामना लेकर चले। इसका प्रतीक कोई न कोई चाहिये ही। ससार में अनेक तरह के रग हैं जो अलग-अलग रूप मे आते हैं। राष्ट्रीय झण्डे में तीन रग हैं। ये तीनो रग तीन भावनाओं को व्यक्त करने वाले हैं लेकिन इस चादर का रग सफेद है जो सात्त्विक गुण और शान्ति का प्रतीक है। यह वताता है कि इस भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक भाई में शाति, प्रेम एव सात्त्विक गुणो का सचार हो, हमारा जीवन ढग से चले और चतुर्विध सघ अपना कर्त्तव्य लेकर निरन्तर आगे बढ़े।

पूज्य आचार्यश्री के साथ-साथ मुनिवृन्द भी इस चादर के हाथ लगाकर मुझको देने की प्रक्रिया मे सम्मिलित हुए हैं। दूसरे मुनिया व साध्वियों की भी शुभकामनाए प्राप्त हुई है। पजाबी मुनिवर प रत्न श्री सत्येन्द्र मुनिजी, प लखपतरायजी व प मुनिश्री पदमशयनजी म सुदूर पजाव भूमि से यहाँ पधारे हैं। त श्री केशूलालजी म जो बेले-वेले की तपस्या करते है, मुनिश्री सुन्दरलालजी म सा , तपस्वी श्री ईश्वरमुनिजी म , मुनिश्री इन्द्रमलजी म व लघु मुनिश्री बाबूलालजी म एव साध्वीवृन्द आदि सब इस भावना को व्यक्त करते हैं कि वे मुझे सहयोग देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति को आगे वढावेगे।

आज हम सब पूज्य आचार्यश्री के चरणा म वैठे हैं। पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा का लाभ कई भाइयो ने लिया है और ले रहे हैं। यहाँ उपस्थित डॉ शूरवीरसिहजी, डॉ एस एल न्यायतीर्थजी एव प्राकृतिक चिकित्सक

डॉ श्री हिम्मतसिहजी और अनुपस्थित डॉ बी एन शर्मा, डॉ पी के माथुर सा, डॉ पी एम ओ, डॉ ऋषि एव डॉ ए एस गुप्ता सा आदि महानुभाव तथा वैद्य श्री बाबू भाई ने अनन्य भाव से आचार्यश्री की सेवा की है। उनकी यह हितैषी भावना कभी भुलाई नहीं जा सकेगी।

महाराणा सा भी आज यहाँ उपस्थित हुए हैं। आपको देखकर मुझे आपके पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति हो आई है, जिन्होंने धर्म के लिये अनेक दु खों को सहते हुए अकेले रहना स्वीकार किया, घास की रोटिया खाई, परन्तु धर्म से विमुख नहीं हुए। इन्हीं महाराणा प्रताप की पुण्य भूमि उदयपुर में पूज्य आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा जैसे महापुरुष का जन्म हुआ है। ये महापुरुष शारीरिक दृष्टि से यद्यपि दुर्बल हैं, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनमें इतनी शक्ति है कि वह तरुणों मे भी नहीं है।

निष्पक्ष भावना मे जो चादर ओढ़ाई गई है, इसमे ऊचा-नीचा धागा नहीं है। सब धागे सगठित हैं, समान हैं, पतले अथवा मोटे नहीं है। ठीक इसी प्रकार इस चादर को ओढ़ाने मे सम्मिलित होने वाले चतुर्विध सघ को भी मन, वचन, काया की एकरूपता मे लाना है। श्रद्धा प्ररूपणा, स्पर्शना का भी एक रूप होना नितान्त आवश्यक है। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक भाई, चाहे वह जैनी हो या अन्य धर्मावलम्बी हो, किसी भी सम्प्रदाय का नाम धराता हो, प्रत्येक की आत्मा ईश्वर के रूप मे समान है। मैं तो सम्प्रदाय को ऊपर का कलेवर मात्र ही समझता हूँ।

आज हम पर बड़ा भारी उत्तरदायित्व आया है। मैं चाहता हूँ कि आप और हम सब विद्यार्थी के रूप में होकर जीवन को उन्नत बनाकर इसी गुरुतर उत्तरदायित्व को निभावें। बीच मे जो भी बाधाए आवें उनको सम्यक् रीति से पाटने का एव विश्व में अशाति के जो बादल मडरा रहे हैं, उनको अपने-अपने स्थान पर रहकर दूर करने का प्रयत्न करें।

मैं आपसे कहूँगा कि इस चादर का उत्तरदायित्व चतुर्विध सघ पर पूर्ण रूप से आ गया है। चतुर्विध सघ ने अपने ऊपर बड़ी भारी जिम्मेदारी ली है। मैं तो एक

विद्यार्थी हूँ। आपका कर्त्तव्य है कि आप मेरे सहयोगी बने। मेरे मे रही त्रुटि को निकालकर मेरे जीवन को उन्नत बनावें। मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ। आचार्य देव के चरणो में आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्यविहीन था। इन महापुरुष ने मुझ जैसे छोटे ग्रामीण व्यक्ति को अपने चरणों मे स्थान देकर मेरे पर जो उपकार किया, उससे मैं जन्म-जन्मातर में भी उऋण नहीं हो सकूँगा। आज ये महापुरुष शरीर से अस्वस्थ हैं। आप, हम सब यही चाहते है कि आचार्यश्री स्वास्थ्य लाभ कर दीर्घायु हों।

मेरे अन्दर में क्या-क्या भावनाएँ काम कर रही हैं—उनको शब्दों द्वारा व्यक्त करना कठिन हो रहा है। इनके श्रीचरणों में रहते हुए आज जो मैं सयम पालने मे अपने आपको थोड़ा तैयार कर पाया हूँ, यह सब इन्हीं के आशीर्वाद एव कृपादृष्टि का प्रसाद है। परन्तु अभी मुझे आचार्यश्री से बहुत कुछ प्राप्त करना है। इसलिये मेरे अन्तर्मन मे रह-रह कर यही भावना उठती है कि प्रभो पूज्यश्री का वरदहस्त मेरे मस्तक पर दीर्घ काल तक बना रहे ताकि इनकी साधना के अनुभाव द्वारा मैं अपनी साधना में यत्किंचित वृद्धि करके अपने आपको धन्य मान सकूँ। आप लोगो की भावना का समूह विराट एव महान है। यह भावना मुझे भी उन्नत बनाने मे सहायक होगी—ऐसा मेरा विश्वास है।

आचार्यश्री ने जो भार मुझ पर डाला है, वह चतुर्विध सघ के सहयोग से ही प्रगतिशील हो सकता है। मानव जीवन की उच्चता प्राप्त करने मे और इस पद का भार वहन करने मे शक्ति प्राप्त हो तथा शातिपूर्वक निर्बाध गति से प्रगति होती रहे, यही आचार्यश्री से मै शुभाशीर्वाद चाहता हूँ।

मैं इस पद को अपने आपके लिये महत्त्व नहीं दे रहा हूँ। मैं तो यह समझता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री ने इस प्रकार चतुर्विध सघ की सेवा में मुझे रखा है अत मैं चतुर्विध सघ का छोटा-सा सेवक हूँ। चतुर्विध सघ मेरे लिये माता-पिता के तुल्य है। चतुर्विध सघ के मध्य मुझे रखा है तो बीच मे रहने वाले की सुरक्षा का दायित्व चतुर्विध सघ पर आ जाता है। यहाँ पर उपस्थित साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका

तथा अन्य महानुभावों से भी शुभकामना चाहूँगा कि मेरे से इस विश्व के अन्दर जनकल्याण, विश्वमैत्री एव विश्वशाति तथा निर्ग्रथ श्रमण सस्कृति का सरक्षण हो सके ऐसा शुभ सकल्प आप लोगो का हो।

उदयपुर सघ ने पूज्य आचार्यश्री की सेवा आदि करने का जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है, उस कार्य को सारा चतुर्विध सघ कभी भूल नहीं सकता। यह सदा के लिये चिर स्मरणीय रहेगा। उदयपुर सघ का आभार इस रूप में साधुमार्गी समाज पर रहेगा।

भगवान् महावीर क्षत्रिय थे। वे राजसिहासन परित्याग करके जनपद के मध्य आये। जनता के दु खों की अनुभूति की। दु ख निवारण के उपायों को उन्होने घोर साधना करके ढूढ निकाला। कष्ट और बाधाओं को सहन किया। निर्मल ज्योति जगाई। उन्हीं भगवान् महावीर की यह शासन परम्परा चल रही है। इसमें क्षत्रिय वीरों को विशेष भाग लेने की महती आवश्यकता है।

यहाँ उपस्थित महाराणा सा भी क्षत्रिय है। अत आपके ऊपर भी उत्तरदायित्व है। महाराणा सा को भी मैं तो कहूँगा कि आप वास्तविक क्षत्रिय धर्म को अपनाकर भगवान महावीर की तरह राज छोड़कर धर्म का उपदेश द तो जनकल्याण की भावना के साथ-साथ भगवान् महावीर के शासन की अच्छी सेवा हो सकती है।

आप सेठिया लोग और अन्य साधारण प्रजाजन जो यहाँ एकत्र हुए हैं, वे अपनी सम्पत्ति से चिपक कर न रहें। अपनी सेठाई की बात को अलग रख कर सम्पत्ति पर से मोह दूर करके शासन की सेवा करे अथवा त्याग की भावना से कुछ उदारता धारण करके जन शाति के लिये कुछ करके दिखावे। आप भी क्षत्रिय हैं, वीर हैं। आप बनिये हो गये तो क्या हुआ? आप मे भी वह तेज है। आप अपने निज रूप को पहिचानने और जनमानस की भावनाओं को लक्ष्य में रख कर कर्त्तव्य पर विशेष ध्यान देवे।

यह चादर एक शुभ भावना की प्रतीक भी है। शुभ-भावनाएँ उज्ज्वल होती हैं और यह चादर भी उज्ज्वल एव खादी की होकर सादी है। सादगी ही स्वतत्रता का प्रतीक है। पूज्य गुरुदेव फरमाया करते हैं कि सादगी ही स्वतत्रता है और फैशन ही फासी है। अत भारत के अन्दर इस सादगी की ओर भी विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

मैं इस चादर पर पूरे विचार नहीं रख पाया हूँ फिर भी कभी प्रसगोपात समय मिलने पर इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का भाव रखता हूँ। इस चादर की तरह जीवन को उज्ज्वल, सादा, पवित्र, निर्मल और मनसा-वाचा-कर्मणा को एकरूपता मे रख कर सहयोगी बनेगे, तो यह सघ चिरकाल तक उन्नत दिशा में पहुँचेगा। इसी भावना को देखते हुए मै अपना कर्त्तव्य पूरा करता हूँ। ◆

परिशिष्ट 5

बड़ी सादडी में घोषित सामाजिक क्रान्ति के 19 सूत्र

सन् 1970 के बड़ीसादड़ी वर्षावास के दौरान सरवानिया महाराज ग्राम मे सत्रह गावों के प्रतिनिधियों ने एकत्र होकर समाज-सुधार का श्रीगणेश करने वाले 19 नियमो की प्रतिज्ञाएँ ली थीं। ये नियम प्रगतिशील सुसस्कारित समाज के गठन की दृष्टि से अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं।

बड़ीसादड़ी वर्षावास 1970/सामाजिक क्रान्ति के सूत्ररूप उन्नीस प्रतिज्ञाएँ

1 मौसर या स्वामी वात्सल्य आदि किसी भी नाम से किये जाने वाले मृत्यु-भोज में न जीमने जायेंगे और न ऐसा मृत्यु-भोज करेंगे।

2 विवाह में तिलक या लेन-देन की सौदेबाजी नहीं करेंगे।

3 सगाई (सम्बन्ध) होने के बाद उसे कोई पक्ष नहीं छोड़ेगा।

4 मृत्यु के बाद एक मास से अधिक शोक नहीं रखेंगे।

5 धर्मस्थान पर सादी वेशभूषा में जायेंगे और प्रवचन में मौन रखेंगे।

6 स्वय यथाशक्ति धार्मिक-शिक्षा लेंगे व बालक-बालिकाओं को दिलायेंगे।

7 धर्मस्थान पर अथवा सामूहिक स्थान पर प्रतिदिन सामूहिक प्रार्थना करेंगे।

8 विवाह आदि समारोहों पर गदे गीत गाने पर रोक लगवायेंगे।

9 जाति व धार्मिक रीति-रिवाजो मे व्यर्थ खर्च नहीं करेंगे।

10 प्रात उठते समय व साय सोते समय 11 नवकार मत्र का जाप करेंगे।
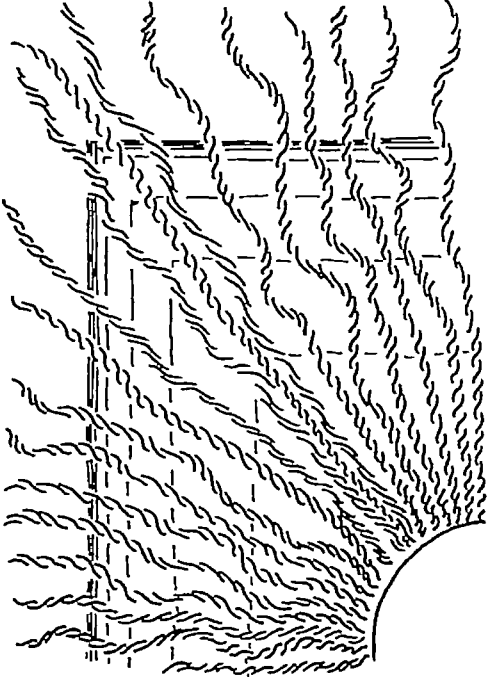
11 दीक्षार्थी भाई-बहिनो की दीक्षा-भावना में बाधक नहीं बनेगे बल्कि सहयो
देगे और सादगी से सम्पन्न करावेंगे।

12 कोई भी भाई-बहिन त्यौहारो के दिनो मे शोक वाले के यहाँ रोने व रुलाने वे
लिये नहीं जावेंगे।

13 विवाह आदि अवसरो पर बैंड बाजो मे अनावश्यक खर्च नहीं करेगे।

14 प्रतिदिन एक या माह में 30 सामायिक पूरी करेगे।

15 जाति सम्बन्धी व व्यक्तिगत झगड़ो को धर्म में नहीं डालेगे।

16 अनमेल विवाह नहीं करेगे।

17 आध्यात्मिक आहार हेतु धार्मिक पुस्तको का यथाशक्ति पठन-पाठन करेगे।

18 सत-सतियो के यहाँ जहाँ भी दर्शनार्थी जायेगे वहाँ सादा भोजन करेगे।

19 नैतिक व चारित्रिक बल बढ़ाने तथा असहायो को सहायता करने हेतु यथाशक्ति उदारता करेगे। ◆

समस्त दु खो की जड़ ममत्व भाव मे है। जिसका ममत्व भाव जितना सगीन होगा, उसका दु ख भी उतना ही सगीन होगा। ममत्व भाव की जड़ जब तक मानव के अतरग जीवन मे फैली हुई है तब तक दु ख के अकुर प्रस्फुटित होते ही रहेगे। दु खों के अकुरों को जलाने के लिए एव ममत्व की जड़े खत्म करने के लिए मानव को समत्व का सहारा लेना चाहिए। समत्व भाव के आधार पर उसे प्रिय के प्रति राग भाव एव अप्रिय के प्रति द्वेष भाव को मिटाने का प्रयास करना चाहिये।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 6

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. एवं आचार्य श्री नानेश का संयुक्त उद्घोष

आचार्य श्री हस्तीमलजी म सा के साथ भोपालगढ़ मे आचार्य श्री नानालालजी म सा ने शासन हित की दृष्टि से 3-4 दिनो तक गभीर विचार-विमर्श कर समाज मे व्याप्त राग, द्वेष और निदा के वातावरण को दूर कर शास्त्रीय आचार-परम्परा को सुरक्षित रखने तथा समता भाव की वृद्धि के लिये अनुकूल वातावरण का निर्माण करने की दृष्टि से उपयोगी जो सयुक्त उद्घोष 26-1-1978 को किया था वह आगम-प्रेमी श्रमणो के सहकार एव विचार की आज भी अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत है उस सयुक्त विचार-विमर्श का निष्कर्ष।

आचार्यद्वय (श्री हस्तीमलजी म सा एव श्री नानालालजी म सा)
की सयुक्त विचार-चर्चा का निष्कर्ष—

सयुक्त उद्घोष

बहुत दिनो की प्रेरणा और प्रतीक्षा के पश्चात् हम दोनों का औपचारिक प्रेम मिलन भोपालगढ़ की पवित्रभूमि पर सम्पन्न हुआ। शासन हित की दृष्टि से हमने श्रमण वर्ग की वर्तमान स्थिति को ध्यान मे रखकर चिन्तन किया।

परम वीतराग श्रमण भगवान् महावीर का धर्मशासन उपशमभाव प्रधान है, वीतराग भाव की प्राप्ति जिसका लक्ष्य है। जप-तप की कठोर साधना भी धर्मशासन में उपशमभाव के साथ ही सफल मानी गई है। एतदर्थ, समाज मे व्याप्त राग, द्वेष, निन्दा के कलुषित वातावरण को दूर करने और शास्त्रीय आचार परम्परा को सुरक्षित रखने तथा शात, स्वच्छ, समता भाव की वृद्धि के लिये तदनुकूल वातावरण का निर्माण करना परमावश्यक है। कषाय घटाने की शिक्षा देने वाला वीतराग मार्ग यदि राग-द्वेष की वृद्धि का क्षेत्र बनता है तो हर धर्मप्रेमी के लिये सहज चिन्ता का विषय हो जाता है। इस दृष्टि से
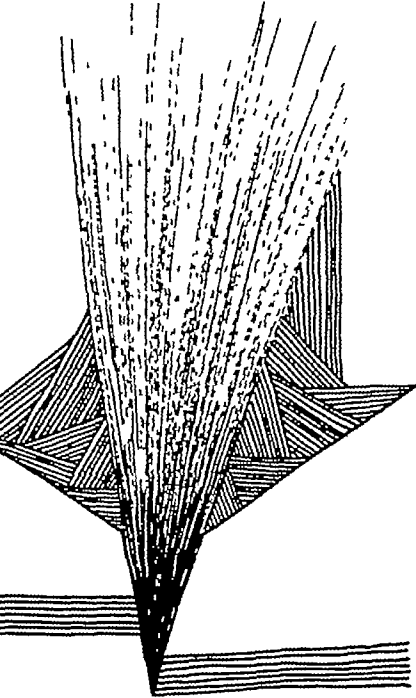
चितन करते हुए हमको आवश्यक लगा कि जब तक आगम प्रेमी मुनिवर्ग आचार शुद्धि के साथ स्वय सगठन की भूमिका पर नहीं आवें तब तक पूरे सघ का सुव्यवस्थित स्थिति में आना सम्भव नहीं लगता, अत हम लोगो ने 3-4 दिनो तक विचार-विमर्श में इस पर गम्भीर चितन किया और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि एक सवत्सरी की भावनापूर्वक कुछ मौलिक नियमो पर आश्रित एक चातुर्मास, निदावर्जन और एक व्याख्यान की व्यवस्था समाज-मान्य हो, तो शासन की सुव्यवस्था का मार्ग व्यापक रूप से सरलता से गतिमान हो सकता है।

एतदर्थ समाज की भावना और आवश्यकता को ध्यान मे रखकर हमने अन्य साथियों से बिना परामर्श किये तत्काल मगलाचरण के रूप में यह सोचा कि समग्र जैन समाज की अथवा श्वेताम्बर जैन समाज की या स्थानकवासी जैन समाज की सावत्सरिक एकता बनने का अवसर आए तो हमारी पूर्ण तैयारी है और तदुपरात एक चातुर्मास, एक पट्ट पर व्याख्यान आदि का प्रेम सम्बन्ध स्वीकार किया है।

इस प्रकार आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा के स्वर्गवास के पश्चात् हमारा यह प्राथमिक मिलन होते हुए भी बड़ा ही प्रेमवर्धक और आशाप्रद रहा। कुछ बातें ऐच्छिक रही हैं जिन पर समयानुसार आगे विचार हो सकता है।

हम दोनों ने तटस्थ भाव से आगमीय सिद्धान्तों के अनुरूप गृहीत महाव्रतों की सरक्षार्थ एक भूमिका तैयार की है। हम इससे आगमप्रेमी श्रमणों के सहकार एव विचार की अपेक्षा रखते हैं।

माघ कृष्णा 2 स 2034

दिनाक 26-1-1978

◆

भावना और साधना के सयुक्त बल का ऐसा उग्र प्रभाव होता है कि आत्म-दर्शन की तृषा शात होने की ओर बढ जाती है। फिर मार्ग मे चाहे जितने कठोर सकटो का सामना हो—आवरणो का चाहे जितना जटिल घनत्व हो, एक भावुक साधक उन सब को गिराता और छेदता हुआ अपने साध्य की ओर बढ जाता है।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 7

व्यक्ति के आचारण क्रम को समता की दिशा में अग्रगामी बनाने की दृष्टि से घोषित 5–सूत्रीय योजना

आचार्य श्री नानेश ने जोधपुर के उपनगर सरदारपुरा में समता पर मार्मिक प्रवचनों के दौरान व्यक्ति के आचरण क्रम को समता की दिशा में अग्रगामी बनाने की दृष्टि से उपयोगी एक पाँच-सूत्रीय योजना का उपदेश दिया था। इस योजना के पाँच सूत्र निम्न प्रकार थे

1 **सबकी समानता मे आस्था** प्रत्येक व्यक्ति न केवल सम्पूर्ण मानव समाज के साथ अपितु समस्त प्राणी जगत के साथ एकात्म भाव का अभ्यास करे और सभी आत्माओ को निजात्मा के समान समझे—समझे ही नहीं बल्कि हृदय में अभिन्नता का भाव बनाकर सभी के दु ख-दर्द से द्रवित होना सीखे और ऊच-नीच, वर्ण-वर्ग, जाति-कुल, स्पृश्य-अस्पृश्य के कृत्रिम भेदों के मूल में रही हुई समानता में दृढ आस्था भी रखे।

2 **समाज के गुण-कर्म आधारित वर्गीकरण मे विश्वास** प्रत्येक व्यक्ति समाज में वर्गीकरण का आधार व्यक्ति, सत्ता अथवा सम्पत्ति को न माने बल्कि गुण एव कर्म के आधार पर सामाजिक वर्गीकरण मे विश्वास रखे एव इस आधार को बनाने तथा मजबूत करने की चेष्टा करे। इसी प्रकार वह स्वस्थ रीति से ग्राम-धर्म, नगर-धर्म एव राष्ट्र-धर्म आदि का पालन करने में स्वय विश्वास रखे और दूसरों का विश्वास बनाने मे सहायता दे। वह आवश्यकता से अधिक सम्पत्ति अथवा जीवनोपयोगी पदार्थो का सचय न करे और यदि सचित हो तो अपने आपको उनका ट्रस्टी माने तथा उनके सम वितरण की भावना रखे। सत्ता और सम्पत्ति को आसक्ति के साथ स्वार्थमूलक न माने और न उनका दुरुपयोग करे। इन शक्तियों को वह जन सेवा एव लोक कल्याण के साधन माने। इस प्रकार के आचार-विचार बनाकर व्यक्ति समाज के सभी वर्गो को गुणों और कर्मो पर आधारित बनाने मे पूर्ण विश्वास करे तथा प्रयत्नशील बने।
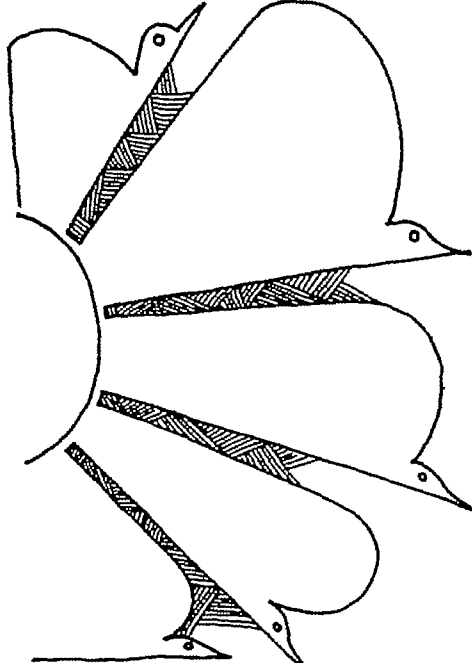
3 व्यक्तिगत जीवन–शुद्धि का अभ्यास प्रत्येक व्यक्ति सभी प्रकार के दुर्व्यसना, आडम्बरा तथा बनावटी दिखावा को छोडने की चेष्टा रखे। वह अपने जीवन को सादा, सरल और सहज बनावे ताकि उसके जीवन–व्यवहार म दोहरापन न रहे। कथनी और करनी के अन्तर को जितने अशा में वह मिटाता रहेगा उतना ही उसका जीवन सत्यनिष्ठ बनता जायेगा। माया और कपट मिटेगा तो प्रामाणिकता बढेगी। मन, वचन और कर्म से वह सदाशयी बनता जावेगा तो यह निश्चित है कि वह स्वय, परिवार, समाज, राष्ट्र आदि के विरुद्ध ऐसा काई कार्य नहीं करेगा जो कलक स्वरूप माना जाय। जीवन के मूल्यो में श्रेष्ठता आ जाने पर वह व्यक्ति ससार मे महान् माना जायेगा तो आध्यात्मिक क्षेत्र म भी परम आत्मार्थी बन जायेगा।

4 गरीब–अमीर की भेदजनक सामाजिक कुरीतियो का परित्याग प्रत्येक व्यक्ति विवाह आदि में तिलक, दहेज आदि की सौदेबाजी और अन्य समारोहा म भी ऐसी आडम्बरी वृत्ति का त्याग करे जिससे गरीब और अमीर का भेद कटु विषमता के रूप मे दिखाई न दे। धन के दिखावे को अपने रहन–सहन के स्तर में भी प्रकट नहीं करे। सादा जीवन रखे और सरलता से व्यवहार करे ताकि गरीब उसमे विश्वास रख सकें और वह गरीबा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण सहयोग बना सके। निरर्थक खर्चो को रोक कर वह अपने अतिरिक्त धन को जन कल्याण के कार्यो म लगावे तथा सामाजिक विषमता बढाने वालों के साथ अहिसक रीति से परिवर्तनकारी प्रयोग करे।

5 नियमित दिनचर्या–पूर्वक समता भाव की साधना प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कम से कम एक घटे तक स्वाध्याय एव समतापूर्ण चिन्तन के द्वारा अपने आचरण की समीक्षा करता रहे और भावी योजना बनाता रहे कि वह किस प्रकार सभी क्षेत्रों में विषमता मिटाते हुए समता का अधिकाधिक प्रसार किन उपायों से कर सकता है? स्वय की दिनचर्या को भी साधनापूर्ण बनावे और प्रतिदिन समाजसेवा एव जनकल्याण की प्रवृत्तियों में कुछ न कुछ अपना सहकार अवश्य दे। ♦

जिसने बूद को नहीं समझा वह कभी सागर को नहीं समझ सकता, जिसने परमाणु को नहीं समझा है वह कभी अणु बम को नहीं समझ सकता। लघु को समझने से ही विराट् का ज्ञान हो सकता है। वैसे ही जिसने समता को नहीं समझा है वह कभी परमात्मा के विराट् रूप को नहीं समझ सकता है।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 8

राणावास चातुर्मास में प्रतिपादित चिन्तन के 9 सूत्र

सन् 1980 के राणावास चातुर्मास के दौरान आचार्य श्री नानेश ने चिन्तन के नौ महत्त्वपूर्ण सूत्र प्रतिपादित किये थे। चिन्तन के ये नौ सूत्र आत्मा के सही स्वरूप को समझने की दृष्टि से अत्यत महत्त्वपूर्ण है।

राणावास मे चिन्तन के जिन नवसूत्रो को आधार बनाकर आचार्यश्री की भावधारा बही वे निम्नाकित हैं

1 हे चैतन्य, तू चिन्तन कर कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, किसलिये आया हूँ और क्या कर रहा हूँ?

2 हे चैतन्य देव, तू सत् चित् आनन्दघन स्वरूप ज्ञाता एव द्रष्टा है। किन्तु कर्म बन्धन के कारण अनादिकाल से चतुर्गति ससार मे भटकता आ रहा है, प्रबल पुण्योदय से तुझे यह अमूल्य मनुष्य जन्म एव आर्य कुल आदि उत्तम सयोग प्राप्त हुए हैं। अत सोच कि अब तुझे क्या करना चाहिये ?

3 हे ज्ञान पुज, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि आत्मगुणों के विकास एव परम शाति, अखण्ड आनन्द की प्राप्ति हेतु तुझे यह मानव तन प्राप्त हुआ है।

4 हे ज्योतिर्मय आत्मन्, तू समभाव से चिन्तन कर कि मैं क्या सोच रहा हूँ, क्या कह रहा हूँ और क्या कर रहा हूँ? मेरा सोचना, बोलना एव चिन्तन करना तुच्छ भाव से हुआ तो नहीं है ?

5 हे सुज्ञ चैतन्य, तू जिन भौतिक पदार्थो को ही सर्वोपरि मानकर उनकी प्राप्ति के लिय असत्य, प्रपच आदि दुष्प्रवृत्तियों मे उलझता हुआ अमानवीय भावों में बहता रहता है एव तू कटुवचनो के द्वारा अनेक हृदयों को चोट पहुँचाता रहता है क्या वह तेरे गौरव के अनुरूप है ? नहीं, कदापि नहीं।
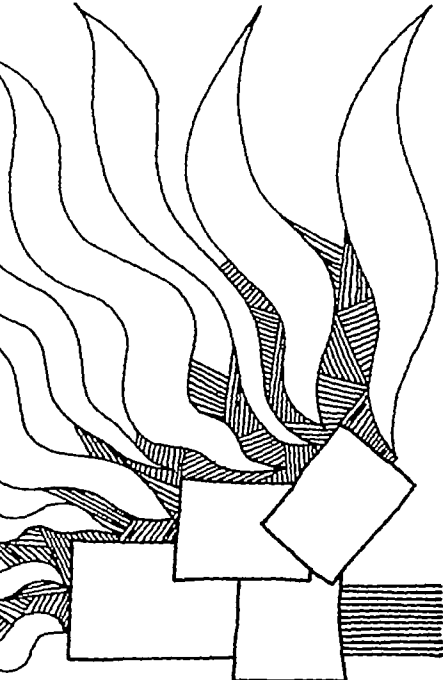
6 हे प्रवुद्ध चैतन्य, यह निश्चित समझ कि मिथ्या श्रद्धा, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या आचरण, पर पदार्थो पर ममत्वभाव एव कषाय तेरे वैभाविक भाव है, स्वभाव नहीं। पर निन्दा करना, सक्लेश उत्पन्न करना एव मोह वृद्धि के कार्य तेरी एव अन्य किसी की आत्मा के लिये हितकर नहीं है।

7 हे विज्ञाता, तू यह अविचल श्रद्धान कर कि सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, अहिसा, सत्य, अचौर्य, व्रह्मचर्य, अपरिग्रह एव स्याद्वाद आदि सिद्धान्त ही तेरी आत्मा की उन्नति करने वाले है।

8 हे सिद्ध-वुद्ध-निरजन-आत्मन्, सिद्धावस्था की अपेक्षा से न तू दीर्घ है, न तू ह्स्व आदि लौकिक विशेषणो से युक्त है। तेरा कोई वर्ण, गध, रस, स्पर्शादि युक्त आकार भी नहीं है। न तू स्त्री है, न तू पुरुष है और न नपुसक है। तो फिर क्या है ? अरूपी है, शाश्वत है, अशरीरी है, अजर है, अमर है, अवेदी है, अखेदी है, अलेशी है, अक्षय सुखरूप है एव ज्ञाता व द्रष्टा आदि सम्परिपूर्ण गुणों से सम्पन्न है ? अत अपने इस स्वरूप को समझ।

9 हे सुज्ञानी आत्मन्, तू ध्यान धर कि मैं विशुद्ध आत्मिक स्वरूप के आदर्श को सदा समक्ष रखता हुआ सम्यक् विधि से जीवन को उन्नत वनाऊ तथा अन्त मे समग्र वधनो से विनिर्मुक्त बनूँ। इसी अन्तरात्मा की शुद्ध श्रद्धा, प्ररूपणा एव आराधना के लिये सतत प्रयत्नशील रहूँ।

समत्व भज भूतेषु, निमर्मत्व विचिन्तय।
अपा-कृत्य मन शल्य, भावशुद्धि समाश्रय।।

समता के छोटे-छोटे प्रयोग जब मानव अपने जीवन के धरातल पर करने लग जाता है तब एक दिन ऐसा भी आता है जव वह सम्पूर्ण समता को आत्मसात कर लेता है। 'बूँद-बूँद से सागर भरता' वाली कहावत उसके लिए चरितार्थ हो जाती है।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 9

आचार्य श्री नानेश एवं आचार्य श्री चम्पक मुनि द्वारा निवेदित 15-सूत्रीय आचार संहिता

सन् 1983 मे आचार्य श्री नानेश एव पूज्य आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म सा का भावनगर मे एक साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ था। उस अवसर पर शुद्ध आराधना और निर्ग्रन्थ सस्कृति की सुरक्षा हेतु उनके बीच अनेक बार विचार-विमर्श भी हुआ था। तब शास्त्रोक्त समाचारी तथा सयमित जीवन की सुरक्षा की दृष्टि से अत्यत उपयोगी पन्द्रह-सूत्रीय आचार सहिता की पालना का सयुक्त रूप से निवेदन किया गया था। यह सयुक्त निवेदन सयम की दृढ़ता के प्रति आचार्य श्री नानेश की दृष्टि भी स्पष्ट करता है।

आचार्यद्वय समता विभूति, बाल ब्रह्मचारी पूज्य आचार्य श्री नानालालजी म सा और परम प्रभावक पूज्य आचार्य श्री चम्पक मुनिजी म सा का

सयुक्त निवेदन

परम हर्ष की बात है कि वीर स 2509 (सन् 1983 ई) के वर्ष में हम दोनो का चातुर्मास भावनगर की पुण्यधरा पर परिपूर्ण होने मे आया है।

निर्ग्रन्थ प्रवचन की शुद्ध आराधना और निर्ग्रन्थ सस्कृति की सुरक्षा हेतु अनेक बार विचार-विनिमय होता रहा है।

अनादिकाल से भव-भवान्तर मे भ्रमण करते हुए इस आत्मा ने अनेक बार द्रव्य सयम का पालन किया होगा। परन्तु उससे आत्मा का कल्याण हो गया होता तो इस पचमकाल मे जन्म लेना नहीं पड़ता। एक बार भी आन्तरिक शुद्धतम भावो से इस निर्ग्रन्थ अवस्था की परिपूर्ण आराधना हो जाय तो निश्चित रूप से यह जीव शाश्वत सुखों को प्राप्त करे ही।
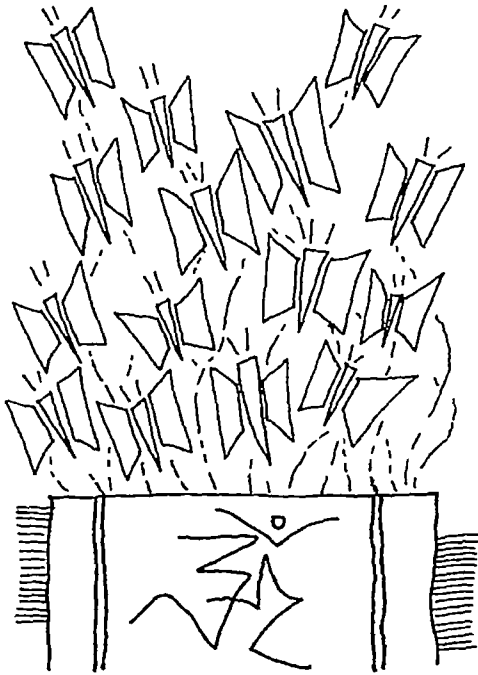
वर्तमान समय म श्रमण साधना की आराधना में नये जमाने के नाम पर परिवर्तन करने के लिये अनेक प्रकार के प्रयत्न हो रहे है। उनसे वच पाना अनेक जीवा के लिये वहुत कठिन हा गया है। ऐसे प्रसग मे श्रमण भगवान महावीर के शासन के प्रति वफादार रहकर निर्मल सयमी जीवन की आराधना के लिये आचरित कई सूचनाऍ सयमी जीवन की सुरक्षा मे अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी— ऐसा हम दानों का मतव्य है।

1 एक सवत्सरी क लिय—सपूर्ण जैन समाज अथवा श्वेताम्वर जैन समाज अथवा स्थानकवासी जैन समाज एकमत होकर जो निर्णय करे, उसे स्वीकार करने के लिये हमें तैयार रहना चाहिये।

2 ध्वनिवर्द्धक यत्र (माइक) सम्वन्धी—पहल वहुत चर्चाएँ हुई हैं। पावर हाऊस, जेनरेटर, बैट्री अथवा अन्य किसी भी प्रकार से उत्पन्न विद्युत पावर तेजस्काय के अन्तर्गत सचित्त है। इसलिये उसका उपयोग श्रमण मर्यादा म विल्कुल याग्य नहीं है।

3 किसी भी सस्था—चाहे वह स्वय के नाम के साथ अथवा अपने गुरुजनो के नाम के साथ सम्वन्धित हा, क लिये किसी प्रकार के फड या चद में नहीं पडना चाहिय। इसी प्रकार दीक्षा आदि के प्रसग पर किसी भी प्रकार की पैसा की 'उछामणी' नहीं होने देनी चाहिये।

4 उपाश्रय भवन वाडी वगैरह किसी भी प्रकार के मकान के निर्माण सम्वन्धी, उपदेश नहीं देना चाहिय और उसी प्रकार उसके लिय किसी प्रकार के फड या चदे में भी नहीं पडना चाहिय।

5 धातु, प्लास्टिक अथवा चीनी मिट्टी के वने हुए वर्तन (तसल्ली, वाल्टी, प्लट वगैरह) काम में नहीं लने चाहिये।

6 वायुकाय क जीवा की रक्षा क लिय डोरी पर कपडों को लटकाकर नहीं सुखाना चाहिय।

7 किसी भी प्रकार का सर्फ, सावुन तथा वाशिग पाउडर का उपयोग नहीं करना चाहिये।

8 रात्रि में न तो पानी रखना चाहिये और न रात में रहे हुए पानी को लेना चाहिये।

9 लाइट, पखे वगैरह जहाँ चलते हो वैसे स्थान मे नहीं उतरना चाहिये।

10 नित्य-पिड (उसी घर से दूसरे दिन) आहार पानी उपयोग मे नहीं लाना चाहिये।

11 विहार में गृहस्थियो द्वारा अपने साथ लाए गए टिफिन से तथा विहार में दर्शनार्थ आए हुए वाहर के दर्शनार्थियो के पास से आहार-पानी नहीं लेना चाहिये।

12 सचित्त मेवा-पूरी, वादाम, दाख वगैरह नहीं लेना चाहिये।

13 सूर्योदय से पहले विहार नहीं करना चाहिये क्याकि उसम अनेक प्रकार के स्पर्श सम्वन्धी विराधना होती है। जैसे—जिस स्थान में उतरे हुए हो वहाँ रात्रि मे छोटे-मोटे जीवों का प्रतिलेखन किये विना उपकरणों के साथ आना हो सकता है। परिणामस्वरूप उनकी हिसा अथवा स्थानान्तर होने की सम्भावना रहती है। और रात्रि म विहार में ईर्या समिति का पालन भी नहीं हो सकता है अत सूर्योदय के पहले और सूर्योदय के वाद विहार नहीं करना चाहिये।

सूर्यास्त होन के वाद सूर्योदय न हो तव तक नारी वर्ग को श्रमण वर्ग के उपाश्रय मे तथा पुरुप को श्रमणी-वर्ग के उपाश्रय में प्रवेश नहीं करने दिया जाना चाहिये।

14 साधु-साध्वी की तपस्या के निमित्त से पत्रिका अथवा क्षमापना पत्रिका, दीपावली के आशीर्वाद वगैरह की पत्रिकाएं अपने हाथ से गृहस्थ को लिखनी चाहिये, छपवानी नहीं चाहिय। गृहस्था का दर्शन करने के लिये आमन्त्रित

नहीं करना चाहिये। ये कार्य यदि गृहस्थ करते हों तो उन्हें भी रोकना चाहिये।

15 फोटो खिचवाना नहीं चाहिये, पाट, गाड़ी, पगलिया, समाधि आदि की जड़ मान्यता भी नहीं करनी चाहिये, न करवानी चाहिये। समाधि, पगलिया अथवा गुरुओं के फोटो पर धूप-दीप चढाने को अथवा नमस्कार करने को उपदेश देकर रोकना चाहिये।

इनके सिवाय अन्य बहुत सारी बाते है जिनका उल्लेख नहीं किया गया है परन्तु उनके लिये भी सजग रहना आवश्यक है।

यों तो साधु जीवन की साधना मे पाच महाव्रत एव उनकी समाचारी का पूर्ण उल्लेख शास्त्रो में है ही, फिर भी वर्तमान काल में किन्हीं साधु-साध्वियो मे किन्हीं विषयों को लेकर विकृतिया प्रवेश कर चुकी हैं अथवा फैल रही हैं। शुद्ध सयम के पालन हेतु चतुर्विध सघ के प्रत्येक सदस्य के लिये इन बातों में सजग रहना आवश्यक है।

बढती हुई इन विकृतियो को यदि रोकने का प्रयास नहीं किया जायेगा तो यह स्थिति कहाँ तक पहुँचेगी और निर्मल-निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति का क्या होगा? यह एक गम्भीर विचारणीय विषय हो गया है।

शास्त्रोक्त साधु-समाचारी के अनुसार सभी शुद्ध और निर्मल सयम की आराधना करके अपनी तथा शासन की शोभा बढ़ावें यही हमारी शुभकामना है।

प्रस्तोता

दीपचन्द भूरा	नवनीतभाई सी पटेल
अध्यक्ष, श्री अ भा साधुमार्गी	प्रमुख, बरवाला सम्प्रदाय,
जैन सघ।	सगठन समिति

विचारों का शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का प्रभाव मानव-मस्तिष्क पर पड़ता है। हम जैसे विचार करते हैं, वैसे ही वायुमण्डल का हम निर्माण करते हैं। अत शुभ विचारों से शुभ वायुमण्डल को बनाने का प्रयत्न करे।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 10

आचार्य श्री नानेश द्वारा प्रतिबोधित श्रावकों के एकादश दायित्व
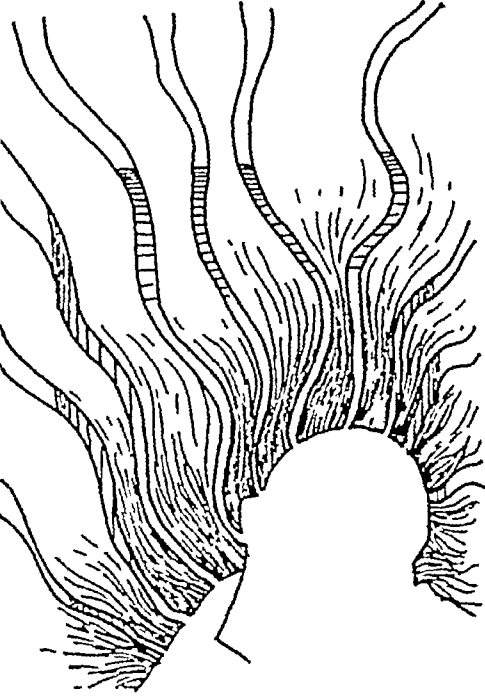
श्रमण संस्कृति की रक्षा की दृष्टि से आचार्य श्री नानेश द्वारा प्रतिबोधित श्रावकों के एकादश दायित्व अत्यत महत्त्वपूर्ण हैं। ये एकादश दायित्व यहाँ प्रस्तुत हैं।

एकादश श्रावक दायित्व प्रतिवोध

समता विभूति आचार्य श्री नानेश द्वारा प्रतिवोधित श्रावक वर्ग का दायित्व विन्दुवार प्रस्तुत है—

—साधु-साध्वियों की निर्ग्रन्थता वरकरार रहे, उसमे किसी तरह का दोष नहीं लगे। इसकी पूरी सजगता रखी जाय।

—त्यागी आत्माओं के समक्ष व धार्मिक अनुष्ठानों के समय सासारिक वात न हो।

—किसी व्यक्ति विशेष के प्रसग को लेकर अपनी आस्था को चलायमान नहीं होने देना क्योंकि कभी-कभी सुनी हुई या दखी हुई वात भी भ्रामक या गलत हो सकती है। यदि सच्ची प्रतीति भी हो ता ही चिन्तन करना चाहिए कि व्यक्ति गलत हो सकता है पर जिनेश्वर देवों का सिद्धान्त गलत नहीं हो सकता।

—सघ क किसी सदस्य की व्यवस्था विपयक कभी कोई अन्यथा वात देखने या सुनने को आवे तो उसकी इधर-उधर चर्चा नहीं करते हुए शासन-सेवा की भावना स उस वात को सघनायक अनुशास्ता तक पहुँचा देना चाहिए।

—सघ के सभी सदस्यों के पास अलग-अलग क्षमताएं होती हैं। कोई स्नातक-अधिस्नातक आदि शिक्षित, प्रवुद्ध व वुद्धिजीवी होत हैं, उनके पास वौद्धिक क्षमता हाती है। किसी के पास समय होता

है तो किसी के पास शारीरिक क्षमता। इसी तरह किसी में वाचिक आदि अन्य अनेक क्षमताएँ होती हैं।

—उन्हें अपनी क्षमतानुसार अपनी शक्ति/शक्तियों का समविभागीकरण कर बच्चो, युवाओं और बहिनो आदि के लिए धार्मिक शिक्षण व्यवस्था, स्वधर्मी वात्सल्यता, स्वाध्याय प्रवृत्ति, जरूरतमन्द स्वधर्मियों की अपेक्षित सेवा, अहिसा प्रसार, ज्ञान प्रसार, असहाय एव पीड़ित मानवता की सेवा, स्वधर्मियो की उन्नति के उपाय आदि विभिन्न रचनात्मक क्षेत्रों में अपनी क्षमता का सदुपयोग कर धर्म की प्रभावना करना।

—प्रभु महावीर के शासन का अनूठा प्रताप है, जिससे अच्छे-अच्छे घर-घरानों की सतानें भौतिकता के इस युग में भी भौतिक सुख-सुविधाओ से मुख मोड़कर सयमी जीवन अगीकार कर रही हैं। ऐसे सयम साधकों के प्रति श्रावक-श्राविका वर्ग का जो दायित्व है, उसका निर्वहन करने के प्रति सजग रहना।

—वर्तमान में साध्वियों की सुरक्षा एक गभीर विषय बना हुआ है। उनके परिजन सघ के विश्वास पर आज्ञा प्रदान करते हैं। उनके विश्वास को अखड रखने की दृष्टि से तथा शासन सेवा की भावना से प्रत्येक व्यक्ति को अपना दायित्व समझकर रक्षा, सुरक्षा के प्रति विशेष रूप से जागरूक रहना।

—धार्मिक क्षेत्रों में बढ़ रही फोटो आदि प्रवृत्तियो के विषय मे समय-समय पर निषेध करता रहा हूँ। उन भावों को ध्यान मे रखते हुए जैन आदि के द्वारा स्वागत करने की परम्परा बनती जा रही है। उस पर गभीरता से चितन करना चाहिए। त्यागियो का स्वागत बैनर आदि से नहीं अपितु तप-त्याग से किया जाना चाहिए।

—धार्मिक अनुष्ठान, सामायिक, पौषध, सवर, व्याख्यान, प्रार्थना, प्रतिक्रमण, ज्ञानचर्चा आदि में तत्परतापूर्वक भाग लेना। हास्य कवि सम्मेलन, लोकरजन आदि आत्म-साधना के अनुकूल नहीं होने से ऐसे कार्यक्रमों का वर्जन करना आदि। इस प्रकार से श्रावक-श्राविका वर्ग अपनी क्षमता व शक्ति अनुसार सघ की भव्य सेवा कर सकते हैं।

—आधुनिकता का तूफान जोर पर है। यह तूफान कभी-कभी साधु-साध्वियों को भी विचलित करने वाला बन सकता है। ऐसी स्थिति में श्रावक-श्राविकाओ का कर्त्तव्य है कि वे गभीरता, सतर्कता एव विवेक का परिचय दें, अर्थात् विचलित होने वालों को अत्यन्त विनम्र शब्दों में सघ-हित से प्रेरित हो निवेदन करें।

◆

यदि सदा के लिए शाति अर्जित करनी है तो त्याग के मार्ग पर चलना होगा। त्याग का मार्ग ही शाश्वत शाति का मार्ग है।

—आचार्य श्री नानेश

परिशिष्ट 11

आचार्य श्री नानेश-विरचित साहित्य

प्रकाशित पुस्तके

प्रवचन साहित्य

1 अमृत सरोवर
2 आध्यात्मिक आलोक
3 आध्यात्मिक वैभव
4 आध्यात्मिक ज्योति
5 जीवन और धर्म (हिन्दी एव मराठी)
6 जलते जाए जीवन दीप
7 ताप और तप
8 नव निधान
9 पावस प्रवचन भाग-1,2,3,4,5
10 प्रवचन पीयूष
11 प्रेरणा की दिव्य रेखाए
12 मगलवाणी
13 सस्कार क्रान्ति
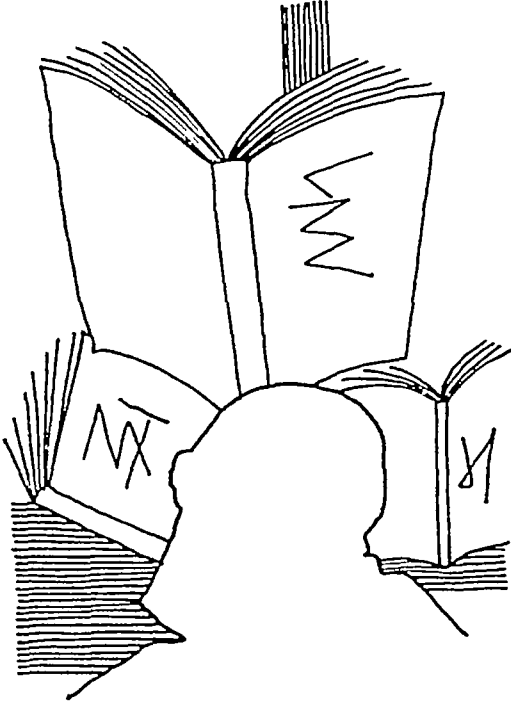
14 शान्ति के सोपान

15 अपने को समझे, भाग-1,2,3

16 एकै साधे सब सधे

17 जीवन और धर्म

18 सर्व मगल सर्वदा

कथा साहित्य

1 अखण्ड सौभाग्य

2 कुकुम के पगलिए

3 ईर्ष्या की आग

4 लक्ष्यवेध

5 नल दमयन्ती

चितन साहित्य

1 गहरी पर्त के हस्ताक्षर (हिन्दी, गुजराती)

2 अन्तर के प्रतिबिम्ब

3 समता क्रान्ति का आह्वान (हिन्दी, मराठी)

4 समता दर्शन एक दिग्दर्शन

5 समता दर्शन और व्यवहार (हिन्दी, अग्रेजी, गुजराती)

6 समता निर्झर

7 समीक्षण धारा

8 समीक्षण ध्यान एक मनोविज्ञान

9 समीक्षण ध्यान प्रयोग विधि (हिन्दी, गुजराती)

10 मुनि धर्म और ध्वनिवर्द्धक यत्र

11 निर्ग्रन्थ परम्परा में चैतन्य आराधना

12 कषाय समीक्षण

13 क्रोध समीक्षण

14 मान समीक्षण

15 लोभ समीक्षण

16 कर्म प्रकृति

17 गुण स्थान स्वरूप विश्लेषण

18 जिण धम्मो

19 उभरते प्रश्न चिन्तन के आयाम

शास्त्र

1 अन्तकृतदशाग

2 वियाह पण्णति सूत्र प्रथम भाग

काव्य

1 आदर्श भ्राता (खण्ड काव्य)

विशेष (क) आचार्य श्री नानेश का अप्रकाशित साहित्य भी प्रभूत मात्रा में विद्यमान है।

(ख) देश के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों का आचार्य श्री नानेश से सबधित साहित्य भी विपुल मात्रा में उपलब्ध है। ◆
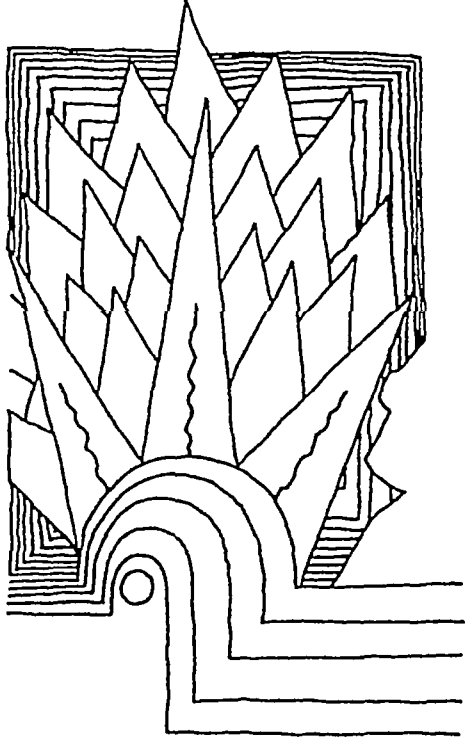
लेखक–सम्पर्क

पावन स्तवन

प ज्ञानदत्त पाण्डेय—द्वारा श्री अमृतलाल जी पगौरिया,
30, वजाज खाना, जावरा (रतलाम)

•

डॉ उदयचद्र जैन—पिऊ कुज, अरविद नगर, उदयपुर

•

इन्दरचद वैद—सम्पादक, समता सौरभ, समता शिक्षा सेवा सस्थान, देशनोक

•

डॉ सजीव प्रचडिया 'सोमेन्द्र'—मगलकलश, 394, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड, अलीगढ (उ प्र)

•

प्रो शीलचन्द्र जैन—प्राध्यापक हिन्दी, डेनियलसन कालेज
छिदवाड़ा 480001

निर्झर नानेश

मानव मुनि—विसर्जन आश्रम, नवलखा, इन्दौर 452001

•

सरदारमल काकरिया—2-अ, क्वीन पार्क, कलकत्ता

•

कन्हैयालाल भूरा—'राष्ट्रीय सयोजक, व्यसन-मुक्ति एव सस्कार-जागरण अभियान समिति', एन एन रोड, कूच बिहार

•

निर्मला चोरड़िया—अध्यक्ष, श्री अ भा साधुमार्गी जैन महिला समिति, 2, भैरव पथ, मोती डूँगरी, जयपुर-4

•

जयचद लाल सुखानी—डागो की पिरोल के पास, बीकानेर

•

डॉ नेमीचद जैन—सम्पादक, तीर्थंकर, 65, पत्रकार कालोनी, इन्दौर

•

राजमल चोरड़िया—2, भैरवपथ, मोती डूँगरी, जयपुर

•

जेठमल बोथरा—अध्यक्ष, श्री साधुमार्गी जैन सघ, गुवाहाटी (आसाम)

•

सोहनलाल सिपानी—कोरमगला, बेंगलौर

•

सुरेन्द्र कुमार धारीवाल—19, लाला गली, जावरा (रतलाम)

•

प्रो चाँदमल कर्णावट—प्लाट 35, अहिसा पुरी, फतेहपुरा, उदयपुर 313004

•

सम्पतलाल सिपानी—अध्यक्ष, श्री साधुमार्गी जैन श्रावक सघ (पूर्वांचल), सिलचर (आसाम)

•

जेठमल धाड़ेवा—सयोजक, समता प्रचार सघ (पूर्वांचल), द्वारा मै कान्ता ओटो इन्टरप्राइज, हास्पिटल रोड, सिलचर 788005

•

अशोक सुराना—रायपुर (म प्र)

•

गौतम पारख—अध्यक्ष, अ भा साधुमार्गी जैन युवा सघ, रतलाम

•

उत्तमचद श्रीश्रीमाल—सघ प्रवक्ता, ब्यावर

नित्य नानेश

डॉ आदर्श सक्सेना—बी-17, शास्त्री नगर, बीकानेर 334003

•

इन्दरचद बैद—सम्पादक, समता सौरभ, समता शिक्षा सेवा सस्थान, देशनोक (बीकानेर)

•

राजमल पिछोल्या—जूनावास स्कूल के पास, गेगापुर, भीलवाड़ा

•

श्रीमती सोनाली ओस्तवाल—राजनादगाव (म प्र)

•

गुमानमल चोरड़िया—'अरिहत', 17, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, जयपुर 302004

•

डॉ महेन्द्र भानावत—352, श्रीकृष्णपुरा, उदयपुर

•

अनुराग सक्सेना—बी-17, शास्त्री नगर, बीकानेर 334003

- डॉ राजीव प्रचण्डिया—सम्पादक, जयकल्याणश्री, मगलकलश, 394, सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ 202001
- रत्ना आस्तवाल—राजनादगाव (म प्र)
- प्रो रतनलाल जैन—5-ई/271, जयनारायण व्यास नगर, वीकानेर
- डॉ सुरेन्द्र वर्मा—10, एच आई जी , 1, सर्कुलर रोड, इलाहावाद
- डॉ जिनेन्द्र जैन—वरिष्ठ व्याख्याता, प्राकृत एव जैन आगम विभाग, जैन विश्वभारती सस्थान, लाडनू 341306
- डॉ उदयचद जैन—पिऊ कुज, अरविन्द नगर, ग्लास फैक्ट्री, उदयपुर
- डॉ विश्वास पाटील—कृष्णावरी, सरस्वती कॉलोनी, शहादा (नदुरवार) 425409
- प्रो एच एस वर्डिया—79-सी, अम्बामाता स्कीम, उदयपुर
- मगनलाल मेहता—26, चॉदनी चौक, रतलाम (म प्र)
- सुवोध मिन्नी—ई-93, शाति नगर, जोधपुर
- इन्द्रलाल नायल—15, ग्लास फैक्ट्री, 'मातृ छाया', उदयपुर 313003
- श्रीमती अर्चना वर्मा—365/B टाईप III, डी एल डब्न्यू , वाराणसी
- सज्जनसिंह मेहता—सयोजक, समता प्रचार सघ, वड़ी सादड़ी (राज)
- श्रीमती रजना प्रचण्डिया— मगलकलश, 394 सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़ 202001
- प्रो प्रेमसुमन जैन—अधिष्ठाता, सामाजिक ज्ञान एव मानविकी महाविद्यालय, उदयपुर (राज)
- डॉ (श्रीमती) सतोष गोधा—उदयपुर
- इन्दरचद वैद—सम्पादक, समता सौरभ, समता शिक्षा सेवा सस्थान, देशनोक
- डॉ सुरेश सिसोदिया—प्रभारी एव शोध अधिकारी आगम, अहिसा-समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर 313001 (राज)
- मानमल कुदाल—पूर्व प्रभारी एव शोध अधिकारी आगम, अहिसा–समता एव प्राकृत सस्थान, उदयपुर 313001 (राज)
- प्रो सागरमल जैन—पूर्व निदेशक पार्श्वनात विद्यापीठ, 82, न्यू रोड, शाजापुर 465001 (म प्र)
- गजेन्द्र सूर्या—170, आर एन टी मार्ग, झावुआ टावर्स, इन्दौर 452002
- भूपराज जैन—श्री जैन विद्यालय, कलकत्ता